



गुरुमण्डलग्रन्थमालाया नवमपुष्पकम् : —

स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षि मार्कण्डेयलौगाक्षिप्रणीतो धर्मशास्त्रसंग्रहः
मार्कण्डेयलौगाक्षिस्मृतिद्वयात्मकः

षष्ठोभागः

“श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः”

मनसुखराय मोर

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता-१

विक्रम सम्वत् २०१३]

[ईशवीय सन् १९५७

❀ श्रीगणेशाय नमः ❀

गुरुमण्डलग्रन्थमालाया नवमपुष्पकम् :—

स्मृति - सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षि मार्कण्डेयलौगाक्षिप्रणीतो धर्मशास्त्रसंग्रहो
मार्कण्डेयलौगाक्षिस्मृतिद्वयात्मकः

षष्ठोभागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयम्भैरवम् ।
सिद्धौघं वटुकत्रयस्पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम् (शास्त्रभवम्) ॥
वीरान्द्रचष्टचतुष्कषष्टिनवकं वीरावलीपञ्चकम् ।
श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम् ॥

५, क्लाइव रो,
कलकत्ता-१

वैक्रमाब्दः
२०१३

प्रथमं संस्करणम्
५०००

खैस्ताब्दः
१६५७

मुद्रक—

रुलियाराम गुप्त

दि वङ्गाल प्रिंटिंग वर्क्स,

१, सिनागाग स्ट्रीट

कलकत्ता-१



GURUMANDAL SERIES No IX

**THE
SMRITI SANDARBHA**

Collection of Two Major
Dharmashastric Texts Called
Markandaiya & Laugakshi Smritis
by the
Maharshis Markandaiya & Laugakshi

Volume VI

**5, CLIVE ROW,
CALCATT A-1**

Vikram Era
2013.

First Edition
5000

A. D.
1957.

॥ श्रीः ॥

अभ्यर्थना

श्री भूतभावन विश्वनाथ एवं माता अन्नपूर्णा की कृपा से स्मृतिसन्दर्भ (गुरुमण्डलग्रन्थमाला नवमपुष्प) का षष्ठ भाग धर्मशास्त्र प्रेमी महानुभावों के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए हृदय आनन्द अनुभव करता है ।

भारतीय संस्कृति द्वारा जो सुसंस्कार भारत देश के सुपूतों में दृढ़ हो गये हैं उनका सारा मूल इन स्मृति ग्रन्थों में आमूलचूड़ निबद्ध है । शनैः शनैः भारतीय स्वातन्त्र्य सूर्य की रश्मियों के प्रकाश से सुदृढ़ सुसंस्कार इन धर्मशास्त्रों के ज्ञान प्रसार तथा सृष्टि के प्राण पुराण ग्रन्थों की सहायता से मानव को देवता तथा उससे भी ऊपर नर से नारायण बनाने एवं सृष्टि के प्राणीमात्र के कल्याण में मानव को प्रवृत्त करने में दिव्यचक्षुः प्रदान करेंगे तो मैं अपना यह प्रयत्न सफल समझूंगा ।

इस भाग में आये हुए स्मृतिग्रन्थ मार्कण्डेयस्मृति एवं लौगाक्षिस्मृति की हस्तलिखित प्रतियां थियोसोफिकल सोसाइटी, अड्यार, मद्रास के द्वारा सञ्चालित अड्यार लायब्रेरी (पुस्तकालय) से प्राप्त हुई वहीं से इनके प्रतिलिपीकरण (Transcription) का काम हुआ तदर्थ वहाँ के डायरेक्टर एवं पुस्तकालयाध्यक्ष महोदय का मैं साभार धन्यवाद करता हूँ और आशा करता हूँ कि वे सदैव इसी प्रकार कृपा करते रहेंगे । ग्रन्थों की मूल प्रति सर्वथैव जीर्ण, शीर्ण एवं कीटानुविद्ध होने से बार-बार तत्रत्य अधिकारी वृन्द को सानुरोध कम्पीज किये हुए फर्मों को भेजते रहने पर भी त्रुटितस्थानों की पूर्ति करना शक्य नहीं हुआ । यह भाग पहले ही सेवा में प्रस्तुत होगया होता परन्तु विभिन्न हस्तलिखित संग्रहालयों से पत्र व्यवहार होते रहने से यही आशा थी कि कुछ और अप्रकाशित स्मृतियां मिलेंगी जिनका प्रकाशित होना आवश्यक था, खेद है, इतने प्रयास करते रहने पर भी मुझे इष्ट स्मृति ग्रन्थों को प्राप्त करने में असफलता हुई । कुछ के नाम ये हैं—

- (१) कोकिलस्मृति
 (२) पञ्चम भाग में उल्लिखित साठ स्मृतियां (हां, अगस्त्यसंहिता अयोध्या से छपी मिली है, सुरक्षित है) ।
 (३) गरुडस्मृति । (४) पुष्करस्मृति । (५) शिवस्मृति ।
 (६) कूर्मस्मृति । (७) और्वस्मृति । (८) सूतस्मृति ।
 (९) नृहरिस्मृति ।

इस कार्य में काशी के पं० दुर्गादत्तजी त्रिपाठी शास्त्री रामघाट; गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के पं० उदयनारायणजी शास्त्री; दिल्ली के श्री आदित्याचार्य शास्त्री एवं पूना के भाण्डारकर ओरियाण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट (भाण्डारकर प्राच्य शोधसंस्थान) के क्यूरेटर (अधीक्षक) श्री डाक्टर परशुरामकृष्ण गोड़े एम०ए० डी० लिट्० का अमूल्य सहयोग मिला जिससे कुछ अप्रकाशित ग्रन्थों का पता लगा परन्तु कुछेक को छोड़कर उन्हें प्राप्त करने में मुझे पूर्णतया सफलता नहीं मिली । आप विद्वद्वृन्द का पूर्ण सहयोग मिला व कृपादृष्टि बनी रही तो सप्तमभाग में आवश्यक सामग्री उपलब्ध होने से अवशिष्ट मेरे पास सुरक्षित स्मृतियों का प्रकाशन करने का अवसर आसकता है । इस भाग की अपेक्षित त्रुटियों के लिये मेरे पण्डितमण्डल का सहयोग मिलने पर भी सफलता न मिल सकी तदर्थ क्षमा प्रार्थी हूँ ।

“कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ।”

मार्गशीर्ष शु० ११
 गीताजयन्ती
 विक्रमसम्बत् २०१३

कृपामिलाषी :—

मनसुखराय मोर

५, छाइव रो, कलकत्ता-१

सम्पादकीयनिवेदनम्

श्रीमतां तत्रभवतां विद्वदग्रेसराणां करकमलेषु स्मृतिसन्दर्भग्रन्थस्यगुरुमण्डल-
ग्रन्थमालाप्रकाशितस्य नवमपुष्पस्य षष्ठः पटलः समुपस्थाप्यते । पूर्वभागपञ्चक-
सम्बलितचतुःपञ्चाशत्स्मृतिभिः सङ्कलनेनात्रत्यसम्पादितस्मृतिद्वयस्य बृहत्संग्रहस्य
पञ्चोनषट्सहस्रसंख्याकश्लोकाञ्चितस्य मार्कण्डेयलौगाक्षिनामकस्य योगेन
षट्पञ्चाशत्संख्या भविष्यति । नात्र वयं किञ्चिद्वैशिष्ट्यं मन्यामहे यतो
भवत्कृपालवलेशात्सर्वमेत्कार्यजातं नानाविधसंस्कृतहस्तलिखितग्रन्थसंग्रहगृहेभ्यः
समागतपुस्तकप्रतिलिपीकरणेन सिद्धिङ्गतम् ।

अत्रत्यं स्मृतिद्वयं मद्रासनगरान्तवर्त्ति “थियोसोफिकल सोसाइटी” इतिनाम्ना
प्रथितायाःसंस्थायास्तत्त्वावधाने सञ्चालिताद् अड्यार पुस्तकालयात्सम्प्राप्तम् ।
तत्र प्रयत्नसापेक्षे कार्येण शुद्धिशोधनाय प्रवृत्तेऽपि पण्डितमण्डलेऽन्यत्रग्रन्थान्तर-
प्राप्त्यभावाच्च तत्साधु सम्पन्नमिति त्रुटितग्रन्थप्रकटनेऽपि गौरवमद्भिरस्माभिर्भव-
त्सेवायामिदं खण्डम्प्रस्तूयते । अत्राक्षरविकलाङ्गता, ग्रन्थापरिष्कृतिरशुद्धि-
बाहुल्यञ्च पदे पदे दृग्गोचरीभविष्यति तदर्थं सारासारविचारकुशला नानाशास्त्र-
विचक्षणा धीधनाः सुष्ठु शोधनार्थम्प्रार्थयन्ते यतोऽग्रे “कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च
पृथ्वी” इति प्राचीनकविश्रीमन्मुरारिनिगदितवचनेन मन्यामहे यद्भूयसीर
शुद्दीर्यथासमयं विद्वांसो ग्रन्थान्तरपरिशीलनेन शोधयिष्यन्ति । भगवती-
कृपयाऽग्रे सप्तमभागप्रकाशनाय प्रयत्नः प्रचाल्यते । आशास्महे तत्पूर्तिर्भविता ।

श्रीमतां सहृदयधुरीणानां पुनः पुनः साभ्यर्थनं धन्यवादं प्रतिपादयन्तोऽपूर्णता-
कृते क्षमाप्रार्थिनो वयं विरमामः ।

श्रीमतां चरणसेवकाः

शुभमिति कार्तिक शुक्ल ११

हरिप्रबोधिनी

२०१३ विक्रमाब्दः

गुरुमण्डलग्रन्थमालासम्पादका :—

राजस्थानप्रान्तस्थजयपुरप्रदेशान्तर्वर्त्तिलक्ष्मणगढ़ा-

भिजन ब्रह्मदत्तत्रिवेदि नवलगढ़ाभिजन

रामनाथदाधीच कजोड़ीलालमिश्रा :—

श्री मोरप्राच्यशोधसंस्थानम्

५, क्लाइव रो, कलकत्ता-१

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

ईश्वर का आदेश है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा हैं । ज्ञान के द्वारा प्राणी-मात्र की पूर्णरूपेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग—जोकि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो । (किसी की भी हिंसा मत करो । सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णरूपेण सहायक हैं) किसी भी प्राणी की शक्ति (दूध) हरण करने की मन में भावना भी न आने दो । यही कल्याण का मार्ग है ।

वेदञ्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः । धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च । दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुलविनाशनम् ॥
तस्मात् सर्वप्रत्नेन धर्मशास्त्रं पठेद् द्विजः । श्रुतिस्मृती च विप्राणां चक्षुषी देवनिर्मिते ॥

(लघुहारित स्मृ०)

समाहित मन से शुद्ध देश में वेद का अभ्यास करे । उच्च भावों से धर्मशास्त्रों का पठन-पाठन करे । स्मृति एवं श्रुतिहीन जो मनुष्य हैं उनका भोजन नित्यकर्म व्यवहार अपने तथा कुल के लिये हानिकारक है । अतः यत्नपूर्वक धर्मशास्त्र को पढ़े । महर्षियों द्वारा रचित वेद, स्मृति एवं पुराणादि धर्मशास्त्र मानव मात्र के नेत्र (प्रकाश) हैं ।

मानवमात्र से मेरी करवद्ध प्रार्थना है कि संस्कृत भाषा पढ़ें । महर्षिप्रणीत श्रुति स्मृति आदि का उच्च आदर्श रखते हुए प्राणीहित की भावना से मनन कर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें । इसी में अपना कल्याण है ।

“कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्”

५, क्लाइ रो,
कलकत्ता ।

}

आपका सेवक—
मनसुखराय मोर

श्रीगणेशाय नमः

स्मृतिसन्दर्भस्य षष्ठभागस्य सूचीपत्रम्

मार्कण्डेयस्मृतेः प्रधानविषयाः

पृष्ठाङ्काः

| | |
|--|----|
| तत्रादौ—वर्णाश्रमधर्मवर्णनम् | १ |
| ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम् | ३ |
| प्रायश्चित्तप्रकरणम् | ७ |
| अवकीर्णब्रह्मचारिप्रायश्चित्तवर्णनम् | ६ |
| एकविंशतियज्ञवर्णनम् | ११ |
| गृहस्थप्रशंसावर्णनम् | १३ |
| द्विमुखोदकपात्रप्रशंसावर्णनम् | १५ |
| वेदप्रशंसावर्णनम् | १७ |
| संस्कृतभाषामौनविधिवर्णनम् | १६ |
| वेदातिरिक्तमुक्तिसाधननिन्दावर्णनम् | २१ |
| वेदाध्ययनवर्जितस्यपुनर्वेदाधिकारवर्णनम् | २३ |
| संस्काराणां वर्णनम् | २५ |
| स्वकार्यानुकूलपक्षिगमनसम्पादनवर्णनम् | २७ |
| गमने निषिद्धानामागमे यात्रानिषेधवर्णनम् | २६ |
| वेदाध्ययने नियमोल्लङ्घनप्रायश्चित्तवर्णनम् | ३१ |
| मृत्तिकाग्रहणमन्त्रवर्णनम् | ३३ |
| देवर्षिपितृतर्पणविधिवर्णनम् | ३५ |
| गौणमुख्यज्ञानभेदवर्णनम् | ३७ |
| होमपदनिर्वचनवर्णनम् | ३६ |
| गायत्रीमन्त्रवर्णनम् | ४१ |

| | |
|--|----|
| प्राणायामविधिवर्णनम् | ४३ |
| सन्ध्यादिनित्यकर्मस्वर्थज्ञानमेवप्रशस्तमितिवर्णनम् | ४५ |
| महोत्सवेषु समग्रधनधान्यदानप्रशंसावर्णनम् | ४७ |
| परिषदि श्रोत्रियस्यैवाधिकारवर्णनम् | ४६ |
| सर्वपापोत्तारणे ब्राह्मणानामेववचनप्रामाण्यवर्णनम् | ५१ |
| शूद्रान्नप्रतिग्रहीतृप्रायश्चित्तवर्णनम् | ५३ |
| स्वर्णकाररथकारादिपौरोहित्यनिषेधवर्णनम् | ५५ |
| प्रेतान्नभोक्तुर्निन्दावर्णनम् | ५७ |
| वैश्वदेवसमये समागतानामनिराकरणवर्णनम् | ५६ |
| वेदत्यागनिन्दावर्णनम् | ६१ |
| सर्वधर्मशास्त्रप्रणार्थनकर्तृणामेकवाक्यतालक्ष्यवर्णनम् | ६३ |
| वेदानां बहुमार्गत्ववर्णनम् | ६५ |
| नानासूत्रग्रन्थस्मृतीनामवतरणम् | ६७ |
| भारद्वाजसूत्रनानावेदशाखानां वर्णनम् | ६६ |
| नानासूत्राणां शाखाभेदवर्णनम् | ७१ |
| आहिताग्निविषयवर्णनम् | ७३ |
| नानासंस्काराणां वर्णनम् | ७५ |
| उपनयनकालकृतानां पृथक्क्षुरकर्माभाववर्णनम् | ७७ |
| बालानांसद्व्यवहारवर्णनम् | ७६ |
| बालताडननिषेधवर्णनम् | ८१ |
| गायत्रीस्वरूपवर्णनम् | ८३ |
| मध्याह्नकालकर्मवर्णनम् | ८५ |
| ब्राह्मणमहत्त्ववर्णनम् | ८७ |
| प्रायश्चित्तवर्णनम् | ८६ |

| | |
|---|-----|
| दानप्रशंसावर्णनम् | ६१ |
| दानस्यापात्राणि | ६५ |
| सेष्टपूर्तवर्णने दानक्रियाद्यधिकारवर्णनम् | ६७ |
| दानफलवर्णनम् | ६६ |
| दानेदेयद्रव्यवर्णनम् फलञ्च | १०१ |
| स्वर्गसुखाधिकारिणां जनानां लक्षणवर्णनम् | १०३ |
| गयाश्राद्धवर्णनम् | १०५ |
| प्रायश्चित्तप्रतिनिधिवर्णनम् | १०७ |
| महादानानां वर्णनम् | १०६ |
| शिखरदानवर्णनम् | १११ |
| गोवृषभादिदानफलवर्णनम् | ११३ |
| भूमिदानप्रशंसावर्णनम् | ११५ |
| कन्यादानफलवर्णनम् | ११७ |
| सुवर्णादिनानादानाम्फलवर्णनम् | १२१ |
| विशेषदानवर्णनम् | १२३ |
| सम्पूर्णदानेषु कन्यादानस्यप्राशस्त्यवर्णनम् | १२५ |
| तिथिक्रमेणदानफलं देवतापूजनफलञ्च | १२७ |
| नानावस्त्रादिदानप्रकरणम् | १२६ |
| नानादानफलानि | १३१ |
| कन्यापितृधर्मवर्णनम् | १३५ |
| इष्टापूर्तवर्णनम् | १३७ |
| नानामहोत्सववर्णनम् | १३६ |
| पात्रापात्रनिरूपणम् | १४१ |
| दानपात्रविशेषवर्णनम् | १४३ |

| | |
|---|-----|
| षड्विधब्राह्मणवर्णनम् | १४५ |
| मधुपर्कयोग्यानाम्बर्णनम् | १४७ |
| नान्दीश्राद्धादिषु मर्यादावर्णनम् | १४६ |
| आपोशनजलप्रदातारः | १५१ |
| विवाहे पाककर्तृणांयोग्यतावर्णनम् | १५३ |
| एकपङ्क्तिदूषितानां वर्णनम् | १५५ |
| पतितस्य पुत्रेणकर्तव्यश्राद्धविधिवर्णनम् | १५७ |
| श्राद्धविधानवर्णनम् | १६१ |
| पुत्रत्वयोग्यतावर्णनम् | १६३ |
| महालयश्राद्धप्रशंसावर्णनम् | १६५ |
| सकृन्महालयश्राद्धकालनिर्णयवर्णनम् | १६७ |
| एकाष्टकाविधिवर्णनम् | १६६ |
| नान्दीश्राद्धमहत्त्ववर्णनम् | १७१ |
| पुण्याहवाचनविधिवर्णनम् | १७३ |
| मन्त्रवेदिने दानप्रशंसावर्णनम् | १८१ |
| पुरोहितप्रशंसावर्णनम् | १८३ |
| अग्नौकरणवर्णनम् | १८५ |
| श्राद्धे भोजनाचमनकालवर्णनम् | १८७ |
| मातापितृश्राद्धव्यवस्थावर्णनम् | १८६ |
| श्राद्धभोजने कृत्यवर्णनम् | १६१ |
| श्राद्धविधिवर्णनम् | १६३ |
| पितृणामर्घ्यदानवर्णनम् | १६५ |
| स्तुषापाकवर्णनम् | १६७ |
| पितृनिमित्तस्य पक्वान्नस्य प्रशंसावर्णनम् | १६६ |

| | |
|---|-----|
| श्राद्धकार्याङ्गक्रमवर्णनम् | २०१ |
| विकिरान्नदानवर्णनम् | २०३ |
| भोजनमनुनिमन्त्रितब्राह्मणानां पूजनं तेभ्यश्चाशीर्वादवर्णनम् | २०५ |
| ब्राह्मणभोजनोत्तरं स्वकुटुम्बसहितश्राद्धसामग्रीगृहीयादिति वर्णनम् | २०७ |
| परेहि तर्पणवर्णनम् | २०६ |
| ब्राह्मणमहिमा ब्राह्मणानांसमागमने शूद्रस्य स्थितौ दण्डश्च | २११ |
| ब्राह्मणस्यैव भूदानम् | २१३ |
| पतिसयोगविकलाया विधवाया वृत्तिष्वनधिकारवर्णनम् | २१५ |
| रन्ध्रप्रविष्टक्रियाप्रविष्टयोर्भेदवर्णनम् | २१७ |
| उत्तमर्णाधमर्णदण्डवर्णनम् | २१६ |
| श्राद्धप्रकरणवर्णनम् | २२१ |

लौगाक्षिस्मृतेः प्रधानविषयाः

| | |
|--|-----|
| लौगाक्षिविषयकधर्मशास्त्रप्रबन्धावतारः | २२३ |
| जातकर्मविधिव्यवस्थावर्णनम् | २२५ |
| नामकरणविधिवर्णनम् | २२७ |
| वेदप्रतिपाद्यविधेः कर्तव्यफलज्ञापनत्ववर्णनम् | २२६ |
| सर्वद्विजातीनां वेदविहितोपनयनकालावधिनिरूपणम् | २३१ |
| उपनयनसमये कृत्यविधिवर्णनम् | २३३ |
| ब्रह्मचारिभिक्षाप्रकरणम् | २३५ |
| उपनयनावधिसमुल्लङ्घितस्य फलानर्हत्ववर्णनम् | २३७ |
| उत्सर्गोपाकर्मविधिवर्णनम् | २३६ |
| दशानुवाकानाम् वर्णनम् | २४१ |
| नानानुवाकानामृषिवर्णनम्, तैत्तरीयके चतुश्चत्वारिंशत्काण्डवर्णनम् | २४३ |

| | |
|---|-----|
| अनाश्रमीनैवतिष्ठेदिति वर्णनम् | २४५ |
| वंशाभिवृद्धयर्थं वरणीयकन्यालक्षणवर्णनम् | २४७ |
| कन्यादानवर्णनम् | २४६ |
| साप्तपदीनवर्णनम् | २५५ |
| गङ्गासागरसङ्गमादितीर्थफलकथनम् | २५७ |
| क्रूरतरदोषनिवृत्तये प्रतिकारवर्णनम् | २५६ |
| स्त्रीपुरुषकृतमहापापप्रायश्चित्तवर्णनम् | २६१ |
| उत्तमब्राह्मणकर्मणां सद्यःफलप्राप्तिवर्णनम् | २६३ |
| अन्वारम्भणे ब्रह्मणे दक्षिणादानवर्णनम् | २६५ |
| औपासनारम्भः | २६७ |
| यज्ञप्रशंसावर्णनम् | २६६ |
| निरित्यौपासनविधिवर्णनम् | २७१ |
| नैमित्तिकस्य नित्यकर्मणो वैशिष्ट्यकथनम् | २७३ |
| नानाशास्त्राणां वर्णनम् | २७५ |
| कलेयुगधर्मानुसारं धर्माणां विधिनिषेधवर्णनम् | २७७ |
| बाह्यान्तरशौचयोर्निरूपणम् | २७६ |
| दन्तधावनविधानवर्णनम् | २८१ |
| स्नानविधिवर्णनम् | २८३ |
| सन्ध्याविधिवर्णनम् | २८५ |
| सन्ध्यादिप्रकरणेऽर्घ्यादिवर्णनम् | २८७ |
| गायत्रीप्रशस्तिवर्णनम् | २८६ |
| गायत्रीजपारम्भकाले चतुर्विंशतिमुद्रावर्णनम् | २६१ |
| गायत्र्या आवाहनवर्णनम् | २६३ |
| त्रिकालसन्ध्यावर्णनम् | २६५ |

| | |
|--|-----|
| ब्रह्मयज्ञप्रशंसावर्णनम् | २६६ |
| देवपितृणां तर्पणविधानवर्णनम् | ३०१ |
| भीष्मतर्पणवर्णनम् | ३०३ |
| ॐ नमोनारायणमन्त्रमहत्त्ववर्णनम् | ३०५ |
| पीठपूजाविधानवर्णनम् | ३०७ |
| विष्णुपूजनकर्मणि नानाविधानवर्णनम् | ३०६ |
| दीपदानात्परनैवेद्यनिवेदनवर्णनम् | ३११ |
| आदित्यादिपञ्चदेवपूजनविधानवर्णनम् | ३१३ |
| शिवपूजाविधौ श्रेष्ठकालवर्णनम् | ३१५ |
| सूर्यपूजायां भूतशुद्धिमन्त्रशुद्धयोर्वर्णनम् | ३१७ |
| सविधिपूजाविधानवर्णनम् | ३१६ |
| विष्णोर्निवेदितं ग्राह्यमित्यत्रमीमांसा | ३२१ |
| नानादेवेभ्य इष्टप्राप्तिवर्णनम् | ३२३ |
| दीपप्रशंसा वर्णनम् | ३२५ |
| नानाविधिनैवेद्यवर्णनम् | ३२७ |
| ब्रह्मचारिधर्मवर्णनम् | ३२६ |
| पञ्चयज्ञवर्णनम् | ३३३ |
| अतिथिमहत्त्ववर्णनम् | ३३५ |
| मृण्मयादिपात्रेषु भोजननिषेधवर्णनम् | ३३७ |
| अभक्ष्यवर्णनम् | ३४१ |
| पङ्क्तिपावनानां वर्णनम् | ३४३ |
| सदाचारवर्णनम् | ३४५ |
| भोजनविधिवर्णनम् | ३४६ |
| पाकस्य ग्राह्याग्राह्यवर्णनम् | ३५३ |

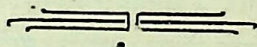
| | |
|---|-----|
| स्त्रीधर्मवर्णनम् | ३५५ |
| श्राद्धे गोदानविधिवर्णनम् | ३५७ |
| अग्राह्यान्नभोजने दोषवर्णनम् | ३५६ |
| श्राद्धे निमन्त्रणक्रमवर्णनम् | ३६१ |
| ब्राह्मणभोजने योग्यायोग्यवर्णनम् | ३६३ |
| बालानां कृते श्राद्धविधानम् | ३६५ |
| नित्यानित्यश्राद्धयोग्यवर्णनम् | ३६७ |
| श्राद्धकर्मणि नानाविधानवर्णनम् | ३६६ |
| नानागुरूणाम्वर्णनम् | ३७१ |
| श्राद्धाङ्गतर्पणवर्णनम् | ३७३ |
| मुहूर्त्तादिकालनामवर्णनम् | ३७५ |
| श्राद्धानां विवरणम् | ३७७ |
| मुख्यपत्न्याः श्राद्धे विधानवर्णनम् | ३८१ |
| श्राद्धे पाककर्तारः | ३८३ |
| भाषान्तरप्रवचननिषेधः | ३८५ |
| अभक्ष्यभक्षणाच्चाण्डालत्वप्राप्तिः | ३८६ |
| श्राद्धवर्णनम् | ३६३ |
| शूद्रस्य महादानकरणाद्विप्रसाम्यत्ववर्णनम् | ४०३ |
| वैदिकप्रकरणम् | ४०५ |
| पितृश्राद्धादिषु ज्येष्ठपुत्रस्यैवाधिकारिता | ४०६ |
| सर्वकृत्यानामीश्वरार्पणबुद्धयैवफलदायकत्वम् | ४११ |

॥ समाप्तमिदं सूत्रीपत्रम् । शमस्तु ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ अथ ॥

॥ मार्कण्डेयस्मृतिः ॥



तत्रादौ—वर्णाश्रमधर्म वर्णनम्

मार्कण्डेयं (बहु) ब्रह्मकल्पदर्शिनमेत्य ते ।

महात्मानः शौनकाद्याः सर्वज्ञमृषयोऽब्रुवन् ॥

भगवंस्त्वं बहुब्रह्मकल्पदर्शी विशेषवित् । अतस्त्वं सर्वदेवर्षिः योगियज्वाधिको मतः ॥
सर्ववर्णाश्रमाचारधर्माधर्मप्रवर्तकान् । जानासि कृतसंवादस्तैरत्यन्तं महात्मभिः ॥
अनेकब्रह्मकल्पानां संप्रदायपरार्थगः । पुनर्वेदार्थतत्त्वज्ञः क्रियाकल्पविशेषवित् ॥
इतिहासपुराणज्ञः स्मृतितत्त्वरहस्यगः । आपत्कालैककर्तव्यमर्त्यधर्मविभागवित् ॥
दरिद्रसंपत्समयसदसत्कार्यनिर्णये । परिच्छेत्ता विशेषेण मुख्यामुख्यादितत्त्ववित् ॥
तस्मात्त्वामधुना सर्वे संधीभूयाश्चिराद्वयम् । समालोच्यविधानेननिश्चित्य च पुनःपुनः ॥
पृच्छामः सर्वधर्मांश्च कर्तव्यान्मोक्षसाधनान् । सर्ववर्णाश्रमकृते निःशेषयुगसंमतान् ॥
अतस्त्वं कृपयास्मासु तान् सम्यग्वक्तुमर्हसि । इत्येवं स कृतप्रश्नः शौनकाद्यैर्महर्षिभिः
मार्कण्डेयो महाभागः सर्वदर्शी कृपामयः । तर्हि शृणुध्वमित्युक्त्वा स्मितपूर्वं वचोऽब्रवीत्

ब्रह्मादयोऽपि निखिलाः किञ्चिज्ज्ञा एव केवलम् ।

परं तु तत्र सर्वेषां रक्षोमर्त्या मृतान्धसाम् ॥११॥

तारतम्यं तस्य चैषां तद्विन्नानां च सन्ततम् । अस्त्येव परमं तेन गुरुर्नोऽयं पितामहः ॥
 सर्वज्ञस्तु स एवैको भगवान् भूतभावनः । अज्ञेयोऽयन्तन्निपुणैः सर्वोपायक्रियादिभिः
 सर्वेश्वरः सर्वकर्ता सर्वभर्ता सनातनः । सर्वान्तकृतसर्वान्तर्याम्ययं भूताश्रयः समः ॥

लोकशक्त्याश्रयः श्रीमान् पुराणो ब्रह्मनामकः ।

अजेयः शाश्वतो नित्यः ध्रुवश्चाञ्चल्यवर्जितः ॥

भावशून्यो भावभर्ता कर्तुं चाकर्तुमेव च ।

अन्यथारूपातुमीशानः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥

करणं कारणं गुह्यं वेदवेद्यमगोचरः । सर्ववेदान्तसंवेद्यो जगज्जन्मादिकारणम् ॥

तस्य प्रसादात्सर्वेषां मुक्तिर्वेदोदिता शिवा । सायुज्यनामिका दिव्या भवेदिति मनुश्रुतेः

प्रसादस्तस्य कथितः वेदोक्तैर्नित्यकर्मभिः । एकविंशतिसंख्याकैः अतिशीघ्रफलप्रदैः ॥

अतिशीघ्रफलं चापि चित्तशुद्धिरिति स्मृतम् । तेन ज्ञानं भवेद्विद्यं ब्राह्मं श्रवणतो महत् ॥

मननादि क्रमेणैव तस्माद्वेदोदितानि वै ।

कर्मणां मुक्तिसाधनताविचारः

कर्माणि ब्राह्मणः कुर्यादयं मार्गो महान् शिवः ।

मुक्तिर्नान्यास्ति सरणिः ज्ञानमेवैकमुच्यते ॥

तस्मै सर्वाणि कर्माणि तपः कृच्छ्रादिकान्यपि ।

कुर्वन्ति सुमहात्मानः तानि स्युश्च विलम्बतः ॥

एतत्कार्यकराणीति प्राहुर्ब्रह्मविदोऽखिलाः । न कर्मणा न प्रजया त्यागेनानशनेन च ॥

तीर्थयात्रादिकेनापि मुक्तिः सायुज्यनामिका । भवेदेवेति किं तानि साधकान्यतिदूरतः ॥

न साक्षादिति वेदानां हृदयं तन्निबोधत । केचित्तु प्रवदन्त्यत्र वेदोक्तान्यखिलान्यपि ॥

नित्यान्येवेति तत्प्रीतिकृतानि यदि चेतसा ।

नैमित्तिकानि काम्यानि सर्वत्रापि मनः परम् ॥

प्रधानमिति विज्ञेयं तस्मादेव विचक्षणः । कृष्णार्पणधिया नित्यं यज्ञेशं सन्ततं विभुम् ॥

नित्यैः नैमित्तिकैः काम्यैः कर्मभिः श्रुतिचोदितैः ।

कामनारहिताः सन्तः यजन्ते श्रद्धयान्विताः ॥

ब्रह्मार्पणधिया भक्ताः तज्ज्ञप्त्यै ब्रह्मवादिनः । यजनं गृहिणामेव धर्मोऽयं वनिनामपि ॥
न यतीनां वर्णिनां च यतिनां ब्रह्मचिन्तनम् । श्रवणादि क्रमेणैव वर्णिनां सन्ततं परम् ॥

ब्रह्मचारि धर्माः

वेदाध्ययनमेव स्यादग्निकार्यं च कालयोः । वासो गुरुकुलेष्वेव नित्यं भिक्षाटनं परम् ॥
बन्धूनां सूतकं तस्य जननान्मरणादपि । न भवेदेव नितरां पित्रोस्तु मरणे पुनः ॥
सूतकं तावदेवस्याद् यावत्तत्क्रियते शुभम् । पिण्डदानादिकं कर्म तत्परं भिक्षयैव हि ॥
प्राणयात्रां प्रकुर्वीत तथाप्येषु दिनेषु चेत् । कुर्यादध्ययनं नैव वासो गुरुकुले भवेत् ॥
एवं मातामहस्यापि तत्पत्न्याश्च विशेषतः । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य तत्पत्न्या भ्रातुरेव च ॥
अग्रजस्य च तत्पत्न्याः सपत्नीमातुरेव च । तात्कालिकं सूतकं स्यात् पितृश्राद्धदिनेऽप्ययम्
भैक्षेण पितृशेषं तद् भुञ्जीयादिति तत्क्रमः ॥

यतिधर्माः

मातुर्मात्रं यतेर्धर्मः कर्मणः करणं स्मृतम् । तनयान्तरराहित्ये चयनान्तं च तत्परम् ॥
केचिद्वाहान्तमित्यूचुः तद्दिने केवलं पुनः । करपात्रेण दर्शोऽपि प्राणयात्रा विधीयते ॥
तस्यापि सूतकं तावत् यदा वा कर्म नान्यथा ।
वर्णिनः सूतकाभावः तद्विज्ञानिरतस्य सुः (तु) ॥

तादृशं नियमं त्यक्त्वा विद्यमानस्य सूतकम् । भवेदेव न सन्देहो वर्णिनोऽपि निरन्तरम्

पुनर्ब्रह्मचारिधर्माः

भिक्षाचर्या च तद्धर्मः संतताध्ययनं तथा । नित्यं गुरुकुले वासो वह्निकार्यं च कालयोः ॥
एतान्येव प्रधानानि चैतत्तुल्यानि कानिचित् । अजिनं मेखलां दण्डः कौपीनं शुद्धमम्बरम्
मेखला सा त्रिवृत्प्रोक्ता मौञ्जी विरचिताद्यथा ।
कटिसूत्रं तथान्यच्च जन्मादि द्वादशाब्दकात् ॥

वस्त्रेण वेष्टनं प्रोक्तं प्रादक्षिण्यक्रमेण तु । द्वित्रिद्विर्वा वेष्टनं स्यात् विधिः स्यात्तदनन्तरम्
पश्चात्कच्छपुरः कच्छदशाकच्छादिवर्जितम् । विभृयाद्वसनं नित्यं यदि कच्छादिसंयुतम् ॥

विभृयाद्वसनं वर्णीं गृहीवद्गर्वमास्थितः ।

नित्यो दण्ड्यो वर्जनीयः स सभासु विचक्षणैः ॥

अवकीर्णीं समः प्रोक्तः न भिक्षायोग्य उच्यते ।

गृही वस्त्रधरो वर्णीं यदि भिक्षार्थमागतः ॥

संताड्य सद्य एवस्याद्यैः कैश्चिद्दृष्टमात्रकः । नास्मै दद्यात्तथा भिक्षां यथाध्ययनवर्जिते
त्यक्त्वैव वेदाध्ययनं भिक्षया यस्तु केवलम् । अटन् कुक्षिभरो वर्णीं गृहिभिर्धर्मतत्परैः

बोधनीयः श्वः प्रभृति भिक्षार्थं त्वं वृथैव रे ।

मुत्तवा तु वेदाध्ययनं न समागच्छ मद्गृहान् ॥

तथाप्ययं यदि पुनः समागच्छेज्जडाकृतिः ।

न संभाष्यः पिधायैव कवाटं निर्दयं भृशम् ॥

तत्पश्चात्तत्पुरस्ताद्वा वेदाध्यायी शुचिर्यदि । समागत्य बहिर्द्वारि भिक्षां देहीति सुस्वरम्
समाक्रोशेत्तस्य शीघ्रं समागच्छेति तं स्वयम् । दद्याद्भिक्षां पूजयित्वा मधुरैर्वचनैरिति ॥
तच्छीत्कारैर्भीषयेच्च पुनः शाकादिकं रसम् । तस्मिन् पश्यति दद्याच्च वेदिनेऽस्मै विचक्षणः
भुक्तिकाले ब्रह्मचारी मात्रे दत्तं तु साधकम् । अन्नस्य शाकं लवणं सूपभक्ष्यफलादिकम्
अत्यल्पमणुमात्रं वा तदानन्त्याय कल्पते । विद्यार्थिने वर्णिने ये कायदाढ्याय केवलम्
तै(?)महौषधं वस्त्रां कौपीनं शयनाय वै । कटिं वा कंवलं वस्त्रां दास्यन्ति च नरोत्तमाः

वेदरूपी स भगवान् पुमान् नारायणो विभुः ।

अत्यन्तवृत्तो निखिलान् प्रददाति मनोरथान् ॥

न(भृते)पोषणादन्यो धर्मो लोकत्रयेऽस्ति कः । वेदाध्याग्येव वर्णीं स्यान्न शास्त्रादिकृतश्रमः
वेदाध्ययनशीलस्य कण्ठान्नाभेरथोर्ध्वतः । यः प्रदेशः स तु किल शुष्कीभूता भवेत् क्षणात्
तद्दुःखपरिहाराय यथायं स्यात् क्षुधार्थया । वृष्ण्या च परित्यक्तस्तथा प्रशमयेच्छतम्
अन्नाज्यदधिसूपाद्यैः तावन्मात्रेण केवलम् । अश्वमेधस्य यत्पुण्यमवशाल्लभते खलु

तत्पोषकस्तत्प्रदाता सत्यमेतन्मयोदितम् । वेदाध्यायी तु यो वर्णीं सततं तत्परो वसेत्
साचारः सामिकार्यश्च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः । यदन्नं वर्णिकुक्षिस्थं वेदाभ्यासेन जीर्यते
कुलं तारयते तेषां दशपूर्वान् दशापरान् । भिक्षाश्येव भवेन्नित्यं वेदाध्ययनकालके ॥
एकत्रान्नं न भुञ्जीयादिच्छया केवलेन वै । पितृव्यपत्न्या मात्रा च मातुलान्या तथैव च
पितृष्वस्रा भगिन्या च गुर्वाचार्यकलत्रकैः । महद्विगुपाध्यायमातामहसती(खी)जनैः
दत्तं तु यद्भवेदन्नफलभक्षयरसादिकम् । अतिप्रीतिस्नेहपूर्वं सर्वं ग्राह्यं न चान्यतः ॥
आपत्सु यत्र कुत्रापि येन केनाप्युपायतः । सज्जनेष्वेवोदरस्य पूर्तिमेकत्र शस्यते ॥
बहुस्वरान्नागमस्य सिद्धे सति कदाप्ययम् । नैकत्र प्राशनं कुर्याज्जामिता रहितश्चरत् ॥
दूषितान्नानि सर्वत्र त्याज्यान्येव विपश्चिता । श्रोत्रियान्नानि यत्नेन सेवेतैव सदाचरन्
बहु सद्गुणं तिष्ठत्सु भक्तिमत्सु सतां तदा । सर्वत्र कालयोर्नित्यं गृहीयाद्भक्षमुत्तमम् ॥
मातृभिक्षातिशस्ता स्यात् गुरुदारविव(स)र्जिता । प्रजावतीकरकृता पितामह्यादिकल्पिता
मातुलानी प्रीतिपूर्वप्रदत्ता भगिनीकृता । मातृष्वसृप्रदत्ता या सती साध्वी प्रकल्पिता

तत्सोमपीथिनिहस्तविसृष्टा व्रतिनी कृता ।

सर्वा एव सदा ग्राह्या न संत्याज्याश्च सन्ततम् ॥

अतिप्रीत्यैव संप्राह्याः पीडयित्वा कदाचन ।

आक्रोशयित्वा तूष्णीकं गत्वा वापि पुनःपुनः ॥

न संत्यजेत्प्रीतिदत्तां दुःखदत्तां परित्यजेत् । बालानां वर्णिनां वेद चेतसामन्यदेशिनाम्
कृपया याः प्रयच्छन्ति सम्यग्भर्तुरुज्जया । पृथुकान् भक्षणाथार्या राजान्विष्टं करम्भकान्
विविधानि च भक्ष्याणि गुडं धानापरिक्रकान् ।

चणकान् गुडसंयुक्तान् मुद्गरांस्तिलसुंदरान् ॥

शङ्कुलीकलिकान् नारान् मुणकान्मुड (र) वान्पुनान् !

गौडान् सात्ययुतान् रम्यान् तान्पुत्रान् दीर्घजीविनः ॥

लभन्ते तनयान्नूनं तेषां चेदवमानतः । विनैव करणं सद्यः चिराद्वंशक्षयो भवेत् ॥
प्रतिजन्मनि वन्ध्या स्याद्दण्डा नष्ट प्रजा तथा । वेदार्थी तुष्टिमात्रेण वर्धन्ते सर्वसंपदः ॥

अकिञ्चनत्वं कार्पण्यं बन्ध्यात्वं पञ्चवृत्तिता । तथा प्रमादमालस्यं अपमृत्युश्च नश्यति ॥
 विद्यार्थी बुद्धिरहितो बाल्येन यदि चेष्टया । कृत्याकृत्यपरिज्ञानवैकल्येन च मौढ्यतः ॥
 अश्रुतं दुःश्रुतं वापि पारुष्यं दुष्टभाषणम् । अकार्यमनृतं फल्गु वाक्यं तुच्छप्रभाषणम् ॥
 कुर्वन्नपि न निग्राह्यो ज्ञप्तिं यावद्भवेदसौ । स्वपुत्रवद्रक्षणीयः षोडशाब्दात्परं तु चेत् ॥

निग्राह्यः स्यान्न चेन्नूनं शक्त्या पालयः सदैव हि ।

द्विदशाब्दात्परं वर्णीं बुद्धिमान्यदि केवलम् ॥

सर्वान् वृद्धान् गुरुन् विप्रान् श्रोत्रियान् तत्कलत्रिकान् ।

यज्जिवनो दीक्षितान् पौण्डरीकप्राप्ताख्यकान् सतः ॥

नित्याग्निहोत्रिणश्चापि ज्ञानिनो वेदिनश्शुचीन् । शास्त्रिणश्चापि(से)वेतदण्डहस्तश्चरेदपि ॥
 नैकत्र प्राशनं कुर्यान्मौञ्जीकृष्णाजिनं धरन् । न लंघयेन्मातृवाक्यं पितृबन्धुसतामपि ॥
 गुर्वाचार्यज्ञानिनां च श्रोत्रियाणां च शास्त्रिणाम् । पितृकर्तृकरव्येषु तदाहूतो भवेद्यपि
 तच्छिष्टान्नं तु भुञ्जीयात्तद्वाक्यं नातिलंघयेत् ।

नान्यत्र पितृशिष्टान्नमश्नीयात्कामतः स्वयम् ॥

विप्राभावे श्रोत्रियाणां पैतृकेषु निमन्त्रितः । दैवस्थानस्थितो हव्यं प्राशनीयाद्विप्रकाम्यया
 आचार्यवाक्यतस्त्वेव न स्वयं त्विच्छया पितुः ।

विप्राभावे कदाचित्तु श्राद्धकृत्येषु केवलम् ॥

वर्णीं कर्तृकमात्रेषु स्थानस्थोऽपि भवेदपि । आपत्सु गृहकृत्येषु प्रार्थितस्तेन चेदपि ॥
 स्थानस्थितो भवेन्नूनं न सर्वत्र कदाचन । इच्छया श्राद्धभुगवर्णीं ब्रह्मचर्याच्च्युतो भवेत्
 आपत्स्वपि कदाचिद्वा गर्वलोभादिना परम् ।

नक्षत्रजीवी न भवेत् गृही वस्त्रं न धारयेत् ॥

यदि स्यात्तादृशो मूढो रौरवं नरकं व्रजेत् । परेषां सर्वकृत्यानां नायं योग्यो भवेदपि ॥
 तद्दोषस्य विनाशाय दिनत्रयमुपोष्य वै । गायत्रीदशसाहस्रं जपेत्तेन शुचिर्भवेत् ॥

यदि वर्णीं शूद्रगृहे आमं पैतृककर्मणि । गृहीयात्तावता सद्यः पुनः संस्कारमर्हति ॥
 खादयेद्यदि ताम्बूलमवशादिच्छया सकृत् । त्रिरात्रयावकाहारः पञ्चगव्येन तत्परम् ॥

चतुर्थेऽहनि शुध्येत धेनोर्दक्षिणया तथा । गन्धधारणतः पुष्पधारणाच्छिरसा सकृत् ॥
सद्यः शूद्रत्वमाप्नोति तस्य शुद्धिरियं स्मृता । समुद्रगानदीस्नानदशकं जप एव च ॥

षट्सहस्रं च गायत्र्याः नैष्ठिकी ह्यत्र दक्षिणा ।

भुक्तिकाले वर्णिनां स्यादयं धर्मः (:) पितुर्गृहे ॥

ललाटद्वद्बाहु मूलस्थानेऽल्पेनैव केवलम् । स्याच्चन्दनेनानुलिप्तस्तद्वत्तेनैव नान्यथा ॥

माता पिता वा पुत्रैकवात्सल्येन महेष्वपि । हिरण्यरत्नरजतभूषणालङ्कृतिं यदि ॥

कुर्यातां तस्य दोषो न तदन्ते च पुनस्त्यजेत् । पितृमातृकृतं यत्तद्वर्णिनामधिकोत्सवे ॥

स्वर्णालंकरणं रत्नरजतादिकृतं तथा । श्रेयस्कारकमित्येव प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

सुगन्धपुष्पाञ्जनतः सद्यः पतति तत्क्षणात् । स्वधृतात्कामकारेण वर्णी त्वाददर्शनादपि

आदर्शस्येक्षणादस्य चित्रं शास्त्रं विनिश्चितम् ।

त्रिषा(सा)हस्रैकगायत्री जपं एव न चापरम् ॥

शरीरोद्धर्तनात्सद्यः वर्णी स्यात्कल्विषी क्षणात् । तदोषपरिहाराय गायत्र्यष्टसहस्रकम् ॥

नदीस्नानात्परं शुद्धः जपेत्सूर्यमुखस्थितः । दन्तधावनतस्त्वेवं सकृत्काष्ठमुखेन चेत् ॥

गुरुद्रोहमवाप्नोति दुश्चर्मा च भवेदपि । तस्य चित्तमिदं श्रेयं ब्रह्मकूर्चं विधानतः ॥

एकरात्रोपवासश्च ब्राह्मणत्रयभोजनम् । वेदे श्रमं विनान्यत्र करोति यदि बाढवः ॥

सद्यः शूद्रत्वमाप्नोति विप्रत्वेन च हीयते । परिहारस्तु तस्याथ येन केनाप्युपायतः ॥

शाखामात्रं साधयेद्वा शिष्टं वामास्तु तावता । नष्टं तद्यत्तु विप्रत्वं विरोहत्यपि तावता

उपनीतो ब्रह्मचारी वेदत्यागप्रपूर्वकम् । कुर्यात्तर्के श्रमं तेन वैणत्वं प्रतिपद्यते ॥

काव्यालापादि पठनात् सन्ध्यात्यागैकपूर्वतः । यवनत्वमवाप्नोति कालसूत्रं च गच्छति

नाट्यालंकारभरतज्योतिश्शिल्पिरसादितः ।

वर्णी च्युतस्तु मुण्डित्वं रजकत्वं च विन्दति ॥

पुराणस्मृतिसू(मा)त्रार्थज्ञानयत्नेन केवलम् । लेख्यत्वगणकत्वाभ्यां सूतत्वं प्रतिपद्यते ॥

तस्माद्विजो जातमात्रः कृतोपनयनस्ततः । कृतवेदारम्भणोऽयं श्रावण्यां तु गुरोर्मुखात्

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः स्यादिति वेदानुशासनम् ।

काण्डोपाकरणे चापि काण्डानां च समापने ॥

श्रावण्यामपि तेषां स्याद्वर्णिनां क्षुरकर्म तत् । क्षुरं यथाहिताग्नीनां प्रतिपर्व श्रुतीरितम् ॥
तथोपाकरणे चापि तत्समापनकर्मणि । क्षुरकर्म च संप्रोक्तं सर्वेषां ब्रह्मचारिणाम् ॥

नान्यकालस्तस्य तेषां आकण्ठं तच्च कीर्तितम् ।

न नखानां कृन्तनं स्यात् न दतां धावनं तथा ॥

एकोच्छ्वासद्वादशावगाहनं तस्य पावकम् । स्थानमेतादृशं सर्ववर्णिनां सन्ततं स्मृतम्
क्षुरमात्रे मृत्तिकायाः स्नानं पश्चात्पुनः स्मृतम् । मन्त्रस्नानं पुनः कार्यमघमर्षणपूर्वकम् ॥

यदि वर्णीं गृही कर्म क्रियमाणं करोति चेत् ।

सुखमिच्छन् जडो दुष्टो प्रायश्चित्तीयते किल ॥

गोमयहृदसंलीनः याममात्रं दिनत्रयम् । पुनश्च यावकाहारः पक्षमात्रं हरिं स्मरन् ॥

पुण्डरीकाक्षमनुतः दशसाहससंख्याया । मासमात्रद्विषा(सा)हस्र जपतः शुद्धिमाप्नुयात्

काण्डाः स्युर्नवसंख्याकाः प्राजापत्याः सहत्तराः ।

सौम्यास्तद्वत्प्रकथिताः आग्नेयाः सप्तकीर्तिताः ॥

वैश्वदेवाः षोडश स्युः शिष्टाः कारकमध्यगाः ।

एवं चतुश्चत्वारिंशत्संख्याकाः वेदकाण्डकाः ॥

उपक्रमोत्सर्जनयोः तेषां तत्क्षुरकर्म वै । वर्णिनां कथितं सद्भिर्वर्मज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ॥

संहिताध्ययनं पूर्वं पदाध्ययनमेव वा । पश्चात्क्रमस्याध्ययनं तत्र यं चार्थसिद्धये ।

संहिताध्ययनात्पूर्वं पदानां संशयो भवेत् । पदाध्ययनमात्रेण क्रमस्याध्ययनं विना ॥

समीचीनां संहिता स्यात् कथं तस्मात्तु तत्रयम् ।

सम्यगध्ययनं कुर्यान्न चेद्वैकल्पता भवेत् ॥

संहिताऽध्ययनान्मन्त्रमात्रसिद्धिर्भविष्यति । तदर्थज्ञानसिद्ध्यर्थं पदाध्ययनमुच्यते ॥

पदसन्धिस्वराणां च योगस्य पदवर्णयोः । सिद्ध्यर्थं तत्क्रमस्यास्याध्ययनं विधिपूर्वकम्

चोदितं तद्रहस्यज्ञैर्द्वयोस्तु पदयोः पुनः । वारत्रयोच्चारणैकरूपाया वेदकर्मणः ॥

अनुष्ठातुमशक्तानां वेदिनां केवलं तराम् । प्रधानयोगारम्भस्य हेतुभूतासु तासु वै ॥

सामिधेनीषु तद्दृक्षु तासु पञ्चदशस्वपि । प्रथमोत्तमयोर्यागे त्रिवाहेति विधेर्बलात् ॥

त्रिः प्रथमामन्वाहेति वाक्यतस्तु त्रिरुत्तमाम् । शंसनीयस्य कार्यस्य यत्फलं जायते तदा
महानपूर्वः कलिहा तत्तुल्यफलसिद्धये । जटैषा श्रुतिवाक्येन वेदे वाजसनेयके ॥

प्रोक्ता सैषेत्युपक्रम्य तस्मात्कृत्स्नस्य तस्य वै । सम्यगध्ययनं प्रोक्तं तत्तत्त्वद्गैर्महात्मभिः

अवकीर्णिब्रह्मचारिप्रायश्चित्तम्

गर्दभालम्भनम्

ब्रह्मचारी यदि हठात् प्रमादाद्वाऽतिमोहितः ।

रमामुपेयात्पापी स्याद्ब्राह्मण्याच्च्यवते च सः ॥

प्रायश्चित्तमिदं तस्य गर्दभालम्भनं स्मृतम् । तदालम्भनकृत्यस्य वहीनां सिद्धयेऽस्य वै ॥
कुर्यान्नैमित्तिकाधानं सर्वसंभारवर्जितम् । अरण्याहरणादि स्यात्तथा ब्रह्मौदनं च वै ॥
तदग्निकार्यं ब्रह्मौ स्यात्तदिष्ट्यन्तं समाचरेत् । तदग्नौ तं पशुं कुर्याद्यूपस्तत्र तु वैणवः ॥
वैकंकता लोहितो वा पाशुकं कर्म तत्र तत् । भवेदेव विधिस्तस्य कृत्स्नः शिष्टोऽपि वेदगः

छि(छ)त्रापिधानी सा कार्या दध्ना क्षीरेण वा तथा ।

मधुना वाम्भसा नैव विशेषोऽयं प्रकीर्तितः ॥

सर्वेषामवदानानां होमः कृत्स्नो भवेत्पुनः । स्नुचः सर्वाः पूरयित्वा विधिनैव पुनःपुनः
पुरोऽनुवाक्या याज्याभ्यां याजमानोक्तिपूर्वकम् ।

न विद्युद्दृष्टिरत्रास्ति सर्वमन्यत्समं भवेत् ॥

प्रत्येकं शतनिष्काणां दक्षिणा चात्र चोदिता ।

कर्मान्ते ऋत्विजां षण्णां क्षुरकमप्रपूर्वकम् ॥

अवगाहस्तु विहितः ब्रह्मकूचं च धर्मतः । प्रसर्पकाणां सर्वेषां दिनत्रयमुपोषणम् ॥

तद्वह्निशमनात्पश्चात् ऋत्विजस्तत्र वाडवैः । दशभिस्तत्र तद्भूमेः शुद्धये शान्तिकर्म तत्
आरभेद्युर्विधानेन बौधायनविधानतः । क्रियामुदकशान्ताख्यां तत्परं निखिला अपि ॥
स्नात्वा तन्मन्त्रसलिलैः धृतयज्ञोपवीतिनः । स्नानतच्छिष्टं सलिलैकदेशेन ततः पुनः ॥

आपः पुनन्तु पृथिवीमिति मन्त्रेण तद्भुवम् ।

प्रोक्षयित्वा विधानेन तद्भूमिं तदनन्तरम् ॥

आत्मानं पृथिवीं चापि पृथिवी पूता पुनातु माम् । इत्यनेनैव यजुषा तज्जलोक्षणपूर्वकम्
अभिमन्त्रयते चात्मानं पृथिवीमपि शुद्धये । दश ते ब्राह्मणान् पश्चात् पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिः
इत्यनेनैव मन्त्रेण ऋत्विजस्तान्विधानतः । षडपि प्रोक्षयेयुश्च पतिरत्र वदन्त्विदम् ॥
जात्येकवचनं कथितं शाखायाः पतयस्त्वमे । अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च ब्रह्मा चैव प्रजापतिः
चन्द्रमाः स्यात्ततो भूयः नक्षत्राणि तपश्च वै । संवत्सरश्च वरुणश्च चरमोऽरुण एव च ॥
एकादशैते तद्देवाः पतयश्चापि ते स्मृताः । ते ब्रह्मणः पुनन्त्वेवं द्वितीया ब्रह्मणः पदम् ॥

ततो भूया ऋत्विजस्तु व्याहृत्युक्तिपूर्वकम् ।

तद्यागनिखिलान्मन्त्रान् पुरोक्तान् तन्निमित्ततः ॥

आदितः क्रमतोजप्त्वा तद्विज्ञानात्तु संनिधौ । अनन्तरस्थितं मन्त्रं ब्रह्मपूता पुनातु माम्
जपेयुरस्तिभक्त्यैव पूतात्रत्यं पदं तथा । अव्ययं ब्रह्मणोऽत्रत्यपदस्यैव विशेषणम् ॥
एवं चतुर्णां मन्त्राणामत्रत्यानां विधानतः । विनियोगः प्रकथितः प्रसंगात्तदनन्तरम् ॥
यदुच्छिष्टेति मनुना प्राशयेयुश्च तज्जलम् । शिष्टं कुम्भस्थितं पूतं तन्निष्कृतिरितीरिता
एवमत्यन्तकृच्छ्रं स्याद्वर्णिनश्चित्तमुच्यते । एतावन्मात्रमेवं स्याच्चित्तं तु ब्रह्मचारिणाम्
एतस्य भूयस्त्वधिकं चरितं यदि वै तदा । न शक्यते विधानाय प्रायश्चित्तासहस्रतः ॥
अथापि ते पुनर्ज्ञेया ब्रह्मण्डकटहादिभिः । महादानैः पवित्राः स्युरित्येवं ते महर्षयः ॥
दयावन्तो ब्रह्मविदो जगुः किल समासतः । अत्यन्तकठिनं तादृगनुष्ठानं महाधनैः ॥
कर्तुं शक्यं प्रभवति यतिश्चेदेषु कर्मसु । पतितस्त्वेव कथितः निष्कृतिस्तस्य नैव च ।
आरूढ पतितो ज्ञेयः पुनरुद्धरणाक्षमः । आश्रमेषु तु सर्वेषु प्रवरसुलभोगृही ॥
प्रायश्चित्तक्षमश्चापि चित्तं चास्यातिसुक्षमम् । अत्यन्तसुलभं चापि गृही तस्माद्वरः परः
तरत्यसावुपायेन संसारं दुर्गतिं पराम् । अज्ञानं वृजिनं घोभं तरणस्यास्य भूरिशः ॥

उपायाः सुलभा रम्या ते चात्रापि समासतः ।

निरूप्यन्ते केचिदत्र कृच्छ्रदानादिरूपिणः ॥

क्रियातपोजपस्वाध्यायादिरूपाः परे पुनः । तेष्वत्र सुलभोपाया बह्व्युपास्तिस्वरूपकः
श्रुत्युक्ता ब्रह्मविज्ञानहेतुभूतोऽद्भुतः परः । स एक एव नितरां मुक्त्येऽलं नरस्य वै ॥

वह्न्युपास्तिर्बहुविधा श्रुत्युक्ताखिलशास्त्रगा । एकविंशतिभेदेन कीर्तिता यज्ञनामकाः ॥

एकविंशतियज्ञाः

ते यज्ञास्त्रिविधाः प्रोक्ताः पाकयज्ञादिनामकाः ।

हविर्यज्ञाख्यकाश्चेति सोमसंस्थाहयास्तथा ॥

एते नित्या इति प्रोक्ताः करणेऽभ्युदयावहाः । चित्तशुद्ध्यैकरणास्तद्द्वारा ज्ञानसाधकाः
अकरणेऽत्यन्तदोषाणामालया नरकप्रदाः । तस्मादेतानि कर्माणि नरः कृत्वा प्रमुच्यते ॥
क्रमेणैतानि विधिना चेत्कृतानि मनीषिभिः । यावज्जीवं च धर्मज्ञैः अन्यूनानतिरिक्ततः
जन्मन्यस्मिन् महद्ज्ञानं चित्तशुद्धिमुखेन वै । जायते मननस्यापुनर्जन्मान्तरं ध्रुवम् ॥

पञ्चान्निदिध्यासनस्य पुनर्जन्मान्तरं भवेत् ।

सायुज्यं च भवेत्तस्मिन्निदिध्यासनजन्मनि ॥

अत्यन्तमुलभोपायः मार्गोऽयं वेदबोधितः । औपासनोपक्रमदिवसमारभ्य तत्क्रमात्
कर्माणि यानि चोक्तानि नित्याख्यान्यधुना मया ।

कृतानिचेत्तत्क्रमेण ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥

जननेभ्यश्चतुर्भ्यः स्यान्मुक्तिस्सायुज्यसंज्ञिका ।

तत्तत्कर्मानुष्ठानस्य यत्किञ्चिद्वाऽधिकं तु वा ॥

वैकल्यमन्तरायो वा यदि जायेत वै पुनः । जननेभ्यश्चतुर्भ्यो न भवेन्मुक्तिस्तु किं पुनः
जन्मानि कानिचिद् भूयो लब्ध्वा कर्मानुरूपतः ।

प्रतिपक्षकृताभ्यां वै यावज्जीवं समन्त्रतः ॥

मुक्तिस्सा जायते नूनं ब्राह्मणस्यैव धीमतः । श्रवणं मननं चापि निदिध्यासनमेव च ॥
श्रुतिवाक्यैर्गुरुमुखात् भवेयुः किल नान्यथा । अधिकारी श्रुतेर्यस्तु सहि मुत्तयैकभाजनम्
श्रुतिं विना न मुक्तः स्यादद्यमेव महान् परः । मार्गोऽयं कथितः सद्भिस्तथा श्रुत्या च सर्वतः
न कर्मणा न प्रजया न संन्यासेन दानतः । तपसो धनतो वापि नापि तीर्थादिचर्यया ॥
तान्येतानि च सर्वाणि साधकान्येव केवलम् । परंपरतया साक्षान्मनैवेति श्रुतिराह हि

एतन्मार्गं विना मुक्तेर्न तु मार्गान्तरं क्वचित् ।

ज्ञानमेव परो मार्गः श्रुतिवाक्यैकजं तु तत् ॥

औपासनाच्चित्तशुद्धिर्जन्मभिस्त्रिशतैर्भवेत् । कालद्वयकृतान्नित्यं प्रातस्सायं विधानतः
दर्शेण पौर्णमासेन जन्मभिस्त्रिशतैस्तथा । चतुःशतैर्जन्मभिः स्यात् तदाग्रयणकर्मणा ॥
पञ्चाशदुत्तरशतजन्मभिः स्यान्मृता तथा । मुक्तिरष्टकयादिव्या मासिश्राद्धेन तत्परम्
तदेवेति मनुं प्राह सर्पबलया ततः परम् । तत्त्रिंशदुत्तरशतजन्मभिः सेति चार्यमाः ॥
एतेषां कर्मणां प्रतिवर्षं चावृत्तिरिष्यते । कर्मणः सप्तमस्याथ नावृत्त प्रतिवत्सरम् ॥
एकवारं जन्ममध्ये करणं तस्य वैधतः । मासि श्राद्धस्य चेत्प्रतिमासं चेति पितामहः ॥
श्रुतिस्मृतिपुराणानि शास्त्राणि च तथा जगुः । प्रतिसंवत्सरं चैकवारं बालमिति त्रयः ॥
कात्यायनः करुणया कण्वः कुत्सात्रुवन् खलु । तस्य शूलिगवस्यास्य करणादेकदैवहि ॥
सर्वक्रतुफलं सद्यः सर्वतोर्थावगाहनात् । सर्वव्रतानुष्ठानाच्च सर्वकृच्छ्रैकचर्यया ॥
सर्वदानशताच्चापि यत्फलं तत्फलं क्षणात् । अवशादेव लभते पञ्चाशजन्मभिः शिवा
चित्तशुद्धिर्भवेदेव संशयो नात्र वच्मि वः । अग्निहोत्रादिभिस्तैस्तु हविर्यज्ञैः श्रुतीरितैः ॥
शताशीतिनवत्येक षष्टिर्त्रिंशद्वयोरपि । पञ्चाशदेकपञ्चाशत् संख्यया सेति निश्चयः ॥
त्रिंशदेकोनत्रिंशत्क सप्तविंशतिबाधकैः । लाघराधय धैरेवं (?) चित्तशुद्धिरिति श्रुतिः ॥
इत्येवं भगवानाह देवदेवः प्रजापतिः । कृतानि कर्माण्येतानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ॥
महातत्त्वापसंज्ञातविघ्नेर्नान्तरितानि चेत् । उक्तकालैकफलदानि स्युरत्र न संशयः ॥
न चेत्कर्मानुगुण्येन फलदानि भवन्ति हि । अतः सदा सत्कर्माणि कुर्वन्नित्यमतन्द्रितः

यत्तत्रैव सन्ति कर्माणि जाग्रतिष्ठेदतन्द्रितः ।

अतस्सत्कर्मणः स्याद्धि चित्तशुद्धिरनुत्तमा ॥

उक्तकालेनाचिरेण मुक्तिर्ह्यत्यन्तदुर्लभा । ब्रह्मादीनां निर्जराणां ते परंत्वधिकाणिः ॥
ते ज्ञानिनोऽपि नितरां महदैश्वर्यचेतसः । कर्माणि चक्रुः श्रुत्युक्तकाम्यनैमित्तिकान्यपि
तदिच्छयातस्ते सर्वे ज्ञानिनोऽप्यधिकाणिः ।

जीवन्मुक्ता इति ज्ञेयाः शुद्धचित्तेन ये विभुम् ॥

भगवन्तं यजन्ते वै कामनारहिताः शिवाः । कृतकृत्यास्तु ते ज्ञेया गुह्यमेतन्मयोदितम्
गृहस्थाश्रमप्रशंसा

सर्वार्था गृहिणो नित्यं सिध्यन्ति च फलन्ति च ।

अतस्तथाविधस्सद्वै सततं ब्रह्म चिन्तयेत् ॥

कलौ तु केवलं वच्मि गार्हस्थ्यं ह्युत्तमोत्तमम् । ततस्सन्नेव यत्नेन कृतकृत्यो भवेदिति
श्रुतेस्तद्धृदयं नूनं चतुर्थाश्रमतस्तु चेत् । अवशादेव निपतेदारूढपतितस्स तु ॥
तस्माद्गृही सन् सततं कर्मब्रह्मपरो भवेत् । यद्यप्यस्मिन्नाश्रमे तु वैकल्ये सति केवलम्

निष्कृतिस्फुलभा दृष्टा सर्वशास्त्रेषु नैकधा ।

आदावविद्वान् गार्हस्थ्ये विद्यमानोऽप्ययं सदा ॥

अशुचिर्दुष्टबुद्धिर्वा पित्रा बाल्येऽप्यशिक्षितः ।

तेनैपि मौढ्यान्मोहाद्वा वेदाध्ययनवर्जितः ॥

किञ्चित्किञ्चित्तत्तत्सन्ध्यामुखकर्मादिकृत्तथा ।

शौचाचारादिहीनोऽपि पुनस्तन्मानसोऽप्यति ॥

पुनस्सज्जनतद्वाक्यसदाचारादिभिर्युतः । पञ्चयज्ञापरित्यागी सदैवापासनवर्जितः ॥

पितृमातृसुहृद्भ्रातृ गुरुनिन्दैकमानसः । पुनस्तद्वक्तियुक्तश्च दैवयोगात्तदा तदा ॥

नित्याशुचिः कामचारी नित्यं सज्जनबाधकः ।

शौचबुद्धिः सदाचारः मनोमात्रश्च केवलम् ॥

प्रीत्यप्रीतिस्सज्जनेषु कालभेदेन सन्ततम् । जनपीडापोषणैक मानसः काल भेदतः ॥

पुण्यपापपरिज्ञानवानस्पत्यन्तदोषकृत् । स्वकार्यैकपरत्वेन कृत्याकृत्यादिवर्जितः ॥

स्वकार्यसाधने प्राप्ते गुणदोषाद्यचित्तकः । स्ववन्धुवर्गसन्मित्रकुलस्त्रीगुह्यसंगकृत् ॥

स्वमित्रजनसद्द्रव्यं कृतव्यामोहमाययति । बहिर्महानदीस्नानतत्परोऽपि प्रभुत्वतः ॥

यन्नावलोकनविनिर्गमनद्वयवानति । अपि वैदिककर्मौघमानसोऽप्यलसः पुनः ॥

जनवाक्यैकसंप्राप्तसत्कर्मस्वतिभक्तिमान् । अक्षमः कर्मकालेषु संप्राप्तेष्वतिलोभतः ॥

अत्यालस्यादिनात्यन्तनित्यचापल्यतस्तथा । कर्मोपयुक्ततन्मात्रसन्ध्यास्नानादिमात्रकः

मन्त्रोच्चारणसामर्थ्यविकलश्चाखिलेष्वपि । कर्तव्यबुद्धिमात्रैकमानसस्सिद्ध(द्धि)वर्जितः
 सक्रियाकरणश्रद्धामात्रस्तत्करणालसः । अलब्धसक्रियादुःखपरितप्तमनाः पुनः ॥
 दुष्टनिग्रहशिष्टैकपूजनज्ञानवानपि । तत्क्रियाकरणालस्यजामितापरहृत्तदा ॥
 सदसज्जनसुज्ञानवानप्यत्यन्तदौष्ट्यतः । कार्यानुगुणदौर्जन्यतत्परो नितरां सदा ॥
 सत्पक्षपातरहितः कदाचिद्वैयोगतः । तत्पक्षपाती भूयश्चाव्यवस्थितचरित्रकः ॥

भूयोऽप्यनेकदौर्जन्यसौजन्यद्वयशीलवान् ।

अप्यस्य गृहिणस्तर्तुमुपायाः शतशः किलः ॥

सन्त्यन्यस्य यतेश्चेत्तु कश्चित्कुत्रापि नास्ति हि ।

पूर्वोक्तस्यास्य कमपि चैकं वक्ष्यामि सुन्दरम् ॥

द्विमुखोदकपात्रप्रशंसा

उपायं तत्र शृणुत भवथाद्यक्षणेन वै । द्विमुखोदकपात्राम्भः स्थालीगोकर्णतो यदि ॥
 सकृत्कृतं त्वाचमनं पावयेदिति पापिनम् । एतज्जन्मकृताकृत्य शतसाहस्रकोटिहम् ॥
 पूर्वैतत्कृतसत्कर्म मध्यवैकल्यवारहम् । कृतापेयसहस्रौघमहाविलदवानलम् ॥
 अनेकब्रह्महत्यौघं नियतार्बुदवृन्दहृत् । भ्रूणहत्यावीरहत्या संदोहशतपावनम् ॥
 गुरूपत्नीकृतमनस्संगसंगतिवारकम् । सखिस्वामिकृतानेक महद्द्रोहातिभीतिहम् ॥
 विश्वासपातकानेकसमुद्रार्बुदतारकम् । विषामिदानशतक दूरीकरणसुक्षमम् ॥
 अपात्रीकरणानेकमहागभ्य(?)तरक्षकम् । जातिभ्रंशाख्य सुमहदेनोवृन्दागस्तपविः ॥
 यावज्जीवमहासप्त गंगास्नानफलप्रदम् । संकलीकरणानेककुलकोटिहलाकृति ॥
 मलिनीकरणाख्यैकमहाविन्ध्यैककुम्भजः । प्रकीर्णकमहापापतमोवृन्ददिवाकरः ॥
 आजन्मपुष्करमहासलिलस्नानसंमितम् । गंगाब्धिसंगकीलालसहस्रस्नानकारकम् ॥
 चापाग्रकोटिसाहस्रावगाहनमहाफलम् । ज्योतिष्टोमातिरात्राप्तोर्यामयज्ञफलप्रदम् ॥
 वाजपेयमहाराजसूयादिफलहेतुकम् । क्रतुराडश्वमेधाख्यशतस्तोमविभूषितम् ॥
 सर्वकृच्छ्रफलं सद्यः सर्वव्रतफलप्रदम् । सर्वतीर्थक्षेत्रदेवस्थाने क्षणफलादिकम् ॥
 एवमादिगुणैर्युक्तं तदाचमनमुच्यते । जलप्रवेशास्ययुग्मपात्रे तीर्थानि भूतले ॥

पट्कोटिकोटिसंख्यानि पुष्करादीनि केवलम् । गंगाद्याः सरितः सप्त समुद्रा गिरयस्सुराः
कृषयः पितरोयक्षाः वेदामन्त्राः सत्राशिवाः । स्वयमेव वसन्त्येते पातुं तद्धारिणं नरम्

प्रजापतिः प्रजाः सर्वा पूर्वं सृष्ट्वा ततो विभुः ।

तर्तुमासामुपायज्ञो द्विमुखं पात्रमुत्तमम् ॥

कल्पयित्वा सर्वतीर्थनिलयं देवतालयम् । वेदावासं शास्त्रमूलं यज्ञकृच्छ्रतपःक्षयम् ॥
तत्कृत्वानेन ताः पापाः प्रजास्सर्वा निरीक्ष्य वै । अनेन यूयं तरत पात्रेणेति जगद्गुरुः
प्रोवाच किल तस्मात्तु तत्पात्रं तादृशं शिवम् । यत्र वा वर्तते तत्र नैव पावकथा खलुं
तद्यमो भगवान् पश्चाच्चित्रगुप्तेन बोधितः । अत्यन्तसूक्ष्ममेतत्तु गुह्यमेव चकार हि ॥
तस्मात्तु सर्वं मनुजाः भूतलेऽस्मिन्स्तदादि वै । न जानन्ति किलैतस्य महत्त्वमतिगोपितम्
कालेन मृत्युना भूयो यमदूतैः पदेपदे । अतिगुप्तं प्रतिगुणं प्रतिसंवत्सरं पुनः ॥

तस्माद्द्विमुखसंपातस्थाल्यास्वीकृत्य तत्पुनः ।

गोकर्णेन क्रियां कुर्युः तेषां नास्त्येव पातकम् ॥

तादृशं दिव्यमुद्रकं खड्गपात्रेण ये पितृन् । समुद्दिश्य क्रियां कुर्युस्तेषां लोका महोदयाः
पितरो नित्यतृप्ताः स्युः गयाश्राद्धेन चेद्यथा । शुद्धगोकर्णगजलं न प्राकृतसमं भवेत् ॥
नदीतटाकादिगतं यथा तेन समं भवेत् । न तूद्धृतसमं चेति प्रोचुः किल महर्षयः ॥

द्विमुखाभःपात्राभेदगतं कृत्वाऽथ गोमुखात् ।

स्वीकृत्य सर्वं यत्कृत्यं कुर्याद्यदि विधानतः ॥

सर्वं तरति दुष्कृत्यं यः कश्चिद्द्विजनामकः । ज्ञानाज्ञानैकनिरतः कर्मठाकर्मठः पुनः ॥

श्रद्धाश्रद्धाभक्तिभक्ति विद्याविद्यादिमध्यमः ।

अमन्त्रमन्त्र तत्तत्त्वातत्त्वाभ्यामपि मध्यमः ॥

श्रुताश्रुताभ्यां नितरां संशयासंशयात्मवान् ।

निश्चयानिश्चयात्मा च कृतार्थः स्यादनेन वै ॥

ज्ञातासुखेन तरति स्वयमेव महामनाः । अज्ञातापरबुध्यैव केवलं शुद्धचेतसा ॥

एकमार्गस्तरत्येव मध्यमस्तु महाजडः । स्वस्यापि निश्चयो नास्ति सर्वकार्येषु संततम् ॥

परप्रोक्ता तु न श्रद्धा दुर्वेदग्राह्येन जायते । तस्मात्तु तादृशस्यास्य मध्यमस्याचलात्मनः
तरणं न कदाचित्स्यात्तादृक् तरणचोदना । अत्यन्तदुर्लभैव स्यात्तादृशी सेयमीरिता ॥
ताम्रेण द्विमुखे पात्रे कृतेऽत्यन्तं तु वैदिकम् । कर्मजालं सद्य एव पुष्कलत्वं प्रपद्यते ॥

कांस्येन चेत् काम्यकर्म जातं साद्गुण्यमश्नुते ।

नैमित्तिकं दुर्वर्णेन सर्वं हेम्नेति निश्चयः ॥

तादृक् पात्रस्य कृतितः कृत्यानि निखिलान्यपि ।

वैदिकानि प्रनृत्यन्ति प्रमदेन युतानि वै ॥

तादृक्पात्रेणोत्तरीत्यासर्वतोमुखतोऽस्य च । नित्यादिकर्मकरणे किं वा जानाम्यहं परम्
द्विमुखान्तर्निस्सृतस्य सलिलस्यास्य केवलम् ।

एकः साधारणो धर्मोः मुख्यतः प्रतिपादितः ॥

सर्वकर्मैकैकल्यप्रत्यवायस्य यद्भवेत् । राहित्यं तेन वशिष्ठ्यकरणत्वं महर्षिभिः ॥

बहुना किं ह्ययैतत्तु सम्यङ्निश्चिनुताऽधुना । लोके सत्कर्ममात्रस्य द्विजमात्रकृतस्य वै ॥

वैकल्यशून्यकरणात्साद्गुण्यकरणादपि ।

किमस्त्यन्यन्महच्छ्रीमच्छ्रेयो मर्त्यस्य भावुकम् ॥

मंगलं वा भगो वापि श्रीर्वालक्ष्मीरनश्वरा । उपायो निरपायोऽयमत्यन्तमुलभः पुनः ॥

देहिमात्रस्यापि दिष्ट एवमन्येपि तान्पुनः । समासेन प्रवक्ष्यामि तत्रादौ प्रथमा परा ॥

व्याहृतिस्तारकापश्चात् गायत्री त्रिपदा शुभा । द्रुपदा सर्वमन्त्राणां शिवसंकल्प एव च

पापहरमन्त्राः

मधुत्रयं नाचिकेताः पुर्वसूक्तं तथोत्तरम् । पञ्चाक्षरोऽष्टाक्षरश्च द्वादशार्णः परात्परः ॥

वामनारायणौ शब्दौ पुण्डरीकाक्ष एव च । विष्णुकृष्णशिवाः शंभुमहादेवमहेश्वराः ॥

नामत्रयं महामन्त्रं वासुदेवोहरिस्तथा । हर भर्ग मृडेशान गंगाधरभवेश्वराः ॥

चन्द्रशेखर भूतेश गिरीशतृषवाहनः । सर्वज्ञो धूर्जटिश्चैव ब्रह्मेति भगवानपि ॥

द्रुते सर्वे पृथक्त्वेन तारकाणि जगद् हाम् । स्मृतिमात्रेण सर्वेषां यावज्जीवं यतात्मनाम्

अत्यन्तपुलभान्येव यन्नसंकल्पशून्यतः । उपदेशादिराहित्यात् कालदेशाद्यभावतः ॥
अशुचित्वाद्यभावाच्च सर्वसाधारणादपि । नामान्यन्यानि दिव्यानि पवित्राणि जगत्पतेः

असंख्यकानि पुण्यानि नित्यं शक्तानि पालने ।

अत्यन्तपापिनो घोरान् पातुं शक्तानि देहिनः ॥

स्मृतिमात्रादुक्तिमात्रा(द्)गानतः श्रवणादपि ।

एतेभ्योऽन्ये पुनस्सन्ति ये किञ्चिद्यत्नोऽधिकाः ॥

नमस्कं चमस्कं पुण्यं पापमन्यः परात्पराः । कूशमाण्ड्यो वामदेव्यं च शाकरं च रथंतरम् ॥

बृहत्पवित्रं सुमहत् गायत्रं पावनं महत् । तिर(ः)पवित्रं सर्वेड्यं क्षमापवित्रं गणास्तथा
एतेभ्योऽन्यधिकं शाखामात्राध्ययनमेव हि । तेन चेदतिशीघ्रेण नरस्तरति केवलम् ॥

वेदवत्तरणोपायो नान्योऽस्ति जगतीतटे । विज्ञानतो ब्राह्मणस्य तस्मान्नित्यं द्विजोत्तमैः
अध्येतव्यः प्रयत्नेन वेदो नारायणात्मकः । वेदाध्ययनराहित्ये शाखामात्रोऽपि वा द्विजः

शनैः शनैश्च च्यवते ब्राह्मण्यान्नात्र संशयः । च्यवनं दोषयुक्तत्वं विच्छेदाद्वेदिवेदयोः
पुरुषत्रयमात्रस्य कथितं ब्रह्मवादिभिः । हरिनामानि यावन्ति कथितानि महात्मभिः ॥

वेदशास्त्रपुराणादिप्रसिद्धान्यपि कृत्स्नशः । तावन्ति चैकवेदार्ण तुलितान्यखिलान्यपि

वेदप्रशंसा

अतो हि ब्राह्मणानां सः स्वाध्यायो धनमुच्यते । प्रसिद्ध धनतस्तत्वेतत् कथितं सुमहद्वनम्
धनं तु विनियोगेन निधनं प्रतिपद्यते । वेदाख्यं परमं श्रीमद्धनं लोकोत्तरं यतः ॥

विनियोगेन नितरां अतिवृद्धिं प्रपद्यते । प्रतिक्षणं प्रतिदिनं प्रतिमासं तथैव च ।

सम्यक्प्रत्ययनं प्रतिवत्सरं हरयतेऽपि च । द्विजमात्रस्याधिकारो वेदेनान्यस्य कस्यचित्

तत्रापि संस्कृतस्यैव सम्यक् तज्जातकादिभिः ।

शुचिस्नातस्य नितरां कृतसन्ध्यादिकस्य वै ॥

वेदाध्ययननिमित्तानि

विशेषदिवसेष्वेव न तु साधारणादिषु । तेषु चापि न साध्यादिसमयेषु कदाचन ॥

राष्ट्रक्षोभे जनक्षोभे शत्रुराजादिपीडने । शवारात्पापसंघाते बन्धूनां मरणे तथा ॥
 विपत्तौ श्रोत्रियमृतौ संकटे समुपस्थिते । आगमे श्रोत्रियाणां च विदुषां श्रीमतामपि ॥
 यतीनां योगिनां चापि गुरुणां च समागमे । द्वयोर्विपुवयोरेवं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥
 समग्रमात्रिदिनं तस्मिन्नप्ययनद्वये । उपाकर्मणि चोत्सर्गे काण्डानामुत्सवादिषु ॥
 दिव्येषु मानुषेषु निश्चयेवं मेघगर्जने । तथा वर्षति पर्जन्ये महागुरुनिपातने ॥
 पुनरन्येषु कालेषु देशभेदेषु सर्वथा । श्मशानशूद्रचण्डालग्रामचण्डालवाटिषु ॥
 तादृशस्यास्य वेदस्य साक्षान्नारायणात्मनः । तत्स्वरूपैकदीपस्य विप्रशोबधिरूपिणः ॥

वेदाध्ययनफलम्

ग्रहणं धारणं चापि यत्नेन महता स्मृते । स्वाधीने तादृशे वेदे सर्वप्राणैकयत्नतः ॥
 संलभ्य तेन लघुना श्रवणादिमुखेन वै । क्रियानान्तरिकेणैव ब्रह्मज्ञानं प्रपद्यते ॥
 अत्यल्पेनैव कालेन तेन सायुज्यमुच्यते । मार्गोऽयमेव मुक्तेस्तु नान्यत्कश्चन दृश्यते
 यद्यन्यो वक्ति मार्गोऽस्तीत्येवमस्या इति स्म यः ।

स वेद न तु वेदस्य तत्त्वं धर्मस्य वै ध्रुवम् ॥

स मूढ एव नितरां अस्मिन्नर्थे न संशयः । पुराणेऽवागमेऽत्र कर्मणापि क्वचित्क्वचित्
 कैवल्यसिद्धिः स्यादेवेत्यस्य वाक्यस्य केवलम् । तात्पर्यं कर्मणस्तस्य ह्यत्यन्तातिशयार्पणे
 तत्त्वेव परमार्थस्य केवलं प्रतिपादने । पुनःपुनः प्रवक्ष्यामि निष्कर्षं श्रुतिमात्रयोः ॥

मुक्तौ वेदेतरश्रवणमाधनतानिषेधः

कैवल्यं ब्राह्मणस्यैव ज्ञानेनैव न चान्यतः । ज्ञानं च श्रवणादिभ्यः श्रवणं चापि केवलम्
 वेदानामेव वाक्यानां नियमेन गुरोर्मुखात् । कर्तव्यत्वेन विहितं न स्वमत्या कदाचन
 अर्थज्ञानान्न साध्यं च भक्त्या गुरुमुखं विना । एतेनैव पुराणादिवाक्यानां श्रवणात्तथा
 भाषाविशेषरचितशास्त्रार्थानां च सर्वथा । ज्ञानं नोदेति तस्मात्तु ब्रह्मज्ञानस्य सिद्धये
 न पुराणादि वाक्यानि भाषया रचितानि वा ।

शास्त्राणि नानवेक्ष्याणि यदि दृष्टानि मोहतः ॥

अज्ञानकारकाण्येव तस्मात्तानि परित्यजेत् । ब्रह्मज्ञानाय यतते यो वा लोके विचक्षणः
अनृतात्सत्यवाक्येन मानुषाद्वाक्यतः । दै(दि)र्षी वाचमिति श्रुत्या तदर्थपरिवृद्धये ॥

क्रमेणानृतसंत्यागं कृत्वा सत्यं समाश्रयेत् ।

तथैव मानुषीं भाषां त्यक्त्वा दिव्यां समाश्रयेत् ॥

प्राकृतभाषोच्चारणनिषेधः

दिव्यां भाषां परित्यज्य प्राकृतां प्रवदेद्यदि । निपतेत्प्राकृतोमूढः महापङ्के यथा जडः
नितरां दिव्यभाषां हि प्राकृतोऽपि शनैःशनैः । यत्नं कृत्वा महान्तं तं तामभ्यस्य दिने दिने
कृतकृत्यो भवेन्नो चेत्तया प्राकृतभाषया । पदे पदे प्राकृतः स्यात्तदा जन्मनि जन्मनि ॥
एवं सत्यपि यो मोहाद्वा द्विद्वान् भवन्नपि । भाषा(सु)प्राकृतास्वेव निष्ठश्चेत्प्राकृतो भवेत्

संस्कृतभाषाविधिः

मौनकालेषु नितरां कर्मकालेषु दैविके । पैतृके वा पावकेषु दिव्यां भाषां वदेदतः ॥

दिव्यभाषापरिज्ञानविकलो यः स तु स्वयम् ।

स्वीयामेव वदेद्भाषां न त्वन्यां मनसा पि च ॥

कर्मकालेषु पुण्येषु मौनकालेषु वा तथा । दिव्यया भाषया नूनं संभाषेतैव धर्मतः ।

मौनविधिः

स्त्रीसंगानन्तरं तस्मिंस्तत्प्रक्षालनपूर्वके । काले मूत्रपुरीषोत्सर्गयोवाचामपूर्वके ॥

पुनरेतादृशेष्वेषु कुर्यादभिनयेन वै । संज्ञया चेष्टया वापि स्वाभिप्रायं परस्य तु ॥

काष्ठमौनेषु दीक्षासु वीक्षणैर्नैव नान्यथा । न कार्यमेव तच्चापि तत्र सन्ध्यासु केवलम् ॥

देवभाषादिका लोके वेदशास्त्रमयी च सा । तस्यामेव रतो नित्यं देवसायुज्यमाप्नुयात्

ज्ञानं दिव्यां शिवां भाषां भाषाविरचितेषु वै ।

शास्त्रेषु कुरुते श्रद्धां स द्विपाद्गर्दभः स्मृतः ॥

भाषया रचितं शास्त्रं स्त्रीशूद्राणामचेतसाम् । मन्त्रमात्रानधिकृतां कर्मस्वनधिकारिणाम्

यत्किञ्चिदर्थदोषाय कदाचित्परिकल्प्यते ।
 स्त्रीराब्देनात्र विदुषां आहिताग्नेश्च यज्वनाम् ॥
 कुलीनानां वेदिनां च न पत्न्यः स्युः कदाचनः ।
 तेषां सदा कर्ममध्ये तत्तन्मन्त्रार्थपूर्वकम् ॥
 बोधनस्य विधानेन वाचनेनास्य शास्त्रतः ।

आहिताग्निपत्नीनां प्राकृतभाषानिषेधः

न युक्ता लौकिकी भाषा दिव्यायां यदि केवलम् ।
 यत्नात्सामर्थ्यवैकल्ये कराभिनय ईरितः ॥

न तु प्राकृत भाषा सा विहिता वा कदाचन । शूद्रशब्देनात्र परं ये सन्तो द्विजसंश्रयाः
 तेषामपि विशेषेण महनीयमपूर्वकम् । नित्यक्षुरविधानेन तत्कालस्नानचोदनात् ॥

सिद्धादिमन्त्रविधिना प्रत्युक्तिप्रतिपादने ।

तन्माक्षायीत्यस्य परं परिज्ञानस्य तस्य वै । अत्यन्तावश्यकत्वेन न गृह्यन्तेऽत्र तादृशाः
 तद्विन्ना अत्र संप्राह्यास्तादृशानां विशेषतः ।

भाषाकृतं तदाभासशास्त्रं तच्छिल्पिभिः कृतम् ॥

विनियुक्तं नृत्तगीतपटुचाटुसमं यथा । तच्छास्त्रवाक्यमवशात्सत्कर्मणि परस्य वा ॥
 स्वस्य वा गलितं चेत्तु मुखतो नाशमेति तत् ।

एवं सत्यस्य तु च्छायाः प्राकृतायास्तथाविधे ॥

भाषायाः सुमहज्ज्ञाने बोधकत्वं कथं भवेत् । एवमेव प्रकथितं पुराणागमयोरपि ॥

तद्ब्रह्मज्ञानहेतुत्वं कुत एवेति चेत्पुनः । एवमत्र प्रवक्ष्यामि त एते पौरुषा यतः ॥

सर्वपौरुषमात्रस्य देवस्य भक्तिबोधनात् । तन्मात्रस्यैव नितरां सिद्धिरित्येव सूरिभिः ॥

रचितो निश्चयः सर्वैस्तद्द्वारा तदनन्तरम् । कृते तद्देवभजने तत्प्रसादेन तत्परम् ॥

चित्तशुद्धिश्चिरात्स्याद्वि यथा तैर्नित्यकर्मभिः । अत्यन्तसत्त्वरवादस्य चित्तशुद्धिर्भवेत्तदा
 तपःकृच्छ्रादिभिर्न्यूनं(भवे)देव वच्मि वः । सर्वाण्यपि च कर्माणि तपःकृच्छ्रादिकान्यपि
 कैवल्यहेतुकान्येव तदर्पणधिया यदि । कृतानि कामनां त्यक्त्वा तानीमानि वदामि वः

कालेन महताऽत्यन्तप्रयासेन परं त्वियान् । सुमहान् भव इत्युक्तः प्रयासेन विनैव हि ॥
वेदोक्तनित्यकृत्यैस्तु भरा सिद्धिरितीयती । हृदा सा सूक्ष्मतो ग्राह्या एवं सत्यत्र यो नरः
सायुज्यनामकांमिकां मुक्तिं कर्मणा येन केनचित् । स्त्रीशूद्राणां प्रवदति मूढो नात्र संशयः

शूद्रादीनां वेदानधिकारत्वनिरूपणम्

अपौरुषेयवेदस्य साक्षान्नारायणात्मनः । पौरुषाणां पुराणानां उभयोर्मुक्तिसाधने ॥
समाने सति सामर्थ्ये को भेदः स्यात्परोऽत्र वै ।

यथा पौरुषशास्त्रेषु शूद्रा (योग्या) गुरोर्मुखात् ॥

श्रवणे योग्यता तद्वद् वेदश्रवणयोग्यता । सुखेनैव भवेन्नूनं एवं सत्यत्र केवलम् ॥
वेदाक्षरश्रवणतः कपिलाक्षीरपानतः । ब्राह्मणोगमनाच्चापि सद्यः शूद्रः पतेदधः ॥
एतादृशमिदं शास्त्रं कलयन्ते सर्वसंकरे । दृढं सर्वत्र सुदृढा नाशमप्राप्य सुन्दरम् ॥

वेदप्रशंसा

सर्वग्राह्यं सर्वसमं प्रसिद्धं राजते किल । यो वा वेदाधिकारी स्यात्स मुक्तेरधिकार्यपि
यो वेदानधिकारी स्यान्ननयं मुक्तेस्तु भाजनम् । वेदाक्षरश्रवणतो निष्कृतिर्यस्य घोरतः
तस्य मुक्तौ तथात्वं स्यादेवं व्याप्तिस्तुनिश्चिता ॥

वेदातिरिक्तमुक्तिसाधननिन्दा

वेदोक्तमार्गभिन्नेन पथा यो मुक्तिमुत्तमाम् । कर्मादिनापि वदति सुमहापापकर्मणा
संप्राप्य चित्ते मालिन्यं वदत्येवेति तत्रहृन् । वेदेन तुल्यं वदति पौरुषं ग्रन्थजालकम् ॥
उत्पत्तौ तस्य सांकर्यमनुमेयं विपश्चिता । ब्रह्मविद्यासमं विद्याभासं शास्त्रादिजालकम्
यस्तदस्सु व्यवहरेत्स नूनं ब्रह्मघातकः । अवेदं यो वेदमिति प्रलपेदल्पबुद्धिकः ॥
स शूद्रत्वमवाप्नोति सद्य एव न संशयः । ब्राह्मणेन समं शूद्रं प्रवदेन्नित्यचर्यया ॥
तथा शूद्रं विप्रसमं वदेत्सच्चर्ययापि वा । तावुभौ धार्मिको राजा जित्वा जिह्वां प्रमापयेत्
यतस्तावन्यवीजैकजनिता पापविग्रहौ । यो वेद कर्मभिस्साम्यं ज्योतिष्टोमादिभिः परः
समत्वेन व्यवहरेद्ग्राह्याभिजमखादिकान् । स पूर्वजन्मवृषलो निश्चेतव्यो मनीषिभिः ॥

ये वेद कर्मणां मध्ये पौरुषग्रन्थमध्यगान् ।

अवशाद्वाक्यखण्डांस्तान् प्रवदेत्कर्म तद्गुरुवम् ॥

वैकल्यं प्रतिपद्येत विषयुक्तमिवामृतम् । ते वेदा ब्राह्मणा गावः मन्त्रादर्भास्तिलास्तथा

तीर्थानि सरितोऽम्भांसि स्वतः शुद्धानि सर्वदा ।

स्वतः सर्वोपकाराय स्वतन्त्राः सर्वदा सताम् ॥

हिताय हि प्रवर्तन्ते ब्राह्मणः सततं सदा । यथा वेदस्तथा वन्द्यः वेदो यस्य धनं स्मृतः ॥

स एव मुक्तये नित्यं यतते सास्य सिध्यति ।

शूद्रादयस्तु तद्धिन्ना मुक्तिकामा अपि स्वयम् ॥

चर्यया प्राप्य विप्रत्वं तेषां शुश्रूषयैव हि । यत्ताज्जन्मान्तरे तत्त्वं संप्राप्य तदनन्तरम् ॥

वेदानधीत्य कर्माणि तदुक्तानि विधानतः ।

कृत्वा सम्यक् तन्महिम्ना चित्तशुद्धेरनुत्तरम् ॥

श्रवणादिमुखेनैव प्राप्नुवन्ति कृतार्थताम् ।

साक्षाच्छूद्रो मुक्त इति ब्राह्मणो वान्य एव वा ॥

वेदोक्तमार्गभिन्नेन यथा वै येन केनचित् । मुक्तोऽभूद् भवतीत्येतद्वाक्यं हि मृगानृष्णिका

वेदांगत्वेन कासांचिद्विद्यानां प्रतिपादनम् । तासामत्यन्तमाहात्म्यप्रतिपादनमात्रके ॥

तात्पर्यमिति विज्ञेयं न तु प्रामाणिकं हि तत् । अर्थवादैकमात्रस्य स्वतात्पर्ये सदातराम्

हृदयाभावतः किंतु ह्यत्यन्तातिशयार्पणे । तस्य तात्पर्यमेवेति शास्त्राणां तत्त्वमीरितम् ॥

तथाहि तच्च सम्यग्वो विशादाय निरूप्यते ॥

वेदाङ्गविस्तारः

पतञ्जलिभूतं तत्तुशास्त्रं व्याकरणं महत् । आपस्तम्बादिभिः कल्पाः सूत्रकारैर्विनिर्मिताः

इडंबिड्यादिभिस्तैस्तच्छन्दश्शास्त्रां च कल्पितम् ।

ज्योतिश्शास्त्रं तु सुमहान् महामुनिसुरोत्तमैः ॥

दिवाकरमधुश्छन्दमुखैरन्यैश्च कारितम् । निरुक्तमीश्वरेणैव ऋगर्थानां विशेषतः ॥

विशदायाखिलानां च कारितं कृपया तदा । भरद्वाजादिभिः शिक्षावेदार्थविशदाय व ॥

तदा तत्पाठसामीचिन्यस्य पूर्वं कृतं हि सा ।

तथा वेदेषु केषांचित्पदानां रूपादिरूपिणाम् ॥

तथा जातीयकानां च कल्कशल्कादिपाथसाम् । हरो भर्गपरस्सर्वशस्त्रसंगो नृचक्षसाम्
ओजस्तेजो यशोवर्णबलादीनां च केवलम् । श्रुत्यन्तर्लीनगूढार्थनिर्णयाय दयानिधिः ॥
स्कन्दश्चकार भगवान् पुरा कल्पान्तरं पुनः । एतेषां किल वेदाङ्गत्वेन सर्वैर्निरूपणम् ॥

वेदाङ्गप्रशंसा

अङ्गाङ्गिनोरभेदत्वादेतान्यपि महान्त्यलम् । साक्षाद्वेदे इति प्रोचुर्जगत्यस्मिन् हि केचन
महोपकारकत्वेन चैतेषां ग्रन्थमात्रके । वेदाङ्गत्वेन नितरां संस्तुतिर्हि स्मृताखिलैः ॥

वेदवाक्येषु वेदानां तत्र तत्र कचित्कचित् । संजाताजग्निमृचेति श्रूयते किल यद्यपि ॥

अथापि तस्य वेदस्य नित्यस्य ब्रह्मरूपिणः । नितरामतिगूढस्य ज्ञेयस्य तु तदा तदा ॥
कल्पादिषु तदाऽविर्भावो हि तत्तन्मुखेन तु । नैतेन जननं तेषां कर्तृत्वमपि तस्य न ॥

तादृशस्यास्य नित्यस्य सर्वशास्त्राण्यपि स्वयम् ।

पुराणस्मृतिकल्पादिग्रन्थजालानि केवलम् ॥

तदर्थनिर्णयायैव प्रवृत्तानीति सूरिभिः । कथितानि महाभागैः नान्यथैषां स्थितिः परा
तस्मादिदानीं यः कश्चित् वेदं तत्कर्म तत्परः । तदर्थज्ञानसंपन्नः शुद्धश्चाश्वल्यवर्जितः

कृतार्थतामियादस्मिन्नर्थे वच्मि न संशयः ॥

वेदाध्ययनवर्जितस्य पुनर्वेदाधिकारः

पुनरन्यत्प्रवक्ष्यामि वेदाध्ययनवर्जितः । पित्राद्यशिक्षितो ज्ञानाज्जातकर्मदिंसंस्कृतः ॥
सन्ध्यामात्रप्रधानश्च पुनः कालेन केनचित् । संगत्या महतां पुंसां श्रीमतां दर्शनादपि ॥

श्रवणाद्वैवयोगेन तत्रतत्रावशात्पुनः । वेदतत्कर्मतत्कर्मितदर्थसुमहामनाः ॥

सुशिक्षितस्वकर्मैकमन्त्रमात्रक्रियापरः । पूर्वस्थाकृतवेदाध्ययनतप्तमहामनाः ॥

वेदकर्मस्वतिमनाः पराधेनश्च सन्ततम् । स्वशक्त्युत्साहानुकूलकर्मकृद्ब्रह्मचिन्तनात् ॥

ब्रह्मभक्तः ब्राह्मणैः क्री(१) सपर्याभक्तिमानति । पुनर्जन्मान्तरं शुद्धं श्रीमतो महत्तस्सतः ॥
योगिनो यज्वनो गोहे प्राप्याल्पेनैव केवलम् । कालेन भूत्वा सुमनाः सर्ववेदान्ततत्त्ववित्
प्राप्नुयाद्ब्रह्मनिर्वाणं वेदमार्गानुसार्ययम् ॥

वेदेतरमुक्तिसाधननिषेधः

वेदोक्तमुक्तिमार्गोपायादन्यः कोऽपि सुन्दरः । अत्यन्तसुलभः सूक्ष्मकुशाखान्तरचोदितः
उपायोऽस्तीति सुगतनीचहूणादिकथनम् । तथा यद्यस्ति तं सर्वसन्ध्याकर्मादिकं भृशम्
वेदोक्तं निखिलं त्यक्त्वा कर्मजालं सुखेन वै । आश्रयेदेव किं भूयः एतैः सन्ध्यादिकैर्वृथा

यो वक्ति मुक्तिसरणीं वेदोक्तान्यां जडाकृतिः ।

द्विजवंशप्रसूतस्सन् तांपुरामाश्रयन् सदा ॥

तथैव हि स्थितश्चेत्तु विना सन्ध्यादिकर्मणा । विचक्षणो द्विजेषु स्याद्यदि कुर्वन् पुनर्महत्
सन्ध्यादिकं वेदलब्धं तिष्ठेच्चेत्स तु केवलम् ।

उभयभ्रष्ट एव स्यान्न किं जानाति मूढधीः ॥

सन्ध्यादिकर्मभिर्मुक्तिः चत्वारिंशः करैरपि । इत्येव वेदसिद्धान्तो यदि तान्त्रिकदीक्षया
लिङ्गादिधारणेनापि पुनर्निर्वाण दीक्षया । एतज्जन्मनि मुक्तिः स्यात् त्रिभिरेतैः सुकर्मभिः
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा जातकर्मादिकं विना । स्थितश्चेत्तेन मार्गेण त उपायाः परा इति ॥

निश्चिच(श्चे)तुं शक्यते सवः तस्मात्तादृशकथनम् ।

न कार्य(१)कार्यवेदस्य सिद्धान्तश्चे(न्नि)रूप्यते ॥

इतरापेक्षराहित्यात्तदुक्तैरेव कर्मभिः । कैवल्यसिद्धिं भटिति एतस्मात्पुनरप्यति ॥

उपायः कोऽपि चेद्भूयः स हि सर्वोत्तमोत्तमः ।

अत्यन्ताश्रयणीयः स्यात्किमेतैरिति वै पुनः ॥

एतदाश्रयणेनैव स हि दुर्बल उच्यते । तदाश्रयं विनैतेषां नित्यसंश्रयणात्परम् ॥

आधिक्यं सुमहत्प्राप्तमेतस्योपरि केवलम् । मीमांसाप्रचयो नूनं निष्प्रयोजनको ध्रुवम्

तस्यां निर्वाणदीक्षायां सर्वेषां कर्मणां परम् ।

नित्यनैमित्तिकानां च बह्वौ त्यागो विधीयते ॥

सन्ध्यामग्नौ स्यजामीति स्वाहाशब्देन मन्त्रतः । सर्वेषां पुनरन्येषां मलत्वेन च पाशतः

भावयित्वाखिलान्येव संस्कार्याण्यखिलान्यपि ।

चत्वारिंशत्कसंख्यानि शिखां वर्षाणि सूत्रतः ॥

यज्ञोपवीतं अन्यांश्च च(चतुर्वर्णान्)श्च तथाश्रमान् ।

अग्नौ दग्ध्वा होमपूर्वं शैवसंध्यादिकाः पराः ॥

तच्छास्त्रमार्गात्स्वीकृत्य मनुमेकं च तारकम् ।

पञ्चाक्षराख्यं लब्ध्वाऽथ तद्गुरोर्मुखतस्ततः ॥

पुनर्वर्गत्वसिद्ध्यर्थं व्यवहाराय देहिनाम् । स्नानसंध्याक्रियादीनि वर्णाश्रममुखान्यपि ॥

दण्डेन संगृ(प्र)हीष्यामीत्येतद् व्यामोहकं परम् । ईशेन रचितं शास्त्रं अष्टाविंशतिसंख्यया

तथैव वैष्णवं चापि व्यामोहाय पुरा कृतम् । सुगतानां राक्षसानां देवदेवेन विष्णुना ॥

तदेतदखिलं तस्माच्छास्त्रं तद्द्विविधं परम् । व्यामोहकं परित्यज्य तारकं परिगृह्य वै ॥

तदुक्तमार्गतो नित्यं सर्वकर्माणि यानि वा । प्रोक्तानि तेषु कुर्वीत कृतकृत्यो भवेत्ततः ॥

तानि चैतानि कर्माणि प्रोच्यन्ते क्रमतोऽधुना ॥

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च । नामान्नप्राशनं चौलं मौञ्जीव्रतचतुष्टयम् ॥

गोदानिकं तथा स्नानं विवाहः पैतृमैधिकः । एकविंशतियज्ञास्तु नित्या ये वेदचोदिताः

नित्यकर्माणि

पूर्वमेव समासेन मया सम्यङ्निरूपिताः । दैनंदिनानि कर्माणि सर्वेषामपि देहिनाम् ॥

स्नानं सन्ध्या जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।

आतिथ्यं वैश्वदेवं च कर्माण्येतानि मन्त्रतः ॥

कर्तव्यत्वेन नितरां चोदितानि मनीषिभिः ।

कर्मारम्भे कर्तव्यानि

सर्वेषां कर्मणामादौ धर्माधर्मविचिन्तनम् । कृत्याकृत्यमवाच्यं यद्वाच्यं शक्त्यनुरूपकम् ॥

निश्चित्य मनसा पश्चाद्देवानिष्टांश्च भावयेत् ।

कुलदेवान् ग्रामदेवान् देशदेवान् समीपगान् ॥

संस्मरेद्भक्तियुक्तस्सन् मनश्चाञ्चल्यवर्जितः ।

दिक्पालान् लोकपालांस्त्रीन् ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान् ॥

संप्रणम्यानुचितस्सन् गां कन्यां च सुवासिनीम् । गजमश्वं वृषं वेश्यां दर्पणं मर्कटं तथा
अतिनीलं विचित्रांगं पश्येदपि च वाडव(व)म् । कालीनं सुव्रतं शान्तं सुमुखं कोपवर्जितम्
सदा हास्यमुखं(लो)कं पुत्रिणं जीवपुत्रिणम् । दर्पणं च क्रमेणैव(तं)पश्येन्नित्यमतन्द्रितः ॥

भानुवारे विशेषेण पूर्वं तदुदयस्य चेत् ॥

सुवर्णदर्शनम्

सुवर्णदर्शनं कुर्यात् सुवर्णस्य न चेत्पुनः । सुवर्णदर्शनं नित्यं उदयानन्तरं स्मृतम् ॥

स्थिरवारेत्यस्तमयात्पूर्वं सायाह्नमध्यमे । कृत्वावलोकनं पूर्वदिक्से भास्करस्य च ॥

वारे तदुदयात्पूर्वं दर्शनं तस्य चेद्भवेत् । अपूर्वमंगलावाप्तिः तादृग्बन्धुनिरीक्षणम् ॥

अमंगलानामप्राप्तिर्भवेच्च सुखमुत्तमम् ॥

मर्कटदर्शनम्

अत्यन्तराजसन्मानमारोग्यमतिशोभनम् । अत्यन्तधनलाभश्च लाभो नष्टधनस्य च ॥

भवेदेव न संदेहः नित्यं मर्कटदर्शनात् । आयुषस्त्वभिवृद्धिः स्यादारोग्यं कायदाढ्यं ता ॥

प्रसन्नता च मनसः धैर्यं स्थैर्यं शमो दमः । सौमुख्यं सर्वकार्येषु तस्मान्मर्कटमुत्तमम् ॥

गृहीत्वा भाग्यवन्तो ये पोषयन्तश्च तं सदा । तद्दर्शनं प्रकुर्वन्तः प्रातःकालेषु मौनतः ॥

वर्धन्ते सर्वभागैश्च नित्यश्रीका महोन्नताः । नागान्तकग्रहणतः महापीडा प्रजायते ॥

तस्य ग्रहानयनतः ग्रहपीडा भवेद्भ्रुवम् । तस्मात्तदवशात्तस्य दर्शनं चेच्छुभावहम् ॥

गरुत्मर्दनम्

न चेत्तु मार्गणं कृत्वा कुर्यात्तस्यावलोकनम् । कुलायं यत्र कुत्रापि स्थितं दूरसमीपयोः ॥

प्रज्ञातमतियत्नेन कृत्वा पूर्वोक्तकालके । तदर्थमेव तं पश्येन्न कीलालतटे पुनः ॥

तटे जलस्य यदि तं अवशादागतं नरः । पश्येत्तस्मिन् दिने सायं भुक्तिर्भवति केवलम् ॥

तद्दशने यो नियमं कृत्वा तस्यावलोकने । अत्यन्तमटनं कुर्वन् तमदृष्ट्वैव केवलम् ॥
 निनदं वा क्रोशानस्य शृण्वन् तस्यावलोकने । यच्छ्रेयस्तदवाप्नोति विप्रं पश्येदथापि वा
 गरुत्मतो भानुवारे दर्शनाच्च स्वरो वरः । सचेष्टयोर्द्वयोस्तद्वदत्यन्ताक्रोशतोः मिथः ॥
 परिक्रमणतो भूयः प्रादक्षिण्यविधानतः । दर्शनं वासुदेवस्य साक्षात्लक्ष्मीपतेरपि ॥

अत्यन्तदुर्लभं प्रोक्तं ततः शतगुणं शिवम् ॥

चाषादिदर्शनम्

चाषस्य दर्शनं श्रीमत्सर्वसंपत्प्रदायकम् । यदा कदा यत्र कुत्र गमनं वामतो यदि ॥

चाषस्य तस्य वान्यस्य भरद्वाजाख्यपक्षिणः ।

जीवं जीवस्य क्रौञ्चस्य कण्वराधकलापिनाम् ॥

सर्वसिद्धिकरं प्राहुः भाविकार्यं च हस्तगम् । जातमेवेति विज्ञेयं तत्कालेन तु केवलम् ॥

निन्द्यो निनादो विज्ञेयः प्रयाणेष्वखिलेष्वपि ।

पक्षि(क्षी)णां गमने काले निनादो निन्द्य उच्यते ॥

विवाहमैत्रकृत्यादिगमनेषु(पक्षि)भिः कृतः । तत्कार्यमध्यपरमकलिकृन्नाद ईरितः ॥

उपविश्यैव तिष्ठन्तं तूष्णीकं पादपादिषु । पक्षिणं क्रिययास्वस्य मार्गमध्येषु बुद्धिमान् ॥

तत्कार्यस्यानुकूला(ल्या)य लोष्ठपापाणदण्डकैः ॥

स्वकार्यानुकूलपक्षिगमनसंपादनम्

(भी)षयन् वा गतिं तस्य साधयेदनुकूलतः ।

बलाच्छत्रुं च शकुनं स्वव्यापारेण सन्ततम् ॥

स्वानुकूलं साधयीत तेन श्रेयो महद्भवेत् । द्विजद्वयस्याभिमुखं एकशूद्रस्य वा तथा ॥

प्रयाणेषु प्रशस्तं स्यात्तच्छ्रीदस्यापि दुर्लभम् । दर्शनं पूर्णकुम्भस्य बहूनां वा द्वयोस्तु वा

आभिमुख्यपुरंध्रैकसमानीतस्य दुर्लभम् । साक्षाच्चतुर्मुखस्यापि देवदेवस्य वा तथा ॥

भेरीतालमृदंगौघवारस्त्रीणां विशेषतः । आभिमुख्याभिगमनं दर्शनं च प्रशस्यते ॥

सर्वप्रयाणकालेषु कुणपस्य च दर्शनम् । आभिमुख्याभिगमनं चतुर्भिर्वाहकैस्सहः ॥
 साक्षात्तुन्दरस्यापि दुर्लभस्तत्प्रकीर्तितम् । अत्यन्तस्वगृहस्याराद्वामादक्षिणतो यदि ॥
 बलिभुगमनं शस्तं सर्वकार्यैकसाधकम् । नारायणमहापक्षिगमनं चेत्तथा पुनः ।
 सर्वप्रयाणकालेषु जातं तत्कार्यमित्यपि । विज्ञेयमेव सुव्यक्तं चाश्वत्थं तत्र वर्जयेत् ॥
 कार्यार्थं भाषमाणेषु तदा यद्यवशात्पुनः । अश्वप्लुतं भवेद्रम्यं तत्कार्ये वृद्धिरुच्यते ॥

सद्यः सिद्धिश्च कथिता सुराणामपि तादृशम् ।

निमित्तं दुर्लभं शस्तं नराणां किं पुनः स्मृतम् ॥

तत्तत्कार्यैकवाक्येषु चलत्स्वेकत्र चेत्तदा । लौकिकं वा वैदिकं वा वाक्यं तद्धृदयंगमम् ॥
 तदानुकूल्यैकरूपसाधकं तच्छ्रुतं यदि । तत्कार्यं च ततः पश्चात्कालेनाल्पेन सिध्यति ॥
 संदिग्धशुभकार्याणां चिन्तनेष्वतिसंशयात् । कर्तव्यत्वाकर्तव्यत्वद्वयेनैवातिसंकटात् ॥
 कुरु मास्वत्र संदेहः एवं वाक्य उदीरिते । तदा तं संशयं त्यक्त्वा तत्कार्यमतिशीघ्रतः ॥
 कुर्यादेवाविचारेण तत्कार्यं तत्परं ध्रुवम् । वृद्धिं प्राप्नोति महतीं तस्मिन्नर्थेन संशयः ॥
 सर्वत्र शुभकार्येषु समुद्युक्तेषु सन्ततम् । कर्तुं तदा वशाज्जातं निमित्तं शुभसूचकम् ॥
 शुभकार्यकरं स्याद्वि रोगोपद्रवचिन्तने । राजचोरारिचिन्तानु तदा सद्यः समुत्थितम्
 घण्टाशब्दः शंखशब्दः वेगुग्रीणादिसुस्वरः । तूर्यशब्दो गीतशब्दो तालस्वस्तिकवैणवाः
 भेरीमृदङ्गपणवढक्काडिण्डिमसंभवः । सर्वे शब्दाः किं बहुना शुभत्वेन निरूपिताः ॥
 ते सर्वे स्युः पृथक्त्वेन सद्यः प्राणहराः स्मृताः । रोगादिचिन्तने तर्हि चौषधादिपरिग्रहे
 क्षुत्तमास्यध्वतिर्मास्तु ध्वनिर्दुर्लक्षणादिकः । तच्छामकः प्रकथितः सद्य एव न चापरः ॥
 एवमेवाशुभानां च कार्याणां संततं स्मृतम् ॥

दुष्टनिमित्तानि

प्रयाणादिषु सर्वेषु दुर्निमित्तानि केवलम् । प्रशस्यन्ते विशेषेण न स्युस्तत्र शुभानि वै ॥
 यानि दुष्टनिमित्तानि रोगपीडादिकर्मसु । तानि सन्ति प्रशस्तानि सर्वदा नात्र संशयः ॥
 काकवद्यदि मार्जालः(रः)प्रयाणेषु गतो भवेत् । स समीचीन इत्युक्तः विपरीतोऽन्यथा स्मृतः

दर्शनं सर्वकार्येषु सार्जालस्यातिगर्हितम् । अथाऽपि केचिन्मार्गस्य मध्ये गच्छन् प्रदृश्यते
यद्ययं काकवद्भूयः समीचीनस्मृतस्त्विति । प्रोचुर्महर्षयो देवास्तादृक् तद्गमनं पुनः ॥
दुर्लभं वासवस्यापि तस्य साक्षाच्छचीपतेः । तिलधातुकवाय्वाशि शशिकाषायिणामपि
यतीनां दर्शनं दुष्टं प्रयाणेषु निरन्तरम् । विधवानां देवतानां तत्पत्नीनां तथैव च ॥
उल्कावह्निकराणां च दर्शनं गमनेतराम् । निन्दितं सर्वशास्त्रेषु तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥
सुमंगलीहस्तगतः सज्ज्वालो वह्निरागतः । यदि दृष्टो मार्गमध्ये कल्याणशतकारकः ॥
विधवाहस्तगस्सोऽयं तादृशोऽपि प्रदूष्यते । पतिपुत्रविहीना या विधवा सा प्रकीर्तिता
पतिमात्रविहीना या सपुत्रा चेन्न दूष्यति ।

सुवासिनीसमा सापि सा दृष्ट्वा यदि वर्त्मनि ॥

विधवा तादृशी घोरा चाभिमुख्येन चेत्कलिः । समागता संभवेद्धि पतिपुत्रैकवर्जिता ॥
सद्य एव भवेन्नूनं रक्तकाकिनरोधतः । महामृत्युर्मुनुष्यस्य तस्मात्तत्परमेव वै ॥

गमनाय पदं त्वेकवदं (पदं) वास्मिन्क्षिपेन्न तु । पादप्रसर्पणाद्धोरो रक्तवर्णस्य पापिनः ॥
काकस्य मृत्युरूपस्य रोधे रोगोऽस्य जायते ।

निरुद्धः शत्रुणा वाक्यैः मागच्छेति ततः पुनः ॥

न गच्छेद् देवि सततं श्रेयस्कामी तु पद्धतिम् । पयःकुम्भं सुराकुम्भं मधुभाण्डं तथाभिषम्
मांसखण्डं दधिघटं घृतकुम्भं विशेषतः । यदि गच्छन्मार्गमध्ये संप्राप्तं देवकुम्भकम् ॥
वाद्यघोषैः परिवृतं परिवाराति सुन्दरम् । यदि पश्येत्सद्य एव कृतकार्यो भवेद्ध्रुवम् ॥
पश्चादनन्तकल्याणमंगलायतनो भवेत् । मयूरपिच्छ)नृत्यन्तं मार्गमध्ये विलोक्य वै ॥
कार्यमुद्दिश्य गच्छन्वै कृतकृत्यः प्रजायते । आभिषं भक्षयन्तं तं गरुडं सर्पवैरिणम् ॥

नीलकण्ठं सोरगं वा बभ्रुं वा सर्पखण्डकम् ।

खादन्तं संहरन्तं वा यदि पश्येत्तु वर्त्मनि ॥

सुनिमित्तानि

तस्य सद्यः सर्वशत्रुविनाशो जायते ध्रुवम् । विप्राशिषः कृता वर्त्ममध्ये दैवात्सदीरिताः

पतिव्रतोदिताश्चापि महच्छ्रेयो विधायकाः । पञ्जरस्थैः शुक्रैर्गृहे पालितैरवशोदितैः ॥

वचनैरपि कार्याणि विज्ञेयानि मनीषिभिः ।

समीचीनासमीचीना तदास्य मतिरीरितः(ता) ॥

भवेयुरेव कार्याणि नात्र कार्या विचारणा । तस्मिन्मुहूर्ते ब्रह्माख्ये स्वोत्थानसमये यदि
देवतावाचकरुतं श्रुतं मंगलवाचकम् । अत्यन्तं भावि कार्यस्य ज्ञापकं तद्भवेद्भुवम् ॥

मतं तदीयं पुरतो अ(ह्य)वशादपि निर्गतम् । श्राव्यं चेदति भव्यानां ज्ञेयं दुर्गतिवारकम्
सुखश्राव्यरुताः राजभवनेषु निरन्तरम् । प्रवेश्याः पालनीयाश्च पक्षिणश्चित्रवर्णकाः ॥
गृध्रकंकवकोल्लृकताक्ष्यचेटकतुन्नकाः । जडकोटनटप्रोथप्राणिबिन्दुमरत्वराः ॥

वर्जनीयाः पालनार्थं न प्रवेश्याश्च वेश्मसु ॥

गृध्रादीनां गृहारोहणफलम्

कपोतगृध्रोल्बुकानां गृहसंबन्धतः परम् । गृहिणस्तत्कलत्राणां पीडा नु महती भवेत् ।

कूर्मागमनतो गेहे यजमानो निरन्तरम् । अनिवर्त्यमहारोगैराक्रान्तो दुःखभागभवेत् ॥

तद्दोषपरिहाराय शौनकोक्तां सुपावनीम् ।

शान्तिं बोधायनोक्तां वा कुर्यादेवाऽविचारयन् ॥

शान्त्यां कृतायां सुमहत्सद्यःश्रेयो भवेन्न चेत् ।

प्रभवेत्तु महानर्थः तस्मान्नैमित्तिके वशात् ॥

सम्मगतेति चपलं बुद्धिमान् सुसमाहितः । यस्य प्रतिपदोक्तं यत्तदेव हि समाचरेत् ॥

तदलं बहुना तूष्णीं प्रसक्तानुप्रसक्तितः । बाडवः प्रातरुत्थाय देवानां ध्यानमाचरेत् ॥

तद्धेतुभूतमन्त्रांश्च पुराणोक्तान् वदेदपि ॥

अपररात्रेकर्तव्यम्

स्वाध्यायनिरतश्चेत्तु तत्र निष्ठो भवेदति । नास्त्यस्त्य मन्त्रपठने चास्यावश्यकता परा ॥

तस्य तत्रैव सर्वे स्युः मन्त्रा यज्ञास्तपांसि च ।

तीर्थानि सरितश्चैव दानानि विविधानि च ॥

व्रतानि धर्मा निखिलाः कृच्छ्राणि विविधान्यपि ।

वर्तन्ते तेन तस्यास्य तद्वर्णोच्चारणेन वै ॥

सर्वसिद्धिर्भवेन्नूनं अवशात्प्रतिवर्णके ॥

अपररात्रे वेदाध्ययननियमाः

रात्रेऽपरस्मिन् यो मोहाच्छयानोऽध्ययनं चरेत् ।

व्यालो भवेदयं नूनं यद्यशुद्धः शुनि(चि)र्भवेत् ॥

अप्रक्षाल्यानाचम्य दुष्टसर्पो भवेत्किल ।

सताम्बूलास्यतश्चेत्तु द्वयास्यो व्यालो भवेदति ॥

विकच्छा यदि दौर्गत्यं प्रणतः प्राप्नुयादति । अकच्छो महिषत्वं तु सूतकेन शृगालताम्
अनध्यायेषु दाद्विचं कुष्ठरोगित्वमेव च । प्राप्नोत्येव न सन्देहः परमध्ययनात्पुनः ॥
निद्रया तत्फलं नैव प्राप्नोति पुनरप्यति । उलूकत्वमवाप्नोति नष्टायुः प्रभवत्यपि ॥
वर्त्म गच्छन्यदिपुनः पिशाचत्वमवाप्नुयात् । सन्ध्ययोर्मृत्युमाप्नोति शवे निपतने यदि
क्रोष्टृत्वं समवाप्नोति वाहने संस्थितो यदि । बिडालत्वमवाप्नोति द्रुमपादस्थितो यदि
अरण्ये निर्जले क्रूरे रक्षस्त्वं समवाप्नुयात् । खट्वायां संस्थितश्चेत्तु मत्कुणत्वमियादति
रीक्षत्वं तल्पगश्चेत्तु कटस्थश्चेत्तु काकताम् । भवनोपरि चेन्नूनं कपोतत्वं तथा पुनः ॥
मण्डपोन्ततपृष्ठस्थः तार्क्ष्यत्वं प्रतिपद्यते । श्मशानादिप्रदेशेषु व्याधत्वं च पुलिन्दताम् ॥
श्राद्धभुग्यदि मृत्युत्वं प्रेतत्वं प्रेतभोजनात् । पत्नीसंयोगचपलचित्तो यदि तथा पुनः ॥
समाश्लिष्टः स्वयं तां वा समाश्लिष्याथवापुनः । सूकरत्वं गार्दभत्वं श्वत्वं काकत्वमेव च
संप्राप्य कौलज्ञानित्वं ज्योतिरिङ्गणतां ततः । शतजन्मसु संप्राप्य चक्रवाकत्वमृच्छति ॥
तस्मात्तु वेदाऽध्ययनं अत्यन्तनियमान्वितः । कुर्वीतैव विधानेन सुमहद्बाधकं न चेत् ॥
अकृताध्ययनश्चेत्तु सर्वकार्येषु सन्ततम् । तत्पुराणोक्तमन्त्रान्वा नान्तरीकेषु केवलम् ॥
प्रवदेदेव तूष्णीकं न तु मान्त्रिककर्मणि । तत्रादौ शयनाद्बाह्ये संस्थितो भूतले पुमान्
इमं मन्त्रं जपेद्भक्त्या जपस्स च कृताकृतः ॥

पुण्यश्लोकाः

तस्मिन् वः प्रवक्ष्यामि पुण्यं मन्त्रं च तादृशम् । नान्तरीकेषु कालेषु यूयं जपत च द्विजाः

ब्रह्मा मुरादि(रि)बिभुरान्तकश्च भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

इमंमन्त्रं समुच्चार्य पश्चात् खलु समाहितः ।

पुण्यश्लोकान् कीर्तयेच्च पुण्यश्लोकाश्च ते स्मृताः ॥

नलादय इतिरूपाताः तत्कीर्तनमशमनुम् । सम्यङ्निरूपयिष्यामि हिताय जगतामहम्

पुण्यश्लोको नलोराजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।

पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोकः पुरुखाः ॥ ॥

ककौटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च । ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्

तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि काकौटकहरेः परम् । असाधारणतो ज्ञेयं कीर्तनं कलिनाशनम् ॥

नलस्य दमयन्त्याश्च विशेषेण निरूयते । असाधारणतो ज्ञेयं कीर्तनं पापनाशनम् ॥

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः असाधारणतः परम् । विज्ञेयं निखिलैत्र कीर्तनं पुण्यवर्धनम् ॥

तत्र साधारणे ज्ञेये सर्वेषामपि सन्ततः(म्) । कीर्तनात्कलिनाशत्वं पापनाशत्वमेव च ॥

तत्पुण्यवर्धनत्वं च तेष्वेतेषु च त्रिष्वपि । असाधारणधर्मोऽयं एक एव द्वयं (तु) तत् ॥

शिष्टं साधारणो धर्मः सर्वत्रैवं हि निर्णयः । एतेषां स्मरणात्पश्चादुत्थायोर्वी प्रणम्य वै

इमं मन्त्रं समुच्चार्य गच्छेत्कार्येषु सन्ततम् । तं च मन्त्रं प्रवक्ष्यामि भवतां विशादाय वै

प्रातरुत्थाय गमनमन्त्रः

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते । अनेकरत्न तंलग्ने पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

बहिरागत्य तत्पश्चान्मन्त्रेणानेन धर्मतः । जलपात्रं च संगृह्य मृद्धानीमपि भस्त्रिकाम् ॥

प्राद्वित्वा दृढां पूर्वं यत्नसंपादितां शुभाम् । नैमृत्याभिषुनिक्षेपमात्रं गत्वाऽथ तत्र वै ॥

पुरीषोत्सर्जनम्

भावयित्वा तृणैर्भूमिं तत्र मूत्रपुरीषयोः । मोचनं वै प्रकुर्वीत रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥
उदङ्मुखोदितो नित्यं विधिरेवं सदोदितः । मूर्धानमुत्तरीयेण वेष्टयित्वा पुनस्ततः ॥
कृत्वा निवीतं यज्ञाख्यसूत्रं कर्णे निधाय च । कुर्यान्मूत्रं पुरीषं च तत्पात्रस्थोदकेन वै ॥

तया मृत्तिकयासम्यक् क्षालयेद्गन्धवर्जितम् ।

मृत्तिकाग्रहणं चापि भस्त्रिकायाः सकाशतः ॥

अन्येन कारयित्वैव तत्सकाशात्स्वयं ततः । संगृह्य शौचं विधिना कुर्यादेवान्वहं परम् ॥

मृत्तिकासंख्या

पञ्चवारं गुदे कुर्यादेकवारं च मेहने । करयोः पादयोः पूर्ववदेवेति विधिः परः ॥

एतस्य द्विगुणं प्रोक्तं वर्णिनः सन्ततं महत् ।

त्रिगुणं तु वनस्थस्य यतीनां तु चतुर्गुणम् ॥

एवं नृपस्य वैश्यस्य शूद्रस्य च विधानतः । तत्क्रमेण प्रकथितः मृत्तिकासंग्रहश्च सः ॥

अष्टम्यां भौमवारे च सर्वेषां शस्यते किल ।

ग्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा मृत्तिकासंग्रहं चरेत् ॥

अपराह्णे प्राङ्मुखेन स्थित्वा भूमिं समन्त्रतः ।

मृत्तिकाग्रहणमन्त्रः

प्रणम्य प्रार्थयित्वाऽथ उद्धृतासीति मन्त्रतः । तावकीं वसुधे मृत्स्नां शौचार्थमहमद्य वै ॥
संगृहीष्यामि जननि क्षमस्वाशेषमावृके । मन्त्रोणानेन संगृह्य खनित्रपिटकायुतः ॥
प्रोथयित्वाथ तामन्ये नैव पुंसा विचक्षणः । गृहमागत्य पश्चात्तु वस्त्रसंशोधनादिना ॥

समीकृत्य समीचीनं सुखस्पर्शस्य चेद्यथा ।

सुसंस्कृता सा प्रभवेत्तथा कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥

यत्रकुत्रशुचौदेशे पश्चात्तां च दिनेदिने । तदा तदा मृद्धान्यैव संगृह्य च पुनः पुनः ॥
 शौचं कुर्याद्विधानेन न चेच्छौचेन केवलम् । वैकल्यभागभवत्येव पुनः सर्वेषु कर्मसु ॥
 तादृशेन न संदेहस्तन्मूला हि क्रिया पराः । यया कयाचित्कृतया मृदाशौचं वृथा भवेत् ॥
 कृतमप्यकृतप्रायं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।

गण्डूषविधिः

कुर्यात्तदन्ते गण्डूषं सम्यग्द्वादशसंख्यया । मूत्रमात्रस्य चेद्भूयो दशाष्टौ वा मृदासकृत् ॥
 समुष्कं क्षालयेत्सम्यक् शुद्धेन पयसैव हि । अशुद्धेनातितुच्छेन नदुर्गन्धेन कदाचन ॥
 न क्षालयेत्तथा शौचं गुह्यं पादकरावपि । अशुद्धजलतोयस्तु शौचं मूत्रपुरीषयोः ॥
 कुर्यात्पुनरसौ च स्यात्तद्दोषस्य निवृत्तये । शुद्धेन पयसा शौचं पुनः कृत्वा विधानतः ॥
 पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य स्नानं कुर्यात्समन्त्रतः । नचेदस्पृश्य पयसः स्पर्शनेनैव केवलम् ॥
 प्राप्तं ह्याशौचमधिकं निवृत्तिस्तस्य तेन हि । समन्त्रेण न चान्येन संगेनेति महर्षयः ॥
 रहस्यमत्र वक्ष्यामि यदुक्तं तन्मया पुरा । द्विमुखदुदकतोऽतीव कृतमाचमनं तु यत् ॥
 तत्पुनात्यवशात्पापं तदा किमपि नास्ति हि ।
 मन्त्रस्नानादिकं कृत्स्नं तत्सृष्ट्वैव क्षणाल्लभेत् ॥

दन्तधावनम्

निवृत्य शौचं पश्चात्तु दन्तधावनमाचरेत् । तत्पुनस्तु मृताहेषु गुरुणां यस्य कस्यचित् ॥
 भ्रात्रादेर्वा कनिष्ठस्य दर्शादिष्वखिलेष्वपि । अन्नश्राद्धेषु नितरां न कुर्याद्दन्तधावनम् ॥
 तेषु चेत्तु पुनस्सम्यक् श्राद्धकर्तुर्महात्मनः । अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्भविष्यति ॥
 तद्विन्नदिनमात्रेषु निखिलेषु व्रतेष्वपि । नैमित्तिकेषु पुण्येषु कृच्छ्रादिष्वखिलेष्वपि ॥
 वृणपणैः प्रकुर्वीत चामामेकादशीं विना । तयोरपि च कुर्वीत जम्बूप्लक्षरसालकैः ॥
 रसालवर्णरचितदन्तधावनकर्म यत् । पितृश्राद्धदिनं मुक्त्वा तन्न(दूः)व्यतिसन्ततम् ॥
 तत्तत्काष्ठविशेषाणां दन्तधावनकर्मणि । तत्तद्दिनविशेषेषु प्राशस्त्यं न तु सन्ततम् ॥
 तद्विशेषेणसंकीर्त्य कृत्वा तद्ग्रन्थविस्तरम् । प्रयोजनं न किमपि प्रकृते दन्तधावनम् ॥

वर्णनीयं च सौलभ्यात्तत्तथैव निरूपितम् । पुनश्च संप्रवक्ष्यामि संग्रहेणैव तत्पुनः ॥
व्रतश्राद्धान्यदिवसमात्रेषु क्षीरिणां सदा । प्रशस्तान्येव काष्ठानि दन्तधावनकर्मणि ॥
दन्तधावनतः पश्चात् कुर्यादाचमनद्वयम् । ततः स्नानाय च पुनः कुर्यादाचमनद्वयम् ॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चात्संकल्पमाचरेत् ।

देशं कालं च संकीर्त्य तिथिवारसमन्वितम् ॥

स्नानमन्त्राः

प्रणम्य तीर्थराजं च तस्मै दत्त्वाऽर्घ्यमुत्तमम् । आपोहिष्ठाहिरण्यादिद्रुपदादिकमेव च ।

हिरण्यशृङ्गाद्यखिलं इन्द्रन्तं पावमानकम् ।

आपो वेति महामन्त्रां सितासितऋगादिकम् ॥

जप्त्वा निखिलमन्त्रान्तान्पावनान्श्रुतिशीर्षगान् ॥

स्नानान्तरकर्तव्यम्

प्रोक्षयित्वावगाह्याथ निश्शब्दं चोरवज्जले ।

ऋषीन् देवान् पितृन् पश्चात्तर्पयित्वा च शास्त्रतः ॥

आचम्य च विधानेन मन्त्रेणैव ततः परम् । अनेन तर्पणं कुर्यात्तस्मिन् वर्णयाम्यहम् ॥

यन्मया दूषितं तोयं शारीरमलतोऽधिकम् । तस्य पापविशुद्धयर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम्

वस्त्रोदकदानमन्त्रः

अथ वस्त्रं पीडयित्वा भूमौ सिञ्चेच्छिखाजलम् ।

सर्वाङ्गसलिलं चापि भूमौ तिष्ठन्मुहूर्तकम् ॥

तत्तज्जलार्थिनां नित्यं स्नाययित्वा विधानतः ।

यत्तत्स्वीयांगसंसक्तं तज्जलं वै तदर्थिनाम् ॥

दत्त्वा निकामं तत्पश्चाच्छुद्धं वस्त्रं तु बिभृयात् ।

बहिर्विनिर्गतं स्नातुं सर्वे देवा महर्षयः ॥

द्विजं दृष्ट्वा तिसंतुष्टाः तत्पश्चात्सलिलार्थिनः ।

तिष्ठन्ति तत्तटे नित्यं तस्मात्तेभ्यो दिने दिने ॥

कालद्वयेऽतिभक्त्यैव स्नात्वाऽनन्तरमेव वै । सर्वाङ्गसलिलं वस्त्रजलमुक्तविधानतः ॥
 दद्यादनेन मन्त्रेण न चेदेनं शपन्ति ते । मदङ्गवस्त्रकेशाघसलिलं यत्तदर्थिनाम् ।
 अद्य दत्तं मया नूनमक्षय्यमुपतिष्ठतु । नित्यं कालद्वये स्नानं गृहस्थस्य विधीयते ॥
 यतेः कालत्रये तत्स्याद्वर्णिनां तु यथारुचि ॥

स्नानभेदाः

एकवारं द्विवारं वा यथेच्छं तस्य तस्मृतम् । एवं स्नातुमशक्तानां पानीये शीतले परम् ॥
 उष्णोदकेन विहितं तत्राशक्तस्य तत्परम् । कण्ठस्नानं कटिस्नानं पादस्नानं तथोक्षणात् ॥

मन्त्रस्नानमतिश्लाघ्यं न चेद्गोरजसापि तत् ।

सर्वेष्वेषु पुनः शक्तिविकलो यदि तत्परम् ॥

छायावगाहनं कुर्यात्तत्तु स्नानोत्तमोत्तमम् । तिष्ठन्मन्त्रजपं कुर्वन्तदाशक्तस्तु केवलम् ॥

तच्छायायां जलं सिञ्चेत्तच्छायास्नानमुच्यते ।

तस्मिन्यद्यप्यशक्तश्चेत् कापिलस्नानमाचरेत् ॥

दिव्यस्नानं विशेषेण स्नानानामुत्तमोत्तमम् । यदा वा लभ्यते तत्तु तदा नैमित्तिकं तु तत्

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वेषामपि सन्ततम् । दुर्लभं तद्विशेषेण लभ्यं सातपवर्षतः ॥

संकलपाचमने तस्य न स्यातां नैव तर्पणम् । धारानिपातपर्यन्तं स्नानमन्त्रजपो भवेत् ॥

मनः पर्याप्तिपर्यन्तं स्थितिमात्रं तदा परम् । स्नानमाहुर्महात्मानः यथारुचि तथाचरेत् ॥

कायानुगुणतः स्नानं विहितं सन्ततं द्विजैः ।

आदौ निखिलधर्माणां निदानं वर्षम् केवलम् ॥

सर्वं तदानुगुण्येन कर्मजालं समाचरेत् । शिरसः पादयोर्बाह्वोरङ्गानां यस्य कस्यचित् ॥

कायमात्रोपद्रवस्य यदा संभावना भवेत् ।

स्नानतस्त्विति तस्याज्यं मुख्यं त्यक्त्यैव केवलम् ॥

गौणस्नानं तदां कुर्यान्मन्त्ररूपादिकं शिवम् ।

आर्तवान्ते सूतकान्ते कर्तुं स्नानं विधानतः ॥

अशक्ये सति तद्भूयः कारयेद्विप्रवर्त्मना । तावता शुद्धिरेव स्यात्सद्यः स्नानं निवार्यते ॥

आरोग्यान्ते पुनः स्नानं कुर्यादेव विधानतः ।

सदा शुद्धजलस्नानात्परं शौचं प्रकीर्तितम् ॥

आपत्सु येनकेनापि गौणस्नानेन तद्भवेत् । आपत्सु सर्वदा गौणस्नानं मुख्यमिति स्मृतम् ॥

स्मृतिसंभावनास्नानाज्जायते चेत्तदा नरः । सर्वथा तन्न कुर्वीत किंतु भौत्यादिकं चरेत्

नित्यस्नानाशक्यकायः शीतवातादिकाक्षमः ।

यथा कायानुगुण्येन कुर्यादेवाखिलां क्रियाम् ॥

सर्वाङ्गमाद्र्बस्त्रेण शोधयेत्तेन केवलम् । अंशक्तश्चेत्स्नानफलं लभेतैव न संशयः ॥

शरीरमाद्यं धर्मस्य कारणं केवलं स्मृतम् । ग्रहणे वा पितृश्राद्धदिवसे स्नानवर्जितः ॥

अपि चण्डालसंस्पृष्टः ऋणरोगैकदुर्धरः । सर्वाशौचैकमलिनः पित्रोरेकादशे दिने ॥

दशमे कर्मकालेषु दिवसे द्वादशेऽपि वा । बहूक्ता तादृशेषु (च) विपत्सु स्नानतो यदि ॥

मृतिसंभावना चेत्तु येनकेन प्रकारतः । साक्षात्स्नानं परित्यज्य शक्तौ विप्रमुखेन वा ॥

पुत्रादिमुखतोवापि तत्कृत्वा तत्समाचरेत् । शक्यभावे सर्वथापि सलिलस्पृष्टिमात्रतः ॥

भावना चेद्बाधकस्य भस्मस्नानादिनैव हि । संसाधयेत्तेतकर्म छायास्नानादिनापि वा ॥

कर्मणो करणे तस्य तादृक् कालेऽस्य केवलम् ।

स्मृतिर्यद्य भयोः पश्चात् बाधकं सुमहद्भवेत् ॥

प्रेतत्वमुभयोश्चापि भवेत्किल तदा पुनः । येन केन प्रकारेण कृते तस्मिन् सपिण्डने ॥

तद्गौणस्नानतो वापि तत्पितुः किल तद्भवेत् । पितृत्वं देवरूपत्वं तावता कृतकृत्यता ॥

मृतस्य पूर्वं भवति तस्मात्कायानुगुण्यतः । स्नाने कृते तावतैव कर्मसाद्गुण्यमश्नुते ॥

आपत्कालेषु सर्वेषां गौणं तत्तादृशं परम् ।

स्नानं मुख्यं भवेन्नूनं मुख्यं स्नानं तु बाधितम् ॥

प्रभवेदेव नितरां निखिलं चैवमेव हि । मुख्यं भवेदमुख्यं हि चैवं तदपि केवलम् ॥

अमुख्यं मुख्यमेव स्यादिति शास्त्रं महर्षिभिः । उपदिष्टं सर्वलोकहिताय सुमहात्मभिः

द्विमुख्यदकस्नानम्

नित्यस्नानात्परं नित्यं द्विमुख्यदकतो भवेत् । यत्कर्तव्यं कर्मजातं तदेतदखिलं परम् ॥
 तत्पूर्वमृत्तिकाशौचकार्यादिषु पुनर्यदि । तज्जलं विनियुक्तं चेद् गंगादिषु हठात्परात् ॥
 तद्बुद्धिपूर्वतस्त्वर्धोदयेऽपि च महोदये । सूर्योपरागादिकालविशेषेषु गुरूनपि ॥
 न्यकृत्त्य निष्ठीवनतो गुदप्रक्षालनेन च । यत्पापं जायते क्रूरं तदवाप्नोति केवलम् ॥
 चैलद्वयं समुद्धृत्य शुद्धं हस्तद्वयेन वै । उत्तरीयं प्रथमतः प्रादक्षिण्येन मूर्धनि ॥

वस्त्रधारणमन्त्रः

धृत्वाऽथ प्राङ्मुखस्तिष्ठन् वस्त्रं यद्धारणाय तत् ।

विभृयात्कच्छया युक्तं आवहन्तीति मन्त्रतः ॥

न चेत्सोमस्य तनूरित्येतेन यजुषा सदा ।

वाससो धारणे मन्त्रौ चोदितौ अथवा पुनः ॥

तूष्णीकं वा तद्वरेद्धै पादप्रक्षालनं ततः । कृत्वाऽऽचम्य विधानेन प्राणायामादिपूर्वतः ॥
 परमेश्वरतुष्ट्यर्थं प्रातस्सन्ध्यामहं शिवाम् । उपासि(ष्यइ)ति संकल्प्य मन्त्रप्रोक्षणमाचरेत् ।
 सन्ध्याकर्माख्यतद्विध्ययोग्यतायै तदुच्यते । आपोहिष्ठेति नवभिः यजुर्भिः प्रणवेन वै
 संयुक्तैरतिशुद्धै स्तैः प्रोक्षणं तादृशं शिवम् । मुखे प्रकथितं सद्भिः सूर्यश्चेति ततः परम् ।
 महामन्त्रा वेदमध्यः चतुर्विंशतिवर्णकः । रक्षन्तामिति लोडन्तः कर्तारस्तत्ररक्षणे ।

सूर्यश्च मन्युस्तत्पश्चात् मन्यूनां पतयस्तथा ।

तत्पापेभ्यः सकाशान्मां एको मन्त्रोऽयमुच्यते ॥

यद्वात्रोरित्ययं मन्त्रः द्वितीय इति चोदितः । अवलुप्तवन्त इति द्वात्रिंशद्वर्णको मनुः ॥

यत्पापं कृतवानस्मि रात्र्यारात्र्यामिति स्मृतम् ।

ब्रह्मा चास्मीति संप्रोक्तं मनश्शब्दायश्च षट् ॥

प्रसिद्धा एव नितरां षष्ठः शब्देषु तेषु च । तृतीयंतइति द्वेयः साहचर्येण संस्कृतः ॥

छान्दसः स च विज्ञेयः सूक्ष्मदृष्ट्या ततः परम् ।

तदन्वयः प्रकर्तव्यः कर्तारान्निरहश्च हि ॥

परस्मैपदिलोडन्तः क्रियेयं समुदीरिता ।

यत्किञ्चेति तृतीयोऽयं मन्त्रस्वाहान्तकश्च सः ॥

अष्टाविंशतिवर्णोऽयं जुहोमीति क्रियापदम् । अहं कर्तेति सुस्पष्टः मां कर्मेति तथैव हि ॥

स्वाहाशब्देन होमः स्यात् अत्र पानं स्मृतं किल ।

यथा कथंचिद्द्रव्यस्य त्यागो होम इतीरितः ॥

सूर्यः प्रसिद्धः सर्वत्र सत्यशब्दस्तदर्थकः । असावादित्यवाक्येन श्रौतेनैव तथोदितः ॥

तस्यैवामृतयोनित्वं केवलं तद्विशेषणम् । प्रथमः प्रार्थनारूपः द्वितीयोऽपि तथाविधः ॥

तृतीयो होमरूपः स्यात्त्रिभिः संमन्त्रितंजलम् ।

सर्वपापविनाशाय प्राशयेदिति सा श्रुतिः ॥

भिन्नक्रियात्वान्मन्त्राणां मन्त्रभेद उदाहृतः । यत्र भिन्नक्रिया तत्र सर्वत्र श्रौतकर्मणि ॥

प्रदृश्यते मन्त्रभेदः पूर्वार्थस्यानापेक्षणात् । सापेक्षत्वे तु पूर्वार्थस्य चेदेको भवेत्तु सः ॥

स्योनन्त इति वाक्ये सः तस्मिन्नित्यत्र निश्चितः । एतन्मन्त्रत्रयजलप्राशनं तस्य कर्मणः

अत्यन्तयोग्यतासंपादनाथ सन्ततं स्मृतम् । पुनराचमनं कृत्वा दधिकावद्वयेन वै ॥

पूर्वोक्तैर्नवभिर्भूयास्त्वापोहिष्ठादिभिः शिवैः । हिरण्यवर्णात्रितया शिवेनेति च मन्त्रतः

चतुर्विंशतिसंख्याकैर्मार्जनं प्रतिवर्णके । गायत्रीयेप्रोक्तियोग्यतार्थं प्रोचुरितिस्म तत् ॥

द्रुपदानामगायत्री सर्वमन्त्रोत्तमोत्तमा । सर्वेन(ण)हंसमुत्सर्गहेतवे सा प्रतिष्ठिता ॥

तयाभिमन्त्रितं तोयं त्यक्तं चेत्तावताखिलम् ।

एनोवृन्दं सद्य एव त्यक्तं नष्टं गतं भवेत् ॥

अध्यदानम्

अथाचम्य विधानेन गायत्र्यैवाभिमन्त्रितम् ।

मन्देहानां विनाशाय त्रिवारं अतियत्नतः ॥

गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलमध्ये जलं क्षिपेत् । तद्गोपरिहाराय कुर्याद्भक्त्या प्रदक्षिणम् ॥

असावादित्यो ब्रह्मेति ब्रह्म ध्यायेत्समाहितः ।

तद्ब्रह्मध्यानमेव स्यात्संध्येति ब्रह्मवादिभिः ॥

नित्यं सम्यक् कृतं ध्यानं वारत्रयमतीव च ।

ब्राह्मण्यकारकं तस्यात् यत्तत्सन्ध्यात्रयं शुभम् ॥

दिने दिने ब्राह्मणेन असावादित्यमन्त्रतः ।

सोऽहंभावनया दिव्यं कृतं ध्यानं महर्षयः (र्षिभिः) ॥

सन्ध्येति प्रवदन्त्येते श्रुत्युक्ताः परमर्षयः । ब्रह्मध्यानात्परं कमे नान्यत्किमपि विद्यते ॥

तच्च ध्यानं मन्त्रवाक्यार्थतत्त्वज्ञं परं महत् । उत्तमोत्तममित्युक्तं तद्वाक्यार्थश्च केवलः ॥

न कार्यकारकः प्रोक्तः किंतु सोऽनुभवात्मकः । गुरुप्रसादैकलभ्यो गुरुरेवेश्वरः परः ॥

देवगुर्वोर्न भेदो हि गुरुर्देवाद्विशिष्यते । गुरुः सम्यग्बोधयति तमः परिहरेदपि ॥

देवोऽपि गुरुरूपेण समागत्य कृपामयः । तद्बोधकः प्रभवति तेनासौ कृतकृत्यताम् ॥

सम्प्राप्नोत्येव सततं तस्माद्वन्द्यः सदा गुरुः ।

सन्ध्यान्ते तु प्रतिदिनं गुरुभ्यो नम इत्यपि ॥

सन्ध्यायै चापि सावित्र्यै गायत्र्यै नम इत्यपि ।

देवताभ्यश्च सर्वाभ्यो वेदेभ्यो वा विधानतः ॥

देवेभ्यो वाऽथर्षिभ्यश्च मुनिभ्यो नम इत्यपि । नमस्कारं प्रकुर्वन् वै प्रवदन्वा विशेषतः

प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत कामोऽकार्षीन्मनुं जपेत् । तदा मन्थुरकार्षीदित्येतद्यत्तन्मनुं जपेत् ॥

दिङ्मनस्कारः

नमोनमश्च मन्त्रान्ते वक्तव्यं स्यात्त्रिकालके ।

कर्णौ पादौ तथा स्पृष्ट्वा कृताञ्जलिपुटस्ततः ॥

मन्त्रानशेषान् तत्तत्कुलप्राप्ताचारतश्च तान् । उपदिष्टांश्च संप्राप्तान् जपेदेव विधानतः ॥

अध्यान्ते वा तथा गायत्र्युपस्थानान्तरं तु वा ।

नमः प्राच्यादिमन्त्रांश्च प्रवरादीन्विधानतः ॥

होतृप्रवरतो नित्यं नमस्कारादिकर्मसु । सर्वेष्वेवाविशेषेण वदेद्वच्युर्मार्गतः ॥

प्रवरस्सः(स्) तत्र हि स्यादृशादिष्वेव नान्यतः ॥

प्रायश्चित्ताध्यः

अर्ध्यत्रयात्परं कालद्वयस्यास्य व्यतिक्रमे । प्रायश्चित्तक्रियायै स्यादध्यमेकं पुनः स्मृतम् ॥
केचिच्चतुष्टयं चेति प्राहुरार्या मनीषिणः । अर्ध्यक्रियासु संत्यक्ता गायत्री या द्विजोत्तमैः
तस्याः प्रत्युपसंहारहेतवे प्रतिलोमतः । जपेदेव विधानेन तत्प्रकारश्च वर्ण्यते ॥

गायत्रीवर्णसंख्यानिश्चयः

(त्)यादचोप्रनः यो यो धि हिमधी स्यवदे गौभ । यंणिरेर्वतुवित्सत ॥
प्रतिलोमविधौ यंणि वर्णभेदेन वर्णनम् । अनुलोमप्रकारे तु वर्णैक्येनैव चोच्चरेत् ॥
तस्मिन्नर्थे श्रुतिः सूत्रं प्रमाणं प्रतिपादितम् । सूत्रं तत्सवितुरिति पच्छोर्घर्चश इत्यपि ॥
प्रतीकग्रहणात्सूत्रकारेणात्र ततस्तथा । संहितायामाद्यकाण्डपञ्चमप्रश्नके यथा ।
पाठस्तथेत्येकवर्णस्यस्य वर्णस्य वाक्यतः । व्यमेकमेव वर्णस्तु संख्यायां तद्द्वयं भवेत्
णयोःस्वीकृत्य भेदं वै संख्या सा कथिता परा ।

चतुर्विंशतिका सर्वैः त्रीणि सूर्ये यथा तथा ॥

गायत्रीमातृवाक्येषु पथि भादिषु केवलम् । तुरीयपादेन तथा तन्मन्त्रोद्धारणं भवेत् ॥
तान्मन्त्रानप्यद्य सम्यग्विशदाय निरूप्यते ।

चथिमतन्मुखतः प्रोक्तं रोयोगो सा द्वितीयकम् ॥

रयोदेति तृतीयं स्यात्(त्)जनवत्तु तुरीयकम् । वक्ष्यप्रसे पञ्चमं स्यादेधीचोसेतिषष्ठकम्
सप्तमं तण्णिमद्वयं हि यादो तथाष्टमम् । एतेषामपि सर्वेषां मूलभूता श्रुतिः शिवा ॥
वर्णक्रमेककार्याय नान्यकार्यायते न हि । मन्त्रोद्धारः प्रभवति मन्त्रोद्दारेण तेन च ॥
प्रतिलोमानुलोभाभ्यां वाक्यानां न्यसनाखलु । सर्वसिद्धिः प्रभवति तदेतद्गुरुवाक्यतः
विज्ञेयो हि भवेन्नूनं मन्त्र (स्तु) पदेशतः । विप्रत्वसिद्धिर्भवति तत्परं तदुपासनात् ॥
तज्जपेन च तन्नित्यं विप्रत्वमतिदुर्लभम् । अतितीक्ष्णतरं स्याद्वि प्रतिनित्यं शनैः शनैः

तादृशस्यास्य मन्त्रस्य त्यागमात्रेण तत्क्षणात् । तद्विप्रत्वस्वरूपस्य जायते हानिरीदृशी
सा गायत्री वेदमाता महद्ब्राह्मण्यमूलिका ॥

ओंकारव्याहृतीनां प्रशंसा

सादौ व्याहृतिसंभूता व्याहृतिस्तारमूलका ।

गायत्रीमूलका वेदा वेदा लोकाश्रयाः शिवाः ॥

यथा बीजे वटस्तद्वत्तारे सर्वेऽपि तेऽखिलाः ।

भूर्भुवः स्वरादयः प्रोक्ताः संलीनाः सन्ति तेन सः ॥

तारः सर्वाधिकः प्रोक्तः सर्वकारणकारणम् । सर्ववेदक्रियामन्त्रदेवलोकैकविग्रहः ॥

सर्ववन्द्यश्च नितरां स एव ब्रह्मबोधकः । तदभेदस्वरूपश्च तद्युपासनहेतवे ॥

तदुक्तिपूर्वकत्वेन गायत्र्या व्यक्तिरुच्यते । वेदाद्युच्चारणे तस्मात्तन्मुखे सउदीर्यते ॥

तारतो व्याहृतिरिति यदुक्तं तन्निरूप्यते । संप्रहेणाद्य भवतां विशादाय क्रमेण वै ॥

तालवर्णत्रयाद्वर्गो बिन्दुनास्यात्तदर्णकः । स्वरोनादविशिष्टाभ्यां वैशिष्ट्ये तत्परो भवेत्

नादेवे तत्समोवर्णः वेदतारत्रयेण सुः ।

तत्रयेण च ताभ्यामुः स्वरोऽन्त्यो वाऽखिलैः पुनः ॥

भूशब्देनात्र भूलोकः ओंकारस्तत्स्वरूपकः । भुवर्लोकस्तथा द्वितीयः सुवर्लोको भुवस्सुवः

अलिंगकौ प्रकथितौ अव्ययाविति केचन । महर्लोकस्सकारान्तः महर्लोकैकवाचकः ॥

जनः सत्ये त्वकारान्ते पुंनपुंसकरूपके । लोकैकवाचके तेऽपि त एते निखिला अपि ॥

लोकैकवाचका द्वितीयाः तदुच्चारणपूर्वतः । ओंकारो विद्यते तेन त एते तत्स्वरूपिणः ॥

भूलोकोऽप्यो भुवश्चाप्योकार एव न चापरः । एवं सर्वत्र विज्ञेयस्तदर्थस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

एवं सप्त व्याहृतयस्त्रिव्याहृतयश्च चोदिताः । एतद्द्वयेन ते सप्त गायत्रीमातृकास्ततः ॥

जातास्तेभ्यश्च वाक्येभ्यो गायत्री सा समुद्धृता ।

अखिलैर्मिलितैरेतैः आपोज्योतिरसाश्च ते ॥

तदीया इति विज्ञेयाः ते ब्रह्मैवेति च स्मृताः ।

व्याहृतीनां तिसृणां च मध्ये सर्वेऽपि ते पुनः ॥

ओंकारमध्ये ते स्युश्चेन्महामन्त्रारूपकास्मृताः ॥

प्राणायामः

दशप्रणवगायत्री तथा कार्याखिलेष्वपि । कृत्येषु नित्यादिषु च प्राणायामो दिने दिने ॥
तत्कर्म चापि वक्ष्यामि सर्वानुष्ठानकारणम् । दशप्रणवगायत्रीत्रितयेन विधानतः ॥
कर्तव्योरेचकः पूर्वं तदनन्तरमेव वै । तदैव पूरकः कायः पुनश्च तदनन्तरम् ॥
कुम्भकश्च प्रकर्तव्यः तद्विधानेन केवलम् । एवमेतत्त्रयं चेत्तु कृतं भवति तत्परम् ॥
प्राणायामस्त्वेक एव एवं सर्वेषु कर्मसु । प्राणायामत्रयं कार्यमर्थचिन्तनपूर्वकम् ॥
तावन्मन्त्रेण नितरां बहुजन्मकृतं तु यत् । आविलौघं तत्क्षणेन आगस्त्वेनश्च केवलम् ॥
अंहोविलयमायाति चित्तशुद्धिर्भवत्यपि । प्राणायामसमो धर्मो प्राणायामसमो जपः ॥
प्राणायामसमो यज्ञः प्राणायामसमो दमः । प्राणायामसमं तीर्थं प्राणायामसमं तपः ॥
प्राणायामसमं दानं प्राणायामसमं श्रुतम् । प्राणायामसमो नान्यः पावको जगतीतले ॥
एकवारकृतः सम्यक् प्राणायामोऽखिलप्रदः । सर्वसिद्धिकरः पुंसां बलिपुष्टिविवर्धनः ॥
आधिव्याधिप्रशमको ह्यपमृत्युनिवारकः । ह्यनुष्ठितः प्रतिदिनं कालमृत्युनिवारकः ॥
दीर्घायुष्यैकजनकः शतायुष्याधिकप्रदः । तस्माद्विचक्षणो नित्यं प्राणायामपरो भवेत् ॥
स तु वायोर्निरोधैकभवितव्यः सदाकिल । तथा तदर्थानुसन्धानपूर्वकविधेयः (१) ॥

प्राणायामसमर्थस्य तन्मन्त्रमात्रपठनविधिः

तथा कर्तुं मशक्तश्चेत् ब्राह्मणोऽसौ निरन्तरम् ।
नासां प्रगृह्य तूष्णीकं मन्त्रमात्रमुदीरयेत् ॥
द्विषष्टिवर्णकं वर्णस्वरमात्रेण वा यदि । कृत्यकृत्यस्तावता वा त्रिवारोच्चारणात्परम् ॥
तस्मिन् मन्त्रे मन्त्रराजे प्रणवा दशं हि स्मृताः ।
चतुर्विंशतिसंख्याकाः गायत्रीयास्तु वर्णकाः ॥
शुद्धव्याहृतिवर्णाश्च पञ्च तेषां पुनस्तथा । उच्चारणेऽपि पञ्चैव व्याहृतीयास्ततो दश ॥
मापोज्यो दशकं चाथ महर्द्धयं जनः सत्यं तपश्चेत्यष्टकं स्मृतम् ॥

एतावन्मात्रवर्णानां केवलोच्चारणात्परम् ।

प्राणायामाख्यकं कर्म कृतमित्येव चोदितम् ॥

एतस्य प्रातिलोम्ये तु कदाचिद्धृष्टे यदि । सप्तकोटिमहामन्त्रजापकोऽसौ भवेद्ध्रुवम् ॥
 सर्वाण्यस्त्राणि वैश्वेव वर्णव्यत्यासभेदतः । उच्चारणविशेषेण भवेयुः किल तावता ॥
 प्राकृतस्यास्य कृत्यस्य समुदीरणतः परम् । प्रयोजनं नैव चास्ति तस्मात्तदुपरम्यते ॥
 यद्य क्तमपि तत्सर्वं विस्तरं वैदिकस्य तु । कर्ममात्रस्य सततं बाधकं प्रभवेद्ध्रुवम् ॥
 इयान्विशेषः सर्वत्र मन्त्रमात्रस्य केवलम् । (सर्वदैव) विशेषेण तदर्थस्यानुचिन्तनम् ॥
 महातत्कर्मसादगुण्यकारकं वीर्यवत्तरम् । श्रेयस्करं विशेषेण चित्तशुद्धिप्रदायकम् ॥
 एतावन्मात्रतत्कर्म यत्तत्सर्वं दिने दिने । नित्यत्वेनैकविहितं सम्यक् चलति तेन चेत् ॥

कवचमुद्रादीनामवैदिकसन्ध्यापरता

न्यासबीजाक्षरादीनामस्त्रादीनां पुनः पुनः । आवृत्तितोऽध्यानयन्त्रनामतन्त्रादिसंघकैः ॥
 एकांगमात्रे कृत्स्नानां अतिकालविलम्बतः । प्रधानं कर्म किमपि भवेन्न समनुष्ठितम् ॥
 मन्त्रस्य कवचादीनामभावे निष्प्रयोजनम् । इत्युक्तशास्त्रं तत्सर्वं अवैदिकपरं तु तत् ॥
 कथं तदिति चेद्भूयस्तच्चापि समुदीर्यते । शुद्धवैदिकमात्रस्य वेदप्रोक्तस्य कर्मणः ॥
 कर्तव्यत्वेन विहिते प्रकृते तादृशस्य चेत् । कवचन्यासबीजानां मुद्रापञ्जरवर्णने ॥
 मालामन्त्रमहामन्त्रशक्तिकीलार्गलार्पणे । एवं सर्वत्र चेद्भूयस्तत्तन्नामसहस्रतः ॥

सन्ध्यामात्रस्य सायं च नालं केवलमेव वै ।

कालो जपस्य चेद्भूयः प्रधानस्य कदा किमु ॥

अनन्तरं पुनरपि पाश्चात्यानां तु कर्मणाम् । अग्न्युद्धरणमुख्यानां उत्सर्गो(वा?)रको भवेत्
 कालो न लभ्यते तेषां तदेतदखिलं ततः । तान्त्रिके लौकिके वेदानधिकारिण्यवैदिके ॥
 उपपद्येत वा सम्यक् भवेद्वा न भवेत्तु वा । ऋषिष्यानादिकं चापि मन्त्रार्थज्ञानशून्यके
 तावन्मात्रं तु वा भूयादिति निश्चित्य केचन । ऋषिष्यच्छन्दोदेवतादिपरिज्ञानं महत्त्वतः ॥

प्रशंसां कृतवन्तस्ते तावन्मात्रेण केवलम् ॥

अर्थज्ञानवता कृतसन्ध्यावन्दनप्रशंसा

समन्त्रो वीर्यवान् किंस्यात्सुस्पष्टे तु तदर्थके । स्वत एवाखिलं तस्य समीचीनं भवत्यलम्
तत्तदर्थमात्रतो भूयः कर्मसिद्धिश्च जायते । य एतं चीयते यउच्चैनं वेदेति सा श्रुतिः ॥

कर्म कर्तुर्यादृशं स्यात्फलं तस्मात्ततोऽधिकम् ।

अर्थज्ञानवतां पुंसां तूष्णीकं स्वत एव हि ॥

फलं भवेदिति पुनः सा प्रोवाच श्रुतिः समा ।

अर्थज्ञानैकशून्यानां कर्मकृत्याफलं स्मृतम् ॥

तावन्मन्त्रं देवबुद्धिपूर्वं चेदुत्तमं भवेत् । वस्तुतो लोकरीतिस्तु सन्ध्यादिषु विशेषतः ॥

मन्त्रज्ञानैकविकलाः सर्वदेशेषु मानवाः । मन्त्रमात्रपराः केचिदत्यल्पाश्च विशेषतः ॥

तथा क्रियामात्रपराः कर्माभिनयनाः परे । वस्तुतो यत्रकुत्रापि मन्त्रमात्रोऽपि दुर्लभः ॥

अथापि लोके ब्राह्मण्यं गोपनीयं विशेषतः । न प्रकाश्यं बहिर्नित्यं वन्दनीयं सुरैरपि ॥

सन्ध्यामूलमिदं ब्राह्मण्यं मन्त्रमूला च सा परा ।

सन्ध्यामन्त्राश्च सर्वत्र सर्वेषामपि सन्ततम् ॥

समा एव परा दिव्याः महद्ब्राह्मण्यमूलकाः । सर्वेषामपि सन्तीति निश्चयेन दृढेन वै

प्रपालनीयं तत्तस्माद्विवादं तत्र केवलम् । न कुर्यादेव शास्त्रेण कृतोपनयनो यदि ॥

संप्राप्तपूर्णब्राह्मण्य इत्ये (षा वैदिकीश्रुतिः) ।

ब्राह्मणप्रशंसा

शास्त्रमात्रेण निश्चित्य गौरवेणार्चयेच्चतम् । शिखायज्ञोपवीतैकमात्रेणापि स्वरूपततः ॥

मुखवर्णेन तत्त्वेन वांचा तद्भाषणेन च । ब्राह्मबीजैकमाहात्म्याद्वैलक्षण्यमतीव च ॥

इतरेभ्यो भृशं तस्मिन्

एवमेकः पाठः

इतरेभ्यो (भृ) शंदैवात्प्रस्थुरेदेव पश्यतः । विप्रमन्त्र विप्रमात्रः कामतस्सततं महान् ॥

पक्षपातः प्रकर्तव्यो विशेषेण प्रवृत्ति वः । सर्वेषामपि वर्णानां अप्ययं ब्राह्मणब्रुवः ॥

गुरुरित्येव विज्ञेयः नावज्ञेयः कदाचन । तन्तुमात्रप्रधानोऽपि ब्राह्मणो नामधारकः ॥
 तथैव ब्रह्मबन्धुर्वा सर्वबन्धो न संशयः । ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नः सर्वकर्मैकसंश्रयः ॥
 कर्मभिर्वर्जितो वापि नाममात्रप्रधानकः ।
 सोऽयमब्राह्मणः प्रोक्तः पूजामर्हति सोऽप्ययम् ॥

ब्राह्मणब्रूवो निन्दा

भ्रष्टातिदुष्टसुस्पष्ट ब्राह्मकर्मद्विजाख्यकात् । संजातो जातकर्मादि मन्त्रराहित्यसंस्कृतः ॥
 नाममात्रोपनयनो मन्त्रोच्चारणमात्रके । तत्पितुस्तस्य वैदग्ध्यस्पष्टराहित्यकर्मतः ॥
 विप्राभिधानो विप्रागारारात्कृतनिवासतः ।
 अत्यन्ताब्राह्मणत्वेन प्रसिद्धोऽपि पुनस्तराम् ॥
 तद्ब्राह्मण्यं गोपनीयं तत्कर्म चापि वच्मि वः । तत्रत्यैरखिलैस्तस्य मृतिश्राद्धादिकर्मसु ॥
 ब्राह्मणैर्मन्त्रकार्येषु पालनीयः प्रयत्नतः ।
 न त्याज्यो न बहिष्कार्यो बोधनीयस्तदा तदा ॥
 जातित्वेन स्थितो यस्मात् शि (च्छि) खातन्तुसमन्वितः ।
 यदा तदा स्नानसन्ध्याभासमात्रप्रधानकः ॥
 सन्ध्यास्नानात्परं भुक्तिर्विना ताभ्यां न भुज्यते ।
 इज्याचारैककृत्यश्चेत्सर्वैस्तैः कामचारतः ॥
 सद्भिः संरक्षणीयः स्याद् ब्राह्मण्यं तादृशं महत् । यद्ययं भुक्तिकालेषु सर्वसाधारणेन वै ॥
 अन्नप्रदानकार्येषु महेषु प्रयभूरिषु । समागतश्चेदन्नाय तदा स किल कुत्रचित् ॥
 कोणभागे पुण्यपङ्क्तिदूरतस्तस्य कल्पयेत् ।
 संस्थानं तादृशैरेव यैः कैश्चिद्दूरपङ्क्तिभिः ॥
 दुराचारैर्दुर्विनीतैश्चर्वणं कारयेदपि । उत्सवेषु विवाहेषु मौञ्ज्यादिषु सतां गृहे ॥
 श्रीमतां भगिनां पुंसां शुचीनां ब्रह्मवादिनाम् ।
 अत्यन्नदानकालेषु जातिमात्रोपजीविनाम् ॥

अन्नदानं प्रशंसन्ति नार्हन्त्येवासहिष्णुताम् । दूरीकृतं तिरस्कारं ह्यत्कारं दुष्टभाषणम् ॥
नार्हन्तिदुर्जनाश्चापि दुराचारैश्च निन्दिताः । अन्नमात्रप्रदानेन महतां दक्षिणा च या ॥
दीयते तद्दशांशेन द्वादशांशेन वा पुनः । दत्त्वोद्वास्यादरिद्रा या विधवाश्चविशेषतः ॥

अपुत्रिण्यः सपुत्रिण्यः यथोत्साहेन वाक्यतः ।

संभावयित्वा यत्किञ्चिद्वैव स्वानुरूपतः ॥

कालदेशानुगुण्येन दक्षिणा भोजनादिना । येनकेनाप्युपायेन दोषयित्वैव चोद्वेसेत् ॥

नयष्कं (कं ?) चनतत्पीडाप्रलापैरतिपीडनैः ।

अत्यन्तभाग्यवान् तेषु न भग्नाशान् प्रकल्पयेत् ॥

यः कश्चनापि नितरां वैश्वदेवावसानके । भुक्तिकाले विशेषेण व्रतचर्यासु सर्वदा ॥

जातकादिषु पुत्राणां मौञ्ज्यादिषु तथाप्यति ।

विवाहे पुत्रिकायाश्च दक्षिणा भुक्तिकर्मणि ॥

समागतानबन्धून् वा पण्डितानखिलान् खलान् ॥

उत्सवादिष्वनाहूतागतानामनिराकरणम्

अनाहूयैव चापल्यादागतानतिदौष्ट्यतः । सुप्रसिद्धदुराचारान् दुमुखानतितुच्छकान् ॥
दुश्चरित्रान्विशेषेण पङ्गूनन्धान् दुराकृतीन् । असतोऽतीवसर्वत्र सदा संप्रहकानपि ॥
कृपणान् दुर्गतान्नित्यकलहैकपरानपि । न पीडयेन्न चाक्रोशेन्नावमन्येन्न भीषयेत् ॥
न वदेच्चापि दुर्भाषा वैमुख्यं प्रापयेन्न तु । भग्नान्नैव प्रकुर्वीत कुर्यात्प्राप्तमनोरथान् ॥
सुमुखानतियत्नेन दरिद्रोऽपि यतन्मति । कल्याण्या भाषया सम्यगभिपूज्यैव कर्मसु ॥
तादृशेषु विशिष्टैश्च पूजयेद्वासयेदपि । एवं सत्यत्र सुमहान् भाग्यवान्मतिमानति ॥

श्रीमान् कृती पुण्यकर्मा कृत्याकृत्यविशेषवित् ।

दयार्द्रहृदयो योगी कल्याणाभिजनो महान् ॥

धनधान्यग्रामसीममहद्राज्यमहाधनी ।

अपि सन् किं पुनः स्वस्य संप्राप्ते पुत्रपौत्रयोः ॥

विवाहे जन्ममौञ्ज्यादिमहाकर्मसु भूरिषु । ज्योतिष्टोमादिकृत्येषु महादानादि कर्मसु ॥

यमयज्ञे शुभागारे पुण्ये शूलगवेऽपि वा । अष्टकायां सर्पवल्यां अपूर्वाधानकर्मणि ॥
 प्रथमोपाकृतौ पुत्रपौत्रयोर्वा तथाविधे । अपूर्वपुत्रिकाताधेष्ट(कुसु)त्सुमहोद्ध(त्स)वकर्मणि
 कथं समागतान् पूर्वप्रोक्तान् लोकान् महाशयाः ।
 समागतान्महादुःखाद् दारिद्र्येणैव दुर्गतान् ॥
 प्रकुर्याद्विमुखान् शक्तः स्वयमत्यन्तभाग्यवान् ।
 यदिकुर्यादुत्सवेषु दरिद्रानागतान् गृही ॥
 विमुखास्तस्य साश्र(श्री)स्तु सद्यो नष्टा भवेद् ध्रुवम् ।
 समागता ये सुमुखाः प्राप्तकामा मुदायुताः ॥
 अभ्यागताश्चातिथयः यस्य गेहान्महात्मनः ।
 अहो प्रतिनिवर्तन्ते तस्य श्रीः सातिवर्धते ॥
 प्रतिनित्यं विशेषेण चन्द्रमा इव शुक्रके ।
 तदेव जन्म तस्यास्य भव्यं भाग्यं च तादृशम् ॥
 शाखाचक्रमणेनालं प्रशस्तं प्रकृतं हि तत् ॥

ब्राह्मण्यप्रशंसा

बहूक्त्वा किं तादृशं हि ब्राह्मण्यं वेदसंमितम् । देववन्द्यमतिश्लाघ्यं पावनं पावकं महत् ॥
 संपन्नदानं कल्याणकारकं पापवारकम् । आपद्बृन्दादिशमनं चिन्तितार्थप्रदायकम् ॥
 तस्य दशनमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते । आधिव्याधिप्रशमनं कालमृत्युहरं परम् ॥
 आश्रेयश्रीकारकं भव्यमूलकं चिन्तितार्थदम् । सर्वतीर्थैकरूपं तत्सर्वयज्ञफलप्रदम् ॥
 तद्वाक्यजलमात्रेण सर्वपापानि देहिनः । प्रनष्टानि भवन्त्येव हीनवर्णोऽपि जायते ॥
 महावर्णः सद्य एव यद्यनुग्राहका द्विजाः । तेऽनुग्रहैककर्तारः नश्शाखिनोऽपि वा ॥
 सप्त पञ्च त्रयो वापि यदि स्युः श्रोत्रियाः शिवाः ।
 वेदाध्ययनहीनाश्चेच्छाखाध्यायिन एव वा ॥
 पूर्वोक्तसंख्याक्ताः स्युश्चेदपात्रोऽप्यत्र पात्रताम् ।
 इयादेवाविलम्बेन नात्र कार्या विचारणा ॥

यत्र त्रयो वा लब्धाः स्युः श्रोत्रियास्तत्र केवलम् ।
 परिषत्त्वं महत्प्राप्तं केवलं भवति ध्रुवम् ॥
 ब्रह्मविष्णुमहेशानां इन्द्रादीनां दिवौकसाम् ।
 त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्याकानां सुमहतामपि ॥
 सान्निध्यमपि तत्रैव भवेदेव न संशयः ।
 गङ्गादीनां च सर्वासां नदीनां पुण्यपाथसाम् ॥
 सप्तानां शतसंख्यानां सर्वपापविरोधिनाम् ।
 षट्कोटिकोटितीर्थानां वेदानां चापि कृत्स्नशः ॥
 समुद्राणां च सर्वेषां श्रोत्रिया यत्र वा त्रयः ।
 सान्निध्यं तत्र भवति परिषत्त्वं च तत्र हि ॥

यत्राश्रोत्रियसाहस्रं दशसाहस्रमेव वा । परिषत्त्वं न तत्रास्ति तदानुग्रहकत्वकम् ॥
 न प्राप्नोत्येव नितरां श्रोत्रियत्वं च केवलम् ।
 शाखाध्ययनतः स्याद्धि तादृग्विप्रो महानति ॥
 तदर्थज्ञो यदि पुनः साक्षादीश्वर एव नः ॥

शाखाध्ययनहीनानां निन्दा

विना तु शाखाध्ययनं ये सभायां महाजडाः । परिषत्त्वं प्रकुर्वन्ति न तत्त्वं पतिपद्यते ॥
 अनुग्रहो यत्कृतस्तैर्न स तत्फलदायकः । तूष्णीको ह्यकृतप्रायः व्यर्थ एव भवेच्च सः ॥
 मन्त्रौकपूतं तत्कर्म मन्त्रा वेदैकवर्तिनः । तत्तत्क्रियासाधनाय ते मन्त्राः स्युरपेक्षिताः ॥
 तस्मात्स्वाधीनमन्त्रा ये ब्राह्मणाः श्रोत्रिया इति ।
 प्रसिद्धाः सर्वकृत्येषु प्रशस्ताः स्युरनुग्रहे ॥

वेदाध्ययनसंस्कारजन्यसंस्कृतभाषया । यथोच्यते तथैव स्यात्तेन ते स्युरनुग्रहे ॥
 निरपेक्षककर्तारः कर्तुं चाकर्तुमेव च । अन्यथाकर्तुमपि च शक्ताः स्युः सन्ततं हि ते ॥
 यथा चित्रप्रलिखिताः मर्त्यदेवसुरद्विषः । गजगोवाजिभुजगमृगहयृक्षवानराः ॥

स्वकार्यकरणाशक्ताः तथा वेदविवर्जिताः । अनुग्रहकराः प्रोक्ताः महद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥

यदि मौढ्येन ते तूष्णीं श्रोत्रियान्तर्गताः खलाः ।
परिषत्त्वपि तिष्ठन्तस्तथास्त्विति वदन्ति चेत् ॥
जिह्वायां तु तदीयायां प्रोतयित्वा खरं तु तत् ।
शूलं दूताः कालसूत्रे याम्यास्तं ताडयन्त्यति ॥
तत्कर्म च तथैव स्याद्यथाप्रोक्तं पुरा किल ।
तस्मात्तु कर्मसाद्गुण्यहेतवे वैदिकान् शुचीन् ॥
ज्ञात्वा परिषदः कुर्यादन्यथा नाशमेति तत् ।
तत्कर्मापि प्रनष्टं स्यात् परिषत्त्वस्य तस्य च ॥

संभ्यलक्षणम्

विधायका महान्तःस्युर्वेदशास्त्रार्थवेदिनः । धर्माधर्मैकनिपुणाः कृत्याकृत्यविशेषगाः ॥
पुण्यपापातिभीताश्च दयादाक्षिण्यतत्पराः । पौर्वापर्यविशेषज्ञा देशकालानुगुण्यतः ॥
प्रवाचनैकनिपुणाः तथा प्रवचनेऽपि च । त्रय एव हि ते प्रोक्ताः ह्रीश्रीभीपुत्रसंयुताः ॥

निधयः सर्वविद्यानां सुमुखाः सुलभाः परम् ।

एतेभ्योऽप्यधिको ज्ञेयः सौजन्यश्रीनिकेतनः ॥

अत्यन्तदाक्षिण्यपरः कल्पनीयोऽनुवादकः ॥

अनुवादकलक्षणम्-अनुवादककृत्यम्

अनुवादककृत्यं तदत्यन्ताशक्यमुच्यते । आदौ ज्ञेया गृहपतेर्वयः कर्म धृतिर्मतिः ॥
कृतं च क्रियमाणं च चरित्रं चेष्टितं च तत् । बलाबले शक्तिभाग्यसामर्थ्यनियमादयः ॥
अनुवादकसंज्ञेन सम्यगेतेखिला अपि । विज्ञेयाः स्युः पुनरपि तेषां परिषदामपि ॥

मानसं तच्चरित्रं च तद्वाक्यानि पृथक् पृथक् ।

तथाविधायकानां च कार्याकार्यादिकं पुनः ॥

उक्तिप्रत्युक्तिवाक्यानि सर्वेषामपिकृत्तनशः । अनुवादपुरोवादपश्चाद्वादिदिकानपि ॥

कृत्स्नान् शास्त्रमहामार्गावितथेनैवतान् स्वयम् । अनूद्य वेदमार्गेण त्रिवारं सम्यगेव वै
तथोर्ध्वबाहुर्निष्कर्षं तस्योद्धरणहेतवे । अन्यूनानतिरिक्तेन प्रकुर्यादिति सा श्रुतिः ॥
तत्रादौ शास्त्रवृष्ट्यानि यजमानस्य केवलम् । सभाभ्यनुज्ञा प्रथमोऽभ्यनुज्ञा स्वकृतिस्ततः
परिषदक्षिणापश्चादशस्नानानि तानि वै । मृदादीन्यदि शुद्धयै कहेतूनि प्रवराण्यति ॥
पावनानि प्रशस्तानि महर्षिगदितान्यपि । संकल्पश्चापि वरणं त्रयाणां च पृथक् पृथक् ॥
सर्वेषामपि भूयश्च तत्तत्कृतवानुरुपतः । अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा नान्दीं पुण्याहपूर्वतः ॥
कृत्वैव च विधानेन प्राच्याङ्गं च ततश्चरेत् । तथैव वैष्णवश्चाद्धं शालाहोमश्च पूर्वकः ॥
विज्ञापनाप्रकारश्च वचनं वाचनं तथा । अनुवादकवाक्यैकप्राधान्येनैव केवलम् ॥
विधायकानां वाक्यानि पर्यालोचनयैव हि । शास्त्राणामपि सर्वेषां पश्चात्परिषदामपि
परस्परैकवाक्यानि सर्वेषामेकवाक्यतः । निश्चयेन ततः पश्चादेकैकत्वेन तत्परम् ॥
यजमानमुखं दृष्ट्वा त्वं वदेति ततः पुनः । वाक्यं परिषदां श्रीमद्वचनं तेन तत्परम् ॥
अनुवादकवाक्यं च तत्तच्छ्रुत्यनुसारतः । कृच्छ्रानुष्ठानतस्तस्य परा सा कृतकृत्यता ॥

जाता तवेति य (त्) प्रोक्तिः शालाहोमस्ततः पुनः ।

उत्तराख्यश्च परमो गोदानं दक्षिणादिना ॥

उदीच्यनामकं दिव्यं तच्छ्राद्धं च ततः परम् । भोजनं ब्राह्मणानां च भूरिदानं विशेषतः
दशदानानि पुण्यानि सर्वपापेभ्य एव च । मुक्त्यैभूयासमित्येव यजमानस्य चिन्तनम् ॥
सर्वं तदेतत्तरणोपायाः मर्त्यस्य देहिनः । प्राणिमात्रस्योपदिष्टाः सर्वे विप्रमुखेन वै ॥
सर्वपापोत्तारणस्य ब्राह्मणा एव वेदिनः । उपायाः कथिता वेदशास्त्रकल्पादिभिर्दृढम् ॥
विना विप्रमुखं कर्म न किञ्चिदपि विद्यते । कर्ममात्रे ब्राह्मणो वै साक्षीसर्वस्य वैधतः ॥
ब्राह्मण (स्य कृतं) पूर्वं ब्रह्मणा वेधसा तथा । ब्रह्मणा रहितं कर्म तस्मात्कृतुं न शक्यते ॥
ब्राह्मणानां तद्धनस्य निक्षिप्तस्य स्वशक्तिः । विभागः शास्त्ररचितः इत्येव श्रुतिसूत्रतः ॥

पादः परिषदं गच्छेत्पादो गच्छेद्विधायकान् ।

पादोऽनुवादकं गच्छेत्पादं कृच्छ्रेषु विन्यसेत् ॥

एवं यो ब्रह्ममुखतः प्रायश्चित्तं करोति वै । तस्यैवाशु तस्मात् कृतकृत्यो भवेदपि ॥

सर्वेभ्यश्चापि पापेभ्यः सकाशाद् ब्राह्मणो महान् । तारयेदवशान्नूनं वेदविच्छास्त्रपारगः ।

ब्राह्मणस्योत्तमत्वे मनुनारदाद्युक्तश्लोकोदाहरणम्

अत्रोदं मनुना गीतं वचनं श्रुतिरूपकम् ।

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ॥

कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः । नारदेनात्र कथितः श्लोककश्च न तारकः ॥

एक एवात्र निपुणः पाप्युद्धरणकर्मणि । उपायेनैव लघना वाक्यमात्रेण बाहवः ॥

पुरा प्रोवाच भगवान् नन्दिश्लोकं पुरोदितम् । शंभुना देवदेवेन गौर्यै स्कन्दाय तत्त्वतः ॥

अस्मिन्नर्थे सर्वदेवपुरतः कारणेन वै । तं वो निरूपयिष्यामि तज्ज्ञप्त्यै शृणुताधुना ।

दैवतानि न तीर्थानि क्षेत्रकृच्छ्रतपांसि च । तुलितानि ब्राह्मणेन भवेयुर्वेदिना सता ॥

यथाकथंचित्पूज्यः स्यात्सर्वकर्मसु सन्ततम् ।

अब्राह्मणो ब्राह्मणोऽपि त्वपात्रं पात्रमेव वै ॥

नामधारकमात्रो वा तथैव ब्राह्मणब्रुवः ॥

श्रोत्रियाश्रोत्रियादितारतम्यम्

श्रोत्रियो वेदतत्त्वज्ञो वेदपारग इत्यपि । ब्राह्मणानां तारतम्ये कथितं ब्रह्मवित्तमैः ॥

ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नो मंत्रसंस्कारवर्जितः । जातिमात्रोपजीवी च ह्यसावब्राह्मणः स्मृतः ॥

विवाहितायां ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जनितो यदि ।

मन्त्राभासक्रियामात्रो ब्राह्मणः स्यात् क्रियाक्षमः ॥

सज्जन्मतः क्रियालोपादपात्रमिति कथ्यते । सज्जन्मतस्सक्रियया पात्रमित्युच्यते बुधैः ॥

सज्जन्मतोऽसक्रियया नित्यकर्मादिशून्यतः ।

जातिमात्रोपजीवी यः स प्रोक्तो ब्राह्मणब्रुवः ॥

सज्जन्मनासंस्कृतः सर्वैः नित्यकर्मादिकृत्स्वयम् ।

शाखामात्राध्यायी च श्रोत्रियः कथितोऽखिलैः ॥

वेदशास्त्रादितत्त्वज्ञः सर्वसंस्कारसंस्कृतः । ब्रह्मविद्ब्राह्मणो योगी वेदपारम उच्यते ॥

प्रोक्तेषु सर्वेष्वेतेषु श्रोत्रियो वेदतत्त्ववित् । उत्तमात्युत्तमौ ज्ञेयौ पावकौ पङ्क्तिपावनौ ॥
परदारपरान्नाभ्यां प्रतिग्रहविशेषतः । दुष्क्रियाभिर्ब्राह्मणत्वं हैन्यमेव प्रपद्यते ॥

परान्नेन मुखं दग्धं हस्तौ दग्धौ प्रतिग्रहात् ।

परस्त्रीचिन्तया चित्तं ब्राह्मणस्य निरन्तरम् ॥

एतद्दुष्टस्य चेद्देवं भविष्यति हि केवलम् । महात्मनो वैपरीत्यं ब्राह्मणस्य विजानतः ॥
वेदप्रवचनादास्यं कार्त्तार्थ्यं प्रतिपद्यते । नित्यकर्मवशौ हस्तौ मानसं ब्रह्मचिन्तनात् ॥

सर्ववेदधरो विप्रो यदि शूद्रान्नतत्परः ॥

शूद्रान्नप्रतिग्रहीतृनिन्दा

सद्यः पातित्यमाप्नोति तर्दन्नं तत्परित्यजेत् ।

आहिताग्निः सदापात्रं सदापात्रं तु वेदवित् ॥

पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे । आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमेव तत् ॥
शूद्रावामं कदाचिद्वा न गृहीयात् ततस्तराम् । विशिष्य तत्पितृश्राद्धे तेन दत्तं सुचेतसा ॥
तदुद्देशेन मृडात्मा प्रतिगृह्य दुराशया । मल्लिनीकरणात्पापान्मालिन्यं प्रतिपद्य वै ॥

विप्रत्वस्य स्वनिष्ठस्य स्वीयजातिच्युतो भवेत् ॥

तत्प्रायश्चित्तम्

तद्दोषपरिहाराय ब्रह्मकूर्चविधानतः । तपःकृच्छ्रं पुरा कृत्वा पक्षयावकभोजनः ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रगायत्रीजपतस्ततः । द्वादशब्राह्मणानां च भोजनेन ततः पुनः ॥

गां दद्यादिति सर्वाणि गर्जन्ति जगतीतले ।

विविधान्यपि शास्त्राणि सौ(स)कृदेव कृतस्य वै ॥

एवमाद्वादशदुक्तं तदूर्ध्वं परितो ध्रुवम् । शूद्रान्नजीवी न भवेत्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥
शूद्रान्नशूद्रसंपर्कान्मासमात्रेण बाढबम् । शूद्रीकृत्यावशात्पञ्चाण्डालत्वं करिष्यतः ॥

एकस्य शूद्रमात्रस्य पौरोहित्यं द्विजाधमः ॥

रजकादिभ्यः प्रतिग्रहफलम्

एकस्य शूद्रमात्रस्य पौरोहित्यं द्विजाधमः । संपाद्य पक्षमात्रेण रजकत्वं प्रपद्यते ॥
 रजकस्य तथा तत्त्वं संप्राप्यैव दिनत्रयम् । दाश(स)त्वं समवाप्नोति तस्य तन्मासतो यदि
 संप्राप्तश्चेद्द्विजो मूढः सूनत्वं प्रतिपद्यते । तस्य मासेन तत्कृत्यात्पौरोहित्या(रव्यकर्मणा)
 तिलघातकजातित्वं लभते ब्राह्मणाधमः । तिलघातकपौरोहित्येन मासे न हाद्विजः ॥

सुराकृत्वमवाप्नोति मासतानूनमत्र वः ॥

रजकदाशतिलधातुकादिभ्यः प्रतिग्रहप्रायश्चित्तम्

प्रवन्मि चैषां सौलभ्यान्निष्कृतिं शास्त्रचोदिताम् ।

चापाग्रयानं कृत्वादौ तत्सत्रं स्नानं ततः ॥

कृत्वा यथावत्तत्रैव पुनः स मादितः (१) । लब्ध्वा विप्रमुखात्पश्चाद्दत्त्वागोत्रयमेव च ॥
 यथाशक्ति ब्राह्मणानां भोजनं च सपर्यया । कृत्वा तदंहसामुक्तः पुनर्ब्राह्मण्यमश्नुते ॥

मिल्लनीचकिरातपुलिन्दादिपौरोहित्याश्रयणप्रायश्चित्तम्

मिल्लानां चकिरातानां पुलिन्दानां प्रहारिणाम् ।

यवनानां च हूणानां पर्पराणां दुरात्मनाम् ॥

पौरोहित्याश्रयाभ्यां च गृहचर्यादिबोधनात् ।

नक्षत्रतिथिवाराणामुत्तया तत्पापशान्तये ॥

मन्त्रतन्त्रजपादीनां करणे न च केवलम् ।

सद्यो वैकल्यमासाद्य न्यूनतां जातिहैन्यताम् ॥

सद्भ्यो महद्भ्यो ज्ञानिभ्यो न्यङ्गनैच्येतिनिन्दिते ।

पराभूतिं च तुच्छत्वं सर्वाभाषणतामपि । सर्वेषामस्मृतित्वं च संप्राप्यैव च तत्पुनः ॥
 चण्डालतुलितः पश्चात्तेषु चापि निकृष्टतः । तुच्छजातिर्भवेदेव नात्र कार्या विचारणां ॥

तस्यैतस्यापि वक्ष्यामि दुष्कृत्यस्यातिपावनीम् ।

निष्कृतिं शास्त्रविहितां परिषत्पूर्वमेव वै ॥

सन्ततं यावकाहारो मार्गमध्येतितापतः ।

धनुष्कोटौ विधानेन स्नास्यान्मासत्रयं शुचिः ॥

कालत्रयेऽपि नितरामघमर्षणमन्त्रकैः । जले निमग्नो नियतो द्रुपदामपि पावनीम् ॥

दशप्रणवगायत्रीं प्राणायामविधानतः । वायोनिरोधनं कुर्वन् स्वकृत्यं चापि संस्मरन् ॥

कालं नयेद्यथाशास्त्रं पुनः संस्कारकर्मणा । गोपश्चकप्रदानेन शक्त्या ब्राह्मणभोजनात् ॥

शुद्धो भवेदन्यथाऽसौ पूर्वां गतिमवाप्नुयात् ॥

स्वर्णकाररथकारादिपौरोहित्यनिषेधः

स्वर्णकारस्य तुच्छस्य रथकारस्यास्य पापिनः ।

सूतस्यायस्करस्यापि पौरोहित्याच्छ्रुताधिकम् ॥

दिवाकीर्त्यस्याघमूर्तेः पौरोहित्यं तु दुष्करम् । तन्मन्दिरप्रवेशेन तत्प्रतिग्रहकाम्यया ॥

कीर्तिर्यशोलक्ष्मीः श्रीः शोभा सौम्यता परा ।

भगो दाक्ष्यः सहश्चैव बलमोजो धृतिर्दमः ॥

तत्क्षणाद्विलयं यान्ति वैरूप्यमपि जायते ।

रात्रौ तत्स्मरणान्नूनं अश्रूयलक्ष्म्याग्रहेऽस्य सः ॥

स्थातां प्रविष्टौ सुतरां तस्मात्तत्कीर्तनं दिवा । कर्तव्यं हि प्रयत्नेन तत्कृत्यमपि केवलम् ॥

क्षुरकर्म च नोच्चार्यं स्मरणीयं यतो नतु । तादृशस्यातिपापस्य पौरोहित्यं द्विजाधमः ॥

करोति यो वा मौढ्येन तस्यैते नरकास्थिताः ।

ये लोके कालसूत्रादिनामका यमलोकके ॥

नालं ते निखिलेनैव संग्रहेण वदामि वः ।

बहूक्त्वा (क्त्या) किं महाभागा ब्राह्मो वाच्योऽपि नैव सः ॥

किंतु नित्यं स पापी तु प्रेक्षणीयोऽपि नैव तु ।

यदि दृष्टः स मूढात्मा कदाचिदवशादपि ॥

सद्यः सूर्यविलोकः स्यात् पुण्डरीकाक्षमेव च ।

स्मृत्वा च द्रुपदां दुर्गां शचीं लक्ष्मीमुमां तथा ॥

दशप्रणवगायत्रीं जपेदपि सकृच्छिवाम् ।

नक्षत्रजीवी लोकेऽस्मिन् निन्द्यो भवति केवलम् ॥

न भवेदेव नितरां देशग्रामपुरोहितः । सर्वजातियुतग्रामपौरोहित्येन केवलम् ॥

संक्रोड्यं भवेन्नूनं तस्मात्संपरित्यजेत् । षोडशग्रामचण्डालपौरोहित्येन तत्क्षणम् ॥

तत्तज्जातीयपापानामालयोऽयं न संशयः ॥

वेश्याराजादिपौरोहित्यनिषेधः

सर्वप्राणेन नितरां वेश्यावीथीपुरोहितः । न भवेदेव कामेन तस्य चित्तं तु दुस्तरम् ॥

अत्यन्तनिन्दितं राजपौरोहित्यं महात्मभिः । तदेकदिनमात्रेण धनाधोगतिदा सदा ॥

पौरोहित्येन नितरां करदीपिकजीविनाम् ।

ज्ञातजन्मस्वयं नूनं ज्वालाभास्वत्पिशाचताम् ॥

संप्राप्य पश्चाद्दुःखेन खद्योतत्वं प्रपद्यते । गुरुवारेष्वसंभाष्यो गोपालानां पुरोहितः ॥

भौमवारेष्वसंभाष्यो मत्स्यघातिपुरोहितः । त्रियामासु न संभाष्यो ग्रामपालपुरोहितः ॥

भानुवारेष्वसंभाष्यो चित्रकारपुरोहितः । स्थिरवारेष्वसंभाष्यः शस्त्रधावपुरोहितः ॥

इन्दुवारात्प्रेक्षणीयः शक्रराणां पुरोहितः । सौम्यवारेष्वसंभाष्यो यवनानां पुरोहितः ॥

सर्वेषां रथकाराणामम्बष्ठानां च शिल्पिनाम् । सौचिकानां तुन्नवायरंजकानां पुरोहितः ॥

बुधवारे न प्रशस्ता भाषणादिषु कर्मसु । पौर्णमासीष्वमास्वेवं चर्मकारपुरोहितः ॥

संज्ञापादिष्वयोग्योऽयं किं वा संभावनादिषु । सूततक्षकमाहिष्यमण्डहारकजीविनः ॥

पौरोहित्येन ये ते वै संक्रान्तिष्वेव केवलम् । न संभाष्यो विशेषेण न प्रष्टव्याश्च रात्रिषु

शुक्रवारेषु सर्वेषु करदीपोपजीविनः । न दर्शनीया यत्नेन परं सायास्तु तेषु वै ॥

प्रतिष्ठति श्रीयत्नेन तस्मात्ते तदनन्तरम् । सदा भव्येषु पुण्येषु कल्याणेषु विशेषतः ॥

उ (त्तमे ?) षु च सर्वेषु प्रेक्षणीया दिवा न तु ।

अहस्स्वलक्ष्मीस्तेषु स्याल्लक्ष्मीस्सायं स्थिरा भृशम् ॥

तस्मात्तु दर्शनं तेषां सायंकाले विशिष्यते । सर्वपैतृकवारेषु शिबिकावाहनक्षमाः ॥

न द्रष्टव्या न संभाष्याः कल्याणेषु विशेषतः । दर्शनं प्रवरं तेषां बन्धूनामागमेषु च ॥
मौज्जीविवाहसीमन्तेपुण्यशूलगवादिषु । नितरां न प्रवेष्टव्यः वुरूडानां पुरोहितः ॥
मृतकाशौचकालेषु तन्तुवायपुरोहितः । न संभाष्यो विशेषेण प्रेक्षणीयोऽपि नैव तु ॥
वस्त्रस्वीकारकालेषु शुभकार्याय केवलम् । अत्यन्तावश्यकोऽयं स्यात् तन्तुवायपुरोहितः ॥
ते तीर्थजीविनो नित्यं तिष्ठन्तस्तत्र भूरिशः । सर्वजातीयसंघातधनग्रहणलोलुपाः ॥

वर्ज्यावर्ज्यकराहित्यमानसा दुष्टचेतसः ॥

शूद्रार्थमानीतपवित्रपाणित्राह्वणस्य हव्यकव्यादिनिषेधः

शूद्रार्थानीतसहर्षपवित्रधृतमुष्टयः । अत्यन्तनिन्दिताः पापाः न योग्या हव्यकव्ययोः
वाङ्मात्रेणापि नाचार्याः स्युर्न वन्द्या करसंपुटात् ।
वेदशास्त्ररतास्तेऽपि न पङ्क्त्यर्हाः कदाचन ॥
पुण्यक्षेत्रकृतावासाः तादृङ्निन्दितकर्मणाम् ।
करणाद्दूषिता एव भवेयुर्ब्राह्मणा अपि ॥
पुण्यक्षेत्रकृतावासान् स्वकर्मनिरतानपि । तत्क्षुद्रशूद्रतत्तीर्थप्रतिग्रहमहाविलम् ॥
ऋषुतित्वं विप्रतस्सद्यः कारयत्यतिसत्वरम् । प्रतिग्रहरता विप्रा पुण्यतीर्थतटेष्वेति ॥
वयमेवात्र कृत्स्नानां दानानां ग्राहका इति ।
वदन्तः सततं क्रौर्यप्रोक्तिपूर्वचवि च विकाः (वचांसि च) ॥
त एव कीर्तिता (नित्यं ?) पापिनो ब्रह्मराक्षसाः ॥

प्रेतान्नभोक्तृनिन्दा

एतत्समाः प्रेतभुक्तिपरा अपि न संशयः । त्रिभुक्तितृष्णोडशस्य नग्नप्रच्छादनस्य च ॥
नवश्राद्धे कुटुम्बस्य श्राद्धे भुक्त्यष्टतस्तथा । एकाहनामकश्राद्धे सकृत्तत्प्राशनस्य च ॥
तथास्थिपायसस्यापि ब्राह्मण्यं नष्टमेव हि । पुनरुद्धरणं नास्य तन्नष्टं नष्टमेव हि ॥
दुष्कर्मनष्टब्राह्मण्यः रूपातोऽयं नित्यसूतकी । न संपृश्यो विवाहादिशुभकर्मसु सन्ततम्

न प्रवेश्यो न पूज्यश्च न संस्पृश्यश्च सर्वथा ।

तद्भक्षितान्नपुलकसंख्याजन्म स्वयं पुनः ॥

बालरण्डा भवेन्नूनं तस्मादेनं निरन्तरम् । चिद्यग्निदग्धोलकातुल्यं न पश्येच्छुभकर्मसु ॥

यद्ययं देहसंस्पृष्टः कदाचिदवशादपि । स्पृष्टस्थालं जलेनैव संप्रक्षाल्य करेण वै ।

स्वकर्णं दक्षिणं दृष्ट्वा नासिकान्तं च तारतः ।

त्रिवारं व्याहृतिश्चापि जपित्वैवं पुनस्ततः ॥

इदं विष्णुं जपेच्चापि नासौ नोचेद्भवेद(दि)ति । दौर्भाग्यप्रथमं पात्रं शरणं निखिलागसाम्

त एते ये (?) प्रोक्ताः निखिलेनासतोद्य वै ।

न योग्यास्सर्वकार्याणामित्येवेति सुनिश्चयात् ॥

न हव्येषु न कव्येषु शान्तिपौष्टिककर्मसु । लौकिकावशिेषेषु पुण्यवैदिककर्मसु ॥

स्वबुद्ध्या नाह्वयेन्नित्यं नापि संभावयेदपि । यद्यागताः स्वयं ते तु पुरस्कार्या न चैव हि ॥

न गौरवं प्रकुर्वीत ताटस्थं तत्र चाश्रयेत् । तत्कृतं चोपकारं वा नाङ्गीकुर्याद्विशेषतः ॥

कथञ्चन विशेषेण परिषत्सु न योजयेत् । विधायकेषु वा नूनं मृत्वेक्ष्वपि विचक्षणः ॥

परित्याज्याश्च ते ये स्युः सन्ततं ग्रामयाजकाः ।

तत्प्राधान्यपराः पापाः वृत्त्यन्तरविहीनतः ॥

एतावदेतत्कार्याय समष्टिजनकल्पितः । क्रूरवृत्तिविशेषोऽयं ये वा तज्जीविनो द्विजः ॥

प्रशस्ता वापि ते सर्वे तानेतान् सर्वकर्मसु ॥

परित्याज्याब्राह्मणलक्षणम्

परित्यजेद्विशेषेण वेदिनोडा(दा)म्भिकानपि ।

काकवृत्तीन् व्याघ्रवृत्तीन् बकवृत्तीन् दुराशयान् ॥

सुतरां वर्जयित्वैव समीचीनान् सुचेतसः ।

येनकेनापि सन्तुष्टान् सद्वृत्तीन् पुण्यपापयोः ॥

कृतचित्तान् विचारेषु सदाचारपरानपि ।

न यज्ञान् बुद्धिसंपन्नान् सदा दाक्षिण्यसुन्दरान् ॥

सौजन्यनिलयान्शान्तान्स्थाप्यपक्षविवर्जितान् ।

परद्रव्यपरक्षेत्रपरदारपराङ्मुखान् ॥

गृहीयात्सर्वकृत्येषु ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः ॥

वैश्वदेवकालागतानामनिराकरणम्

यादृशो यः कश्चिदपि वैश्वदेवावसानके ।

क्षुत्तृष्णाभ्यां समायुक्त आगतश्चेत्तदा गृही ॥

शक्तौ सत्यामन्नदानमात्रेण सुतरामयम् । संतर्प्यश्च विशेषेण प्रपालयः तिन्मवाक्यतः ॥

तिरस्कार्यो न वाच्यश्च तस्मिन् काले विशेषतः ।

सर्वेऽपि पात्रतां यान्ति भक्तदानाय गेहिनः ॥

विप्रवेषेण सततं तन्तुमात्र प्रधानकः । संप्राप्तपूर्वब्राह्मण्य इत्येव सततं मतिम् ॥

कुर्वन् सुमहदाप्नोति सौभाग्यं ब्राह्मणोत्तमः । अन्नप्रदानकालेषु परेषां विद्विषां द्विषाम् ॥

तेषां चापि समानां तामर्चां कुर्यान्न चान्यथा । शाकसूपप्रदानादिविषये पक्षपाततः ॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां न्यूनाधिक्यं न कारयेत् ॥

सद्ब्राह्मणानां भिन्नपङ्क्त्युपवेशननिषेधः

करणात्तस्य नितरां पात्रकं सुमहद्भवेत् ।

सदाचारपरान् शान्तान् श्रोत्रियान् ब्राह्मणान् सतः ॥

ज्ञातत्रिपूर्वकान् साधून् तादृशोऽपि स्वयं सदा ।

भुक्तिकाले भिन्न पङ्क्तौ बुद्ध्या नैवोपवेशयेत् ॥

तादृशान् यदि मोहेन ब्राह्मणान् पङ्क्तिपावनान् ।

परित्यज्यान्यतो भुक्तिमात्रेणासौ पतत्यधः ॥

अश(1)स्त्रीयव्रतमहानियमाभासहेतुना । सद्यो विप्रतिरस्कारकिलिबषात्पतितोऽभवत् ॥

सत्कर्मविकलस्त्वहः विद्याशौचे पराङ्मुखः ।

दुराचारो (?) तान् तादृशान् ब्रह्मणोत्तमान् ॥

दुराचारकुवर्त्मभ्यां भिन्नपङ्क्त्युपवेशनात् ।
 सद्यो भ्रष्टश्च म(प)तितः ब्राह्मण्यात्क्लिषो भवेत् ॥
 मन्त्रार्थो ब्राह्मणमुखाद्विज्ञेयो नान्यवर्त्मना ।
 मन्त्राश्च वेदाः सर्वेऽपि विप्रोच्चारणपूर्वकात् ॥
 अनूच्चारणतश्चापि स्वस्याधीनाः स्युरेव वै ।
 तादृशान् ब्राह्मणान्नूनं त्यजन् भुक्तौ तु पङ्क्तिषु ॥

कथं तरेदयं मूढो गुरुन् गुरुसमानपि । वेदमन्त्रैः क्रियाः सर्वाः वेदमन्त्रस्तपःक्रियाः ॥
 सर्वक्रिया वेदमन्त्रैस्तस्माद्वेदपरो द्विजः । वेदस्य वेदिनश्चापि न भेद इति गोभिलः ॥
 वेदमेव जपेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः । जपान्तरेण किं तस्य नित्यं वेदजपः परः ॥

गायत्र्या वेदमातुस्तु जपमात्रेण केवलम् ।
 ब्राह्मण्यं सुस्थिरं सम्यग्गायत्री तादृशी शिवा ॥
 गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीत्युच्यते बुधैः ।
 न गायत्र्याः परो मन्त्रः सा सर्वश्रुतिमभ्यगा ।
 यजपेनाखिलजपः सिद्धो भवति सन्ततम् ॥

यजपेन विना सर्वः साक्षादीशसमोऽपि वै । द्विजमात्रो निपतति तत्तुल्योऽन्यो मनुर्न हि
 तस्मिन्नस्त्राणि सर्वाणि धनम् (धान्या) नि निखिलान्यपि ।
 तदर्थचिन्तनं नृणां निदिध्यासनमेव हि ॥
 नान्यन्निदिध्यासनं स्यात्तत्पष्टीक्रियतेऽद्य वः ।
 यो नो धियो बोधयति कुर्विदं कुर्विदं त्विति ॥
 तस्मिन्नेतस्मिन् समये उदयास्तमयादिना ।
 तार्तीयिकपदस्यार्थस्तत्र स्यात्तु धियः पदम् ॥

द्वितीयावचनं भूरि तद्बहुस्यान्न चेतर्त् । न षष्ठि बहु तत्प्रोक्तं वचनं चेति सूरिभिः ॥
 प्रचोदयाद् बोधयति तस्य देवस्य तादृशः । सवितुस्तद्वरेण्यं वै वरणीयं विशेषतः ॥
 नित्योपास्यमिति ज्ञेयं भर्गो धीमहि कः परः ।
 अर्थश्चेदिति संप्रोक्ते सवितुश्चापि तादृशः ॥

नित्योपास्यं तद्भर्गस्तु तेजोध्यायी तु इत्यसौ । अर्थप्रकथितः सर्वैर्महद्भिर्ब्रह्मादिभिः ॥
कथं नपुंसकं भर्गं इत्युक्ते तु प्रवच्मि तत् । यशो भर्गः सहश्चेति साहचर्येण तत्तथा ॥
भर्ग इत्याह सा साध्वी तेज एवेति चोदनात् । सर्वलिंगैः सर्ववाक्यैः सर्वशब्दैरयं विभुः ॥
प्रोच्यते खलु तेनात्र गायत्रीति हि फण्यते । तेन स्त्रीलिंगसंप्रोक्तिर्ब्राह्मणो नैव दूषणम् ॥

दैवतं देवतादेवः इति लिंगैर्यतः स्मृतः ।

गायत्र्याख्यं तु तत्तेजोध्यायाम (ध्यायेम) इति वै मनोः ॥

तस्यार्थ इति कृत्स्नार्थो निश्चितः सर्ववेदिभिः । एतन्महामन्त्रमात्रोपदेशेनैव बाढवः ॥
सर्वाचार्यः सर्वगुरुः कृतार्थश्चापि जायते । तज्ज्ञपो विप्रमात्रस्य त्रिसन्ध्यासु दिने दिने ॥
दशकान्यूनतत्कार्यः तन्न्यूने स जपो ध्रुवम् । ब्राह्मणत्वस्थापनार्थं जागरूपो भवेन्नतु ॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । सन्ध्यां नोपासते ये तु कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
ये सहस्रं जपन्त्येनां गायत्रीं ब्राह्मणोत्तमाः । त तेषां श्राद्धभोक्तृत्वहैन्यं तस्यात्कदाचन
यथोपदिष्टा गायत्री त्यक्तुं विप्रैर्न शक्यते । कदाचित्सर्वथा तद्बुद्धपरिष्ठास्तदुद्भवाः ॥
वेदाद्या निखिलाविद्यात्तदुक्तश्च क्रिया अपि ॥

वेदत्यागनिन्दा

त्यक्तुं तदुल्लङ्घयितुं ब्राह्मणेन न शक्यते । वेदस्वीकरणे त्यागे प्रतिसंवत्सरेऽपि च ॥
होमपूर्वं गुरुमुखादुपदेशात्परं श्रुतेः । उपसर्जनतस्तस्या ये वाङ्मतेन (मात्रेण) शब्दिताः ॥
तेषामप्युपदिष्टत्वात् न संलङ्घ्यो हि सर्वथा । यत एते चोपदिष्टाः गुरुणा वह्निस्निधौ ॥
वेदहोमात्परं प्रत्ययने तैष्यां तथा पुनः । श्रावण्यापि चोत्सर्गोपाकृत्योः प्रतिवत्सरे ॥
त्यागश्च ग्रहणं नित्यत्वेनैव प्रतिपादिते । उपदेशः स येषां तेऽनुल्लङ्घ्या महत्तराः ॥
तदुक्तान्यपि कर्माणि कर्तव्यान्येव सन्ततम् । उपदिष्टमहामन्त्रत्यागे तु सुमहान् परः ॥
प्रत्यवायो दृढतरो द्विजमात्रस्य पेशलः । अत्यन्तपीडाकरणे परं (?) दिने दिने ॥
धारणाध्ययनं कार्यं अपूर्वाध्ययनं न तु । तदानीं कर्मकालत्वाद्ब्राह्मणानां महात्मनाम् ॥

अपूर्वाध्ययनस्यात्र नित्यं कालो न लभ्यते ।

तस्माद्वेदादिसंत्यागस्तदा कार्यो महात्मभिः ॥

संत्यागमपि तेषां वै वेदप्रोक्तेन वर्त्मना । प्रकुर्यान्नान्यमार्गेण स मार्गश्च निरूप्यते ॥

स्नात्वाऽऽचार्यो दर्भपाणिः रचितक्षुरकर्मभिः ।

वर्णिभिर्निखिलैः शिष्यैः ब्राह्मणैः कर्मतत्परैः ॥

समन्वितस्तु संकल्प्य प्रतिष्ठाप्य विधानतः ॥

उत्सर्जनविधिः

पावकं चेध्मतन्त्रेण वर्धयित्वा प्रपूजितान् ।

स्थापितान् पूजितान् पूर्वमीशान्यां दिशि तत्क्रमात् ॥

जुहुयाच्चक्षुषोरन्ते काण्डर्षीन् काण्डदेवताः ।

सदसस्पतिकान् सर्वान् वेदान् वेदादिनैव हि ॥

ऋग्वेदादौ च गायत्रीं ऋचमाज्येन तत्परम् । हावयित्वा यजुर्वेदे छन्दोबद्धं स्तथाविधैः

वाक्यबद्धैर्वर्णमात्रप्रधानैः पादरूपकैः । होमं कृत्वाथ सामाख्यं तत्परं तं चतुर्थकम् ॥

हावयेदेव विधिना यजुर्वेदे तु तत्र वै । वर्णत्रयात्मकं मन्त्रद्वयमादौ ततः पुनः ॥

चतुर्वर्णात्मकं वर्णद्वयं वै तदनन्तरम् । देवो व इति मन्त्रः स्यादित्येवं सति केवलम् ॥

मन्त्रमात्रेण होमो हि प्रकृते कर्मणेत्यथ । होमः कथं भवेदत्र विषये सति वेति वै ॥

तस्यैवं हि समाधानं छन्दोबद्धं तु तादृशम् । एकमेव भवेद्वाक्यं द्वात्रिंशद्वर्णकल्पितम् ॥

अत्र वाक्ये श्रेष्ठ इतिस्थाने शर इति स्म वै । वर्णभेदेन सा संख्या पूरणीयेति छन्दतः ॥

मार्गतो ह्येय इत्येव छन्दोविद्धिरुदाहृतः । प्रधानञ्जुहु(हो)त्यथ गुरुः वेदारम्भणमञ्जसा

उत्सर्जनांगभूतं वै करिष्येत्यखिलानपि । कुशस्थितः कुशशयः तादृशान्वाचयेच्च तान् ॥

स्ववेदादिक्रमेणैव सर्वान् वेदान् प्रवाचयेत् । कल्पान् व्याकरणं चापि वेदलक्षणजालकम्

ज्योतिस्सूत्रं वेदलक्ष्मं छन्दःशास्त्रं ततः पुनः । मीमांसाद्वितयं चापि चेतिहासमहं ततः ॥

सत्यं तपश्चेति ततस्तपोवाक्यं च वाचयेत् ।

एवं सर्वान् वाचयित्वा स्ववाक्योक्तिप्रपूर्वतः ॥

उत्सृष्ट्वा वै वेदाश्चेति परिधानीयवाक्यतः । प्रवाचनात्परं सम्यग् उत्सर्गं तं समाचरेत् ॥

उपाकर्माण्येवमेव श्रावण्यां तत्समावेत् ।

वेदादयः स्वीकृताश्चेदियान् वेदोऽप्रलः समः ॥

स्वीकारोत्सर्गयोरेवं वेदानां प्रतिवत्सरम् । उपदेशान्नैव कर्तव्यत्वं श्रुतीरितम् ॥

तस्मात्तप्ते निखिला वेदविद्यादः सतः ।

ब्राह्मणस्यानुल्लङ्घ्याः स्युस्तैरुक्तास्तु यानि वा ॥

कर्माणि कर्तव्यत्वेनैव विहिताः समासतः ।

तान्येवेति न चान्येन यदि तन्ने पराश्च याः ॥

विद्या अनुपदिष्टा हि तास्तस्मिन्निखिलाः पराः ।

अत्यन्तावश्यकत्वेन न संग्राह्याः कदाचन । यद्येद्विरोधेन स्युश्चैतानि हि वैदिकैः ॥

व्यतिरिक्त्या

स्वीकृतुं शक्यते नो चेत् ति सर्वाणि ताश्च वै ।

स्वीकृतुं नैव शक्यन्ते तद्धिन्नास्ततः पराः ॥

शिल्पविद्यादिवत्प्रोक्ताः अपि तत्क्रियाः ।

अविरोधे परिग्राह्या णिधे सति ताः पुनः ॥

अत्यन्तदूरतस्याज्याः नवं तत्र केवलम् ।

यद्वै किञ्चेतिवाक्येनषजत्वेन चोदितम् ॥

तच्छास्त्रं तेन संग्राह्यं मनुनैव प्रकीर्तितम् । यद्यप्यनुपदिष्टं तत्तथा गौतमनिर्मितम् ॥

सुत्रकारकृतं सर्वं कश्यपादिप्रकल्पितम् । ज्ञाया विरचितं शास्त्रं पाराशराख्यकम् ॥

वेदव्यासेन रचितं शंखेन लिखितेन च । चेतं धर्मसिद्ध्यर्थं कृतं कात्यायनेन च ॥

यदेतदखिलं शास्त्रं वेदसूत्राविरोधतः । साधारणेनैव यदेतत्प्रतिपादितम् ॥

तदेतत्सकलं प्राह्यं तद्धिन्नं यत्परित्यजेत्सर्वस्यामपदिष्टत्वादत्यन्तावश्यकं स तु ॥

अविरोधं धर्मशास्त्रमात्रं सर्वविस्मृतम् । अत्यन्तानुपदिष्टत्वेऽप्येतत्कैश्चिन्महर्षिभिः ॥

वेदसूत्राविरुद्धत्वादर्शनीयं च तेन वै । ह्यत्वेन तद्धर्मकार्याणां नित्यकर्मणाम् ॥

बोधकत्वेन सुतरां तत्प्रयोगक्रमोक्तिः । विधायकत्वेन केषांचित्सम्मतं तन्निरूपणम् ॥
तारव्याहृतिगायत्री साक्षात्प्रस्तारवर्त्मना । यथा प्रस्तार विस्तार विभूतिर्वेदमात्रके ॥
तथा शेषचतुर्वेददिव्यप्रस्तारजन्यतः । ऋजीषतस्समुत्पत्तिस्तदङ्गानां तयोरपि ॥

मीमांसासूत्रयोः सत्यतपोवाक्येतिहासयोः ।

नान्येषामिति निष्कर्षस्तस्मादेषां च सूरभिः ॥

पुराणानां स्मृतीनां च वैषम्यमिदमित्यलम् । वेदप्रस्तारतच्छिष्टऋजीषजगतेस्तराम् ॥
अभावेन पुराणादिग्रन्थानां तादृशां तथा । स्मृतिनामपि तन्मध्यकुतप्रक्षेपणादितः ॥
अप्रामाण्येऽत्र संजाते तत्कृत्यै महतामपि । आर्षानार्पविभागैकतत्प्रमाणस्य कस्यचित् ॥
विशेषदर्शनादेस्तु जनकस्य दृढस्य वै । राहित्येनैव नितरां तत्साम्यं तन्महत्त्वकम् ॥
वक्तुं न घटतेऽतीव तेन चैतेषु केवलम् । विवादार्येष्वगातेषु वादिनां भिन्नभिन्नतः ॥
परिहारकृते तेषां एतद्ग्रन्थगतं वचः । तत्तत्कल्पितशङ्काकान्तत्वेनैव क्षमं न तु ॥

विश्वासार्यस्य तेषां चेद्वेदादीनां तु सर्वथा ।

तस्याः कल्पितशंकायाश्चरणव्यूह वाक्यतः ॥

प्रस्तारलक्षणाद्यैश्च राहित्येनैव सन्ततम् । प्रामाण्यं स्वत एतेषां औत्पत्तिक इतीरितः ॥
पदस्य वर्णमात्रस्य वा वाक्यस्य स्वरस्य वा । व्यत्यासो यत्र कुत्रापि भेदः प्रक्षेप एव वा ॥
घटते नैव सुतरां वेदमात्रे शिवात्मके । तत्रात्यन्तं जागरूका स्तत्तद्विशदकर्मणि ॥

प्रस्तावचरणव्यूहलक्षणान्यखिलान्यपि ।

किञ्च वेदाश्च सूत्राणि कल्पाः शाखाः समन्ततः ॥

अध्यासनाध्ययनतः पदक्रममुखेन वै । अतिस्पष्टाः सुप्रसिद्धाः प्राजापत्यादिसंज्ञया ॥

काण्डत्वेनैयंतीति चात्र छन्दांसि संख्यया ।

मन्त्रा इयंतकर्माणि याज्ञिक्याश्चापि पुरोरुचः ॥

पुरोनुवाक्याः सामिधेयः प्रैषाः न्यूंखाः प्रपाठकाः ॥

अनुवाकाश्च काण्डाश्च सूक्तान्यध्यायसंख्यया ॥

पदानीयन्ति वर्णानि प्रेक्ष्यनामादिनामतः । अन्यन्नमिति कृष्णाभ्यां मर्यादावरिघटिताः ॥

वेदानां बहुमार्गत्ववर्णन

शक्यार्था एव तेनैते वेदांश्छदांसि लपकाः ।

शक्यार्था एव नितरां प्रमाणत्वेन प्रोचिताः (चेरिताः) ॥

ये शक्यास्ते परं प्रोक्ता अप्रामाण्ये प्रतिष्ठिताः । यद्यत्र पुनर्वेदवाक्यमेकं तु वर्तते ॥

वेदा वा इति वाक्यान्तर्गतानन्त्य मानसम् ।

इदमेव प्रकथितं साम्नः शाखास्तथाविधः ॥

प्रोक्ताः सहस्रसंख्याकाः यजुःस्थाः स्वतन्त्रकाः ।

एकं शतं संख्यया ताः ऋगादीनां विधायकाः ।

आयुर्वेदधनुर्वेदगान्धर्वादिधुरंधराः । तस्मात्तत्रत्यन्तस्य पदस्य न तु तादृशे ॥

अध्यापनाद्यशक्यार्थे ग्रन्थवाक्यकारणात् ।

ऋक्सामादिकशाखानां बहुमपि केवलम् ॥

तदनुग्राहकत्वेन शिक्षकत्वेन राजवत् । शतानां शाखानां सैकानां तन्नियोजने ॥

विनियोगः सर्वदृष्टः पृथक्त्वेन परस्परम् । मन्त्रक्रियाभेदशतकेऽप्यत्र केवलम् ॥

औद्गात्रहोत्रयोस्तद्वत्तत्तद्भेदेन कर्मसु । शतमस्तोमस्तोमपृष्ठगीतिसंभिन्नभिन्नतः ॥

विधिदृष्टा मार्गभेदाः सहस्रादिप्रभेदतः । नैतावन्ते विज्ञेयाः अशक्यार्था इति ध्रुवम् ॥

शाखाबाहुल्यतश्चापि क्रियाबाहुल्यतस्तथा । मन्त्रबाहुल्यतस्तन्त्रप्रयोगक्रमविस्तरैः ॥

मन्त्रोच्चारणभेदैश्च तद्वाचारादिकीर्तनैः । अनन्त इति प्रोक्तास्तत्तच्छाखास्तु वच्मि वः ॥

तैस्तैस्तु शाखिभिः सम्यक्तुं तत्क्रियास्तथा ।

ज्ञातुं कर्तुं सम्यगेव शक्यन्ते किल सूक्ष्मतः ॥

अनायासेन निखिलैराशक्यैर्दिकोत्तमैः ।

बहूक्त्वा किं पुनर्वचिषाया याति सौख्यतः ॥

यवैश्च तण्डुलैराज्यपयस्सोम दधि (...) । यवाग्वादिदशद्रव्यैरग्निहोत्रं तु तादृशम् ॥

एकं दशविधं प्रोक्तं मन्त्रतन्त्रक्रियादिभिः । एतदत्यन्तगहनमशक्यं किमु पश्यत ॥

कर्तव्यनिश्चितधियां एतदत्यन्तमुन्दरम् । अमं सुखदं श्रीमत्यक्तकाठिन्यरञ्जितम् ॥

एवमाचमनं त्वेकं मन्त्रतन्त्रविभेदतः । शतगुणं प्रोक्तं किमशक्यं तथाविधम् ॥

ज्योतिष्टोमादयस्त्वेवं बहुरूपाः कृतिः । नाशक्या एव सुतरां सुलभा देशकालतः ॥
एकोऽप्ययं क्रतुः श्रीमान् साध्या चरतस्तथा । मासतश्च चतुर्विंशद्दिनतो द्वादशादितः ॥

एतादृगुक्त्यप्ययं किमसाध्यः शक्य एव वा ।

अनन्तमार्गस्त्वेनन्तत्वात्प्रपश्यत ॥

अपरे ज्ञेय एतत् किं वा चैतद्य ईदृशः ।

अभ्यासात्सुखासूक्ष्मः अनभ्यासे तु केवलम् ॥

हालाहलाधिकश्चेति भयव्यामोहोन्ने । बहुना किं स्नानमेकमादौ शतविधं स्मृतम् ॥

मन्त्रतन्त्रक्रियाभेदैः तैस्तैरुक्तं महान्तः । तदसाध्यमतश्चेति तद्गतिर्गहना परा ॥

इति त्यक्तुं तु तद्युक्तं सर्वमेवं शतोद्धृतम् । अनन्तत्वेन च प्रोक्तं प्रस्ताराल्लौकिकादपि ॥

कृत्यादिब्रह्मन्दां वृत्तसंख्यासु महतीनां । स्पष्टत्वेनैव सर्वत्र ज्ञाता यद्यपि तावता ॥

नास्त्येव हि महाभीतिर्नष्टोद्दिष्टप्रमाणानि । अतिसौलभ्यतो ज्ञातुं घृतानां तादृशामपि ॥

तत्त्वं स्वरूपं लग्नं लग्नस्य) संख्यान्तं च ततः परम् ।

अध्ययोगश्चरमाख्या सौलभ्यभागयम् ॥

तद्वद्वेदाश्च सूत्राणि तान्यङ्गानि विनैता । ज्ञानेन बहुलायासं तत्स्वरूपं तथाविधम् ॥

मात्राबलं वर्णवर्त्मसन्तानातानतत्वगा । तु सुखेन शक्यन्ते तस्माद्वेदेषु तेष्वपि ॥

यत्र कुत्र ग्रन्थराशौ शङ्काप्रामाण्यसंशयः । भवेयुर्हि महतां ज्ञानिनां तत्ववर्त्मनः ॥

विशेषदर्शनं तस्य वेदप्रस्तार एकशः । गण्यदर्शने तस्मिन् अप्रामाण्यैकवारकौ ॥

नष्टोद्दिष्टौ तत्र चापि सर्वसंशयवारकः । क्रियाप्रकारोऽयं तत्र संख्यानमुच्यते ॥

अध्वयोगपुनस्तत्र प्रतिवर्णं पृथक् पृथक् । मादेतेषु सर्वेषु विद्याभेदेषु कृत्स्नशः ॥

उपदिष्टेषु विशयो नास्त्येव सुतरां खलु । नैवैस्मृतिषु सर्वासु पुराणेष्वखिलेषु वा ॥

तस्मात्तन्मध्यसंप्राप्तप्रक्षिप्तग्रन्थविस्तरैः । ने सर्वाण्यप्रामाण्यकलङ्कितशरीरतः ॥

आचारसंशयेष्वत्र स्मः युर्न विधायकाः ।

सर्वसाधारणेष्वेषां व सु च कर्मसु ॥

परस्परविरुद्धेषु सत्यैः प्रान्तरेष्वपि ॥

सूत्रादीनां विधायकत्वम्

विधायकाः स्युर्नितरां न स्वातन्त्र्येण सर्वथा ।
 विधायकत्वं स्वातन्त्र्यात् तेषामेवोचितं परम् ॥
 विद्यानामुपदिष्टानां सूत्रादीनां कथं पुनः ।
 इत्युक्ते तु प्रवक्ष्यामि सूत्राणि किल षट्स्वपि ॥
 वेदपाठानुसारेण प्रवृत्तानि किलान्यथा ।
 न स्वातन्त्र्येण तस्मात्तु छन्दोवन्निखिलान्यपि ।

भवन्ति सूत्राण्येवेति जगदुर्ब्रह्मवादिनः । तत्रादावौद्भवं पाठमनुसृत्य महान् पुरा ॥
 चक्रे बौधायनं सूत्रं सोऽयं श्रीमान् विचक्षणः ।
 तत्पाठस्तु यदा तारो व्याहृत्यादिक्रमेण वै ॥
 स्वमेव रूपं विस्तारं स्वस्मिन् लीनं स्थितं महत् ।

विध्यर्थवादमन्त्रौघब्राह्मणाद्याकृतिः स्वयम् । शक्त्यात्म्यं विस्तारयामास जातस्तु यः क्रमः
 स उद्भवाख्यः कथितो वेदप्रस्तारवर्त्मना । स उवे(?)यानचान्येन तत्प्रस्तारश्च छन्दसाम् ॥

अलौकिकानामेव स्यात्सोऽप्यलौकिक एव हि ।

भवितव्यो हि विदुषां छन्दोविचितिगामिनाम् ॥

गणाश्च वैदिका एव भवेयुस्तत्र केवलाः ।

न लौकिकाः कचिद्भूयो लौकिकाः स्युश्च वर्त्मनाम् ॥

छन्नविच्छिन्नसच्छन्नप्रच्छन्नेषु न चान्यतः । पश्चादापस्तम्बसूत्रं ब्रह्मपाठानुसार्यभूत् ॥
 स पाठो ब्राह्मणः सर्वकर्त्ता साक्षात्स्वर्यभुवा । सच्चिदानन्दरूपेण नित्येनानुपमेन वै ॥
 स्वाकारप्रणवाविर्भावाकारं येन केनचित् । अविज्ञेयं तत्प्रस्तारमुखेनैव समञ्जसम् ॥
 विशादीकृत्य लोकेशमुखानां विधिजालकम् । बोधयित्वाखिलं पश्चादर्थवादादौघमेव तम् ॥
 राशितो दर्शयित्वाथ मन्त्रजालं ततोऽखिलम् । प्रदर्शयित्वा संघेन तत्संघीकृत्य सर्वशः ॥
 ब्राह्मणं तदनु ब्राह्मणेनैव निखिलं शिवम् । बोधयामास जगतां हितायाखिलमञ्जसा ॥

यः सोऽयं ब्रह्मपाठाख्यस्तं ज्ञात्वासौ महान् पुरा ।
सूत्रं तदनुसारेण सर्वशाखार्थरञ्जितम् ।

आपस्तम्बसूत्रम्

आपस्तम्बश्चकारासौ स्वनाम्ना वेदरूपकम् । सर्ववेदार्थैकन्यूनाधिकशून्यं जगद्गुरुः ॥
तदापस्तम्बसूत्रं स्यादखिलं ब्रह्म विद्धि तम् ।
तं पाठं भगवान् व्यासः साक्षान्नारायणात्मकः ॥
हिताय सर्वलोकानां शाखाभेदान् प्रकल्प्य च ।
काण्डप्रश्नान् स्पष्टयित्वा ऋग्यजुस्सामनामतः ॥
अथर्वणादिनासम्यक् पृथक्त्वेन च तान् क्रमात् ।
कल्पयित्वातिसौन्दर्यसौलभ्याभ्यां समन्वितम् ॥
बोधयामास तान् सर्वान् ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
सोऽयं पाठो व्याससंज्ञः पाठं तमनुसृत्य वै ॥

सत्याषाढसूत्रम्

सत्याषाढमुनिश्चक्रे सूत्रं तत्किल तादृशम् ।
सत्याषाढाख्यकं सम्यक् तार्तीयिकं तदुच्यते ॥
पुरा कदाचित्कोऽप्यस्मिन् दण्डकाख्यो महासुर ।
दुःखाय किल देवानां वेदान् सर्वान् स्वयं महान् ॥
संगृह्य सर्वलोकानां विनाशाय तु कोणपात् ।
सिन्धौ तिरोहितस्वासीत् चिरं दत्तवरोऽसुरः ॥
तदा देवगुरुः श्रीमान् सर्वदेवहिताय वै । तेषां प्रार्थनयातीव तुष्टः सर्वेश्वरो विभुः ॥
मत्सररूपेण तं हत्वा तान् वेदान् तद्वशे स्थितान् ।
समादाय जगत्पस्मिन् देवकार्यचिकीर्षया ॥
चतुर्मुखमुखेनैव विशदीकृतवान् किल । भरद्वाजस्तदा श्रीमान् शुनासीरमुखेन वै ॥

तान् वेदांस्तपसा लब्ध्वा शनकै शनकैरति । कालेन महता पश्चात्तदर्थानखिलान् परान् ॥
ज्ञात्वा स्वनाम्ना चक्रमे सूत्रं परमपावनम् । विशदार्थं लोकहितं तदेतत्सूत्रमुत्तमम् ।

भारद्वाजसूत्रम्

भारद्वाजमिति प्रोक्तं सर्वसारं सनातनम् । तत्कालेन महता केनचित्कारणेन वै ॥

वैशंपायनशिष्योऽसौ कात्यायनमुनिः किलः ।

परं गुरोर्विवादेन स्वाधीता निखिलाः पराः ॥

समुत्ससर्ज ताः शाखाः तदसत्स्वरोज्झिताः । संकीर्णस्त्वथवन्नूनं त्यक्तरूपाः प्रकीर्णकाः

अत्यन्तयत्नसाध्याश्च व्यत्यस्तस्वरवर्णकाः । अस्पष्टा एकरूपाश्च तदा श्रीमान् महामनाः

सरस्वानन्नामको योगी वेदतत्त्वविशेषवित् ।

वेदान् शाखान् पाठकांश्च कल्पयित्वा विभागशः ॥

बुध्या संगृह्य संगृह्य स्थापयित्वा पृथक् पृथक् ।

एतानवयवान् सर्वान् वेदीयान् छिन्नभिन्नतः ॥

एकरूपस्थितान् यत्नाद् (?) वेक्ष्या यवीति वै ।

अयमेकोऽयमेको वै चेतिरीति शनैः शनैः ॥

चकार किल मेधावी सरस्वान् तत्र केवलम् ॥

अत्यन्तैक्येन कस्मिंश्चित्प्रदेशेऽत्यन्तदुर्घटे । दुर्विज्ञेये दुर्विगाह्यो वर्णराशिः स्वरादिना ॥

संक्षिप्ते छन्दतो श्लिष्टे किं करोमीति चेतसा ।

तित्तिरिः शकुनिर्भूत्वा क्षणमात्रेण तादृशम् ॥

राशिं सर्वं यथावत्तं चक्रमे किल सर्ववित् । समीकरणशक्तिस्सा पक्षिणस्तस्य केवला ॥

औत्पत्तिकी परा ज्ञेया तेन रूपेण वै ततः । तत्कालं साधयामास तद्रूपेण स सर्ववित् ॥

तदा सारस्वतः पाठः परः कोऽपि बभूव हि । तं पाठं तादृशं दिव्यं राहुमुक्तेन्दुवत्तराम् ॥

अत्यन्तनिर्मलं शुद्धं पावकं स्वत एव वै

समुद्गीक्ष्यानुसृत्यैवं अग्निवैश्यो (वेशो) महानृषिः ॥

औखेयसूत्रम्

औखेयनामकं सूत्रं चकार विदितात्मवान् । तदेतदपरं सूत्रं सर्वसारं समुन्नतम् ॥
 सर्वेषां समतं सर्ववेदवेदिविभूषणम् । वैधानसाख्यस्तु मुनिः वेदे वाजसनेयके ।
 यजुःप्रमेदे कस्मिंश्चित्पञ्चविंशत्कशाखके । षडशीतिमहाशाखाराजमाने च सन्ततम् ॥

सर्वाधिके सर्वबन्धे मुख्ये यजुषि पावने ।

अपि कान्कान्महानर्थान् स्वमत्यालोच्य केवलम् ॥

समादाय समादाय पाठं वासिष्ठनामकम् । अनुसृत्य विधानेन कल्पे कल्पे शनैः शनैः ॥

सूत्रं तत्कल्पयामास शिवं वैखानसाख्यकम् ।

सर्वाण्येतानि सूत्राणि याजुषाण्येव केवलम् ॥

तदाध्वर्यवकृत्याय जागरूकाणि सन्ततम् । वेदिनामपि सर्वेषां सम्यक् साधारणानि हि ॥

बह्वृचाः केचिदस्मिन् वै महार्थे त्वध्वरीयके ।

आध्वर्यवाय तत्सूत्रं प्रथमत्वादिति स्वयम् ॥

बौधायनं प्रशंसन्ति संगृह्णन्ति तथा परे । सर्वे विवेदिनश्चेत्तु ऋग्वेदिषु तथा पुनः ॥

बहवः सुमहात्मानः सर्ववेदविदां वराः । आध्वर्यवाय नितरां आपस्तम्बीयमेककम् ॥

सूत्रं तत्प्रवरं मुख्यं सर्वसूत्रोत्तमोत्तमम् । यजुस्सूत्रं तदेव स्यान्मुख्यतोऽन्यत्तु गौणतः ॥

एतत्तुल्यप्रसिद्धेरेण्यभावेनैव तत्परम् । तत्तन्मात्रोपयुक्तं हि न सर्वेषां च वेदिनाम् ॥

उपयुक्तं भूतलेऽत्र सूत्रं तस्मात्तदेव वै । सर्वसंशयहं सर्वप्रयोगविशदं पुनः ॥

सर्वैरङ्गीकृतं सर्वलोकश्रुतिमनोहरम् । कल्पाख्यं च तदेवैकमार्षं भगवता कृतम् ॥

सर्वेषां यजने मुख्यत्वेनैव स्वीकृतं महत् । नैतत्समन्ततोऽन्यत्तु सूत्रं पतितपावकम् ॥

न विद्यते सर्वथैव हौत्रार्थं तु यथा तथा । आश्वलायनसूत्रं वै सर्वस्मादुत्तरोत्तरम् ॥

हौत्रकार्येऽपि भगवान् स्वतन्त्रः पारतन्त्र्यहा । सूत्रयामास वैशद्यमनुसृत्य महामतिः ॥

यजुर्वेदगतैर्मन्त्रैरापस्तम्बः स सर्ववित् । तस्मात्तु तादृशं सूत्रं नास्त्येवेति सुनिश्चयः ॥

परमाध्वर्यवं तच्च सूत्रं वाजसनेयकम् । यजुर्वेदार्थघटितं तथाप्येतत्पुनः परम् ॥

ससार्वात्रिकमित्येव प्रसिद्धं तत्तु केवलम् । तन्मात्रकं ततस्त्वेकं मया प्रोक्तं विशेषतः ॥
यथैव याजुषं हौत्रं आपस्तम्बेन सूत्रितम् । येन केन तथान्येन यत्र कुत्र न कीर्तितम् ॥

सूत्रकारैश्च निखिलैः गार्ह्यकर्मणि कृत्स्नशः ।

पृथक्स्त्वेनैव सर्वाणि चोपदिष्टानि सूत्रतः ॥

अग्निहोत्रं पितृयज्ञः शिष्टं श्रौतं यदस्ति तत् ।

आध्वर्यवं तु यजुषा ऋचा हौत्रं तथैव च ॥

साम्नोद्गात्रं च सर्वेषां सममेव न संशयः ।

यथा वा यजुषा हौत्रमिष्टिकाण्डस्य कृत्स्नशः ॥

ऋचा तथाध्वर्यवं न साम्ना वा न निरूपितम् । यजुर्वेदस्तादृशोऽयं ऋचां साम्नां समाश्रयः

नित्यस्वतन्त्रः सुमहान् सदा सर्वनियामकः ।

तदाध्वर्यवसूत्राणि षट्संख्याकानि केवलम् ॥

तदप्येकं प्रकथितं सूत्रं वाजसनेयकम् ।

यजनं खलु सर्वत्र बह्वृचानां निरन्तरम् । छन्दोगानां च तत्सूत्रद्वयं दृष्टं न चेतरेत् ॥

आपस्तम्बेन रचितं तथा बौधायनं च तत् । सप्तानामपि सूत्राणां याजुषाणां पुनस्तदा ॥

छन्दोगानां बह्वृचानां ऋग्वेदादेव हौत्रकम् ।

औद्गात्रं च तथा प्रोक्तं सामतस्तु नचान्यतः ॥

हौत्रमृग्वेदरचितं औद्गात्रं च तथाविधम् ।

कण्वानां वाष्कलानां च तथा काठकिनामपि ॥

कौषीतकानां जैमिनिसूत्रिणामपि चोदितम् ।

शाट्वायनिमुखानां तु यजनं न कलौ मतम् ।

उत्सन्नास्ते हि तच्छाखास्तच्च सूत्रं तथाविधम् ।

अनुत्सन्नदशायां तु हौत्रमौद्गावृकं तथा ॥

तेषामेतदृग्विधानवर्त्मनैव न चान्यतः । हौत्रं तु याजुषं यत्तु याजुषाणां तदुच्यते ॥

न चान्येषां कदाचित्स्यात् यदि स्यात्कर्म तद्वृथा ।

याजुषाणां च तद्धौत्रं यावत्तावत्प्रकीर्तितम् ॥

तदन्यत्र घर्मादिघनकर्मसु चेत्पुनः । तदेव हौत्रं विहितमाश्वलायनवर्त्मना ॥
 हौत्रं तद् याजुषं वेदचोदितं ब्राह्मणात्परम् । प्रश्नत्रयमितात्सम्यक् सर्वेष्टीनां समञ्जसम्
 याज्यापुरोऽनुवाक्याभ्यां प्रधानहविषः पुनः । तद्विशेषस्य तत्रत्यप्रयोगस्याखिलस्य च ॥
 सामिधेनीभिरेवं वै पुरोऽभिमन्त्र्य तादृशैः । तथा पत्नीसंयाजान्त निरूपणमुखादितः ॥
 तस्मात्तदेतत्सूत्रीयाणामेव नितरां मतम् ॥

सूत्रान्तरेण संस्कारेदोषः

यदा स्मार्तं तथैव स्याद्यदन्येन कदाचन । सूत्रेण संस्कृतो मोहात् पुनः संस्कारमर्हति ॥
 स्वसूत्रोक्तेन विधिना न चेत्पातित्यमर्हति । शाखां शिखां च सूत्रं च समयाचारमेव च ॥
 पूर्वैराचरितं कुर्यादन्यथा पतितो भवेत् । पूर्वोक्तानां तु सर्वेषां षण्णामपि च सूत्रिणाम् ॥
 शाखेयं तैत्तिरी इत्या शिखा तेषां पुरो भवेत् । बौधायनीयसूत्राणां तत्र केचन बाडवाः ॥
 पश्चाच्छिखा दुर्लभाः स्युस्तेऽत्यन्तं प्रतिपादिताः ।
 अत्यन्तात्युत्तमत्वेन तद्विन्नाश्च तथा पुनः ॥
 जघन्यातिजघन्यत्वेनैवेति निखिला जगुः ॥

शिखाधारणप्रकारः

पुरःशिखा यदि पुनः याजुषा बहृचास्तथा ।
 छन्दोगा वा न तैस्तुल्या बौधायनिभिरञ्जसा ॥
 पुरश्शिखैः किंपुनश्चेदधिका एव केवलाः ।
 वैदिकाश्च महात्मानः पङ्क्तियोग्या इति स्मृताः ॥
 प्रायेण भूतले सर्वे याजुषा बहृचास्तथा । न्यङ्गवैकल्यरहिताः सर्वत्रायुत्तमोत्तमाः ॥
 छन्दोगेषु तु सर्वत्र जघन्याः स्युः कचित्कचित् । ते त्यक्तवेदसूत्रत्वादप्यवेदपरिग्रहात् ॥
 संगृहीतान्यसूत्रत्वात् द्वाभ्यां तेषां जघन्यता । तेषां सदाप्येतदेव दूषणं नान्यदुच्यते ॥
 कदाचित्ते तु निखिलाः छन्दोगाः कालभेदतः ।
 संत्यक्तवेदसूत्राः स्युः प्रायेणैवेति तत्त्वतः ॥

ते जैमिनीयाः सूत्रा ये सर्वे पूर्वाःशिखाः स्मृतवः ।

तथा वैखानसाः केचिदौखेयाश्च तथा मतः (ताः)॥

भारद्वाजीयाः सूत्रे तु यदि स्युश्चेत्तथाविधाः ।

त एव तेषां विहिताः नान्येषामिति तद्भ्रुवम् ॥

यो वा को वा पुनर्वच्मि स्ववेदं वा स्वसूत्रकम् ।

त्यक्त्वा समाश्रयेदन्यं सद्यः पातित्यमर्हति ।

वेदत्यागेनास्य वेदस्वीकारात्सद्य एव वै ॥

शाखारण्डो भवेन्नूनं न योग्यो हव्यकव्ययोः ।

न पङ्क्तियोग्यश्च तथा स तु स्यान्नित्यकिल्विषी ॥

तद्दोषपरिहाराय पुनर्वदं समभ्यसेत् । पश्चात्पुनः संस्कारेण धेनुदक्षिण्या च सः ॥

शुद्धो भवेन्न चेन्नैव त्यक्तसूत्रश्च चोदितः । एतेनैव प्रकारेण स्वसूत्रात्संस्कृतः शिवः ॥

न चेद्भ्रष्टो न संदेहोऽप्यप्रवेश्यश्च पङ्क्तिषु । न समत्वेनोपवेश्यः सभासु स तु गर्हितः ॥

कदाचिद्द्वैवतोमार्गमध्ये यदि मृतस्य चेत् । श्रोत्रियासन्निधौ विप्रदुर्घटे गहनेऽथवा ।

तल्लब्धसूत्रतः कृत्वा येन केन प्रकारतः । पश्चात्सम्यक् स्वसूत्रोक्तविधिना चित्तपूर्वकम् ॥

सर्वं तत्पैतृकं कर्म धर्मज्ञसमयस्तथा । यदि कीकटदेशेषु विप्रशून्येष्ववर्त्मसु ॥

संप्राप्तं प्रेतकृत्यं तदमन्त्रापेक्षया परम् । येन केनापि विधिना संस्कारं तन्निवर्तयेत् ॥

आहिताग्निविषयः

यद्याहिताग्निदू राग्निर्नष्टाग्निर्वा तथाविधः । मृतश्चेत्तस्य तूष्णीकं दहनं चेत्समञ्जसम् ॥

न चेत्तस्य पुनः कर्तुं कर्म यत्पैतृकमधिकम् । येन केन प्रकारेण यद्वा तद्वा कृतं यदि ॥

तत्परं तस्य विधिना कर्मणः करणे बहु । बाधकं प्रभवेन्नूनं तथा तत्तु समाचरेत् ॥

शिखानिधानं सर्वेषां चौलकर्मणि शास्त्रतः ।

छन्दोगानां तु गोदानव्रते तत्कथितं पुनः ॥

चौलाभावेऽपि तूष्णीकं वृत्तये वत्सरे तु तत् ॥

उपनयने शिखाधारणम् जातकर्मादीनां सर्वेषामुपनयनकाले कर्तव्यता

शिखानिधानं कार्यं स्यादित्येवं मनुब्रवीत् ।

मौञ्ज्यां कृत्स्नस्य जातादिकर्मणः करणं स्मृतम् ॥

तस्मिन्नेव दिने तेन कर्मणा तत्समाचरेत् । कर्मणामपि सर्वेषामकृतानां स्वकालके ॥

स्वकालविहितेनैव कर्मणा करणं विधिः । प्रधानकर्मणः पूर्वं गतस्य करणं स्मृतम् ॥

न तु पश्चादिति विधिः नापि पूर्वदिनेऽपि वा ।

गतानि यानि कर्माणि कृत्वा तानि क्रमेण वै ॥

पश्चात्प्राधानिकं कर्म कुर्यादित्येव सा श्रुतिः । समयाचारशब्देन कर्म स्मार्तं तदुच्यते ॥

प्रकृते तस्य यत्प्रोक्तं प्रतिपादकमञ्जसा । सूत्रं तदेव नान्यत्तु तदेतद्यच्चतुष्टयम् ॥

पूर्वैराचरितं कार्यं पूर्वं पितृपितामहाः । प्रपितामहाद्याः स्युस्ते तैरशास्त्रकृतं (विहितं) तु चेत्

तस्याज्यमेव सुतरां शास्त्रीयं यत्तदाचरेत् । स्वसूत्रोक्तप्रकारेण स्मार्तं कर्म श्रुतीरितम् ॥

तत्र ब्राह्मण्यकरणं मौञ्जीकर्मोत्तमं स्मृतम् । तद्योग्यतापादकानि जातकादीनि मुख्यतः ॥

कर्तव्यत्वेन चोक्तानि तत्पश्चात्तत्समाचरेत् । जाते पुत्रे जातकर्म विहितं शास्त्रवर्त्मना ॥

तत्क्रियायोग्यतासंपादनाय स्नानमुच्यते । तच्च स्नानं विशेषेण जातमात्रे विधीयते ॥

सद्यो बहिर्जले कुर्यात्कुर्वन् स्थापनमञ्जसा ।

यावत्प्राणं सत्त्वरेण चैलं कट्यां दृढं स्वयम् ॥

त्रिवेष्टयित्वातिमुदा बन्धयित्वा च पर्वणि । सद्योषं निपतेदप्सु चोर्ध्वं तत्सलिलं यथा ॥

प्रोद्गच्छेत्सर्वतो दूरं चक्रमन्निपतेत्तथा । तदुत्क्षिप्तेनोदकेन पितरोऽस्य तदुन्मुखाः ॥

अत्यन्तवृष्टाः सुखिताः क्षुत्पिपासाविवर्जिताः ।

आनन्दसागरे मग्नाः भवेयुर्हृतकश्मलाः ॥

तथा स्नात्वा तटं प्राप्य स्नानतर्पणतः परम् । वस्त्रद्वयं पीडयित्वा भूतलेऽत्यन्तभक्तिः ॥

एतज्जलं च केषांचित्पितृणामिति चेतसा । दृढवस्त्रः सुपुण्ड्रश्च जातकर्म समाचरेत् ॥

नान्दीश्राद्धं विधानेन हिरण्येनात्मकेवलम् । कर्तव्यमविलम्बेन शुचिना दर्भपाणिना ॥

कर्मणस्तस्य पूर्वं वा पश्चाद्वा तत्समाचरेत् ।

• संकल्पपूर्वकं मन्त्रैः दिवस्पर्थादिभिः शिवैः ॥

अभिमर्शनकर्मादि कृत्वा माधवकर्म च । व्याहृतीभिः प्रकुर्वीत मेधां तेति च मन्त्रतः ॥

त्वयि मेधामिति प्रोक्त्वा नैष्टक्यं कर्म चाचरेत् ।

अथाग्निं च प्रतिष्ठाप्य फलीकरणवस्तुतः ॥

हावयित्वा सर्षपैश्च प्रैषं कुर्याच्च शास्त्रतः ।

ततस्तमग्निं विधिना धारयित्वैव तच्छिशोः ॥

रक्षार्थं होममात्रं तत्कुर्यादन्वहमेव वै । प्रथमे दिवसे होमात्परं सत्वरमेव वै ॥

अर्चयेद्ब्राह्मणान् भक्त्या गन्धाक्षतसुमादिभिः ।

ताम्बूलदक्षिणाभिश्च धान्यदानैरनेकशः ॥

वस्त्रैर्गोभिर्धनै रत्नैः शक्त्या लोभविवर्जितः ।

सर्वमङ्गलवाद्यानि कारयित्वैव शक्तितः । सुमङ्गल्यर्चनं नित्यं तद्गानैकप्रपूर्वकम् ॥

नीराजनं मन्त्रपूर्वमाशिषश्च क्रमात्समृताः । नित्यमेवं प्रकर्तव्यं सत्यां शक्त्यामतत्परः ॥

उत्सवो नास्ति सर्वेषां तस्मादेवं समाचरेत् । पुत्रजन्मनि यद्वत् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥

पित्रोः क्षयाद्दैन्यनयोः दत्तं भवति चाक्षयम् ।

तस्मात्सवप्रयत्नेन शक्त्या दानानि चाचरेत् ॥

महत्युत्सवे तादृशेऽस्मिन् लोभशाठ्यविवर्जितः ॥

नामकरणम् अन्नप्राशनम् चूडाकर्म

एकादशे द्वादशे वा नामकर्म च शास्त्रतः । व्यवहाराय नाम्नस्तु पिता कुर्यात्कलत्रवान् ॥

बलवीर्यादिसिद्धयर्थं षष्ठेऽन्नप्राशनं चरेत् । भूरपामिति मन्त्रैस्तैः रक्षाबन्धनपूर्वतः ॥

ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र शक्त्या दक्षिणया तथा ।

ततस्त्रैतीयके वर्षे चूडाकर्म विधानतः ॥

कुर्यादङ्कुरपूर्वं वै संकल्पानन्तरं शुचेः । कृत्वा प्रतिष्ठां विधिना कुमारं वर्णिभिः सह ॥

जनन्या भोजयित्वाऽथ कृत्वा दिग्वपनं शुचैः ।
 पश्चाद्भागो प्राङ्मुखस्य कृत्वा कर्मक्षुरं तथा ॥
 निक्षिपेच्च शिखां मन्त्रौर्वाद्यघोषप्रपूर्वकैः ।
 ततः स्नातं कुमारं तं मात्रा साकं स्वयं शुचिः ॥
 निकटे स्वस्योपवेशयित्वा कर्म (कुर्यात्) तदादिकम् ।
 पवित्रपाणिरखिलं कुर्याद्ब्राह्मणसाक्षिकम् ॥
 तदन्ते ब्रह्मणे दत्त्वा परं शक्त्या द्विजान् ततः ।
 पूजयित्वा दक्षिणादिप्रदानैर्लोभवर्जितः ॥
 नीराजनाशीर्वादादि गृहीत्वा ब्राह्मणानथ ।
 भोजयित्वा विधानेन स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥

एवं निर्वर्त्य तदनु तां मौञ्जीमष्टमेऽपि वा । गर्भाष्टमे ब्राह्मणानां कर्तव्यत्वेन शास्त्रतः ॥
 चोदितत्वात्प्रकुर्वीत गर्भैकादशवत्सरे । राजन्यानां विशां चेत्तु गर्भद्वादशवत्सरे ॥

मुख्यकालाः प्रकथिताः गौणकालान् परे जगुः ।

ब्रह्मवर्चसकामश्चेत् पञ्चमाब्दे समाचरेत् ॥

नवमो दशमश्चाब्दः षष्ठो वत्सर एव च ।

काम्यकाला ब्राह्मणस्य राजन्यस्य तथाष्टमः ॥

नवमो दशमश्चापि वत्सरात्कामनापराः । वैश्यस्य नवमः प्रोक्तः दशमस्तदनन्तरम् ॥

संवत्सराः काम्यकाला इति वेदविदो विदुः । सुमहानुपपत्तौ चेदाषोडशकवत्सरात् ॥

बाडवं चोपनीतैवमाद्वाविंशत्तु भूसुरा । वैश्यं चेदाचतुर्विंशादिति वेदानुशासनम् ॥

तदूर्ध्वं पतिता होयाः सर्वकर्मबहिष्कृताः ।

जातकादीनि कर्माणि स्वस्वकालाकृतानि चेत् ॥

उपनीत्यैव कार्याणि तदा तेषां प्रधानतः ।

विद्यमानाखिला धर्माः समुख्याः प्रभवन्ति वै ॥

प्रकृतस्यैव तस्यास्य धर्मा ये शास्त्रचोदिताः । तेषामेव प्रधानत्वेनैव स्याद्गणना परा ॥

तेषां ततः पुरोक्तानां जातादीनां तु कर्मणाम् ।

मौञ्जीकाले मन्त्रमात्रक्रिया कार्या न चापरा ॥

नाद्यङ्कुरप्रतिसरक्षुरादीनां पृथक् पृथक् । करणं शास्त्रविहितं न भवत्येव सर्वथा ॥

तस्मान्मौञ्ज्या कदाचित्तु चूडाकर्मकृतौ तथा ॥

उपनयनकालकृतानां पृथक् क्षुरकर्माभावः

नान्यादिवत्क्षुरस्यापि न पृथक्करणं मतम् । तन्मात्रस्य पृथक्त्वेन करणे किल केवलम् ॥

कुमारमातृभुक्त्यादि प्रसक्त्या प्राकृतं महत् । कर्मोपनयनं सद्यो व्यर्थं नष्टं भवेदतः ॥

उपनीत्या सहैव स्यान्मातृमाणवकक्रिया ।

भुक्त्याख्या वर्णिनां चापि तत्पश्चादखिलक्रिया ॥

मौञ्ज्यास्तस्या इति परं तत्त्वं ज्ञेयं महात्मभिः ।

सर्वं तदोपनयनात्तस्य बालस्य केवलम् ॥

इच्छाभक्षणसञ्चारभाषणानीति धर्मतः । विहितान्येव तेषां तु शुचिश्चाशुचिरेव च ॥

तथाविधिनिषेधो वा पित्रोराशौचमेव यत् । तन्मात्रमेव तच्चापि मातुस्तद्रजसोद्भवम् ॥

यन्मालिन्यं स्तन्यपानजं वा नैषां परं तु तत् ।

अहर्मात्रस्य कृत्स्नस्य रात्रिमात्रस्य वा तथा ॥

निद्रया स्नानसंप्राप्तिः तच्च स्नानं समन्त्रतः ।

उष्णोदकेन कृत्स्नस्य गात्रस्य क्षालनं परम् ॥

सम्यक् सर्वत्र नान्यत्स्यात्तच्चतुर्थाब्दिकात्परम् ।

तत्पूर्ववन्न भवति ज्ञानाभावे तु केवलम् ॥

त्यक्तस्तन्यस्य घटिकामात्रसंवासतस्तथा । स्नानं स्यादेव संत्यक्तस्तन्यपानस्य पूर्ववत् ॥

सर्वमेव भवेन्नूनं परं त्वेकं पुनर्मतम् । तन्मालिन्यं नास्य भवेत्तदोपनयनात्किल ॥

मौञ्ज्याः परं सर्व एव नियमाः सर्ववर्णिनाम् ।

क्षत्रियाणां च वैश्यानां नवमाब्दात्परं पुनः ॥

कामभक्षः कामचारः कामवादश्च निन्दिताः ।

पितृभ्यां शिक्षिणीयाश्च भीसंदर्शनमात्रतः ॥

न संताड्या बाधनीया लालनीयाश्च सन्ततम् ।

भग्नकामा न कार्याश्च प्राप्तकामाः प्रतोषिताः ॥

पुष्टाङ्गाश्चापि कर्तव्याः तत्क्रीडनकदानतः । हसन्मुखाः प्रकर्तव्याः न कार्याः प्ररुदन्मुखाः ॥

अज्ञानिनो ये पृथुकान् मनोभङ्गं प्रकुर्वते ।

तेषां लक्ष्मीर्यशोभाग्यं ओजस्तेजोद्युतिर्मतिः ॥

क्षणान्निर्मूलतां याति क्षयं वंशः समश्नुते ।

या नारी स्वार्भकं ज्ञानविकलं वा स्तनंधयम् ॥

पुत्रपौत्रमथान्यं वा स्वपोष्यापोष्यपात्रकर्म । अभावनष्टासंलब्धवस्तुसंप्रार्थनादिभिः ।

रुदन्तं देहि मे चेति ताडयन्तं पुनः पुनः । शपन्तं बहुधा मूढं ताडयत्यतिमौढयतः ॥

सा दुर्भगा नष्टभाग्या नष्टभर्ता विनष्टधीः । नष्टश्रीकामधान्यादिसंपत्का तत्क्षणाद्भवेत् ॥

तत्ताडनादिदुःखार्तरुदितध्वनिरुत्थितः । आब्रह्मलोकं व्याप्नोति तच्छ्रुत्वा पितरस्तु ते ॥

स्वताडनावमानातिलाघवात्यन्तदुःखिताः । अत्यन्तासह्यतदुःखसहस्रगुणशालिनः ॥

शपन्त्येनाभियंनित्यं वन्ध्यानष्टप्रजाथवा । नष्टायुष्या नष्टकामा गतश्रीर्गतमन्दिरा ॥

अलब्धाशरणापापा भवेत्येति(वत्वि)महाक्रुधा ।

तस्मात्तु सुतरां बालाः न प्रहार्या यतस्तु ते ॥

ज्ञानशून्याः परेषां तत्सुखः दुःखाविवेकिनः । ते भाषया चाटुवाक्यशतकैः प्रतिकारकैः ॥

सुखश्रोत्रकरैरभ्यस्तोषणीयाः पदे पदे । तदुद्धरणसञ्चार गतागतविडम्बनैः ॥

डो(दो)लालोडनतद्गीतितच्चित्ताकर्षणादिभिः ।

अत्यन्तोपायशतकैः यैः कश्चित्प्रीतिवर्धनैः ॥

जातहर्षाः प्रकर्तव्याः न भगनाशाः कदाचन ।

ये तूष्णीं दुर्भगा बालान् ज्ञानहीनान्तुषान्विताः ॥

न्यक्कुर्वन्तः छत्कुर्वन्तः वचोभिः श्रुतिदुःखदैः ।

तिरस्कुर्वन्ति तूष्णीकं तिरस्कारस्य तादृशः ॥

एतदिष्टसुराचार्यपैतृको जायते ध्रुवम् ।

तस्माद्बालान् वरान् स्वीयान् ज्ञानशून्यान् कदाचन ॥

न क्रुध्येन्नपि चाक्रोशेत्प्रहरेन्नपि भीषयेत् । तच्चित्ततोषणं ये वै प्रकुर्वन्ति तदा तदा ॥
ते सर्वे देवमुनिराड्योगिदेवद्विजन्मनाम् । तदनुग्रहपात्रं स्यादन्यथा न भवेत्तथा ॥

बालानां तुष्टये ये वे चिपिटादीन् भलादिभिः ।

तदा तदा प्रदास्यन्ति कृते तेषां सुरेश्वराः ॥

त्रयस्त्रिंशत्क्रोडिसंख्याः लोकपाला जगद्धिताः ।

वसवोऽष्टौ द्वादशापि सरुद्राः साप्सरोगणाः ॥

पितृभिः सहसुप्रीताः मूजिताः प्रभवन्त्यति ।

कन्यकां पूजिताः स्युश्चेत्तत्रापि ज्ञानवर्जिताः ॥

वर्षादूर्ध्वं विवाहस्य प्राक्तु किंकिणिकादिभिः । तत्तत्कीडनकापात्रैः मृदारुपरिकल्पितैः ॥
तद्भूषणैश्चैस्तत्सालभञ्जिकापुञ्जपुञ्जकैः । तेषां ततः पुरोक्तानां जातादीनां तु कर्मणाम् ॥
मौञ्जीकाले मन्त्रमात्रक्रिया कार्या न चापरा । नाद्यङ्कुरप्रतिसरक्षुरादीनां पृथक्पृथक् ॥
करणं शास्त्रविहितं न भवत्येव सर्वथा । तस्मान्मौञ्ज्या कदाचित्तु चूडाकर्मकृतो तथा ॥

उपनयनकालकृतानां पृथक्क्षुरकर्माभावः

नान्द्यादिवत्क्षुरस्यापि न पृथक्करणं मतम् । तन्मात्रस्य पृथक्त्वेन करणे किल केवलम् ॥
कुमारमातृभुक्त्यादिप्रसक्त्या प्राकृतं महत् । कर्मोपनयनं सद्यो व्यर्थं नष्टं भवेदतः ॥

उपनीत्या सहैव स्यान्मामाणवकक्रिया ।

भुक्त्याख्या वर्णिनां चापि तत्पश्चादखिलक्रिया ॥

मञ्ज्यास्तस्या इति परं तत्त्वं ज्ञेयं महात्मभिः । सर्वं तदोपनयनात्तस्यवालस्य केवलम् ॥
इच्छाभक्षण सञ्चार भाषणानीति धर्मतः । विहितान्येतेषां तु शुचिश्चाशुचिरेव च ॥
तथाविधिर्निषेधो वा पित्रोराशौचमेव यत् । तन्मात्रमेव तच्चापि मातुस्तद्रजसोद्भयम् ॥

यन्मालिन्यं स्तन्यपानजं वा नैषा परं तु तत् ।

अहर्मात्रस्य कृत्स्नस्य रात्रिमात्रस्य वा तथा ॥

निद्रया स्नानसंप्राप्तिः तच्च स्नानं समन्वृतः ।
 उष्णोदकेन कृत्स्नस्य गात्रस्य क्षालनं परम् ॥
 सम्यक् सर्वत्र नान्यत्स्यात्तच्चतुर्थाब्दिकात्परम् ।
 तत्पूर्ववन्न भवति ज्ञानाभावे तु केवलम् ॥

त्यक्तस्तन्यस्य घटिकामात्रसंवासतस्तथा । स्नानं स्यादेव संयुक्तस्तन्यपानस्य पूर्ववत् ॥
 सर्वत्रेव भवेन्नूनं परं त्वेकं पुनर्मतम् । तन्मालिन्यं नास्य भवेत्तदोपनयनात्किल ॥

मौञ्ज्याः परं सर्व एव नियमाः सर्ववर्णिनाम् ।
 क्षत्रियाणां च वैश्यानां नवमाब्दापरं पुनः ॥
 कामभक्षः कामचारः कामवाद्श्च निन्दिताः ।
 पितृभ्यां शिक्षणीयाश्च भीसंदर्शनमात्रतः ॥
 न संताड्याः बाधनीया लालनीयाश्च सन्ततम् ।
 भग्नकामा न कार्याश्च प्राप्तकामाः प्रतोषिताः ॥
 पुष्टाङ्गाश्चापि कर्तव्या तत्क्रीडनकदानतः ।
 हसन्मुखाः प्रकर्तव्याः न कार्याः प्ररुदन्मुखाः ॥
 अज्ञानिनो ये पृथुकान् लनो(लम्)भङ्गं प्रकुर्वते ।
 तेषां लक्ष्मीर्यशोभाग्यं ओजस्तेजो ह्युतिर्मतिः ॥

क्षणाग्निमूलतां याति क्षयं वंशः समश्नुते । या नारी स्वर्भक्तं ज्ञानत्रिकलं वा स्तनं धयम् ॥
 पुत्रपौत्रमथान्यं वा स्वपोष्यापोष्यपात्रकम् । अभावनष्टसंलब्धवस्तुसंप्रार्थनादिभिः ॥
 रुदन्तां देहि मे चेति ताडयन्तं पुनः पुनः । शपन्तं बहुधा मूढं ताडयत्यतिमौढयतः ॥
 सा दुर्भगा नष्टभाग्यां नष्टभर्ताविनष्टधीः । नष्टश्रीकामधान्यादिसंपत्का तत्क्षणाद्भवेत् ॥
 तत्ताडनादिदुःखार्तरुदितध्वनिरुत्थितः ।

आब्रह्मलोकं व्याप्नोति तच्छ्रुत्वा पितरस्तु ते ॥

स्वताडनावमानातिलाघवात्यन्तदुःखिताः । अत्यन्तासह्यतद्दुःखसहस्रगुणशालिनः ॥
 शपन्त्येनामियं नित्यं बन्ध्या नष्टप्रजाथवा । नष्टायुष्या नष्टकामा गतश्रीर्गतमन्दिरा ॥

अलब्धाशरणापापा भवेत्येति (वत्वि) महाक्रुधाः ।

* तस्मात्तु सुतरां बालाः न प्रहार्या यतस्तु ते ॥

ज्ञानशून्याः परेषां तत्सुखदुःखा विवेकिनः । ते भाषया चाटुवाक्यशतकैः प्रीतिकारकैः ॥
सुखश्रोत्रकरै रम्यैस्तोषणीयाः पदे पदे । तदुद्धरणसञ्चार गतागतविडम्बनैः ॥

डोलालोडनतद्गीतितच्चित्ताकर्षणादिभिः ।

अत्यन्तोपायशतकैः यैः कश्चित्प्रीतिवर्धनैः ॥

जातहर्षाः प्रकर्तव्याः न भगनाशाः कदाचन ।

ये तूष्णीं दुभगा बालान् ज्ञानहीनान्तुपान्विताः ॥

न्यक्कुर्वन्तः छत्कुर्वन्तो वचोभिः श्रुतिदुःखदैः ।

तिरस्कुर्वन्ति तूष्णीकं तिरस्कारस्य तादृशः ॥

एतदिष्टसुराचार्यपैतृको जायते ध्रुवम् ।

तस्माद्बालान् वरान् स्वीयान् ज्ञानशून्यान् कदाचन ॥

न क्रुध्येन्नापि चाक्रोशेत्प्रहरेन्नापि भीषयेत् । तच्चित्ततोषणं ये वै प्रकुर्वन्ति तदा तदा ॥

ते सर्वं देवमुनिराड्योगिदेवद्विजन्मनाम् । तदनुग्रहपात्रं स्यादन्यथा न भवेत्तथा ॥

बालानां तुष्टये ये वै चिपिटादीन् फलादिभिः ।

तदा तदा प्रदास्यन्ति कृते तेषां सुरेश्वराः ॥

त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्याः लोकपाला जगद्धिताः ।

वसवोऽष्टौ द्वादशापि सरुद्राः साप्सरोगणाः ॥

पितृभिः सहः सुप्रीताः पूजिताः प्रभवन्त्यति ।

कन्यकां पूजिताः स्युश्चेत्तत्रापि ज्ञानवर्जिताः ॥

वर्षादूर्ध्वं विवाहस्य प्राक्तु किंकिणिकादिभिः । तत्तत्क्रीडनकापात्रै र्मृदारुपरिकल्पितैः ॥

तद्भूषणौघैस्तत्सालम्बिकापुञ्जपुञ्जकैः । श्रीर्धार्तराष्ट्रमीर्महागौरी वाणी चैन्द्री दयारमा ॥

क्षमा शान्तिश्च पुष्टिश्च देवपत्न्योऽखिलास्तथा ।

मंगलानि च सर्वाणि हृदास्तीर्थानि च द्रमाः ॥

सरितः सागराः सप्त लोकास्ते पर्वतास्तथा । ऋषयश्च सप्तनीकाः सर्वे दीर्घायुस्तथा ॥

पूजिताः परिपूर्णार्थाः कृतार्थाश्च पदे पदे ।

पुष्टाङ्गास्तुन्दिलाश्च स्युः सत्यमेतन्मयोदितम् ॥

कन्यकामनसं सर्वेऽनुसृत्य सुतरां यतः । निवसन्त्येव तस्मात्तु प्रीणयेदतिहर्षयेत् ॥

तावतातेऽतिदृष्टाश्च प्रीता एनं क्षणेन वै । प्राप्तश्रियं प्रकुर्वन्ति नष्टदौर्भाग्यवत्तमम् ॥

दीर्घायुषं सुप्रजसं नित्यारोग्यसुपुष्टिकम् । तस्मात्तु कन्यकादानं सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥

महादानसहस्रेण तुलितं तत्पुनर्मया । निरूप्यते विविच्यैव महादाननिरूपणे ॥

उपनीतधर्माः ओमित्येकाक्षरमित्यादिमन्त्रस्वरूपम्

उपनीतस्तु पित्रा यो द्विजोक्तनियमस्सदा । न भवेदेव तस्मात्तु द्विजत्वं प्राप्तवान् यतः ॥

कृतकालत्रयमहामन्त्रसन्ध्यो महाशुचिः । कृताग्निकार्यः सुमनाः दण्डाजिनधरो भवेत् ॥

सन्ध्यामन्त्राश्च ये ते स्युरापोहिष्ठादिकाः पुरा ।

मया निरूपिताः सर्वे गायत्रीप्रमुखाः शिवाः ॥

तदर्थस्तत्क्रियाश्चापि तदुत्पत्त्यस्त्वर्त्तम् च । अतोऽत्र सर्वं तद्भूयो न वाच्यं हि ततः परम् ॥

यत्तदेव प्रवक्तव्यं शिष्टं मन्त्रगणादिकम् ।

ओमित्येकाक्षरादि स्यात् सप्तत्रिंशात्मको मनुः ॥

आद्यपादे त्वष्टवर्णाः द्वितीये दशवर्णकाः । तृतीये द्वादशार्णाः स्युः तुरीयः सप्तवर्णकः ॥

ओंकारब्रह्मणोरैक्यप्रतिपादनहेतवे । मन्त्रोऽयं प्रथमः श्रीमान् जयादौ विनियोजितः ॥

तद्ब्रह्मशब्दनिर्वाच्यगायत्र्यागमसिद्धये । द्वितीयमन्त्रः कथितः आयात्विति ततः परम् ॥

द्वात्रिंशद्वर्णगणकस्तुर्यपादे तु तस्य वै । सवयोर्भेदतो ज्ञेयः सप्तमार्णस्य तादृशः ॥

गायत्रीमिति यः शब्दः तृतीयान्तश्च केवलः ।

प्रथमार्थे विनिर्दिष्टः गायत्री तादृशी शिवा ॥

मे ब्रह्मेदं जुषस्वेति जुषतामिति चार्थकः । यद्ब्रह्मादिति मन्त्रोऽयं तादृग्ध्यानफलार्थकः ॥

द्वात्रिंशद्वर्णघटितः सर्वपापापनोदकः । सर्ववर्णेति मन्त्रोऽयं सर्वेषां तदनन्तरम् ॥

संस्थितानामो जोऽसीति ह्यनुपङ्ग इति स्मृतः । सप्तानामपि मन्त्राणां यजुषां पूर्वतोऽपि वा ॥

• परतो वानुपङ्गः स्यात् सोऽयं मास्त्वस्तु वा पुनः ।

विकल्पानामत्र पुनः समः प्राधान्यतो मतः ॥

अतो यस्य यथेच्च वै तदङ्गीकरणं भवेत् । अभिभूरो महामन्त्रः सर्वाकर्षणसुक्ष्मः ॥

गायत्रीमुखदेवीनां छन्दर्षीणां च सश्रियाम् ।

एभिश्च पञ्चभिर्मन्त्रैः स्वात्मन्यावाहनं चरेत् ॥

गायत्रीमावाहयामीत्यादिकैः पञ्चभिः शिवैः । महात्मनो ब्राह्मणस्य सर्वदेवस्वरूपता ॥

अभिवृद्धिस्तेजसः स्यात्प्रतिनित्यं त्रिवारतः । छन्दर्षिदेवतानां च तथाङ्गानां च बोधकाः ॥

यजुर्विशोषागायत्राः शिखान्ताः सप्त कीर्तिताः ।

अथ पत्रात्पृथिव्योनिः प्राणापानादिकं यजुः ॥

विनियोगान्तकं त्वेकं गायत्री रूपबोधनात् ।

आरभ्य तस्या देव्या वै गायत्र्या स्वीकृतौ मतम् ॥

समीपवाचकः सोऽयमुपशब्दः प्रकीर्तितः । नयनं स्यादानयनं आकर्षणमिति स्मृतम् ॥

गायत्रीस्वरूपम्

ओं भूर्भुवस्सुवश्चेति प्रथमं शीर्षमुच्यते । ओमित्येतद् द्वितीयं स्याच्छीर्षं तस्यास्ततः पुनः ॥

तत्सेति तु तृतीयं च शीर्षं वेदमयं परम् । यजुर्वेदं भर्ग इति पादस्तुर्यमिहोच्यते ॥

धियो योनः पञ्चमं स्याच्छीर्षकं सामरूपकम् ।

त्रिपात्वं स्पष्टमेव स्यात्तत्स भर्गो धियादिकैः ॥

तत्सवितुर्हि प्रथमा कुक्षिर्वेदाश्रया शिवा ।

वरेण्यं तु द्वितीया स्यात्कुक्षिः शास्त्रमयोऽपि वा ॥

भर्गो देवस्य शक्त्याख्या तृतीया तु प्रकीर्तिता ।

धीमहीति तुरीया स्यात्कुक्षीर्लोकमयी तथा ॥

धियो योनस्सुरमयी कुक्षिः सा पञ्चमी परा । प्रचोदयाद् ब्रह्ममयी षष्ठी सा सर्वरूपिणी ॥

अत्र यः सप्तमो वर्णः स तु वर्णद्वयात्मकः । णकारश्च यकारश्च द्वावित्येव मनीषिभिः ॥
 ज्ञात्वा तु वैदिकैः सर्वे र्जप्यो वेदे यथैव सा । गायत्री सर्ववेदानां जननी ब्रह्मनामिका ॥
 शिष्टा मन्त्रा यथावच्च पूर्वमेव निरूपिताः । अस्य मन्त्रस्य महतो देवत्वात्सवितुस्ततः

प्रातरुपस्थानमन्त्राः

जपान्ते तदुपस्थानं यजुर्भिस्तत्समाचरेत् । ऋग्रूपैरेव गायत्री प्रमुखैर्वेदमध्यगैः ॥
 मित्रस्येति त्रिभिर्दिव्यैः प्रातःकालेषु सन्ततम् ।
 प्रथमं तत्र मित्रस्य पश्चान्मित्रो जनानिति ॥
 प्रसमित्रेति पश्चात्तु तत्क्रमो वेदमध्यगः । शाखिनां निखिलानां च मित्रस्येति त्रयं तदा ॥
 यजुर्वेदोक्तरीत्यैव वक्तव्यं नान्यमार्गतः । एवमग्निश्च सूर्यश्च जलप्राशनचोदितौ ॥
 आपः पुनन्तु च तथा आमित्येकाक्षरं तथा । दशप्रणवगायत्री प्राणायामाख्यकर्मणि ॥
 या चोदिता पुरा सापि आयातु वरदा तथा ।
 यदह्नादिति मन्त्रश्च सर्ववर्णादिकं तथा ॥
 अभिभूरो पञ्चकं च तथा गायत्रिया ततः । प्राणापानेत्यादिकं च उत्तमे शिखरे ततः ॥
 आवाहिताया गायत्र्याः स्वस्मिन्नेव विधानतः ।
 यथेच्छाप्रेषणे तस्याः उपस्थानमुखेन वै ॥
 विनियुक्तो वेदविद्विस्तदेतच्च तथापरम् । स्तुतो मयेति चरमं यज्जुष्येव ततोऽखिलैः ॥
 नान्यत्र यत्र कुत्रापि तथा तस्माद्वेत्सदा । अभिवादनकालेषु सततं प्रवरं शिवम् ॥
 हो (त्र) प्रवरमार्गेण प्रवदेन्नान्यवर्त्मना । आध्वर्यवप्रवरतो ह्यभिवादनकादिषु ॥
 यदि क्रियाविशेषेषु कृतं चेन्नाशमाप्नुयात् ॥

मार्जनमन्त्रसंख्या

तथा सन्ध्यात्रये नित्यं चतुर्विंशतिमार्जने । आपोहिष्ठेति नवकं वारद्वयकृतं यतः ॥
 मन्त्रा अष्टादश स्युर्हि तदा ते याजुषाः पराः । मन्त्रा जातानर्चतस्ते वक्तव्यास्तद्व्यं परम् ॥

दधिक्राव्णेति परमं यथारुचि तु चोदितम् । तथा हिरण्यवर्णाश्च चत्वारो मनवोऽपि वै ॥
यथारुचि परं तेषां षण्णामपि हि पादने । पठने चापि नियमः तेषु कर्मसु वच्मि वः ॥
याजुषाणां ऋक्प्रकारकरणं त्वत्र निन्दितम् । बह्वृचानां तथा चोभयं बाधकाय न ॥

तथा किमर्थमित्युक्ते सान्ध्यं कर्माखिलं महत् ।

यजुर्वेदान्तर्गतं स्यान्न तदन्यत्र कुत्रचित् ॥

तस्मादशेषविप्राणां यजुर्मन्त्रविधानतः । सान्ध्यस्य करणे प्रोक्तं कर्मणो नेति बाधकम् ॥

यदि शुद्धयजूंष्यत्र सान्ध्ये कर्मणि मोहतः । शाखान्तरप्रकारेण तानि प्रोच्चरितानि चेत् ॥

भवेत्तु कर्मवैकल्यं विशयो नात्र वच्मि वः ।

त एते खलु षण्मन्त्राः ऋचः स्युश्च यजूंष्यपि ॥

वेदद्वयेऽपि चोक्तत्वात्स्वरभेदादिना तथा ।

महामन्त्रस्य तस्यास्या गात्र्याख्यस्य चेत्युनः ॥

तत्तच्छाखोक्तरीत्यैव जपादिक उदाहृतः ॥

माध्याह्निकाध्यम्

माध्याह्निकक्रियायां तु गायत्रीं सकृदेव हि । अर्घ्यमेकं समुच्चार्य देयं स्यात्तदनन्तरम् ॥

सौर्यास्त्रेण द्वितीयं तं हंसशुचिषदित्युच्यते । तत्तच्छाखोक्तरीत्यैव तं मन्त्रं समुदीरयेत् ॥

तच्चक्षुरिति सर्वेषां समुच्चारणकर्मणि । यजुर्वेदविधानेन प्रोक्तिस्सामिहिता परा ॥

पश्चाद्य उदमन्त्रोऽस्ति यजुरेव हि केवलम् । तदुपस्थानकृत्येऽस्मिन् बह्वृचानां विशेषतः

बह्वृचानां मन्त्रोच्चारणप्रकारः

उदुत्यवर्गो वक्तव्यः नित्योऽयं नान्यथा मतः । याजुषाणामत्र परं आसत्येनेत्यृगात्मकः

मनुः स्याद्यजुषः पश्चादुदुत्यं तमसस्पतिः । उदुत्यं च ततो भूयो मनुस्तदनुतादृशः ॥

चित्रं देवानामित्येकश्चत्वारः खलु तेऽखिलाः ।

सोऽयं चेत्तदुपस्थाने इमं मे वरुणो मनुः ॥

तत्त्वा यामि ततः पश्चात् यच्छिद्नीति पुनः परः ।
 यत्किं चेदं मनुर्भूयः कितवासः ततः परः ॥
 पञ्चमं ता (?) मध्यगताः पातकशत्रवः ।
 विनियुक्ता विशेषद्वौः प्रवाच्याः स्युस्ततोऽखिलैः ॥
 तस्मिन् कर्मणि सायाह्ने दिगादीनां ततः पुनः ॥

दिङ्मनस्कारः

तत्रत्यानामशेषाणां नमस्कारक्रियापरः । नमोऽनुवाकः सुमहान् वक्तव्यः कर्मसिद्धये ॥
 दिग्लिङ्गास्तत्र संख्याताः नमो गंगादिकैस्त्रिभिः ।
 यजुषि दशसंख्याकानि स्युः सर्वेऽत्र पावकाः ॥
 तदेवमखिलं प्रोक्तं साध्यं कर्मत्रयं महत् । एवं कृतोपनयनो द्विजमात्रोऽन्वहं तराम् ॥
 कुर्यात्तु सन्ध्यां नियतो न चेद्विप्रो भवेदयम् ।
 सन्ध्यामूलमिदं सर्वं ब्राह्मण्यं सर्वदेहिनाम् ॥
 वन्दनीयं प्रार्थनीयं पूजनीयं प्रयत्नतः । सेव्यं च दर्शनीयं च सन्ध्ययैतत्तु संपदः ॥
 ब्राह्मणस्य महत्त्वं तद्दीयतीति (?) न कैरपि ।
 सुरेन्द्रैः सर्ववेदैस्त्वा (वा) ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः ॥
 सुरोत्तमैर्महद्भिर्वा परिच्छेत्तुं हि शक्यते ।
 ब्राह्मण्यं खलु देवाना मप्यत्यन्तं हि दुर्लभम् ॥
 ब्राह्मणे सर्ववेदाश्च ब्राह्मणे सर्वदेवताः । ब्राह्मणे सर्वतीर्थानि तत्पादे दक्षिणे शिवे ॥
 सर्वे समुद्राः सरितः सदा कृपाः सरांसि च ।
 पुष्करिण्यः पुष्कराद्याः सर्वे यागास्तपांसि च ॥
 विविधान्यपि कृच्छ्राणि व्रतानि विविधान्यपि ।
 गावो द्रुमाश्च नियमाः दीक्षा यागाः सदक्षिणाः ॥
 शास्त्राणि च पुराणानि स्मृतयो विविधाः पराः ।
 आदित्या वसवो रुद्राः लोकपाला महौजसः ॥

पतिव्रतानां प्रवराः कामधेन्वादिकाः शिवाः ।

चिन्तामणिमहाव्राताः कल्पवृक्षा धराधराः ॥

सप्तर्षयो महात्मानः विप्रमात्रेऽनिशं पुनः । स्वभागधेयकार्याय वसन्ति किल सन्ततम् ॥

न ब्राह्मण्यात्परं वस्तु समं वा यत्रकुत्रचित् । भुवनेष्वस्ति सर्वेषु कलौ केचन पामराः ॥

ब्राह्मण्यादधिकत्वेन शैवं वैष्णवमेव च । गाणपत्यं च शाक्तं च तत्तदेकं पुनश्च हा ॥

वदन्तस्तेन नाम्ना च वयं युक्ताः सुभूषिताः ।

तन्नामधेयमस्माकं ब्राह्मण्या साधारणं यथा ॥

अधिकं सोमयाजित्वं वाजपेयत्वमेव वा । तत्पौण्डरीकयाजित्वं तथेदमपि चैककम् ॥

शैवादिकमिति प्रोचुर्ब्राह्मण्या व्याप्यत्वमुज्ज्वलम् ।

तदेतदत्यन्तमहामोहगाढविजृम्भितम् ॥

तद्व्याप्य धर्मो न भवेद् ब्राह्मण्यस्य कदाचन ।

अत्यन्तव्यभिचरितं शिवत्वादिकमल्पकम् ॥

तत्तु दर्शादियाजित्वं द्विजमात्रगतं यतः । तदसाधारणो धर्मः तच्छिवत्वाधिकं तथा ॥

सर्वथा न भवेदेव तस्माद् ब्राह्मण्यमेककम् ।

सर्वोत्तममिति प्रोक्तं आतीक्ष्ण्येति सा श्रुतिः ॥

अयं ब्राह्मण्य इत्येव प्रोवाच किल तादृशी । यावतीरिति तद्वाक्यं ब्राह्मणेनैव सन्ति हि

ब्राह्मणेभ्यो वेदविद्भ्यो नमस्क्रुर्यादिति स्म च ।

उदाहृत्य जगादैव तस्मात्तु ब्राह्मणोऽधिकः ॥

नित्यं ब्राह्मणशब्दोऽयं ब्राह्मणानां सुभूषणम् । शब्दान्तरं तु सततं शैवादि खलु तत्परम्

प्रभवेद्दूषणायैव नात्र कार्या विचारणा । एवं सत्यत्र केचित्तु कलिधर्मेण केवलम् ॥

दूषणं भूषणत्वेन स्वीकृत्य प्रत्युताद्यहा । तेनदूषणशब्देन भूषितान् दूषयन्त्यहो ॥

एतत्किमिति चोक्ते तु कलिधर्मस्तु तादृशः ।

कलौ नीचा महान्तः स्युः महान्तो नैच्यभागिनः ॥

प्रायेण भूतले शिष्याः बहवो गुरुदूषकाः । गुरुभक्ता अतिस्वल्पाः पुत्रा जनकदूषकाः ॥

भर्तुर्वैराः स्त्रियः सर्वाः प्रायेण जगतीतले ।

पतिव्रता अतिस्वलपाः ता न सन्तीति नास्त्यपि ॥

सन्त्येव तत्रतत्रापि साध्या भर्तुः परापराः । धरणी चापि निर्वीर्या निरौषधरसातराम् ॥

पापलोकैकसंकीर्णं सदा सज्जनदुर्लभा । तुच्छदेवगणाकर्णमहादेवातिदुस्तरा ॥

शनैः शनैरल्पितश्रीः वेदमार्गाकुशास्त्रवृत्ति ।

भाषारचितशास्त्रौघा महाशास्त्रातिदुर्लभा ॥

नटनर्तकसंप्राप्तपूजादूषितसज्जना । अत्यन्तार्थपरा भूपाः दयादाक्षिण्यदूरिताः ॥

तादृशेऽत्र कलौ किं किं नभवेदतिनिन्दितम् ।

सर्वं निन्दितमेव स्यात्प्रशस्तं यदनिन्दितम् ॥

प्राधान्यमनृतस्यैवाप्राधान्यं सन्ततं परम् । सत्यस्य खलु सर्वत्र तथापि विजोऽनिशम् ॥

सत्यस्यैव भवेन्नूनं नानृतस्य कदाचन । सत्यस्यानृतवद्भानं दुष्टजल्पनकथनैः ॥

पश्चाच्चिरेण सत्यस्याधानं च प्रभवत्यपि । अस्मिन्नर्थे प्रवक्ष्यामि पुनः पुनरतीव च ॥

चोरश्चोरो भवेदेव तथैव च मृषामृषा । पापं पापं भवेत्तद्वत् सत्यं सत्यं न चानृतम् ॥

धर्मस्य विजयो नित्यं नाधर्मस्य कदाचन । परं त्विदमधर्मस्य तत्त्वभानां कलौ ततः ॥

कालेन यत्नाद्भूयश्चातत्वेनैव न चान्यथा । तत्क्षणप्रतिसंहारः न्यायधमसतां तथा ॥

सत्यस्य च भवेत्पश्चादभ्युत्थानं यथा पुरा । कदाचिदनृतं सत्यं यदि स्यादपि केवलम् ॥

तत्सद्यस्तत्कुलं तस्य विलयं प्रापयिष्यति । अत्यन्यायमतिद्रोहमति क्रौर्यं कलावपि ॥

अत्यक्रमं चात्यशास्त्रं न कुर्यान्न च कारयेत् । कुर्वतां सर्वपापानि वर्णानां तत्क्रमेण वै ॥

वर्णानामाश्रमाणामुत्तरोत्तरं प्रायश्चित्तद्वैगुण्यम् संन्यासभेदाः

प्रायश्चित्तं द्विगुणतः सूतकं च तथा मतम् । यद्ब्राह्मणस्यैकगुणं तद्वाज्रज्यस्य धर्मतः ॥

द्विगुणं शास्त्रगदितं वैश्यस्य त्रिगुणं स्मृतम् । चतुर्गुणं तस्य ततः शूद्रस्येति मनीषिभिः ॥

कथितं शास्त्रतत्त्वज्ञैः तदेव गृहिणो मतम् । यत्तस्य द्विगुणं कृत्स्नं धर्मतो ब्रह्मचारिणः ॥

वर्णेन स्त्रिगुणं प्रोक्तं यत्तस्य चतुर्गुणम् ।

कुटीचकः स्यात्प्रथमः द्वितीयस्तु बहूदकः ॥

हंसस्तृतीयइत्युक्तः चतुर्थेस्तु तथापरः । यतिः परमहंसाख्यः कुटीचकवहूदकौ ॥
 षट्तीरयुक्तगायत्रीजापकौ शिखिनौ तथा । एकोपवीतिनौ स्यातां दण्डत्रयसमन्वितौ ॥
 भिक्षान्नप्राशनौ नित्यं ब्रह्मचिन्तापरायणौ । त्यक्तपुत्रकलत्रादिजनौ वैराद्यभागिनौ ॥
 एतद्भिन्नौ तावप्यन्यौ एकदण्डौ गताश्रयौ । त्यक्तोपवीतिनौ त्यक्तगायत्रकौ गिराश्रयौ ॥
 मन्त्रत्यक्तशिखौ सम्यक् जितरोषौ सपुण्ड्रकौ । गृहीतप्रणवौ सन्तौ ब्रह्मनिर्वाणमृच्छतः
 चतुर्विधानमेतेषां वैकल्ये किल कर्मसु । प्रायश्चित्तं तारतम्यात्प्राणायामविशेषतः ॥
 नान्येन येन केनापि तस्मात्तेषां जपं विना । प्रणवस्योत्तारणाया वर्तते जगतीतले ।

होमो दानं तपः कर्तुं नाधिकारोयतः स्मृतः ।

चित्तं दानादिभिः कृच्छ्रैः ब्रह्मचर्यादिकस्य चेत् ॥

आश्रमत्रितयस्याप्यधिकारः शास्त्रसंमतः । संप्राप्तानां तु चित्तानां करणाय महात्मभिः ॥

मुख्यात्कृच्छ्रमुखेनैव सरणिः सा निरूपिता ।

तानि कृच्छ्राणि साक्षाद्वै प्राजापत्यादिकानि हि ॥

कर्तुं न सत्वरं सर्वैः साक्षादीशमुखैरपि । न शक्यते हि सुतरां किंतु तानिप्रवच्मि वः ॥

प्रायश्चित्तप्रतिनिधिः

प्रत्यम्नायमुखेनैव न चेत्प्रतिनिधित्वतः । करणं सर्वदा प्रोक्तं ते स्युर्बहुविधाः पराः ॥

विधितः प्रतिनिधयः सम्यग्ब्राह्मणभोजनम् ।

गोदानं वा नदीस्नानं गोमूल्यं वा तथा परम् ॥

निष्कदानं च गायत्री दशसाहस्रसंख्यया । जपो वा संहितामात्रपारायणमथापि वा ॥

शिष्टान्नभोजनं चापि सामान्याहुर्मनीषिणः । सप्तगङ्गावगाहश्चेदष्टकृच्छ्रफलप्रदः ॥

यत्रकुत्रापि वैकत्र तासुनित्यं न संशयः । पारावारस्नानमेकं कृच्छ्रद्वादशदायकम् ॥

चापाप्रस्नानमेकं चेदब्दकृच्छ्रफलप्रदम् । भागीरथीमहास्नानं सर्वपापापनोदकम् ॥

अष्टोत्तरप्राजापत्यशतकृच्छ्रफलप्रदम् । गंगासागरसंगस्य स्नानमेकं तु तत्परम् ॥

अष्टोत्तरसहस्राणां कृच्छ्राणां फलदायकम् । तदेतज्जाह्नवीसिन्धुसङ्गस्नानं विशेषतः ॥

यतीनां प्रायश्चित्तानधिकारः

यत्यशक्यं हि सततं कृच्छ्रप्रतिनिधित्वतः। उक्तानामपि सर्वेषां भिक्षणां त्यक्तसंगिनाम्॥
गोदानप्रमुखानां च करणं त्वर्थमूलतः। न युज्यते हि सततं धातूनां तु परिग्रहात्॥

सद्यो भ्रष्टः प्रपतति मस्करी नात्र संशयः।

तस्माद्यतेस्तु चित्तं तत् तारब्रह्म विना न किम्॥

कृच्छ्राणां समनुष्ठानं त्यक्तसंगस्य तस्य वै। विधायकादिवरणं शालहोमादिकर्म च॥
प्रदानं दक्षिणायाश्च सभानुज्ञानमेव च। प्राच्याङ्गगोदानाख्यं च निन्दितं तद्यतेरति॥

तस्मात्परित्राट् मोहेन पापभाक् चेत्ततस्स तु।

आरूढपतितो ज्ञेयः चित्तं तस्य न विद्यते॥

वर्णाद्याश्रमिणां चेतु धनग्रहणयोग्यता। अस्ति यन्मानतो नूनं प्रायश्चित्तस्य कारणात्॥

नित्याधिकारिणः प्रोक्ता करणान्तस्य केवलम्।

अल्पायासेन ते सम्यक् तरन्त्येव त्रयश्च वै॥

वर्णी गृही वनी नित्यं तत्रापि प्रवरो गृही। सर्वस्य चित्तमात्रस्य नितरां धनमूलतः॥

कर्तव्यत्वेन तत्रास्मिन् प्रवरो हि गृही धनी।

तस्माद्गृहाश्रमः सम्यक् मर्त्यानां प्रवरः परम्॥

यस्मिंस्थितस्तु तरति निर्धूयाखिलकलिवषम्। धनदानमुखेनैव तत्रायं प्रवरो यतः॥

अधिकारी महाभागः गृहस्थः शास्त्रसंमतः। गार्हस्थ्यमेकं शिष्टानां शरणं कारकं परम्॥

आश्रयं सर्वधर्माणां स्थितस्तत्र कृती भवेत्। प्रत्यक्षकृच्छ्रकरणसामर्थ्यं चित्तहेतवे॥

न कस्यापि कदाचित्स्यात् किन्तु तेषां क्षणेन वै।

कतुं प्रतिनिधित्वेन शक्यतेऽर्थस्य दानतः॥

दानप्रशंसा

तस्मिन् दानेऽधिकारी स्याद् गृहस्थो धर्मतः स्मृतः।

अखिलाः कृच्छ्रचर्याश्च व्रतचर्याश्च केवलाः॥

दीक्षाचर्या यज्ञचर्याः सर्वचर्या क्षणान्तृणाम् । दानतः संभवन्त्येव तस्माद्दानपरो गृही ॥
भवेदेव विशेषेण तर्तुकामो विचक्षणः । दानं परं प्रशंसन्ति दानमेव परायणम् ॥

दानं बन्धुर्मनुष्याणां दानं कोशो ह्यनुत्तमः ।

दानं कावफला वृक्षाः दानं चिन्तामणिर्नृणाम् ॥

दानं पुत्रः परं द्रव्यं दानं मातापिता तथा । न दानेन विनाकिञ्चित्प्रार्थितं भलमाप्यते ॥

न दानशीलिनामापत्तस्माद्दानं समाश्रयेत् । हारनूपुरकेयूरपूरितोत्तममन्दिरम् ॥

लावण्यगुणसंपत्तिर्दानादेव हि लभ्यते । दानेन प्राप्यते स्वर्गश्रीर्दानेन हि लभ्यते ॥

दानेन शत्रून् जयति व्याधिदानेन नश्यति । दानेन लभ्यते विद्या दानेन युवतीजनः ॥

दानेन मोदते स्वर्गे स्वकैः सह चिरं नरः । धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमस्मृतम् ॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेव कलौ युगे ॥

युगेषु निखिलेष्वेव दानं साधारणान्मतम् । उत्तमत्वेत विबुधैः तस्माद्दानपरो भवेत् ॥

दानादृते नोपकाकारः दृश्यते धनिनः परः । दीयमानं हि तत्तस्य भूय एवाभिवर्धते ॥

यद्ददाति विशिष्टेभ्यो यच्चाशनाति दिने दिने ।

तद्वित्तं स्वमहं मन्ये शेषं कस्याभिरक्षति ॥

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम् । अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दानैरपि धनैरपि ॥

किमेतस्य प्रभवति तावतातस्तदुत्सृजेत् । पात्रभूतेषु विप्रेषु देशेकाले च सन्ततम् ॥

दानेन भोगी भवतिमेधावी वृद्धसेवया । अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुर्महर्षयः ॥

पापकर्मसमायुक्तं पतनं नरके नरम् । त्रायते दानमेवैकं पात्रभूते द्विजे कृतम् ॥

उक्तदोषगुणोपेतमुक्तदोषविवर्जितम् । कामधुग्बेनुवदानं फलत्यात्सोप्सितं फलम् ॥

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम् । सत्पात्रे प्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते ॥

यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय कल्प्यते ।

नापि कीर्त्यै न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

तस्माद्वित्तानि संपाद्य दद्याद्विप्राय भक्तितः ।

न्यायमार्गेण विबुधः कदाप्यन्यायवर्त्मना ॥

देवालयं नो विदधाति वा कुण्डं तटाकं न करोति रूपम् ।

पुण्यं विवाहं स्वजनोपकारं तथा प्रपां वा द्विजमन्दिरं वा ॥

धनं सदा भूमिगतं प्रकुर्यात् यदृच्छया लब्धमनन्यचित्तः ।

स्वयं न भुञ्जीत तथाविधं चेत्परोपकाराय भवेत्तु तद्धि ॥

अहन्यहनि याचन्तमहं मन्ये गुरुं यथा । अदत्त्वाहं दरिद्रोऽस्मि त्वं दत्त्वा भूयनी महान् ॥

मार्जनं दर्पणस्यैव यः करोति दिने दिने । दानप्रबोधकस्तस्मादरिद्रोऽयं नृणां सदा ॥

किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भंगुराश्रयाः । यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम् ॥

प्रासादार्धमपि प्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते । इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

अदाता पुरुषस्त्यागी धनं संत्यज्य गच्छति । दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ॥

अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा । तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपस्थितम् ।

बोधयन्ते न याचन्ते देहीति कृपणा जनाः । यैर्नमुक्तं न च हुतं तीर्थं न (.....?) ॥

(.....?) मरणं कृताः । हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम् ॥

दीना विवसना रुक्षाः कपालाङ्कितपाणयः । दृश्यन्ते किल सर्वत्र ते यैः पूर्वं जनैः किल ॥

सदाचाराः कुलीनाश्च रूपवन्तः प्रियंवदाः ।

बहुश्रुताश्च धर्मज्ञाः दातारः स्युः श्रियान्विताः ॥

अलब्धमुष्टिमात्रश्च याचमानाः परानति ।

दृश्यन्ते दुःखिनः सर्वे प्राणिनः सर्वदा भुवि ॥

अदत्तथा न जायन्ते परभाग्योपजीविनः ।

मा ददास्येति यो ब्रूयाद् गन्धर्गनौ ब्राह्मणेषु च ॥

तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते । एकेन तिष्ठताधस्तात् अन्येनोपरितिष्ठता ॥

दातृयाचकयोर्भेदः कदाभ्यामेव सूचितः । प्राप्तानामनुरूपाणां पात्राणां दानकर्मणः ॥

देशे कृत्स्नेपि काले वा नादेयं ह्यस्ति किंचन । उच्चैश्रवसमश्वं प्रापणीयं सतां विदुः ॥

अनुनीय यथाकामं सत्यसन्धो महाव्रतः । स्वैः प्राणैः ब्राह्मणः प्राणान् परित्राय दिवंगतः

रन्तिदेवश्च सांकृत्यो वसिष्ठाय महात्मने । अपः प्रदाय शीतोष्णाः नाकपृष्ठमितगतः ॥

आत्रेयः खण्डवमयोरर्हतो द्विविधं धनम् ।

दत्त्वा लोकान्ययौ धीमान् अनन्तास्स महीपतिः ॥

शिविकाशी नरोऽङ्गानि पुत्रं च प्रियमौरसम् । ब्राह्मणार्थं (.....?) नाकपृष्ठमुपागतः ॥
प्रतर्दनः काशिपतिः प्रदाय नयने स्वके । ब्राह्मणायातुलां कीर्तिं इह चामुत्र चाश्नुते ॥
दीर्घमृष्टशलाकं तु सौवर्णं परमृद्धिमत् । छत्रं स्वर्णमयं दत्त्वा सराष्ट्रोऽप्यव(प)तद्विवम् ॥
संकृतिश्च तथात्रेयः शिष्ये (... ?) गुणम् उपदिश्य महातेजाः गतो लोकाननुत्तमान् ॥
अम्बरीषोद्भदे दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यः प्रतापवान् । अर्बुदानि शतैकं च सराष्ट्रोऽभ्यपतद्विवम्
सावित्रः कुण्डले दिव्ये शरीरं जनमेजयः । ब्रह्मणार्थं परित्यज्य जग्मतुर्लोकमुत्तमम् ॥
सर्वरत्नं वृषादर्विः यवनाश्वः प्रियां स्त्रियम् । रम्यभावसयं चैव दत्त्वा स्वर्लोकमाश्रितः ॥

निमिराष्ट्रं च वैदेहो जामदग्न्यो वसुंधराम् ।

ब्राह्मणेभ्यो ददौ चापि गयश्चोर्वीं सपट्टणाम् ॥

राजामित्रसहश्चैव वसिष्ठाय महात्मने । मदयन्तीं प्रियां दत्त्वा तया सह दिवंगतः ॥

सहस्रजिच्च राजर्षिः प्राणानिष्टान् महायशाः ।

ब्राह्मणार्थं परित्यज्य गतो लोकाननुत्तमान् ॥

सर्वकामैश्च संपूर्णं दत्त्वा वेश्म हिरण्मयम् ।

मुद्गलाय गतः स्वर्गं शतद्युम्नो महायशाः ॥

नाम्ना च द्युतिमान्नाम साल्वराजप्रतापवान् ।

दत्त्वा राज्यमृचीकाय गतो लोकाननुत्तमान् ॥

मद्राजश्च राजर्षिः दत्त्वा कन्यां सुमध्यमाम् ।

सुवर्णहस्ताय गतो लोकान् देवैरभिष्टुतान् ॥

रोमपादश्च राजर्षिः शान्तां दत्त्वा सुतां प्रभुः ।

ऋष्यशृङ्गाय विपुलैः सर्वकामैर्युज्यतः ॥

दत्त्वा शतसहस्रं तु गवां राजा प्रसेनजित् ।

सवत्सानां महातेजा गतो लोकाननुत्तमान् ॥

एते चान्ये च बहवो दानेन तपसा सह ।

महात्मनो गताः स्वर्गं शिष्टात्मानो जितेन्द्रियाः ॥

तेषां प्रतिष्ठिता कीर्तिः यावत्स्थास्यति मेदिनी ।

दानैर्यज्ञैः प्रजासर्गैः एते हि दिवमाप्नुयुः ॥

अर्थानामुत्तमे पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानमित्यभिनिदिष्टं सर्वशास्त्रैकनिश्चितम् ॥

द्विहेतुषडधिष्ठानं षडङ्गं षड्विपाकयुक् । चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते ॥

नाल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युदयावहम् ।

श्रद्धा भक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे स्मृते ॥

धर्ममर्थं च कामं च ब्रीडाहर्षं भयानि च । अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि विदुर्बुधाः ॥

दानभेदाः

पात्रेभ्यदीयते नित्यं अमपेक्षप्रयोजनम् । केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते ॥

प्रयोजनमपेक्षयैव प्रसंगाद्यत्प्रदीयते । तदर्थदानमित्याहुः ऐहिकं फलहेतुकम् ॥

स्त्रीपानमृगयाक्षाणां प्रसंगाद्यत्प्रदीयते । अनर्हेषु च रागेण कामदानं तदुच्यते ॥

संसदि क्रीडया स्तुत्या चार्थार्थिभ्यः प्रयच्छतः । प्रदीयते च यद्दानं क्रीडादानं तदुच्यते ॥

दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षाद्यत्प्रदीयते । हर्षदानमिति प्राहुर्दानं तद्धर्मचिन्तकाः ॥

आक्रोशार्थहिंसानां प्रतिकाराय तद्ववेत् । प्रतिबन्धकरादित्यहेतवे तत्प्रशस्यते ॥

भयदानमिति प्रोक्तं फलदं नैव तद्ववेत् । अपापोरोगिधर्मैकदित्सुरप्यसनश्शुचिः ॥

अनिन्द्यशिवकर्मा च षडभिर्दाता प्रशस्यते ।

पात्रं श्रद्धा च भक्तिश्च देयमित्यभिचिन्तनम् ॥

देशकालश्च दानानां अङ्गान्येतानि षड्विदुः ।

त्रिशुक्लकृशवृत्तिश्च घृणालुः सकलेन्द्रियः ॥

विमुक्तो योनिदोषेभ्यः ब्राह्मणः पात्रमुच्यते । सौमुख्याद्यभिसंपत्तिरर्थिनां दर्शने सदा ॥

सत्कृतिश्चानसूया च तथा श्रद्धेति कीर्त्यते । अत्यावश्यककर्तव्यचिन्तनं भक्तिरुच्यते ॥

एतद्धनं मया देयं तदा तस्मै च तत्र वै । अभिचिन्तनमित्युक्तं मित्येव यत्तदु स्मृतम् ॥
गंगाप्रतीरादिदेशः दानकृत्याय चोदितः । देश इत्येवविद्वद्भिः कालोऽपि ग्रहणादिकः ॥

केचित्त्वत्र पुनः प्रोचुः प्राक्रारान्तरमाश्रिताः ।

तमप्यत्र प्रवक्ष्यामि महात्मानो जितेन्द्रियाः ॥

अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेननार्जितं धनम् । स्वल्पं वा विपुलं वापि देयमित्यभिधीयते
यत्र यद् दुर्लभं द्रव्यं यस्मिन् कालेऽपि वा पुनः ।

दानार्हौ देशकालौ तौ स्यातां श्रेष्ठौ न चान्यथा ॥

दुष्फलं निष्फलं हा(दा)नं तुल्यं विपुलमक्षयम् । षड्विपाकयुगादिष्टं षडेतानिविपाकतः

दानस्यापात्राणि

नास्तिकस्तेनहिंस्तेभ्यः जाराय पतिताय च । मिथुनभ्रूणहर्तृभ्यः परक्षेत्रापहारिणे ॥
सद्द्रूषकाय च ग्रामद्रोहिणे ग्रामवाहिने । न्यायसंप्रा (?) कपरा जयानन्तमप्यति ॥
अजितोऽहमनिर्लज्जमिति वत्तत्रेऽतिपापिने । संजातस्पष्टदुष्कृत्यसत्यनष्टनृशालिने ॥
सत्यसंप्राप्तदौर्गत्यपराजयपराय च । तत्पराजयनिर्लज्जभयराहित्यवाक्छलैः ॥

प्रतिवादिद्रव्यहर्त्रे प्रदत्तं दुष्फलं भवेत् । अयं पापः क्रूकर्मा पापभीतिविवर्जितः ॥

निर्लज्जः कर्कशस्तीक्ष्णः परस्वागतमानसः ।

व्यवहारजितोऽत्यन्तं अजितोऽस्मीति वाद्यपि ॥

देवसन्निधितत्सत्यनष्टस्वनरशालयम् । इति ज्ञात्वापि यस्तेभ्यः दानं कर्म समाचरेत् ।

तन्निष्फलं भवेन्नूनं तस्मात्तन्न तथा चरेत् ।

अन्यद्द्रव्यं तस्य भोग्यमन्यप्राप्यं च कालतः ॥

तत्कालैकनिरुद्धं च विवादास्यददुस्तरम् । परबाधाकरं लुपं पुनः साधारणं तथा ॥

महदप्यफलं दानं श्रद्धया परिवर्जितम् । तद्दीनं दानमित्युक्तं न कार्यं तच्च निन्दितम् ॥

यथोक्तमपि यद्दत्तं चित्तेन कलुषेण वा । तत्तु संकल्पदोषेण दानं तुल्यफलं फवेत् ॥

युक्ताङ्गुलैः सकलैः षड्भिः दानं स्याद्विपुञ्चोच्यम् । अनुक्रोशवद्दत्तं दानमक्षय्यतां व्रजेत्

ध्रुवमार्जास्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् ।

वैरिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते बुधैः ॥

प्रपारामतटाकादि सर्वकामप्रदायके । ध्रौवमित्येव विख्यातं धर्मविद्धिर्महात्मभिः ॥

तदाजस्त्रिकमित्याहुः दीयते यहिनेदिने । अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीलाभार्थं यदिष्यते ॥

इच्छासंस्थं तु तद्दानं काम्यमित्यभिधीयते । कालापेक्षं क्रियापेक्षं अनापेक्षमिति स्मृतम् ॥

त्रिधा नैमित्तिकं प्रोक्तं पुनः सर्वं द्विधा स्मृतम् । सहोमं होमरहितं समन्त्रकमन्त्रकम् ॥

सद्धर्मकाधर्मकाभ्यां द्विविधं तत्त्रिधा मतम् ।

स चोत्तमानि चत्वारि मध्यमानि विधानतः ॥

अधमानि च सर्वाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ।

अन्नं दधि घृतं क्षीरं गोभूरुक्कमाश्वहस्तिनः ॥

दानान्युत्तमसंज्ञानि सुमहदद्रव्यदानतः । पुस्तकाच्छादनावासपरिभोगौषधानि च ॥

दानानि मध्यमानीह मध्यमद्रव्यदानतः । उपानट्प्रेखयानानि छत्रपात्रासनानि च ॥

दीपकाष्ठफलादीनि चरमं बहुधोच्यते । दत्तमिष्टमधीतं च विनश्यत्यनुकीर्तनात् ॥

तस्मादत्तादिकं स्वेन कीर्तयेन्न कदाचन । श्लाधानुक्रोशनाभ्यां च भग्नतेजा विपद्यते ॥

तस्मादात्मकृतं पुण्यं यत्नेन परिपालयेत् पुनरन्ये तु विबुधाः दानं प्रोचुश्चतुर्विधम् ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं चेति नामतः । अहन्यहनि यत्किञ्चिदीयतेऽनुपकारिणे ॥

अनुद्दिश्य फलं यत्तद्ब्राह्मणाय तु नित्कम् । यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे ॥

नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् । असत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत् प्रदीयते ॥

दानं तत्कामिकं प्रोक्तं मुनिभिर्मर्मचिन्तकैः । यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मबिद्भ्यः प्रदीयते ॥

चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तद्विमलं स्मृतम् । येन येन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥

ते न तेन हि भावेन तत्तत्प्राप्नोति निश्चितम् ॥

सात्त्विकादिदानानि

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥

सात्त्विकानां फलं भुङ्क्ते देवत्वेनात्र संशयः ।

बाल्ये वा दासभावे वा राजसानां फलं भवेत् ॥

तामसानां फलं भुङ्क्ते तिर्यक्तत्वे मानवस्सदा ।

कायिकं वाचिकं दानं मानसं च त्रिधा मतम् ॥

अर्हते यत्सुवर्णादि दानं तत्कायिकं स्मृतम् । आर्तानामभयं यत्तदेतद्वै वाचिकं स्मृतम् ॥
विद्यया स्याद्यथायोग्यं तद्दानं मानसं स्मृतम् । पुण्यमिष्टमधीतं च दानं तद्विधिविधं पुनः
वर्णितं सुमहाभागैरन्यैः कैश्चिदपि त्विदम् । अग्निहोत्रं तपस्सत्यं वेदानां परिपालनम् ॥
आतिथ्यं वैश्वदेवं च तदिष्टमिति कथ्यते । पुष्करिण्यस्तथा वाप्यः देवतायतनानि च ॥

अन्नदानमथारामाः पूर्तमित्यभिधीयते ॥

दानक्रियाद्यधिकारिणः

एतादृशमहादानक्रियादिषु तु मुख्यतः । गृहस्थ एक एव स्यादधिकारी न चापरः ॥

द्रव्याणामार्जने चापि मुख्यो न तु हि मस्करी ।

वनी वर्णी तु संप्राप्ते निमित्ते तु कदाचन ॥

तन्मात्रे त्वधिकारी स्यान्नाधिके सुतरां यतिः ।

पतत्येवाशु हा क्वापि कदा धातुपरिग्रहात् ॥

गृह्ये वस्साधुः सर्वेषां कर्मणां प्रवरः परः । सवक्रमैकलोपेऽपि तस्य चित्तेन तत्तराम् ॥

पश्चात्समीचीनतया शृतं भवति तत्क्षणात् ।

तस्यास्य साधकानि स्युः सुबहूनि महान्त्यपि ॥

तैरयं कृतकृत्यः स्याच्चेतसा समनुष्ठितैः ।

निखिलस्यापि चित्तस्य कृच्छ्राणां चर्यया कृतिः ॥

कृच्छ्राणामपि तेषां तु धनदानमुखेन चेत् । मुहूर्तमात्रात्सिद्धिः स्यात्तद्दानं बहुरूपकम् ॥

ब्राह्मणस्य धनार्जनसाधनानि

कर्मणां करणं चापि धनसाध्यं हि मुख्यतः । धनं हिरण्यादिरूपं स्यात्तत्संप्रहणदानयोः ॥

अधिकारी गृहस्थोऽयं तत्र चेद्ब्राह्मणः पुनः । तदार्जनं च नान्येन वर्त्मनैव न चान्यथा ॥

कुर्यादिति मनुः प्राह स मार्गो ब्राह्मणस्य तु । याजनं प्रथमं त्वेकं पश्चादध्यापनं पुनः ॥

प्रतिग्रहो विशिष्टात्तु धनार्जनमुपपद्यति । संपादितेन तेनैवं कुर्यात्कर्माणि बाढवः ॥

सफलं कर्म यत्तत्स्यात्सर्वं दक्षिणया युतम् ॥

अदक्षिणकर्मनिन्दा

अदत्तदक्षिणं कर्म यद्यन्मन्त्रकृतं तु वा । कृतं वा नियमैस्सर्वैर्भक्त्या च श्रद्धयापि वा ॥

विफलं तद्विजानीयाद्भस्मनीव हुतं हविः । श्रद्धायुक्तः शुचिर्दान्तः सर्वकर्म समाचरेत् ॥

अदक्षिणं चेत्तत्कर्म निखिलं निष्फलं भवेत् । कमणामपि सर्वेषां सुवर्णं दक्षिणेऽप्यते ॥

सुवर्णं दीयते देवैः रजतं पैतृकेऽप्यते । सुवर्णं रजतं ताम्रं तण्डुलाधान्यमेव च ॥

रत्नानि गावो हस्त्यश्वाः रथा वासांसि वस्तुवत् ।

काष्ठादिकं जलं पात्रं शय्या खट्वा कटं कुटम् ॥

अजाविकं बहुविधं दक्षिणार्थं प्रकल्पितम् ।

औपासनं त्वग्निहोत्रं नित्यं सन्ध्यात्रयं तथा ॥

नित्यश्राद्धं वैश्वदेवं देवपूजा विशेषतः । भुक्तिकालैकसंप्राप्ततदातिथ्यं च केवलम् ॥

नित्यसूर्यनमस्कारस्सद्योऽयं स्याददक्षिणः । सर्वत्र शक्तितो भक्त्या दक्षिणां परिकल्पयेत्

अनुक्तदक्षिणे दाने दशांशं परिकल्पयेत् । महत्पूर्वेषु दानेषु दद्यान्निष्कशतं सुधीः ॥

मध्यमस्तु तदर्धेन तदर्धेनाधमः स्मृतः । मेघी पुरुषधान्येषु वृक्षाश्वजनधेनुषु ॥

अशक्तस्यापि क्लृप्तोऽयं पञ्चसौवर्णिको विधिः ।

अष्टषष्टिपलोन्मानां दद्याद्दक्षिणां गुरोः ॥

होतृणां चैव सर्वेषां त्रिशत्पलमुदाहृतम् । अध्येतृणां तदर्थं स्याद्द्वारपानां तदर्धतः ॥
अतो न्यूनं न कर्तव्यं अधिके फलमूर्जितम् । दानकाले तु देवत्वं प्रतिमानां प्रकीर्तितम् ॥
धेनूनामपि धेनुत्वं श्रुत्युक्तं दानयोगतः । दातुर्वै दानकाले तु धेनवः परिकीर्तिताः ॥
विप्रस्य व्ययकाले तु द्रव्यं तदिति चोच्यते । सर्वेषामपि दानानां हिरण्यमुदकं तथा ॥

दानेष्ववश्यकानि

पवित्रमुत्तरीयं च साक्षित्वं ब्राह्मणस्य च । अल्पदानेषु चेन्नैवं यथेच्छं तत्र चैककम् ॥
शौचमावश्यकं नित्यं मुष्टिं वा नाशुचिश्चरेत् । अत्राशुचित्वं संप्रोक्तं मुष्टिदानादिकर्मसु ॥
मूत्राद्युत्सर्जनपरे तत्प्रक्षालनपूर्वके । योऽयं कालविशेषः स्यात्स आशौचमिति स्मृतः ॥
स आचान्त इति प्राहुः केचिदत्र महर्षयः । अप्रक्षाल्य करौ पादौ गुह्यप्रक्षालनात्परम्
अप्यकृत्वा च गण्डूषं कृत्वा तत्क्रयमेव वा ।

अनाचान्तो न दद्यात्किं ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥

दत्त्वा तादृगवस्थायां नरो रौरवमाप्नुयात् । शुचिर्भूत्वैव सर्वाणि दानानि सुमुखश्चरेत्
दानानामपि सर्वेषां तत्तत्फलमिहोच्यते ॥

दानफलानि

वारिदस्तुष्टिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजादिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोग्र्याणि (रम्याणि) वेश्मानि रूप्यदोरूप्यमुत्तमम् ॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्त्यं अश्विसालोक्त्यमश्वदः ।
अनङ्गदः श्रियं पुष्टिं गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम् ॥
यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं भोगमाप्नोति भोगदः ॥
हारनूपुरयोर्दाता रूपमाप्नोत्यनुत्तमम् । त्रपुसीसकयोर्दाता वह्निवृद्धिमवाप्नुयात् ॥

पात्रं भवति कामानां तैजसानां प्रदानतः । धर्मदाता नरो नित्यं संरक्षामधिगच्छति ॥
 आयुधानां प्रदानेन शत्रुनाशमवाप्नुयात् । राजचिह्नप्रदानेन राजा भवति भूतले ॥
 रत्नानां च प्रदानेन राजा चैव भविष्यति । नगरं च तथा दत्त्वा राजा भवति भूतले
 वस्त्रदाता सुवेपथ्य दीर्घमायुर्हिरण्यदः । धन्यो धनप्रदाता तु सर्पिदस्सुखमश्नुते ॥
 पादुकानां प्रदानेन शय्यायाश्वासनस्य च । फलानां चैव मूलानां दानाद्द्रव्यपतिर्भवेत्
 अन्नदस्तु भवेच्छ्रीमान् पादाभ्यङ्गप्रदस्सुखी । मुखावास्थं नरो दत्त्वा दन्तधावनमेव च ॥

शुचिः स्यात्सुभगो वाग्मी सुखी चैव प्रजायते ।

पादशौचं तथा यानं शौचं तु गुदलिङ्गयोः ॥

यः प्रयच्छति विप्राय शुचिः शुद्धः सदा भवेत् ।

दुर्भिक्षे चान्नदाता च सुभिक्षे च हिरण्यदः ॥

पानीयदस्त्वरण्ये च ब्रह्मलोके महीयते । श्रान्तायान्नप्रदः स्वर्गं विमानेनाधिरोहति ॥
 प्राप्नोति दशगोदानफलं रोगप्रतिक्रिया । प्रक्षाल्य पादौ विप्रस्य लभेद्गोदानजं फलम्
 देवमालयापनयनं देवागारसमूहनम् । मार्जनं सर्वदेवानां गोप्रदानसमं स्मृतम् ॥
 अर्चनं चैव विप्राणां द्विजाभीष्टापकर्षणम् । पादशौचप्रदानं च आकल्पपरिचारणम् ॥
 पादाभ्यङ्गप्रदानं च श्रान्तसंवाहनं तथा । गवां कण्डूयनं चैव ग्रासदानाभिवादाने ॥
 भिक्षादीनां प्रदानं च तथैवातिथिपूजनम् । एकैकस्य फलं ग्राह गोप्रदानसमं यमः ॥
 श्रान्तसंवाहनं रोगी परिचर्यासुरार्चनम् । पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानकम् ॥
 छत्रदो गृहमाप्नोति गृहदो नगरं तथा । तथा पानप्रदानेन रथमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥
 इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्भुवि जायते । गवां ग्रासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

चन्दनं तालवृन्तं च फलानि विविधानि च ।

तान्बूलमासनं शय्यां दत्त्वाऽत्यन्तसुखी भवेत् ॥

पादाभ्यङ्गैः शिरोऽभ्यङ्गैः दानमानार्चनादिभिः ।

मृष्टवाक्यैर्विशेषेण पूजनीया द्विजोत्तमाः ॥

दासीदासमलंकागं क्षेत्राणि च गृहाणि च । ब्राह्मणायासनं दत्त्वा स्वर्गमाप्नोत्यसंशयः ॥

लभते च शिवं स्थानं वलिपुष्पप्रदानतः । प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति ॥
सुरसंघसभादीनि वापीकूपसरांसि वै । जीर्णान्युद्धरते यस्तु स संपूर्णफलं लभेत् ॥

पकान् ददाति केदारान् सकलान्येव पादपान् ।

पष्टिकोटिसहस्राणि ह्यर्बुदानां च वै त्रयम् ॥

क्रीडन्तीति स्वर्गफले एतदुक्तं न संशयः । अश्वं वा यदि वा युगं यो ददातीह पादुके ॥

तस्य दिव्यानि यानानि दुष्टपन्था नचैव हि । गृहागतं ब्राह्मणं च मधुपर्केण च क्रमात् ॥

भोजयित्वा यथान्याय्यं सूर्यलोके महीयते ।

दारिद्र्यार्णवमग्नानां अतिक्लेशातिदुःखिनाम् ॥

तदुद्धृत्य यथाशक्ति सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

वस्त्रं जलं पवित्रं च दत्त्वाऽथ शिवयोगिने ॥

स महाभागमाप्नोति अन्ते योगं च शाश्वतम् ।

यो गां च महिषीं दद्यात् सालंकारां पयस्विनीम् ॥

कांस्यवस्त्रादिभिर्युक्तां स कामान् लभतेऽखिलान् ।

अन्नं वस्त्रं फलं तोयं तक्रं शाकं घृतं मधु ॥

पत्रं पुष्पं धनं धान्यं यानं यष्टिं कमण्डलुम् । व्रतत्रयं छत्रपात्रं व्रतविद्या सुरार्चनम् ॥

कन्याकुशोपनीतानि तिलौषधगृहाणि च । धूपक्षेत्रं यज्ञपात्रं योगपट्टं च पादुके ॥

कृष्णाजिनं बुद्धिदानं धर्मदेशकथात्मजम् । अर्थिने सततं देयं येन श्रेयो महद्भवेत् ॥

गोपीचन्दनखण्डं तु यो ददातीह वैष्णवे । कुलमेकोत्तरं तेन भवेदुत्तरितं शतम् ॥

वृषितस्य च पानीयं क्षुधितस्य च भोजनम् । निवेशनं दरिद्रस्य निद्रायाः शयनं तथा ॥

तथा भिक्षाप्रदानं च वेदानामर्थनिश्चयः । एतत्संहारवृक्षस्य फलमाहुर्महर्षयः ॥

चामरस्य प्रदानेन सर्वदुःखैर्विमुच्यते । तालवृन्तप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

पादपीठप्रदानेन स्थानं सर्वत्र विन्दति ।

स्थानमेव प्रदानेन तदाप्नोति दण्डं दत्त्वा द्विजातये ॥

यज्ञोपवीतदानेन वस्त्रदानफलं लभेत् । वस्त्रदानफलं तुच्छमौपवीतमनन्तकम् ॥

उष्णीषस्य प्रदानेन तदेव फलमुच्यते । दन्तकाष्ठप्रदानेन सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥
 मृत्तिकायाः प्रदानेन शुचिः सर्वत्र जायते । तथैवौषधदानेन रोगनाशमवाप्नुयात् ॥
 स्नानीयानि सुगन्धीनि दत्त्वासौभाग्यमाप्नुयात् । अनुलेपनदानेन रूपवानभिजायते ॥
 भाण्डादीनां प्रदानेन शंखादीनां प्रदानतः । पात्रं भवति कामानां यशसश्च न संशयः ॥
 शिविकायाः प्रदानेन अग्निष्टोमफलं लभेत् । दासं कर्मकरं योधं दत्त्वा यादिन्द्रमन्दिरम्
 तरुणीं रूपसम्पन्नां दासीं यस्तु प्रयच्छति । सोऽप्सरसोभिर्मुदा युक्तः क्रीडते नन्दने वने
 उष्ट्रं वा गर्दभं वापि यः प्रयच्छति मानवः ।

अलकांसनमा(समवा)साद्य यक्षेन्द्रैः सह मोदते ॥

दानानामुत्तमं प्रोक्तं प्रदानं तुरगस्य तु । बाडबायाः प्रदानं च तथा बहुफलप्रदम् ॥
 शुक्लं तुरङ्गमं दत्त्वा फलं दशगुणं भवेत् । तुरङ्गमं सपल्याकं सालंकारं प्रयच्छतः ॥
 पौण्डरीकफलं प्रोक्तं नात्र कार्या विचारणा । चतुर्भिः कुञ्जरैर्युक्तं सर्वोपस्करशोभितम्
 रथं द्विजातये दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् । सुपर्णकक्ष्यं मातङ्गं दत्त्वा विप्राय भक्तिः ॥
 राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलमाप्नोत्यसंशयः । प्रदाय करणिं सम्यगेतदेव फलं लभेत् ॥
 यथोक्तविधिना दत्त्वा कपिलां कनकप्रभाम् । सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥
 वारुणं लोकमाप्नोति दत्त्वा च महिषीं तथा । महिषस्य प्रदानेन वायुलोके महीयते ॥
 वायुलोकमवाप्नोति प्रदानेन च पक्षिणाम् ।

मयूराणां शुकानां च शारिकाणां च वाग्मिनाम् ॥

अनार्थं ब्राह्मणं प्रेतं येन हन्ति द्विजातयः । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं विन्दन्ति तत्क्षणात्
 गुण(ड)दानफलं चापि प्राप्नुवन्ति पदे पदे । संस्कारार्थमनाथस्य यस्तु काष्ठं प्रदास्यति
 कायामिदीप्तिं प्राकाम्यं संप्राप्ते लभते जयम् । अन्नदानफलं भूयः वरतन्तुमहर्षिणा ॥
 पुराप्रोक्तं सुभद्राय पृथग्भङ्ग्यन्तरेण वै । जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम् ॥
 दिव्याप्सरसोभिः संपूर्णमन्नदो लभते ध्रुवम् । आच्छादनं तु यो दद्यादहतं श्राद्धकर्मणि
 आयुः प्रकाशमैश्वर्यं रूपं च लभते शुभम् । यज्ञोपवीतं यायं च व्यजनं तालवृन्तकम् ॥
 शय्यां च शयनीयं च उपानद्युगलं तथा । छत्रभाजनरत्नानि लवणेषुगुडानि च ॥
 तैजसानि तु पात्राणि वेनुं गृष्टिं तथासनम् । श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात्सोऽश्वमेधफलं लभेत्

सहस्रपरिवेष्टारस्तथैव च सहस्रदाः । त्रातारश्चसहस्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥
सुवर्णस्य च दातारो गवां ये रजतस्य च । धेनूनां च प्रदातारस्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

विहारावसथोद्यानकूपारामसरःकराः (प्रदा) ।

प्रपाणां ये प्रकर्तारः ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

सर्वहिंसानिवृत्ता ये नराः सर्वसहाश्च ये । सर्वस्याश्रयभूता ये ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

आढ्याश्च बलवन्तश्च यौवनस्थाश्च सक्तियाः ।

ये निर्जितेन्द्रिया धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

देवकार्येषु सस्नेहा मृदवः स्नेहवत्सलाः । उदाराः प्रश्नदा ये हि ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

आश्रमेषु यथोक्तेषु वर्तन्ते ये द्विजोत्तमाः । स्वधर्मसक्तास्सततं ते नराः स्वर्ग गामिनः ॥

वर्तन्ते ये महीपाला राजधर्मेषु नित्यशः । पुरोहितमने युक्ताः ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

प्रजासुखे सुखं येषां तददुःखे ये च दुःखिताः ।

तपसा कर्षिता ये वा ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

स्वाम्यर्थे ब्राह्मणार्थे च मित्रकार्ये च ये हिताः ।

गोभूद्विजहिता ये तु ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

गोभूहेतुहता ये च देवद्विजकृते हताः ॥

महानास्तिकदुर्व्याधितथागतनिवारकाः । विप्रनिन्दाकृद्भन्तारः स्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

देहधातून् परित्यज्य सलिलारण्यवह्निषु । अनशनेन मृता ये वा ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

तीर्थयात्राप्रसक्ताश्च नित्यमध्वनि कर्षिताः । तपसा कर्षिता ये च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

मातापितृपरा ये च गुरुभक्ताः प्रियंवदाः । सत्यार्जवरता ये च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

परोपकारसक्ताश्च परदारविवर्जिताः । पूज्यापूजयितारश्च ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

सभानां ये च कर्तारः ये च प्रज्ञाप्रदायका । भक्ता गोदेवविप्राणां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

उद्यानारामकर्तारः तथा गोप्रासदायिनः । उपासकाश्च देवानां ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

क्लेशाननुभवन्तीह शास्त्राध्ययनतत्पराः । शास्त्राणां च हिते युक्तास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

कन्यकानामनाथानां ये चैवोद्वाहकारिणः ॥

ग्रन्थार्चनपरा ये च ग्रहाणां पूजकास्तथा । कादेनापि मृता ये च ते नराः खर्गगामिनः ॥

अग्निहोत्री च सत्री च कूपकर्ता तटाककृत् ।

लिंगप्रतिष्ठाकर्ता च भक्तः शास्त्रवशे स्थितः ॥

विष्णुश्चाराधितो यैस्तु ज्ञाननिष्ठाश्च ये द्विजाः । प्रणवव्याहृतियुक्तगायत्रीनिरताः सदा

मनसा कर्मणा वाचा कर्मण्येवानुचिन्तकाः ।

न पापमतिमिच्छन्ति तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

निराहारा महाशीलाः ब्रह्मचर्यादिलोलुपाः । त्यजन्ति देहधर्मज्ञाः विषयेन्द्रियनिर्जिताः

एकाग्रमनसः शान्ताः तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ।

गंगानदीं महापुण्यां श्रयन्ति च धियैकया ॥

जपन्ति तत्र ये मन्त्रान् परदारविवर्जिताः ।

ब्राह्मणाय तु ये कन्यां प्रयच्छन्ति विधानतः ॥

ये तु दीपं प्रयच्छन्ति तेऽपि यान्त्यमरावतीम् । गङ्गाजले प्रयागे वा केदारे पुष्करे तथा

महापथे प्रभासे च मृता यान्त्यमरावतीम् । द्वारवत्यां कुरुक्षेत्रे योगाभ्यासेन ये मृताः

हरीती (?) रं येषां मरणे समुपस्थिते । पूजयित्वा हरिं ये तु भूमौ दर्भास्तिलैस्सह ॥

तिलान् विकीर्य लोहे तु दत्त्वा धेनुं पयस्विनीम् ।

ये मृताः कृतिनः सन्तस्तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

उत्पाद्य पुत्राः संस्थाप्य पितृपैतामहापथे । निर्मला निष्कलङ्का ये मृता यान्त्यमरावतीम्

सर्वभूतदयावन्तः विश्वास्याः सर्वजन्तुषु । त्यक्त्वा हिंसाः सदाचाराः सन्तुष्टाः स्वधनेन च

धर्मलब्धार्थभोक्तास्तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

मातृवत्स्वसृवच्चैव नित्यं दुहितृवच्च ये । परदारेषु वर्तन्ते तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

अनृतं ये न भाषन्ते कटुकं निष्ठुरं तथा । स्वागतेनाभिभाषन्ते तेऽपि यान्त्यमरावतीम्

अरण्ये विजने नष्टं परस्वं दृश्यते यदा ।

मनसापि न लिप्यन्ते तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

तथैव परदारान् वै कामवृत्तं रहोगताः । मनसापि न हिंसन्ति तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

शत्रुं मित्रं च ये नित्यं तुल्येन मनसा नराः ।
भजन्ति मैत्रं संगम्य तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥
श्रद्धावन्तो दयावन्तः शिष्टाः शिष्टजनप्रियाः ।
धर्माधर्मविदो नित्यं तेऽपि यान्त्यमरावतीम् ॥

मातृवत्परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्टवत् । यः पश्यत्यात्मवज्जन्तुं न प्रेतो जायते नरः ॥
अन्नदानरतो नित्यं विशेषेण तिलप्रदः । स्वाध्यायव्रतशीलो वा न प्रेतो जायते नरः ॥
सदा यज्ञपरः शान्तः सदा तीर्थपरायणः । वापीकूपतटाकानामाश्रमाणा विशेषतः ॥
आरोपकः पुराणां च देवतार्चापरायणः ।

नित्यं शृणोति शास्त्राणि नित्यं सेवेत्तु पण्डितान् ॥
वृद्धांस्तु पृच्छते नित्यं न प्रेतो जायते नरः । दर्भारोपणपूर्वग दशग्रामहिताय वै ॥
भूमिं संवर्धयन्नित्यं नदीकुड्याप्रपूरणात् । तास्त्वत्यन्तदूरेषु प्रापयन्वै दिने दिने ॥
तत्पूरदूरीकरणहेतवे जामितां विना । तद्भारिण्यसंवृद्धिचित्तवृत्तिपरोऽनिशम् ॥

वर्तते यो जगत्यस्मिन् तमेनं ते नरोत्तमम् ।
सर्वे दर्भाः सुरा भूत्वा समागत्यातिहर्षिताः ॥
पृथक्पृथग्विमानानि हंसयुक्तानि सत्त्वराः ।
वयसोऽन्तेऽस्य चाहृत्य हुंकृत्य यमकिंकरान् ॥
सस्मृतिन्नि(?) दमारोह मामकं मामकंत्विति ।
प्रार्थयन्तीऽतिभक्त्यैव घोषयन्तः स्वलंकृताः ॥

सुरूपाः सुमुखाः शान्ताः ब्रह्मलोकं सनातनम् । प्रेतत्वं वारयित्वैव कामिते शैववैष्णवे ॥
ऐन्द्रवारुणवायव्यान् वस्वादित्याग्निरौद्रकान् । कामितानस्य सुभगानपुनर्भवसंज्ञितान्

गयाश्राद्धफलम्

प्रापयन्त्येव सुतरां सद्धर्मस्तादृशो महान् । तत्कर्तुं हि तत्क्रूरं प्रेतत्वं सर्वथैव वै ॥
गत्वा गयाशिरः पुण्यं यच्चन्द्राद्धं कुहते द्विजः । तस्यान्त्रवाये महति न प्रेतो जायते नरः
आयने चोत्तरे प्राप्ते यमयज्ञं करिष्यति । तस्य वंशे तु सततं न प्रेतो जायते नरः ॥

अग्न्यतिथिदेवतादिपूजा

त्रीनग्नीन् पञ्च चैकं वा ह्यहन्यहनि सेवते । सर्वभूतदयायुक्तो न प्रेतो जायते नरः ॥
 देवतातिथिपूजासु गुरुपूजासु नित्यशः । रतो वै पितृपीतासु न प्रेतो जायते नरः ॥
 तीर्थयात्रापरो नित्यं देवतातिथिपूजकः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च न याति नरकं नरः ॥
 हेमन्ते वह्निदो यश्च तथा ग्रीष्मे जलप्रदः । वर्षास्वाश्रयदो यश्च न याति नरकं नरः ॥
 ब्रह्मचारो सदाध्यायी शुभकर्मपरः पुमान् । धर्माख्यानपरो नित्यं न याति नरकं पुनः ॥

कपिलादानादिग्रशंसा

कपिलानां च यो दाता वृषभस्य तथैव च । अन्नदाता च नित्यं गंगास्नानरतश्च यः ॥
 अग्निहोत्रे च निरतो न स दुर्गतिमाप्नुयात् ॥

विष्णुपूजा

अर्चयन्ति हरं नित्यं विष्णुं जिष्णुं सनातनम् ।
 प्राप्नुवन्ति महत्स्थानं पुण्ये श्वेतपुरे शुभम् ॥
 सर्वे चतुर्भुजास्तत्र सर्वे गरुडवाहनाः । सर्वे चक्रायुधाश्चैव सर्वे विष्णुपराक्रमाः ॥

शिवपूजा

स्थापयन्ति च ये लिङ्गं नष्टं वा साधयन्ति ये ।
 अर्चयन्ति सदा रुद्रं माल्यलेपनार्जनैः (गन्धानुलेपनैः) ॥
 मुञ्चन्ति वृषभान् ये तु ते गत्वा शिवमन्दिरम् ।
 तत्र सर्वे शिवभुजाः सर्वे ते शूलपाणयः ॥
 यान्ति सर्वे वृषैश्चैव सर्वे रुद्रपराक्रमाः । शंभुं स्वयंभूं देवेशं त्र्यक्षं त्रिदशवन्दितम् ॥
 येऽर्चयन्ति सदा शुद्धा न ते दुर्गतिमाप्नुयुः ॥

सूर्यपूजा

तेजोराशिं भानुमन्तं भास्करं लोकचक्षुषम् ।
येऽर्चयन्ति महात्मानः सूर्यलोकं व्रजन्ति ते ॥
जटाधरा भस्मधराः विष्णुनामधराः पराः ।
विष्णुगाथारता नित्यं न ते दुर्गतिमाप्नुयुः ॥

गायत्रीमात्रसंतुष्टाः सन्ध्योपासनतत्पराः । स्वाचारेण च संयुक्ताः न ते दुर्गतिमाप्नुयुः ॥
मन्त्रतन्त्रक्रियाधर्मं न नशौचविवर्जिताः । द्विमुख्युदकतत्कर्ममात्राभिनयमात्रतः ॥
सर्वभ्रष्टाश्च विकलाः तदन्त्ये वसतो यथा । कृतार्थाः कृतकृत्याश्च तावन्मात्रेण केवलम् ॥
आभासकर्मणोऽत्यन्तं भवेयुर्नात्र संशयः ॥

प्रायश्चित्तप्रतिनिधिः

प्रायश्चित्ते तु संप्राप्ते साक्षात्कृच्छ्राणि कैरपि ।
नानुष्ठाय च शक्यन्ते तेषां प्रतिनिधित्वतः ॥
गोगोमूल्यादिभिस्तानि तस्मात्कार्याणि चाखिलैः ।
सेतुगंगास्नानमुखैः दरिद्रस्तानि चाचरेत् ।
अपि तानि कदाचित्तु स्नानान्यपि विधानतः ॥
द्रव्येण विप्रमुखतः कर्तव्यानि भवन्त्यपि ।
द्रव्यदानेन सर्वाणि प्राप्यन्ते निखिलाः क्रियाः ॥
तस्माद्द्रव्यं सर्वकार्यमात्रे ह्यावश्यकं परम् ।
तस्मिन् सत्येव सततं सिध्यन्त्यखिलसत्क्रियाः ॥
महादानादिकाश्चापि यैः कृतैर्वृषलादिकाः ।
प्राप्नुवन्त्यपि विप्रत्वं तानि चाद्य प्रवच्मि वः ॥

दानभेदाः

क्रमेणैव प्रशृणुत प्रसङ्गात्पावकान्वति । आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम् ॥
 हिरण्यगर्भदानाच्च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम् । कल्पपादपदानं च गोसहस्रं तु पञ्चमम् ॥
 हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च । हिरण्याश्व(स्तत)स्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा ॥
 पञ्चलाङ्गलकं स्वर्णं धारा दानं तथैव च । द्वादशं विश्वचक्रं च ततः कल्पलतात्मकः ॥
 सप्तसागरदानं च रत्न धेनुस्तथैव च । तथा महाभूतखण्डः षोडशः परिकीर्तितः ॥
 सर्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शंवरसूदनः । वासुदेवश्च भगवानम्बरीषश्च पार्थिवः ॥
 कार्तवीर्यार्जुनो रामः प्रह्लादः पृथुरेव च । चक्रुरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः ॥
 यस्माद्विष्णुसहस्रेण महादानानि सवदा । रक्षन्ति देवतास्सर्वा एकैकमपि भूतले ॥
 एषामन्यतमं लभ्यं वासुदेवप्रसादतः । न कर्तुमन्यथा शक्यं अपि शक्रेण भूतले ॥
 तस्मादाराध्य गोविन्दं उमापति विनायकौ ॥

दानकालाः

महादानमिदं कुर्याद्विप्रैश्चैवानुमोदितः । अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये ॥
 युगादिषूपरागेषु तथा मन्वतरादिषु । संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च ॥
 सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च । यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने ॥
 द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्राद्धा(द्धो?)वा यत्र जायते । तीर्थे वायनेगोष्ठे कूपारामसरित्सु च ॥
 गृहे वा भवने वापि तटाके रुचिरे तथा । महादानं प्रशंसन्ति प्राप्ते वा पितृसंक्षये ॥

तुलादानभेदाः

तुलापुरुषदानस्य प्रसङ्गेन विशेषतः । प्रवक्ष्यामि रहस्यानि तुलादानानि कानिचित् ॥
 अनेनैव विधानेन केचिद्भूयमयं पुनः । कर्पूरेण तथेच्छन्ति केचिद्ब्रह्मविदः शिवाः ॥
 तुलापुरुषदानं तन्महादेवोदितं परम् । अष्टलोहैस्तु कार्यं स्यात्तत्तद्गोपशान्तये ॥
 कांस्यं यक्षमणि देयं स्यात् त्रपु चार्शो प्रचोदितम् ।
 अपस्मारे तु सासं (?) स्यात् ताम्रं कुष्ठेति वारुणे ॥

पैतलं रक्तपित्तं तु रूप्यं प्रदरमेहयोः । सुवर्णं सर्वरोगेषु प्रदद्यान्मृत्युनाशनम् ॥
 फलोद्भवं तथा देयं ग्रहण्यां दीर्घसंभवे । गौडं भास्म दावं च पौरं तद्गण्डमूलके ॥
 लाङ्गलं त्वग्निमान्द्ये च रोगोत्पत्तौ तु पौष्टिकम् । मधूद्भवं तथा देयं कासश्वासजलोदरे
 घृतोद्भवं तथा देयं छर्दिरोगोपशान्तये । क्षीरं पित्तविनाशाय दाधिकं भगदारुणे ॥
 दारुणं लेपनाशाय पैष्टं धृतिविनाशने । अन्नं सर्वरोगस्य नाशने तु प्रशस्यते ॥
 घृतादिद्रव्यदाने तु तुलादिषु विधिस्त्वयम् । प्रथमा तु घृतस्योक्ता तेजोवृद्धिकरी तुला ॥
 माक्षिकेण च सौभाग्यं तैलेन बहुलाः प्रजाः । वस्त्रैस्तु बहुवस्त्राणि प्राप्नोति तुलया तथा ॥
 लावण्यस्य तु लावण्यं अरोगित्वं गुडस्य च । असापत्न्यं शर्करया सुरुपं चन्दनेन च ॥
 अवियुक्तो भवेद्धर्ता तुलया कुंकुमस्य च । न सन्तापो हृदि भवेत् क्षीरस्य तुलया सदा
 सर्वकामप्रदा ह्येताः पापहार्यः प्रकीर्तिताः । महादानानि चैतानि पुनर्भङ्ग्यन्तरेण वै ॥
 निरूपितानि देवेश्यो ताभ्यस्तानि चाद्य प्रवच्मि वः ॥

षोडश महादानानि

गावः सुवर्णरजते रत्नानि च सरस्वति ।

तिलाः कन्या गजाश्वाश्च शय्या वस्त्रं तथा मही ॥

धान्यं पयश्च छत्रं च ग्र(गृ)हं चोपस्करान्वितम् ।

एतान्येव तु चोक्तानि महादानानि षोडश ॥

षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः । न तस्य पुनरावृत्तिर्विष्णुलोकात्सनातनात् ॥
 पञ्चलाङ्गलदानस्य प्रसंगात्कथयाम्यहम् । हलपङ्क्तिरिति ख्यातं महादानमनुत्तमम् ॥
 दानमेतत्पुरा चीर्णं दिलीपेन ययातिना । शिबिना निमिना चैव भरतेन च धीमता ॥
 ते यथा दिवि मोदन्ते दानस्यास्य प्रदानतः । धरादानप्रसङ्गेन दानान्युक्तानि कानिचित्
 जम्बूद्वीपाह्वयं सप्त द्विपाह्वयमतः परम् । पृथिवीपद्मदानं च सर्वपापविनाशनम् ॥
 पाण्डुरोगहरं प्रोक्तं पृथ्वीपद्ममथापरम् । क्रमात्तुलादिदानानि रहस्यानि यथामति ॥
 कथितानि मया सम्यगुद्देशस्य विधानतः ॥

मेरुदानभेदाः

मेरोः प्रदानं दशधा कथितं मुनिसत्तमैः । यत्प्रदाता नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान् ॥
 पुराणेषु च वेदेषु यज्ञोष्वायतनेषु च । न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते ॥
 प्रथमो धान्यशैलः स्याद्वितीयो लवणाचलः । गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वतः ॥
 पञ्चमस्तिलशैलः स्यात् षष्ठः कार्पासपर्वतः । सप्तमो धृतशैलः स्याद्रत्नशैलस्तथाष्टमः ॥
 राजतो नवगस्तद्वद् दशमः शर्कराचलः । अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये ॥
 शुक्लपक्षे द्वितीयायां उपरागे शशिक्षये । विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथवा पुनः ॥

शुक्लायां पञ्चदश्यां वा जन्मर्क्षे वा विशेषतः ।

तीर्थे वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे ॥

धान्यशैलादयो देयाः दश चैव विधानतः ॥

द्वादशमेरवः

अथ द्वादश मेरुणां दानानि कथयामि वै । आद्यो रत्नमयो मेरुः हेममेरुरनन्तरः ॥

रूप्यमेरुस्तीयः स्यात् भूमेरुस्तु तुरीयकः ।

पञ्चमो हस्तिमेरुः स्यात् षष्ठश्चाश्ममयो गिरिः ॥

गोमेरुः सप्तमः प्रोक्तः वस्त्रमेरुस्थाष्टमः । नवमो धृतमेरुः स्यादशमः खण्डनिर्मितः ॥

एकादशो धान्यमेरुः द्वादशस्तिलनिर्मितः । द्वादशैते शिवप्रीत्यै मेरवः परिकीर्तिताः ॥

कुलपर्वतदाना(नामा)नि

सप्तानां कुलजातानां वक्ष्ये नामान्यनुकमात् । देयो हेममयो मेरुः कैलासो राजतोद्भवः
 कार्यासेन तु हेमाद्रिर्गुडजो गन्धमादनः । सुचेलस्तु तिलैर्देयः विन्ध्यः शर्करया कृतः
 लवणेन तथा शृङ्गी यथोक्तविधिना ततः । चतुर्दशानां मेरुणां दानान्यद्यानुकीर्तये ॥

यानि दत्त्वा तु पुरुषो न भूमौ जायते पुनः ॥

द्रव्यप्रमाणम्

फलत्रयेण सौवर्णो विशालाराजतः पलैः । ताम्रः पञ्चशतैः प्रोक्तः पलानां कांस्यकस्तथा
लौहस्तु भारमात्रेण सैसकश्च तथास्मृतः । लावणोऽप्येवमेव स्याद्ब्रीहिमेरुस्तथा भवेत् ॥

भारद्वयेन काण्डस्तु गौडः स्यात्पञ्च भारतः ।

कौस्तूरिकः पञ्चपलः कार्पूरः पञ्चविंशकः ॥

कौकुमः स्याच्छतपलः कार्पासोविंशभारकः ।

एवं द्रव्यविशेषैस्तु मेरुः कार्यो विपश्चिता ॥

मेरुमेवंविधं कृत्वा दत्त्वा विप्राय भक्तितः । वसतिः स्वर्गलोके तु यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥

पञ्चपर्वतदानानि

पञ्चानामपि शैवा(ला)नां पूर्वं नामानि कीर्तये ।

यानि दत्त्वा तु दौर्भाग्यं दौर्गत्यं नाप्नुयात्कचित् ॥

तिलपर्वतदानं तत्तथा लवणपर्वतम् । कार्पासगुडयोः शैलो तथा सर्षपपर्वतः ॥

आषाढे कार्तिके मासे माघे वैशाखयोरपि ।

पौर्णमास्यां तु दातव्याः मनुजैः पर्वतास्त्वमी ॥

शिखरदानानि

अतःपरं प्रवक्ष्यामि शिखराणि त्रयोदश । येषां प्रदानतो मर्त्यो जायते पृथिवीपतिः ॥

गुडेषु वस्त्रलवणधान्यकार्पासकैः क्रमात् । शिखाखर्जूरवितुषधान्यद्राक्षाभिरेव च ॥

क्षौद्रैर्मयजेनापि पलैः शृङ्गाणि कल्पयेत् । एषामन्यतमं वापि दद्याच्छृङ्गासमन्वितः ॥

आत्मप्रमाणं कुर्वीत प्रादेयाभ्यधिकं शुभम् । विधिवच्छिखरं दत्त्वा गौरीलोकं वसेन्नरः

अथ दत्त्वा विशेषेण ह्यतिदानानि कानिचित् ।

येन दत्त्वा नरः पापैः मुच्यते नात्र संशयः ॥

अतिदानधेनुदानानि

त्रोण्याहुरतिदानानि धेनुः पृथ्वी सरस्वतीः । नरकादुद्धरन्त्येताः जपजापनदोहनैः ॥
 यास्तु पापविनाशिन्यः कथ्यन्ते दश धेनवः ।
 तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च विशेषतः ॥

दशधेनुदानानि

कुम्भाः स्युर्द्रव्यगन्धानां इतरासां तु राशयः ।

प्रथमा गुडधेनुः स्याद्वितीया मधुसंज्ञिका ॥

सप्तमी शर्करा धेनुः दधिधेनुस्तथाष्टमी । रसधेनुस्तु नवमी दशमी स्यात्स्वरूपतः ॥
 अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथ वैधृतौ । गुडधेन्वादयो देया उपरागादिपर्वसु ॥
 सप्तमी लाण धेनुः स्यादष्टमीदाधिका मता । नवमीतेन नवमी गन्धतैलेन चापरा ॥
 गन्धैर्वा दशमां धेनुं रत्नैर्वा परिकल्पयेत् । एवं केचिन्महाभागाः वदन्ति परमर्षयः ॥
 सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः । तिलधेनुप्रसंगेन सर्वपापहराः शुभाः ॥

सप्तव्रीहिधेनवः

सप्तव्रीहिमयास्सप्त धेनवः परिकीर्तिताः । व्रीहिभिश्च यवैश्चैव गोधूमैश्च तिलैस्तथा ॥
 माषैर्मुद्गैश्च कर्तव्याः सप्तमी च प्रियङ्गुभिः । एतासामेव दानानां विधानं तिलधेनुवत् ॥
 सप्तव्रीहिमयास्सप्त गा ददातीह मानवः । स याति परमं स्थानं वायुभूतः खमूर्तिमान् ॥

उपधेनुदानानि

अथोपधेनुदानानि वक्ष्ये पुंस्यान्यनुक्रमात् । यासां वै दानमात्रेण सर्वदानफलं लभेत् ॥
 तास्वादौ लावणी धेनुः परा कापासकी मता । तथा फलमयी धेनुस्तत्तत्कर्पूरनिर्मिता ॥
 कस्तूरिका स्मृता तद्वद्धेनुर्दिव्या त्वनन्तरा । केचिदत्र महाभागाः विधानान्तरमूचिरे ॥
 मेहहृन्नी स्वर्णधेनुर्वै ह्यशोघ्नः स्वर्णशृङ्गिणी । तथैव वन्ध्यात्वहरास्वर्णधेनुः परा स्मृता ॥
 प्रस्विन्नपाणित्वहरस्वर्णधेनुस्तथा स्मृता । सुवर्णशृङ्गिणी चापि तत्परं परिकीर्तिता ॥
 तद्वत्कनकशृङ्गाख्या धेनुर्देया सुलक्षणा । एतासामुपधेनूनां कथितो दानसंग्रहः ॥

दानफलानि

फलं ब्रवीमि सर्वासामिह धेनोः परत्र च ।
 कृष्णां गां ददते ये तु ते(न)पश्यन्ति यमं विभुम् ॥
 श्वेतां वै ददते धेनुं स पुमान् दिवि मोदते ।
 नीलवर्णां तु गां दद्यात् पितृन् प्रीणयते सदा ॥
 श्वेतवर्णां तु गां दत्वा वंशवृद्धिमवाप्नुयात् ।
 श्यामां पीतां तथा दत्वा दुःखनाशं प्रपद्यते ॥

कपिला सर्वपापघ्नी नानावर्णा च मोहदा । समानवत्सां कपिलां दत्वा स्वर्गे महीयते
 रोहिणीं तुल्यवत्सां तु सूर्यलोके महीयते । समानवत्सां श्वेतां चेदिन्द्रलोके महीयते ॥
 तुल्यवत्सां तु शबलां विष्णुलोके महीयते ।

इन्द्रलोकमवाप्नोति दत्वा कृष्णां तथाविधाम् ॥

वातरेणुसवर्णां तु तुल्यवत्सां प्रदाय च । वायुलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
 दत्वा धूम्रां तथा भूतां यमलोके महीयते । अघ्नां(घ्न्यां)हेमसवर्णां तु तुल्यवत्सां प्रदाय च
 वारुणं लोकमाप्नोति पूज्यमानोऽसुरोगणैः । धेनुं प्रदाय शृङ्गाक्षीं साध्यलोके महीयते ॥
 दत्वा पलाशवर्णां गां पितृलोके महीयते । प्रदाय शितिकण्ठीं गां स्थानं श्रेष्ठं प्रपद्यते ॥
 एतासामपि धेनूनां प्रदाता समवाप्नुयात् । विमानेनार्कवर्णेन दिवं देव इवापरः ॥

तं चारुवेपाः शुश्रोण्यः शतशोऽथ सहस्रशः ।

दमयन्ती विमानस्थं गोप्रदानरतं नरम् ॥

अथ नानाप्रकारोक्तगोदानानि ब्रवीमि वै । समानवत्सगोदानं सर्वपापहरं शुभम् ॥
 कपिलायाः प्रदानं तु सर्वपापहरं शुभम् । सर्वार्थदायकं श्रीकं सप्तजन्माघनाशनम् ॥
 वृषभैकादशीदानं गोशतं च वृषोत्तरम् । तथा वृषोत्तरशतगोदानं देवसात्कृतम् ॥
 त्रिरात्रगोप्रदानं च महापातकनाशनम् । गृहणीहरगोदानमसंघरहरं (?) परम् ॥
 दानं वैतरणीधेनोः यमलोकसुखावहम् । वृषैकंगोसहस्रस्य दानं सर्वाघनाशनम् ॥

ततोभयमुखीदानं सर्वदानफलप्रदम् । द्विमुखी कपिलादानं विष्णुसायुज्यकारकम् ॥
 तथा चैवोभयमुखीदानं सर्वाघनाशनम् । वृषदानं ततः प्रोक्तं सर्वसौख्यविवर्धनम् ॥
 बलीवर्दप्रदानं च गोविन्दप्रीतिकारकम् । तथानुडुप्रदानाख्यं चक्राद्यङ्कवृषार्पणम् ॥
 द्रव्यैर्वृषप्रदानं च दानं स्वर्णवृषस्य च । तथा होमवृषाख्यं च सर्वदानफलप्रदम् ॥
 दानं रूप्यवृषस्यापि पितृप्रीतिविधायकम् । तथैव कुष्ठरोगघ्नरौप्यर्षभसमर्पणम् ॥
 एवमेतानि दानानि प्रशस्तफलवन्ति च । कीर्तितानि मया सम्यक् संप्रहेण यथामति ॥

अतःपरं धराभिख्यमतिदानं महोन्नतम् ।

यः प्रयच्छति विप्राय पृथिवीं सत्यशालिनीम् ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि स स्वर्गं निवसेन्नरः । अतिदानेषु सर्वेषु पृथिवीदानमुत्तमम् ॥

अचला ह्यक्षयाभूश्चेदोग्ध्री कामाननुत्तमान् ।

दोग्ध्री वासांसि रत्नानि पशुव्रीहियवान् सदा ॥

भूमिदः पुण्यलोकेषु शाश्वतीर्मोदते समाः । यावद्भूमेरायुरिति तावद्भूमिद एधते ॥
 अपि पापसमाचारं ब्रह्मघ्नं वा तथानृतम् । पुनाति दत्ता पृथिवी दातारमपि शुश्रुमः ॥
 अग्निष्टोमप्रभृतिभिरिष्ट्वा क्रतुभिरूर्जितैः । न तत्फलमवाप्नोति भूमिदानाद्यदश्नुते ॥
 यथा जनित्री क्षीरेण पुत्रं पुष्पाति सर्वदा । अनुगृह्णाति दातारं तथा सर्वरसैर्मही ॥
 प्रासादा यत्र सौवर्णवसोर्धाराश्च कामदाः । गन्धर्वाप्सरसो यत्र तत्र गच्छन्ति भूमिदाः ॥
 यथा चन्द्रमसो वृद्धिरहन्यहनि जायते । भूमिदानफलं तद्वत्सवसस्यैविवर्धते ॥

सागराः सरितः शैलास्तीर्थानि विविधानि च ।

सर्वाणि भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

यो ददाति महीं सस्यक् सोऽश्नुते परमां गतिम् ।

हस्तमात्रां भुवं दत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥

गोचर्ममात्रां क्षमां दत्वा वसूनां लोकमाप्नुयात् ।

उद्यानभूमिं दत्वा तु गन्धर्वैः सह मोदते ॥

रत्नाकरभुवं दत्वा शकलोकं प्रपद्यते । धान्याकरां भुवं दत्वा नाकपृष्ठे महीयते ॥

अञ्जनाकरभूदानादश्विलोके महीयते । लवणाकरभूदानात्सोमलोके महीयते ॥
 औषधाकरभूदानात्पितृलोके महीयते । शिखिसस्यप्ररोहां तु भुवं दत्वा नरोत्तमः ॥
 साध्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । नानाधान्याकरभुवं दत्वा रौद्रे महीयते
 केदारभूमिदानेन ब्रह्मलोकं समश्नुते । इक्षुभूमिं नरो दत्वा सोमलोके महीयते ॥
 गुल्मपुष्पलताकीर्णां यो भूमिं संप्रयच्छति । विमाने नन्दने सोऽयं क्रीडतेऽप्सरसां गणैः
 भूमिं संपाद्य यः कुर्याद्देवब्राह्मणसात्कृताम् । स्वर्गलोकमवाप्नोति पश्चाद्भूपपरो भवेत्
 पक्षसस्यां भुवं दत्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् । निवर्तनसहस्राढ्यां भुवं दत्वा नरोत्तमः ॥
 भूमिमासाद्य कर्मान्ते चक्रवर्ती भवेद्धि सः । गोचर्ममात्रामचलां दत्वा शिवपुरं जेतुं ॥
 भूमिं सर्वगुणोपेतां दत्वा पापात्प्रमुच्यते । क्षेत्रमात्रां भुवं दत्वा महापापैः प्रमुच्यते ॥
 क्षमाभेकपुरुषाहारपर्याप्तां संप्रदाय वै । दशकल्पान्निवसति स्वर्गं विगतपातकः ॥

क्षमां दत्वा गृहपर्याप्तां यमलोकं न पश्यति ।

प्रादेशमात्रां क्षमां दत्वा मोदते नन्दने वने ॥

ग्रामं वा नगरं वापि निवर्तनशतं तु वा । यः प्रयच्छति विप्राय स सुरैः परिपूज्यते ॥
 देवताभ्यो महीं दत्वा तत्तल्लोके महीयते । ग्रामं खेटं पुरं क्षेत्रं देवताभ्यः प्रयच्छति ॥

देयभूमिप्रशंसा

सप्तजन्मसु धर्मात्मा स भूमेरधिगो भवेत् । शिवाय. विष्णवे भूमिं सूर्याय च विशेषतः
 दत्वा त्रिसप्तकुलजैः पितृभिः सह मोदते । ग्रामदानाच्चक्रवर्ती पुरदानात्तथामरः ॥
 खेटदानाच्च भूमर्ता भवेदत्र न संशयः । भुवः प्रमाणं ज्ञानाय सुस्पष्टं वक्ष्यतेऽधुना ॥
 दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम् । गवां शतवृषश्चैको यत्र तिष्ठेदयन्त्रितः ॥
 तद्धि गोचर्ममात्रं तु प्राहुर्वेदविदो जनाः । गृहमात्रां भुवं प्राहुर्द्वात्रिंशत्पदसंमिताम् ॥
 यदुत्पन्नामथाश्नाति नरः संवत्सरं समम् । एतदाहारमात्राख्यं भुवो मानं प्रचक्षते ॥
 सोत्सेधवप्रप्राकारं सर्वतः खातमावृतम् । योजनाधार्धविष्कम्भं अष्टभागायतं पुरम् ॥
 तदर्धं तु तदा खेटं तदर्थश्चापि खर्पटम् । तथा शूद्रजनप्रायाः सुसमृद्धकृषीवलाः ॥

क्षिप्रोपभोगभूमध्ये वसतिग्रामसंज्ञिता । एवं भूमानमाख्यातं शास्त्रविद्धिः पुरातनैः ॥

दत्तभूपरिपालनप्रशंसा

स्वदत्ताद्विगुणं पुण्यं परदत्तानुपालनम् । परदत्तापहारेण स्वदत्तं निष्फलं भवेत् ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुंधराम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः ॥
राज्याधिकारनिरतः वेतनेन नृपेण वै । परिक्लृप्तः स्वकृत्येषु स्वाधिकारे समुद्यते ॥
द्विजभूवृत्तिविषये वाक्सहायेन केवलम् । अश्वमेधफलं सद्यो लभते नात्र संशयः ॥
गोब्राह्मणहितार्थाय तद्वृत्तिषु विशेषतः । अनृतोक्त्याऽपि लभते राजसूयफलादिकम् ॥
तद्वृत्तिविषये नूनमपकारं स्वचेतसा । चिन्तयन् सद्य एवायं कुलकोटिसमन्वितः ॥
इक्षुयन्त्रे कालसूत्रे रौरवे कण्टकालये । पच्यते हन्त तावत्तु यावदाभूतसंख्यम् ॥

विद्यादानप्रशंसा

विद्यादानं महीदानं कन्यादानमिदं त्रयम् । सर्वदानोत्तमं ज्ञेयं तद्वि चोभयतारकम् ॥
दानानामुत्तमं दानं विद्यादानं विदुर्बुधाः । विद्या कामदुघा धेनुः विद्या चक्षुरनुत्तमम् ॥
विद्यावान् सर्वकामानां भाजनं पुरुषो भवेत् । सहस्रधेनुदानानां शतं चानुडुहां समम् ॥
शतानुडुत्समं यानं दशयानसमो हि यः । दशवाजिसमो नागो दशनागसमा धरा ॥
धरादानसमं नास्ति विद्यादानं ततोऽधिकम् । तस्माद्विद्याप्रदो लोके सर्वदः प्रोच्यते बुधैः ॥

कन्यादानम्

तस्मात्सहस्रगुणितः कन्यादाता महान् परः । कन्यादानं ततो लोके सर्वदानोत्तमोत्तमम्
तेनैव दानेन भुवि प्रवृत्तिर्निखिला स्मृता । वर्णित्ववारकं तत्तु गार्हस्थस्यापि संपदाम् ॥
कारकं सर्वकल्याणहेतुकं भावुकं महत् । प्रजानां जनकं सर्ववेदशास्त्रसवश्रियाम् ॥
ताः प्रजाः किल सर्वत्र शरणं शर्मकारकाः । तस्मात्तद्दानतुलितं नान्यदानं भुवि स्मृतम् ॥
सर्वदानफलं वक्तुं शक्यते किल केवलम् । न तु कन्यादानफलं वक्तुं युगशतेन वा ॥

ब्रह्मणा विष्णुना वापि पावेक्षेणापि ? (महेशेनापि) वा तथा ।

शक्यते तत्कथं वक्तुमियत्तारहितं यतः ॥

पूर्वधामपरेषां च दशानां वंशजन्मनाम् । पितृणामतिपापानामपि नारकिणां स्वतः ॥
एकविंशतिसंख्यानां नरकोत्तारेणैव । दानोत्तरक्षणेनैव ब्रह्मलोकाप्तिरीरिता ॥
तावदत्र न संदेहो विद्वत्पामरयोरिति । सर्वलोकैकविदिता प्रसिद्धिर्महती परा ॥

किं चात्र कन्यकादाने महादानानि यानि वा ।

निरूपितान्यद्य मया तानि सर्वाण्यभीक्ष्णशः ॥

अवशादेव लभ्यन्ते ब्राह्मणानां विशेषतः । ब्राह्मादिषु विवाहेषु तत्प्रसङ्गान्निरूप्यते ॥

यस्मै कस्मैचिद्विप्राय व्रतिने कन्यकामिमाम् ।

सत्कृत्य संप्रदास्यामीति चिन्तामात्रतस्तथा ॥

तुलापुरुषदानाख्यफलं यत्तन्महत्परम् । अवशादेव लभते नात्र कार्या विचारणा ॥

स्वयं पत्न्या भ्रातृभिर्वा बन्धुभिः सखिभिः परैः ।

आप्तैर्विप्रैश्च गुरुभिराचार्यैः शिष्यकिंकरैः ॥

उदासीनजडैर्वापि समेतः कन्यकामिमाम् ।

अस्मै सत्कृत्य शक्त्याहं दास्यामीति कथं पुनः ॥

कुत्र केन कुतश्चेति वाक्प्रचारक्षणात्तदा । हिरण्यगर्भदानाख्य कर्ताऽयं प्रभवेद्भ्रुवम् ॥

न संदेहः प्रकर्तव्यः संदेहः स्यादयं क्षणात् । कन्यादूष्येव नितरां एवमाहापुरादिभिः ॥

एवमस्मै दीयतेति प्रोक्तिमात्रेण केवलम् । स्वीयबन्ध्विष्टगोष्ठेषु ब्रह्माण्डाख्यस्य तस्य तु ॥

तार्तीयिकस्य दानस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम् । परबन्धुज्ञातजनपरिज्ञानाय केवलम् ॥

दास्याम्येनां ध्रुवं तस्मै अमुष्मा अहमित्यथ ।

प्रोक्त्वाशु कल्पवृक्षस्य दानं यत्सुमहच्छिवम् ॥

तदेव लभते दिव्यं फलं नास्त्यत्र संशयः । कन्यादानमुहूर्तस्य निरीक्षणत एव वै ॥

गोसहस्रफलं सद्यस्तत्कर्ता लभते वशात् ।

तन्मुहूर्ते निश्चिते तु सुलग्ने सुदिने शिवे ॥

तिथौ वारे च नक्षत्रे होरायां तदनन्तरम् ।

द्रोक्काणेऽस्मिन्नवांशेऽपि द्वादशांशे ततः पुनः ॥

त्रिंशांशात्तत्परं दिव्ये पुष्करे चेति सूरिभिः ।

ज्योतिषिकैर्निश्चितेऽथ तद्वाताऽसौ विचक्षणः ॥

हिरण्यकामधेन्वाख्यदानस्य लभते फलम् । नान्दीपूर्वदिने यत्तु वराहानाख्यकर्मणः ॥

करदीपौघशतकमहामंगलशोभिनः । विचित्रनृत्तवाद्यौघवेदघोषानुरञ्जनैः ॥

पतिव्रतामहागानसुन्दरस्य विशेषतः । कृतिमात्रेण लभते हिरण्याश्वस्य यत्फलम् ॥

तदवाप्नोति विबुधो तस्मिन्नेव क्षणे पुनः । वरपूजा बन्धुपूजा विप्रपूजादिसत्क्रियाः ॥

याः काश्चित्सुमहादिव्यताम्बूलादिसमर्पणैः । तासां करणमात्रेण हिरण्याश्वरथस्य वै ॥

दानस्य लभते श्रेयस्तस्मिन् काले विशेषतः ।

विप्राणां दक्षिणादानैः फलदानादिना तथा ॥

तद्वाक्यनिश्चयाच्चापि हेमहस्तिरथस्य वै । यत्फलं कथितं सद्भिस्तदवाप्नोति पुष्कलम् ॥

ततो वरस्य शरणनिर्देशनमुदानतः । पञ्चलाङ्गलकस्यास्य सुमहत्फलमश्नुते ॥

ततः परेऽहि नान्याख्यकर्मणः करणात्परम् । महत्स्वर्गधरादानफलं नूनं स विन्दति ॥

स्नानात्परं वरस्यायं राति संभाषणादथ । यथार्थगमने काले वरसंभावनादिना ॥

तदीयाह्वानमात्रेण तत्फलादि विशेषतः । विश्वचक्राख्यदानस्य फलं विन्दति तत्क्षणात्

कन्यादानं करिष्येति पत्न्या साकं विचक्षणः । ब्राह्मणानां महाव्राते करणादेव तत्फलम्

दिव्यकल्पलताख्यस्य लभते कन्यकापिता ॥

वरालंकारादिफलानि

ततो वरालंकरणात् कन्यालंकरणादपि । हिरण्योदकदानैश्च सप्तसागरदानतः ॥

यदुच्यते फलं तत्तु समवाप्नोत्यनश्वरम् । मधुपर्कप्रदानेन वरस्यादौ महानयम् ॥

रत्नधेनोः परं नूनं फलं तत्प्रतिपद्यते । तदुपाध्यायबन्धूनां मधुपकक्रियादिभिः ॥

कन्याप्रदानतत्पाणिग्रहतद्वोमकर्मभिः । तन्महाभूतखण्डस्य फलं साग्रं समश्नुते ॥

तस्मात्कन्यादानसमं नन्यादानं हि विद्यते । तदुपर्यपि भूयश्च बन्धूनां पूजया तदा ॥

कर्पूराख्यतुलायास्तत्फलं प्राहुर्मनीषिणः । तदङ्गविप्रपूजाभिस्ताम्बूलादिप्रदापनैः ॥

क्रियाभिर्दक्षिणादीनां अष्टलोहतुलाफलम् । तदङ्गविप्रबन्धवौघभोजनादिकर्मणः ॥
 महाकांस्यतुलाजन्यं फलं श्रीमत्प्रपद्यते । तदीयदक्षिणादानैः सहत्रपुतुलाफलम् ॥
 जायते किल तत्कर्तुः क्षणेनैवालपयन्नतः । रथोत्तम्भनकार्यादिजालके कन्यकाकृते ॥
 कृते वरेण तत्कन्याप्रदातुस्तत्क्षणेन वै । सद्यः (१) सतुलायाश्च ताम्रायाःस्वर्णरौप्ययोः ॥
 तुलयोस्सुमहद्भव्यमन्त्रयन्त्रादिलब्धयोः । पैतल्याश्च तुलायास्तत्पलमत्यन्तदुर्लभम् ॥
 अश्रुते कन्यकातातो मन्दिरादिक्रियादिषु । प्रधानहोममात्रेण कृतेन तदनन्तरम् ॥
 पुत्रोपवेशनफलदापनेन च मन्त्रतः । फलं फलतुलायास्तत् आग्नेयाख्यस्य कर्मणः ॥
 वरकृत्या गृहपतिस्तुलयोर्गुडभस्मनोः । तथा पूगतुलायाश्च फलं पौष्ण्याः प्रपद्यते ॥
 तथर्षिदर्शनात्पश्चादरुन्धत्याः समर्चनात् । घृतक्षीराख्यतुलयोर्दधिपैष्टिकयोरपि ॥
 तथोदनतुलायाश्च यत्फलं शास्त्रचोदितम् । तत्फलं तत्क्षणादेव लभते कन्यकापिता ॥
 पश्चादौपासनाख्यस्य कर्मणः करणेन वै । तैलमाक्षिकवस्त्राणां लवणस्य तथा पुनः ॥
 शार्करायाश्चन्दनस्य तुलायाः कुंकुमस्य च । गोरक्षतिलवस्त्राणां तुलानां यत्फलं पुनः ॥
 तत्सर्वं समवाप्नोति तद्गन्धर्वप्रतिष्ठया । छत्रपत्रककार्पासरजश्शाकटाद्वसाम् ॥
 तुलानां फलमाप्नोति गौरीन्द्राणीप्रपूजया । वधूवराभ्यां कृतया यजमानोऽयमाशु तत्
 एवं तुलाप्रभेदानां सर्वेषां महतामपि । मुहूर्तानन्तरं तस्य वरस्य क्रियया तथा ॥
 गौरी पूजां तथा सर्वं यत्फलं वेदसंमितम् । अमोघमप्राप्यमतियत्नद्रव्यक्रियादिभिः ॥
 सम्प्राप्य परमं दिव्यं प्राप्नोत्येवाविलम्बितम् । लघुतः कन्यकादाता पुनश्च तदनन्तरम्
 औपासनारम्भदिनपरेऽङ्गयपि तथैव वै । पराह्वानार्हणमहद्बन्धु(मित्र) ब्राह्मणपूजया ॥

स्वशक्त्यनुगुणश्रद्धाभक्तिभ्यां कृतया तथा ।

पञ्चलाङ्गलदानाख्यफलं यत्तच्च केवलम् ॥

हलपङ्क्तिश्च सुमहद्यज्ञेयः कथितं तराम् ।

धाराख्यस्यास्य यद्भूयः फलमत्यन्तदुस्तरम् ॥

जम्बूद्वीपफलं चापि सप्तद्वीपफलं तथा । पृथिवीपद्मदानस्य यद्यत्यन्तं सुपावनम् ॥

महद्यज्ञेयः प्रकथितं तदवाप्नोत्यसंशयम् ॥

महदाशीर्वादादिफलानि

एवमेव तृतीयेऽथ दिवसे सुमहान्महः । महादाशीर्लाभकारुयः सदीक्षामध्यकालके ॥
 संप्राप्ताखिलवैकल्य परिहारप्रपूर्वतः । वरयोरुभयोश्चापि दीक्षवैकल्यहेतुना ॥
 समागतमहामृत्युपरिहाराय वेधसा । कल्पितः सुमहदीर्घायुष्यश्रीकारकः परः ॥
 तत्रादौ सर्वविघ्नानां परिहाराय मन्त्रतः । संपूज्यो गणनाथः स्यात्पश्चाद् ब्रह्मासरस्वती
 विघ्नेशपूर्वभागे तु तन्मन्त्राभ्यां विधानतः । प्रपूज्यौ विप्रसदसि दिव्यपीताम्बरे शुभे ॥
 तेषां तु परितः पूर्वा हरित्रभृति तत्कमात् । इन्द्रादयः प्रपूज्याः स्युस्तयोर्नक्षत्रदेवते ॥

सर्वानेतान् तत्तन्मन्त्रैः षोडशैरुपचारकैः ।

सम्यक् समानतन्त्रेण पूजयेदिति सा श्रुतिः ॥

एवं संपूज्य विधिना सभ्यान्नन्त्वाखिलान्द्विजान् ।

संप्रार्थ्य वेदमन्त्रेण नमः पञ्चककेन वै ॥

पृथग्वेदमहामन्त्राशिषः कुरुत चेति तान् ।

प्रार्थयित्वा तत्सदसि कृत्वा पूजां पृथक् पृथक् ॥

तस्मिन् समुपविश्यैव तदुक्तान्वेदमन्त्रकान् ।

शृण्वन् शुभेन मनसा पत्न्या सह यतव्रतः ॥

स वाग्यतस्तप्यमान आस्ते ताडङ्महोन्नते । सर्वापद्वारके सर्वदुरितोन्मूलके शिवे ॥

दृष्टिमात्रेण सर्वेषामश्वमेधफलप्रदे । निष्कामनादर्शनतः अयत्नेनापवर्गादे ॥

महापातकतूलानां वातूले भव्यकारके । महाभाग्याब्धिगुग्मांशौ पापाख्यतिमिरार्कके ॥

रोगक्षमाभृत्कदम्भशौ (?) मृत्युसर्पखगेश्वरे । सर्वलभ्येति सुलभे सर्वदेवसमूहके ॥

सर्ववेदनिधौ सर्वतीर्थकोटिमहा (फले... ?) ।

कन्यादाता त्वयं श्रीमान् तस्मिंस्तादृशि तत्क्षणे ॥

दशानामपि दानानां महतां तत्फलं लभेत् । कनकाश्वतिला नागाः दासीरथ महाप्रहाः
 कन्या च कपिला धेनु महादानानि वै दश । एतेषां फलमाप्नोति तृतीये दिवसे किल

कन्याप्रदाता तेषां च षोडशानां पुनः क्षणात् ।

तादृशैश्चलति श्रीके तस्मिन् चलति भव्यके ॥

अवान्तरमहादानप्रभेदानां च केवलम् ।

फलानि सर्वाण्याप्नोति नात्रकार्या विचारणा ॥

तेषां क्रमेण वक्ष्यामि दानक्रममघापहम् । सुवर्णदानं प्रथमं प्रवरं कथितं बुधैः ॥

तत्तु षोडशदानैस्तैस्तुल्यं स्वर्णप्रदानकम् । ततः सुवर्णं स्वर्णस्य दानं पापहरं स्मृतम् ॥

तथा सुवर्णद्वितयदानमक्षयदानकम् । दानं शतसुवर्णस्य फलादिप्रतिपादनम् ॥

त्रिकालसौवर्णदानं तदनन्तरमीरितम् । दानं नित्यसुवर्णस्य हेमाख्यप्रतिपादनम् ॥

दानं शिवसुवर्णस्य लिंगस्वर्णसमर्पणम् । शतमानसुवर्णस्य दानं हत्याहरं स्मृतम् ॥

पापरोगहरं तद्वह्निं शतसुवर्णकम् । दानं भद्रनिधेश्चैव तथानन्दनिधेः स्मृतम् ॥

रूप्यदानं तु कल्पोक्तमश्वदानमनुत्तमम् । श्वेताश्वदानं सूर्याश्वदानं चापि निरूपितम् ॥

वडवा(वा)याः प्रदानं च तिलदानमतः परम् । तिलकृष्णाजिनस्यापि दानं तिलमृगस्य च

तिलपात्रप्रदानं च महातिलसमाह्वयम् । तिलराशिप्रदानं च दानं त्रैपद्मीरितम् ॥

तिलाल्लिङ्गदानं च पापघ्नं परिकीर्तितम् । तिलपीठं तिलादश तिलकुम्भसमर्पणम् ॥

तिलालंकारदानं च पापघ्नं परिकीर्तितम् । तथा रुद्रैकादशकतिलदानमुदीरितम् ॥

तथैव तिलगर्भस्य तिलपद्मस्य कीर्तितम् । दानं तु क्षयरोगघ्नं तिलपद्मस्य चोत्तमम् ॥

शूलरोगहरं तद्वत्तिलपद्मं प्रकीर्तितम् । मूकत्वनाशकं चान्यत्तिलपद्मप्रकीर्तितम् ॥

गजदानं च रोगघ्नं गजदानं तथापरम् । तिलपिष्टं गजस्यापि दानं तद्वत्प्रकीर्तितम् ॥

शिवाय विष्णवेऽर्काय गजस्य प्रतिपादनम् । मुखरोगहरं चान्यद्गजदानं प्रकीर्तितम्

व्रणघ्नगजदानं च दासीदानमनुत्तमम् । दासदानं रथस्यापि प्रदानं शकटस्य च ॥

गन्त्रीदानं यानदानं शिविकादानमेव च ।

महीदानं तथा प्रोक्तं गृहदानं तथा स्मृतम् ॥

सूर्याय गृहदानं च चत्वरप्रतिपादनम् । गवां गृहप्रदानं च आश्रयप्रतिपादनम् ॥

मठमण्ड(ण्ड)पयोर्दानं दानं शिवमठस्य च । प्रतिश्रयप्रदानं च कन्यामूल्यप्रदापनम् ॥

द्विजस्थापनमेवं स्याद्राजस्थापनमेव च । कपिलायाः प्रदानं च दानान्येतानि कृत्स्नशः
तस्मिन्कृते तनुकृते कन्यादाने ततः पुनः । लभन्ते निखिलान्येव तृतीये दिवसे क्षणे ॥
विप्रपूजाविशेषारूपे तत्ताम्बूलप्रदापनात् । पूर्वमेव भवेन्नूनं कन्यादातुर्न संशयः ॥
तत्फलं च तथा प्रोक्तं अनश्वरमभोधकम् । दानतत्क्षणजं पुण्यं यावच्चन्द्रार्कभूस्थिरम् ॥

तस्मात्तस्मिन् क्षणे भक्त्या तृतीये दिवसे शुभे ।

विवाहे चापि मौञ्ज्यां वा ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥

श्रोत्रियेभ्यो वेदविद्भ्यः सोमयाजिभ्य एव च ।

महद्भ्यो ह्यग्निहोत्रिभ्यः सत्कुलीनेभ्य एव वा ॥

अन्तेऽशिषां (?) दक्षिणायाः प्रदानं वाससामपि ।

पुष्पाणां च सुगन्धानां मालिकानां सुगन्धिनाम् ॥

वस्तूनां पुनरन्येषां तस्मिन् काले विधीयते । अत्र साक्षाद्देवदेव लक्ष्मीनारायणस्य तु ॥

सान्निध्यं स्वयमेव स्याद्यतो वेदस्वरूप्ययम् ।

सर्वेषां मार्गदानानां फलानि च बहून्यति ॥

तदक्षिणादानमात्रात् लभते कन्यकापिता ।

तथासौ वरतातोऽपि तथा दक्षिण्या तथा ॥

विप्राणां कृतया सद्यो लभत्येवाविलम्बितम् । तत्राद्यं सुमहत्तच्च गोभूस्वर्णयुतं परम् ॥

मार्गं दुष्कृतवारघ्नं रत्नस्वर्णसमन्वितम् । अपरं सुमहदानं वस्त्रभूषणसंयुतम् ॥

धान्यव्रातयुतं चान्यद् ग्रामेण नगरेण च । संयुक्ते तु तथा ज्ञेये मार्गे सर्वाविलम्बके ॥

तत्स्वरूपं ब्रह्मणोक्तं कृष्णसारविनिर्मितम् ।

संसिद्धये च यागानां श्राद्धानां तपसां श्रियाम् ॥

समृद्धये वृद्धये च कल्पितं हरिणा तथा । शिवेन देववृन्दैश्च तदेतच्च निरूप्यते ॥

अहोरूपंसितं तस्य कृष्णं रात्रिमयं वपुः । बहुरूपं तु सुमहद्विज्ञेयं तन्महोन्नतम् ॥

स्वेच्छया चरते यत्र स देशो याज्ञिकः स्मृतः ।

कृष्णसारो महापुण्यस्तथा दर्भाश्च कीर्तिताः ॥

तिलकृष्णाजिनस्यैतदानमेकं प्रकीर्तितम् । सहोमतिलसर्पिष्काजिनदानमनन्तरम् ॥
 तद्वच्चम्पकशाखाख्याजिनदानमनन्तरम् । रुक्मादिपात्रसंयुक्ताजिनमन्यत्रकीर्तितम् ॥
 सुमन्तुप्रोक्तमपरं कौशिकोक्तमथाजिनम् । पितृकृष्णाजिनं तद्वन्मार्त्यमाजिननामकम् ॥
 गृष्टिकृष्णाजिनं तद्वन्महाकृष्णाजिनं तथा । आर्द्रकृष्णाजिनं प्रोक्तं मृगदानं ततः परम् ॥
 वातव्याधिहरं श्रीकं महाविलहरं परम् । पुनः स्वतन्त्रमपरं मृगदानं पवित्रकम् ॥
 एतद्रूपमहादानविशेषा निखिलाः पराः । महोत्सवे तार्तियीकदिवसे तादृशे क्षणे ॥

भक्त्याप्रदानाद्विप्रेभ्यो लभत्येवाविलम्बितम् ।

गन्धलेपनतस्तस्मिन्विप्राणां वेदिनां सताम् ॥

तन्महामहिषीदानफलं शतगुणान्वितम् । तत्क्षणाद्भते नूनं कन्यावरपितृद्वयम् ॥

तदानादान्तरमहादानभेदोऽपि कथ्यते ॥

महिषीदानावान्तरदानावान्तरदानानि गर्दभप्रतिगृहीता

मेषीदानं मेषदानं महिषस्यातिगात्रिणः । अजादानं गर्दभोद्धदानं पापहरं पुनः ॥
 तदानं गर्दभं कस्मै प्रदेयमिति चेत्तु तत् । प्रवक्ष्यामि च यो वर्णी मोहादवकिरेज्जडः ॥
 तस्यस्याद्गर्दभस्त्वेकः पश्वर्थे चित्तहेतवे । शास्त्रैकविहितः सर्वलोकैकविदितस्त्विति ॥
 तन्निमित्ते क्रयक्रीतो रजकात्तु न संभवेत् । गर्दभः पशुकार्यार्थं निन्द्यजातिसमुद्भवात् ॥

न चण्डालात्पशुग्राह्यः रजकः सुमहान् परः ।

ग्रामचण्डालइत्युक्तः सर्वनिन्द्योऽतिकिल्बिषी ॥

न तस्मात्तु पशुग्राह्यः तत्पापविनिवृत्तये । कर्तव्ये गर्दभालम्भे पशुं विप्रमुखाद्यतन् ॥
 चिरात्संपादनं कुर्यात्स विप्रस्य कथं भवेत् । गर्दभोऽयं महानिन्द्यः सर्वलोकजुगुप्सितः ॥
 इति चेत्तत्र वक्ष्यामि कारणं तन्मुखस्य चेत् । रजकश्चेत्पित्तवातसंकलीकरणादिना ॥
 महाग्निमान्द्यरोगैकपीडितो यदि केवलम् । नायं वै तन्निवृत्त्यर्थं गर्दभं दानमाचरेत् ॥
 इति शास्त्रेण चेद्यो वा रजको रोगपीडितः । तदानमाचरेच्चेत्तु ब्राह्मणाय कदाचन ॥
 तत्सकाशादमुं वीक्ष्य तादृशं गर्दभं त्वयम् । प्रसमीक्ष्येव गृह्णीयादिति वेदानुशासनम् ॥

ततस्तं योजयेत्स्वस्य कार्याय पशुहेतवे । अवकीर्णास्वकृतस्य दुष्कृतस्य निवृत्तये ॥
 कथं विप्रसकाशात्तु स्वीकार्यो गार्दभः पशुः । क्रयेणेति महत्यर्थे संशये तन्निरूपणम् ॥

प्रसंगेन प्रकथितं तस्मिन् काले तु तान् शुभान् ॥

मन्त्राक्षतधारणफलम् विवाहचतुर्थदिनकर्तव्यम् देवतादानानि

मन्त्राभिमन्त्रितान् दिव्यान् तत्रत्यैरखिलैर्द्विजैः ।

मन्त्रान्तदत्तासत्यन्तपावनान् (?) शुभहेतकान् ॥

अक्षतानतिसर्वस्वदायकानतिदुर्लभान् । ये वा गृह्णन्ति शिरसा ते भावुकनिकेतनाः ॥
 ततश्चतुर्थदिवसदीक्षावस्त्रपरिप्लवात् । निमित्ताद्रजकाद्भूताद् यद्दानं वस्त्रभक्ष्ययोः ॥
 कन्यकाभूषणकृतिसमये दीपशोभिते । वधूवराभ्यां रचिततद्दानैरयं तदा ॥

कन्यापिता वै प्राप्नोति देवतादानजालकम् । निखिलं तन्मुहूर्तेन नात्रकार्या विचारणा
 तद्देवतादानकल्पस्वरूपं तत्प्रयोजनम् । निखिलेनैव नितरां सम्यग् वक्ष्ये प्रसङ्गतः ॥
 आदौ वैनायकं दानं गुल्मरोगघ्नमेककम् । तथापस्माररोगघ्नं अन्यद्वैनायकं पुनः ॥
 प्लीहोरोगहरं चान्यद्वैनायकमनुत्तमम् । वाग्जाड्यत्वहरं चान्यत्सारस्वतमथापरम् ॥
 मूक्तवनाशकं तद्वह्निं सारस्वतं तथा । आन्त्रवृद्धिप्रशमनं नारायणमथापरम् ॥
 प्रदानं वातरोगघ्नं लक्ष्मीनारायणस्य च । ततो गारुडदानं च कामलारोगनाशनम् ॥
 गारुडं दानमपरमक्षिरोगनिवर्तकम् । अन्यद्गारुडमाख्यातं वाराहं दानमुत्तमम् ॥

देवतामूर्तिदानम्

नारसिंहं दक्षरोगहरमौमामहेश्वरम् । प्रदानं क्षयरोगघ्नं रुद्रमूर्तेरनन्तरम् ॥
 दक्षिणामूर्तिदानं च प्रदानं परशोः स्मृतम् । शूलदानं तु पापघ्नं शूलरोगघ्नशूलकम् ॥
 दानं भ्रमणरोगघ्नं सूर्यमूर्तेरनन्तरम् । अन्यत्कुष्ठघ्नमार्तण्डप्रतिमादानमेव च ॥
 अथाबिसाररोगघ्नं वह्निदानमनुत्तमम् । अश्वि(श्व)दानं तु दारिद्र्यहरं कौवेरमीरितम्
 ततोदरव्याधिहरं मकरप्रतिपादनम् । स्मृतं विसर्पिरोगघ्नं नागदानमनुत्तमम् ॥
 ततस्तु वाग्जाड्यहरं घण्टादानमनुत्तरम् । श्वासकासहरं चोक्तं प्रदानं द्विजपाशयोः ॥

कालपूरुषदानं च दानं प्रतिष्ठतेस्तथा । पाद्यपूरुषदानं च कालचक्रप्रदानकम् ॥
यमदानं त्रिपुरुषदानं तद्वत्प्रकीर्तितम् । उदकुम्भप्रदानं च चन्द्रादित्यप्रदापनम् ॥
ब्रह्मविष्णुवीशदानं च तथायुष्करनामकम् । दानं त्रैमूर्तमाख्यातं चातुर्मूर्तमतःपरम् ॥
पाञ्चमूर्तमतः प्रोक्तं दानं सर्वाधनाशनम् । दिग्दानं पञ्चदैवत्यं लोकपालाष्टकं तथा ॥
रुद्राष्टकमितिरुयातं गृहदानमनुत्तमम् । प्रोक्तं सांपत्करं दानं सर्वदेवाभिपूजितम् ॥
पिशाचतारदानं तु दानं वैश्वानरं तथा । साध्यदानं ततो द्वादशादित्यप्रतिपादनम् ॥
दानं देवगणेशस्य निग्राहप्रतिपादनम् । महागणेशदानं च लक्ष्मीदानमनुत्तमम् ॥
तथैव च मरुद्दानं महापापप्रणाशनम् । तत्परं भुवनानां तु प्रतिष्ठा महती परा ॥
कल्पदानं पिष्टरूपप्रदानं सुमहत्फलम् । इत्येवं देवतादानक्रमस्य सुमहत्फलम् ॥
कन्याप्रदाता लभते सुमहाभूषणोत्सवे । तद्गात्रौ सुमहाभव्यविशेषे मंगलाकरे ॥
गौरीं समुद्दिश्येन्द्राणी कृतनाख्य(त्र्य) मुहूर्तके ।
देवतामूर्तिदानानि तत्क्षणात्लभतेऽखिलम् ॥
तस्मात्कन्यादानसमं दानमन्यन्न विद्यते । तस्मिन्नेव महादाने तत्कर्ता सर्वदानजम् ॥
फलं विन्दति तत्कालविशेषेषु ततः पुनः ॥

गन्धर्वपूजासमयलब्धफलकदानानि प्रतिपदादितिथिदानानि

गन्धर्वपूजासमये यस्य यस्य फलं महत् ।
प्राप्नोति कन्यकातातस्तानि दानान्यपि क्रमात् ॥

निरूप्यन्ते प्रसङ्गेन यूयं शृणुत वै पुनः । तत्तत्कालविशेषेषु कर्तव्यान्येव पेशलैः ॥
नित्यकाम्यनिमित्तार्थकारणेनेशुष्टये । तानि तानि तु दानानि श्रीमद्भिः शक्तिसंभवे ॥
कार्याणि किल तिथिषु प्रतिपन्मुखतः क्रमात् ।
प्रथमायां तु पुष्पाणि द्वितीयायां घृतं तथा ॥
तृतीयायां हरिद्रायाश्चतुर्थ्यां रजतस्य च ।
पञ्चम्यां तु पलान्येव षष्ठ्यां पानीयपात्रके ॥

सप्तम्यामप्यूपानामष्टम्यां तु गुडस्य च ।

कुलमाषस्य नवम्यां तु दशम्यां भोजनस्य च ॥

एकादश्यां सुवर्णस्य द्वादश्यां व (रजतस्य) नस्य च ।

त्रयोदश्यां चन्दनं च शर्करायास्ततः परम् ॥

दानं तत्कथितं पुण्यं चतुर्दश्यां विशेषतः । दानं च परमान्नस्य पौर्णमास्यां स्मृतं तस्मै
तिलदानममावास्यादिने खड्गाख्यपात्रकम् । पितृणां प्रीतये प्रोक्तं ब्रह्मविद्धिः पुरातनैः
एतानि सर्वदानानि कन्यकापितृवेश्मनि । तदा गन्धर्वपूजायां कृतायां तेन चेदति ॥

वरेण लभते तस्याः कन्यकायाः पितामहान् ।

स्कन्दोक्तानि च दानानि तिथिष्वेतेषु कृत्स्नशः ॥

क्रमेणोक्तानि च तथा लभते नात्र संशयः ।

तानि चापि प्रवक्ष्यामि दानानि निखिलान्यपि ॥

प्रतिपद्यरविन्दाख्यं कर्तव्यत्वेन चोदितम् । सौवर्णं रजतं वापि ताम्रकं वा विधीयते ॥

वैश्वानरं द्वितीयायां तृतीयायां च पार्वतम् । वैशाखस्य तृतीयायां संप्रदद्यादुपानहौ ॥

माघशुक्लद्वितीयायां गुडदानं महोदयम् । लवणस्य प्रदानं च वारिदानं महत्फलम् ॥

वैशाखस्य तृतीयायां चन्दनस्य मृजां तथा ।

फलानां पानकस्यापि व्यजनानां विशेषतः ॥

छत्राणामपि रम्याणां वस्त्राणां जलतक्रयोः । संप्रदानं प्रशंसन्ति येन केनाप्युपायतः ॥

मोदकानां तथान्नस्य कृतस्याप्रकृतस्य च । घृतस्य करकस्यापि भक्ष्याणामपि केवलम् ॥

चित्रान्नानां विशेषेण पितृणां प्रीतिहेतवे । माधवस्य च तत्प्रीत्यै तानि दानानि सर्वशः

चतुर्थ्यां वारणं हैमं पञ्चम्यां पन्नगं तथा ।

षष्ठ्यां शक्तिसमीपे तं कुमारं शिखिवाहनम् ॥

सप्तम्यां भास्करप्रीत्यै सालंकारं तुरंगमम् । अष्टम्यां वृषभं श्वेतं देवदेवप्रियं शिवम् ॥

नवम्यां काञ्चनं सिंहं दशम्यां दशधेनुकम् ।

दिक्प्रीत्यै किल देयं तत् धेन्वादीनि क्रमेण वै ॥

एकादश्यां गरुत्मन्तं संप्रदद्याद्विरण्मयम् ।

धेनुं हिरण्यां महिषीं सप्तधान्यान्यजाविकम् ॥

वडवाश्वं गुडरसान् पुष्पाणि च फलानि च ।

द्वादश्यां द्वादशैतानि दद्याद् गन्धाननुक्रमात् ॥

चैत्रादिमासशुक्लासु द्वादशीषु विशेषतः । क्रमेण दद्यादेतानि वस्त्रं रुक्ममुपानहौ ॥

शयनं वसनं चैव धेनुमश्वं च कम्बलम् । लवणं चैव धान्यानि दारवं चन्दनं तथा ॥

स्नापयित्वा ब्राह्मणान् वै प्रातःकाले विधानतः ।

त्रयोदश्यां विशेषेण संख्यया च त्रयोदश ॥

माहेयं सुशुभं कुम्भं चतुर्दश्यां पयोधृतम् । चैत्रादिमासपूर्णासु कृष्णवस्त्रं तथाजिनम् ॥

उपानहौ च छत्रं च मृष्टान्नं जलगां शुभाम् । धृतपूर्णं कांस्यपात्रं सालंकारं च गोवृषम् ॥

लोहाजिनं सचन्द्रं च हेमाज्यं शयनं तथा । एतानि देयानि किल पौर्णमासीष्वनुक्रमात्

अमायां किल पात्राणि समुवर्णानि दापयेत् । एतानि तिथिदानानि कर्तव्यत्वेन केवलम्

सर्वशास्त्रप्रसिद्धानि तान्येतानि तु कृत्स्नशः । शेषहोमे कृते तेन तपने चैव केवलम् ॥

वरेण तत्क्षणादेव लभते कन्यकापिता । ततः परं पुनरपि क्रियमाणे तु तादृशे ॥

त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवतापूजाफलम् धेनुदानानि

त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्यापूजने देवताकृते । तद्धेनुतुर्यदानानां फलमाप्नोति केवलम् ॥

तत्क्रमं चापि वक्ष्यामि भवतां विशादाय वै । लोणधेनुस्तु(?) वैशाखतृतीयायां महाफला

धेनुस्तिलमयी सा तु नवम्यां कार्तिकस्य वै । प्रदातव्या विशेषेण तितृणामतितृप्तये ॥

गौः प्रदेया नभस्यस्य त्रयोदश्यां द्विजातये । राजती वा ताम्रमयी शतनिष्कैरलंकृता ॥

नवनीतमयी धेनुर्माघमासे तथाविधे । पौर्णमास्यां विशेषेण तान्येतानि महान्त्यति ॥

दानानि लभते तानि तत्पिता तत्क्षणेन वै । तत्प्रदक्षिणमात्रेण पुरन्ध्रीभिः सदीपतः ॥

गौर्याः शच्याश्च विधिना गजयोरपि तत्परम् ॥

वधूवरयोर्वस्त्र प्रदानफलम्

लभते वारदानानां फलं कृत्स्नं च तत्पिता । वारदानक्रमं चात्र विशदाय निरूप्यते ॥
 दद्यादादित्यमूर्तिं तां भानुवारे हिरण्यमीम् । रत्नैरलंकृतां दिव्यां आसत्येनेति मन्त्रतः
 संपूज्य परमान्नं तत्कृत्वा नैवेद्यमञ्जसा । दक्षिणाशतनिष्कं स्यादेवमेव ततः परम् ॥
 क्रमेण कुर्याद्दानानि सोमं सोमे कुजं कुजे । एवं बुधादिवारे तु दानकुर्याद्यथाविधि ॥
 एवं बुधादीन् स्कान्दे तु राहुकेतुशनैश्चरान् । दद्यात्तत्तद्ग्रहप्रीत्यै तत्तद्द्वारेषु भक्तितः ॥
 सहिरण्यमपूपं तु सघृतं भानुवासरे । पिष्टापूपंसोमदिने काष्ठानि कुजवासरे ॥
 बुधे क्रीडनकं शस्तं जीवे वस्त्रं तु शोभनम् । शुक्रे रतिं तु सर्वत्र तैलाभ्यङ्गं शनैश्चरे ॥
 दत्तेष्वेतेषु दानेषु प्रतुष्यन्ति ग्रहास्सदा । तानौमानि च दानानि वारप्रोक्तानि यानि वै
 तानि सर्वाण्यवाप्नोति वरयोर्वस्त्रदानतः । तदा तु तादृशे काले क्षणमात्रेण तत्पिता ॥
 वारसप्तककर्तव्यत्वेन द्रव्याधिकादपि । एकोनपञ्चाशदिनलभ्यानि किल तानि हि ॥
 तत्कथं चेति चेदत्र तत्क्रमस्त्वैवमेव हि । आदौ प्रथमतः वारसप्तकादौ रवेर्दिने ॥
 भानुमूर्तिः प्रदेया हि पुनरेवं ततः परम् । द्वितीयवारपुञ्जे तु सोममूर्तेर्विधानतः ॥
 प्रदानकालो भवति तार्तीयके ततः परम् । तद्द्वारसप्तके धात्री सूनोर्दानं तृतीयके ॥
 भौमवारे हि भवति तुर्यके सप्तके ततः । बुधदानं स्मृतं श्रीमत्सर्वसंपत्प्रदायकम् ॥
 एवं सर्वत्र विज्ञेयं तत्क्रमस्य तु लक्षणम् । सर्वेषामपि दानानां सप्तानां कृत्यहेतवे ॥
 संकल्प्यादौ विधानेन ततः कुर्यात्तु तानि हि । क्रियमाणेषु तेष्वेवं तत्क्रमेणैव केवलम् ॥
 भवेयुरेव प्रायेण प्रत्यूहा बहुरुपतः । तस्मात्तत्कर्मसिद्धिर्नो तल्लघूपायतो भवेत् ॥

अतस्तेषां तु दानानां तादृक्संख्यादिनानि तु ।

सापेक्षाणि हि तान्येवं दानानि खलु देहिनाम् ॥

गुरुयत्नैकसाध्यानि तादृशान्यत्र भावुके । क्षणेनालंकारवस्त्रदानमात्रेण केवलम् ॥
 प्राप्नोत्यवशतश्चित्रं तत्परं चापि केवलम् । सर्वनक्षत्रदानानां फलं यद्बन्धुवृन्दके ॥

बन्धुभ्यो वस्त्रदानप्रकरणम् नक्षत्रदानानि

पूजाप्रपूर्ववस्त्राणां दानमात्रेण वै लभेत् । तच्च दानक्रमं सव नैपुण्येन निरूप्यते ॥

कृत्तिकासु ससर्पिष्कं प्रदेयं पायसं शुभम् ।

रोहिण्यां क्षीरसंयुक्तं माषान्नं स्यात्प्रशस्तकम् ॥

दोग्ध्रीं सवत्सां विप्राय नक्षत्रे सोमदैवते ।

दद्यादेवेति शास्त्राणि वदन्ति निखिलान्यपि ॥

आर्द्रायां कृसरं देयं तैलमिश्रं समाहितैः । पूर्णं पुनर्वसौ देयं पुष्ये दद्यात्तु काञ्चनम् ॥

आश्लेषासु तथा रौप्यवृषभं प्रतिपादयेत् । मखासु तिलपूर्णानि वर्धमानानि शक्तितः ॥

भक्ष्यान्वानीय संयुक्तान् फल्गुनीपूर्वके शुभान् ।

उत्तराविषये दद्यात्सगव्यं षाष्टिकोदनम् ॥

हस्ते हस्तिरथं दद्यात् चित्रायां वृषभं च गाम् । स्वातीष्वनडुहं दद्याद्यदिष्टतममात्मनः ॥

विशाखायामनड्वाहं धेनुं दद्यात्सुदुग्धदाम् । सप्रासंगं च शकटं सधान्यं वस्त्रसंयुतम् ॥

अनुराधासु प्रावारं वस्त्रोत्तममनुत्तमम् । ज्येष्ठायां कालशाकं तु संप्रदद्याच्च मूलकम् ॥

मूले मूलफलं दद्यात्पूर्वाषाढासु वै दधि । उदमन्थं ससर्पिष्कं प्रभूतमथ (फा ?) णितम् ॥

दद्याच्चैवोत्तराषाढास्वायुर्वृद्धयै द्विजातये ।

दुग्धं त्वभिजितो योगे दद्यान्मधुघृताप्लुतम् ॥

श्रवणे कम्बलं दद्याद्वस्त्रान्तरितमेव च । धनिष्ठासु तथा यानं ब्राह्मणाय चतुर्गवम् ॥

गन्धान् शतभिषग्योगे पूर्वभाद्रपदे फलम् । औरभ्रमुत्तरायोगे मासं वै पितृनुप्रये ॥

काश्योपदे(दो)हनां धेनुं रेवत्यां प्रतिपादयेत् । रथमश्वसमायुक्तं अश्विनीषु निवेदयेत् ॥

भरणीषु द्विजातिभ्यस्तिलगोप्रतिपादनम् । अष्टाविंशतिदानानां क्रम एवमनूदितः ॥

नक्षत्राणां प्रकथितः राजभिश्चक्रवर्तिभिः । कर्तव्यत्वेन धनिभिर्यद्वा लक्षाधिकारिभिः ॥

तत्तुल्यैर्वा महाभागैः श्रीमद्भिरनिशं मुदा । श्रियः प्रीत्यै विशेषेण धनधान्यादिसंपदाम्

दाढ्यार्थं विद्यमानानां साक्षान्नारायणस्य च । देवदेवेश्वरस्यापि महादेवस्य शूलिनः ॥

उमापतेर्जगत्कर्तः प्रीतये च यथाक्रमात् । दानान्येतानि सततं कार्याण्येव न चेत्तु सा ॥

लक्ष्मीः स्थिरतरा गेहे न तिष्ठत्येव वच्मि वः ।

यः श्रीमान् स तु मेधावी देवभक्त्या विप्रन्नया ॥

देवान्तरं नासूयेत यद्यसूयेत मूढधीः ।

लक्ष्मीस्सानाशमायाति तस्य वंशोऽपि कालतः ॥

शनैश्शनैर्लयं नूनं संप्राप्नोत्येव वच्मि वः । लोके हरिहरौ देवौ श्रुत्युक्तौ देववल्लभौ ॥

दातारौ संपदां नित्यं विद्म्यौ शास्त्रजालकैः । तदन्यतरभक्त्यैव तदन्यो देव ईश्वरः ॥

न द्वेष्ट्यो नापि दूष्यश्च यदि मोहेन वै तथा ।

स्याच्चैदयं नरो मूढो निःश्रेयः प्रतिपद्यते ॥

सर्वदामानि तत्प्रीत्यै चोदितान्येव वेदिभिः । शास्त्रिभिर्ब्रह्मविद्भिश्च वेदशास्त्रपुराणकैः ॥

अखिलैर्धर्मशास्त्रैश्च तयोरेकस्य कस्यचित् ।

प्रीतये किल कार्याणि सर्वकृत्यानि सन्ततम् ॥

एतान्युक्तानि दानानि नित्यनैमित्तिकान्यपि ।

काम्यानि बहुरूपाणि नित्यत्वेनैव केवलम् ॥

तत्प्रीतये तद्विधिना कार्याण्येव नृपादिभिः । विवाहपञ्चमदिने शचीपूजापरं किल ॥

बन्धूनां पूजया नूनं तानीमानि तु तत्पिता । अवशाल्लभते नूनं कन्यातातो वरस्य च ॥

अधुनोक्तानि दानानि नाक्षत्राणि महान् स तु ।

जगाद् शौनकः श्रीमान् प्रकारान्तरमाश्रितः ॥

तच्चापि संप्रवक्ष्यामि भवतामद्य सिद्धये । कृत्तिकासु सुवर्णस्य रोहिण्यां रक्तवाससाम्

सौम्यमे लवणस्यापि ह्यार्द्रायां कृसरस्य च ।

आदित्यर्क्षे तु रूपस्य पुष्ये चैव घृतस्य च ॥

सापमे चैव गन्धानां तिलानां पितृदेवते । प्रियङ्गोर्मगदेवत्ये पूषानामुत्तरे तथा ॥

सावित्रे पायसस्यापि चित्रायां चित्रवाससः । सक्तूनां वायुदेवत्ये लोहस्येन्द्राग्निदेवते

मैत्रे लफलानां तु ह्यातपत्रस्य शात्रमे । मधुयुक्तस्य हेमस्तु दानमाप्ये विधीयते ॥

वैश्वदेवेऽन्नपानस्य श्रवणे वसनस्य च । धान्यस्य वासवे दानं वारुणे चौषधस्य च ॥
अन्ने पुराणबीजानां सस्यानां तदनन्तरम् । गोरसानां तथा पौष्णे स्नानानामथचाश्वमे
तिलानां च महादानं भरणीषु प्रशस्यते । एतादृशानां दानानां शौनकेन महात्मना ॥
प्रोक्तानां क्षणमात्रेण लभते बन्धुपूजया । कन्यकायाः पिता नूनं स्वद्रव्यत्यागमूलतः ॥
कृतया चेन्मुदा नूनं विशेषेण फलं लभेत् । चेतसा दूयमानेन कृतया चापि केवलम् ॥

फलं तु लब्धं दुःखात्तु यथा स्यात्तु मुदा तदा ।

दुःखितो न भवेदेव तस्मिन् काले ततः परम् ॥

द्रव्याधिव्यभिया चिन्तां न कुर्यादेव सर्वथा ।

सुमुख्येव भवेन्नूनं तेनासौ सुमहत्फलम् ॥

प्राप्नोति कन्यकातातो वरस्यापि पिता तथा । वसूनामवशाद्बन्धुदानमानादिनातराम्
दुर्मना न भवेदेव वसूनामधिकव्ययात् । अवशादागतात्काले तस्मिन् भव्ये तथाविधे ॥

डो(दो)लोत्सवताम्बूलदानफलम् योगदानानि

डो(दो)लोत्सवे दम्पतीनां ताम्बूलानां प्रदानतः ।

महाविष्कम्भयोगादिसर्वदानफलं लभेत् ॥

तदानशास्त्रं वक्ष्यामि भवतां विशदाय हि ।

विष्कम्भे धान्यदानं तु प्रशस्तं श्रीमतां सदा ॥

कर्तव्यत्वेन विहितं प्रीतौ दानं तथान्धसः ।

धृतमायुष्मतिप्रोक्तं सौभाग्ये कौकुम्भं स्मृतम् ॥

शोभने यवदानं तु ह्यतिगण्डे तथाम्बरम् । सुकर्मणि गुडान्नं तु रूप्यदानं धृतौ स्मृतम् ॥

सुवर्णशूलं शूले तु गण्डे मण्डनकं तथा । वृद्धियोगे धेनुदानं रत्नदानं ध्रुवे तथा ॥

व्याघाते पाणितं प्रोक्तं गुडदानं तु हर्षणे । वज्रयोगे वज्रदानं सिद्धे सैद्धार्थमेव च ॥

काञ्चनं तु व्यतीपाते तिलदानं वरीयसि । परिधे चातपात्रं तु जलदानं शिवाह्वये ॥

सिद्धे सिद्धान्नदानं तु साध्ये चाभरणं स्मृतम् ।

शुभे छत्रं प्रदेयं स्याच्छुक्ले दानमुषानहाम् ॥

सर्पिर्दानं ब्रह्मयोगे दीपदानमथैन्द्रके । वैधृतौ स्वर्णदानं तु योगदानं प्रशस्यते ॥
तदा फलप्रदानस्य करणेनास्य वस्तुभिः । कन्यापितुः श्रीमतो वै करणीयैकदानजम् ॥

यत्फलं तदवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

तद्यो निरूपयिष्यामि क्रमं शास्त्रगतं त्वहम् ॥

सर्वलोकोपकाराय नारदेन पुरोदितम् । बवे तु पायसं देयं सक्तुं दानं च बालवे ॥
कौलवे गव्यदानं तिलदानं तु तैतिले । गरज्यां(जे)लवणं देयं बणिज्या(?)मम्बरं शुचि ॥
विष्टौ च पौष्टिकान्नानि सर्पिर्दानं तु शाकुने । मधुदानं चतुष्पदि वस्त्रदानं तु नागवे ॥

दानं प्रियंगोः किंस्तुप्ते श्रेष्ठमुक्तं महात्मभिः ।

दानान्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रेण तत्पिता ॥

लभते तत्क्षणेनासौ तस्मिन् काले वशाद्दहो ।

तदा वरे खट्वगस्थे पश्चाद्विप्राशिषां तराम् ॥

वधूवरयोस्ताम्बूलचर्बणफलम् संक्रान्तिदानानि

ताम्बूलचर्बणपरे पत्न्या साकं सभागते । पयःपानात्परं तस्मिन् यजमानस्तु केवलम् ॥
सर्वसंक्रान्तिदानानां फलं यत्समुदीरितम् । तदवाप्नोति नूनं वै निखिलं नात्र संशयः ॥
तत्क्रमं चापि वक्ष्यामि विशदायाधुना हि वः । मेघसंक्रमणे भानोर्मेषदानं प्रशस्यते ॥
वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं शिवप्रियम् । विष्णोरपि प्रियं भूयो वृषभो विष्णुवल्लभः ॥
यतः प्रकथितः सद्भिस्तद्दानं तस्य चक्रिणः । अतिप्रीतिकरं शस्तं मोदते वृषभे पुनः ॥
तद्दानं सर्वदानानां उत्तमोत्तममुच्यते । सर्वदेवप्रीतिहेतु तद्दानं तादृशं परम् ॥
वस्त्रान्नपानदानानि मिथुने विहितानि हि । घृतधेनुप्रदानं तु कर्कटेति प्रशस्यते ॥
ससुवर्णं छत्रदानं सिंहोऽपि विहितं शिवम् । कन्याप्रवेशे वस्त्राणां संप्रदानं गवामपि ॥

तिलानामपि खड्गानां कम्बलानां सुवर्चसाम् ।

नैपालानां विचित्राणां प्रदानं पितृवल्लभम् ॥

तुलाप्रवेशे बीजानां धान्यानां दानमिष्यते । कीटप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमुत्तमम् ॥

पात्राणां च फलानां च पुष्पाणां च तथा पुनः ।

धनुःप्रवेशे चित्राणां दृढानां वाससामपि ॥

कम्बलानां च मुख्यानां भूषणानां च वेश्मनाम् । प्रदानमुत्तमं प्रोक्तमन्नस्य च विशेषतः
ऋषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च । काष्ठानां च तृणानां च दीपस्यापि विशेषतः ॥
प्रदानं प्रवरं प्राहुः कटिशय्यासनाश्मनाम् । कुम्भप्रवेशे दानं तु गवां च तृणवारिणोः ॥

मीनप्रवेशे माषाणां मुद्गानां सर्षपादितः ।

तिलानामपि तैलानामाज्यानां मधुवारिणाम् ॥

सुगन्धप्रदानादिफलम्

चन्दनानां स्रजां तद्वत्पात्राणां श्रौतकर्मणाम् ।

मृण्मयानां विशेषेण काष्ठानां च स्र चामपि ॥

स्रुवादीनां प्रशंसन्ति प्रदानं ब्रह्मवादिनः । तावन्मात्रेण यज्ञस्य फलं कृत्स्नं न विन्दति ॥
ताम्बूलचर्वणात्पश्चादेलादीनां प्रदानतः । लवङ्गमिश्रतद्विव्यमहौषधसुगन्धिनाम् ॥

सुगन्धानां प्रदानादिचित्रहेलामहोत्सवात् । बन्धुहर्षेण महता विप्राणां स्वस्तिवाक्यतः
सुमङ्गलीदिव्यगानप्रपूर्वकमहारवैः । सुगन्धद्रव्यविक्षेपैस्तदा जातैरनेकशः ॥

महोत्सवशतैश्चित्रैरयं कन्यापिता क्षणात् ॥

मासदानानि

शिष्टमासादिदानानां फलान्याप्नोति तादृशम् ।

कन्यादानं महत्तस्मात् तस्मिन् दानानि यानि वा ॥

महाद्रव्यैककालैकसाध्यान्याश्वेव विन्दति ।

तानि भूयश्च दानानि मासादीनामिहोच्यते ॥

प्रसंगेन तु शिष्टानि चैत्रादीनि क्रमेण वै ।

माघमासे तिलान् दद्यात् प्रियङ्गून् फाल्गुने तथा ॥

चैत्रे वस्त्रमपूर्णास्तु वैशाखे छत्रकं शुचौ । आषाढे पादुकां वस्त्रं श्रावणे परिकीर्तितम् ॥

नभस्ये फाणितं दद्याद्घृतमाश्वयुजे तथा । दीपं तु कार्तिके मार्गशीर्षे लवणमीरितम् ॥
 पौषे सुवर्णमेतानि देयान्येवं महात्मभिः । उत्तरे त्वयने देयं तिलधेनुद्वयं परम् ॥
 वस्त्रदानं विशेषेण तिलान्द्वाहमेव च । सर्पिर्दानं प्रशंसन्ति दक्षिणे त्वयने तथा ॥
 पुष्पदानं सिते पक्षे कृष्णपक्षे जलं शिवम् । देयमेवेति सततं पुनर्नित्यं च तत्स्मृतम् ॥
 स्नानानुलेपनादीनां वसन्ते दानमिष्यते । पानकानां तथा ग्रीष्मे वर्षासु छत्रमुत्तमम् ॥
 शरद्यन्नप्रदानं च वस्त्राणामपि हैमके । बर्हिर्दानं तु शिशिरे कृत्वा शत्रुजयं लभेत् ॥

संवत्सरे तिलान्दद्याद्यवांस्तु परिवत्सरे ।

इडापूर्वे च वस्त्राणि धान्यं चाप्यनुवत्सरे ॥

इद्वत्सरे तु रजतं क्रमादेयानि शक्तितः । कौले दानानि तान्येतानिति शास्त्रेषु नैकधा ॥

गीयन्ते धर्मसारज्ञैः श्रीमतां संपदेऽनिशम् ।

सर्वाण्यपि च दानानि भागिनामेव केवलम् ॥

नृपतीनां विशेषेण नित्यत्वेनैव सन्ततम् ।

चोदितानि किलान्येषां दरिद्राणां न किञ्चन ॥

एतत्कन्यामहादानं न तथा किल चोदितम् । स्वकीयविभवैकानुसारेणैव सुचेतसा ॥

कर्तव्यत्वेन विहितं पितृणां स्वस्य केवलम् । उत्तारणाय सर्वेषां अवशाल्लघुवर्त्मना ॥

एकोत्तरशतानां च ब्रह्मलोकाप्तये हि तत् ।

तस्मिन् कन्यामहादाने पुरोक्तान्यखिलान्यपि ॥

पुनस्तथाप्यनुक्तानि वक्ष्यमाणानि यानि वा ।

तानि सर्वाणि कन्याया दानाङ्गत्वेन यो महः ॥

तत्पञ्चदिनसाध्यो वै विहितकलम् उत्तमः । तत्कोणावयवानेहविहितानां तदा तदा ॥

तत्तत्क्रियाविशेषाणां प्रचालनमहत्त्वतः । अवशात्समवाप्नोति कन्यादाता क्षणाद्भ्रुवम्

मण्डपोद्वासनादिफलम्

मण्डपोद्वासनात्पश्चाद्देवतोद्वासनात्तथा । ब्रह्माद्युद्वासनात्तस्य वसन्तस्योत्सवेन च ॥

स्तम्भानां पूजया चापि पुण्यकंकणमोचनात् ।

आपन्निस्त्वृत्तभीतार्ता गर्भिणीप्रसवाय वै ॥

स्थालीभीतिद्रव्यवस्तुदानेत्तत्पालनादिभिः ।

यच्छ्रेयो जायते वाचा वर्ण्यं ब्रह्मादिनाकिभिः ॥

कन्याप्रदाता प्राप्नोति स्वद्रव्येणैव तत्कृते ।

तस्मात्तु कन्यकादानं परापूजादिकाच्छिवात् ॥

समारभ्यैव विधिना कृते कंकणमोचनात् । तद्द्रव्यमनपेक्ष्यैव स्वीयद्रव्येण चेद्वरम् ॥

उपमारहितं तत्स्यात् पुण्यकर्मसु पावनम् । एवं तु क्रियमाणेऽस्मिन् तन्मध्ये वै तदा तदा

गतागताह्वानकृत्ये सर्वसाधारणेन वै । तत्प्रदत्तसुमादीनि चन्दनं त्वनुलेपनम् ॥

स्वीकुर्यात्केवलं नित्यं न ताम्बूलं तथाम्बरम् । फलदाने कृते तेन तत्स्वीकृत्य स्वहस्ततः ॥

उभयोराशिषं सम्यक् प्रयुञ्ज्यात्तत्फलादिकम् ।

यस्मैकस्मैचित्तहयात् न स्वीकुर्यात्स्वयं परम् ॥

कन्यापितुर्धर्माः

कन्याप्रसूतिपर्यन्तं तद्गृहेऽसौ कदाचन । भुक्तिं नैव प्रकुर्वीत कूकुदायो महामनाः ॥

स्वशक्त्यनुगुणं यस्तु स्वबन्धुषु वरं शिवम् ।

समलंकृत्य विधिना कन्यकां भूषणादिभिः ॥

बन्धुब्राह्मणपूजादिकर्मभिलोभवर्जितः । लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै प्रददाति स कूकुदः ॥

तेनारोग्यादिदानानि तदानीमेव केवलम् । कृतानि स्युर्विशेषेण निरूप्यन्ते च तानि वः ॥

आरोग्यादिदानानि

आरोग्यदानं प्रथमं रत्नदानमनन्तरम् । परं भगंधरहरं रत्नदानमनुत्तमम् ॥
 व्रणरोगहरं रत्नवज्रसंप्रतिपादनम् । गलगण्डहरं रत्नदानं तदनुकीर्तितम् ॥
 ततोऽलंकारदानं तु वस्त्रदानमनन्तरम् । पुष्पदानं धूपदानं दीपदानं समन्त्रतः ॥
 देवतादीपदानं च दिग्दीपप्रतिपादनम् । गोदीपदानमपरं कार्तिक्यां दीपदानकम् ॥
 दद्याद्दीपप्रदानं च पिष्टदीपार्पणं ततः । गीतिदानं छत्रदानमुपानहानमेव च ॥
 रत्नपूरितहेमादिपात्रदानमनुत्तमम् । ताम्रपात्रप्रदानं च रुक्मपात्रार्पणं ततः ॥
 वस्त्रदानं देवताभ्यो वस्त्रदानमथापरम् । शोभन्नवस्त्रदानं च ह्युष्णीषप्रतिपादनम् ॥
 तथोर्णापट्टदानं च शय्यादानं ततः परम् । शिवशय्याप्रदानं च विष्णुशय्याप्रदापनम् ॥
 गौरीशय्याप्रदानं च दुर्गाशय्यासमर्पणम् । सूर्यशय्याप्रदानं च ह्यासनप्रतिपादनम् ॥
 तथास्तरणदानं च कटदानमनुत्तमम् । उपधानप्रदानं तु चर्मादिप्रतिपादनम् ॥
 ततो दर्पणदानं च शिवविष्ण्वोस्तथापरम् । लीलानिदानं कथितं दानं तु व्यजनस्य च
 तथा चामरदानं च गन्धदानं महोत्तमम् । ताम्बूलदानं स्वर्णादिपात्रदानं महाफलम् ॥
 भाण्डवर्धनिकादानं स्थालीदानमनुत्तमम् । प्रोक्तमन्विष्टकादानं अभयप्रतिपादनम् ॥
 विमोचनं विरुद्धानां पक्षिणां तदनन्तरम् । सर्पभोक्षणमाख्यातं पान्तशुश्रूषणं परम् ॥
 अभ्यङ्गदानं पातानां अभ्यङ्गप्रतिपादनम् । अभ्यङ्गकरणं चापि तस्मै तैलसर्पणम् ॥
 यज्ञोपवीतदानं च शिरोरोगहरं तथा । यज्ञोपवीतमपरं गर्भस्रावहरं स्मृतम् ॥
 दानं यज्ञोपवीतस्य ह्यष्टिकादीपसमर्पणम् । यत्यादीनां तु वपनं सपर्याकरणं गवाम् ॥
 अन्नदानं भक्ष्यदानं धान्यदानं महाफलम् । अथोदकप्रदानं च करकादिप्रदापनम् ॥
 तदा धर्मघटस्यापि यतीनां घटदानकम् । गृहिभ्यः कुम्भदानं च दानमुत्तममुच्यते ॥
 अश्वत्थजलदानं तु सेचनं पिप्पलस्य च । मधूकतुलसीबिल्वधात्रीवसनभूरुहाम् ॥
 सेचनं पालनं चापि स्थापनं दर्भकाशयोः । परोपकृतिकार्याय चेतसैव समर्पणम् ॥
 तथा गलन्तिकादानं मणिकादानमेव च । प्रपादानं जलाशयनिर्माणं कूपपाथसाम् ॥

सभीचीनैककरणं तटाकरणं तथा । देवमातृकदेशानां नदीमातृककल्पनम् ॥

निवर्हणं च दुष्टानां मृगाणां पापिनां नृणाम् ।

चोराणां तस्कराणां च ब्रह्मघ्नानां निवर्हणम् ॥

वापीसरः प्रकुल्यानां करणं फलदायकम् । वारिवन्धस्तदा प्रोक्तो वारुणेश्चिस्तथोदिता ॥

प्रतिष्ठा च तटाकस्य पुण्यारामादिरोपणम् । फलवृक्षारोपणं च तुलस्यादिप्रकल्पनम् ॥

गदितं तु निषिद्धानां वृक्षाणामवरोपणम् । कण्टकोत्सारणं मार्गं चोरग्रहणपूर्वकात् ॥

तरुशूलारोहणं च तेषां कालेषु निर्दयम् । नष्टग्रामोद्धारणं च विप्रग्रामैकबोधकान् ॥

शूद्रादिदुष्टसंघातान् समुन्मूलकृतिः परा । वृक्षादिसेचनविधिर्वृक्षदोहदमेव च ॥

आरामादिप्रदानं च वृक्षाणां प्रतिपादनम् । कदलीदानमाख्यातं माकन्दद्रुमदापनम् ॥

पनसारख्यमहागस्य प्रदानं दर्भपालनम् । विषशान्त्यौषधमहादानंभित (?) प्रपालनम् ॥

फलवृक्षप्रदानं च फलभूमिसमर्पणम् । क्षयव्रतं कदली दानं दानं न्यग्रोधशाखिनाम् ॥

तथा प्रस्फुटपादत्वहराश्वत्थसमर्पणम् । नाडीव्रणहराश्वत्थप्रदानं सुमहत्परम् ॥

विद्रुधित्वहराम्रह (...) प्रदानमपि तत्तथा । एतान्यनन्तफलदान्यघरोगहराण्यति ॥

नानामतानुपूर्वेण मयोक्तानि समासतः । तानीमान्यपि दानानि परं कंकणमोचनात् ॥

बन्धुब्राह्मणभुक्त्या च तदङ्कुरविसर्जनात् । लभते कन्यकातातः स्वद्रव्यकरणादहो ॥

तत्कृत्यमिथुनस्यैव कन्यादानं तु तादृशम् । साङ्गोपाङ्गैकरचितं मन्त्रतन्त्रधनादिभिः ॥

सम्यक् समग्रमन्यूनं लोभशाठ्यविवर्जितम् । चेदेव पूर्वफलदं शुद्धचित्तेन केवलम् ॥

अश्रद्धया कृतमपि कन्यादानं दरिद्रतः । यैः कैश्चिदङ्गैर्लोपैर्वा सर्वतारकमेव तत् ॥

पुत्रपौत्रप्रपौत्राणां तादृशीनां यदा तदा । कृत्वोपनयनं पाणिग्रहणं तदनन्तरम् ॥

दर्शादिकेषु नित्येषु पैतृकेष्वखिलेष्वपि । नैमित्तिकादिषु तथा पितृपूजां विधानतः ॥

दूर्वाक्षतैः प्रकुर्वीत तिलदर्भैर्न सर्वथा । पितृव्यादिककारुण्यमृताहा श्राद्धकर्मणाम् ॥

एवमेव प्रकथितं करणं नान्यथा मतम् । यदि पित्रोर्मृताहश्चेत्कदाचिदपि मौढ्यतः ॥

दर्भैस्तिलाक्षतैश्चापि पितृपूजा प्रकीर्तिता ।

न तु शुद्धतिलैस्सा वै दर्भास्साधारणा पराः ॥

चौलसीमन्तयोः पश्चान्मासमात्रं तथा स्मृतम् ।

स्वपुत्रपौत्रादिकेऽपि नियमोऽयं सनातनः ॥

एवमेव प्रकथितः तस्माद्भाद्रं प्रयत्नतः । समागतमनुष्ठाय शुभकर्म ततः परम् ॥

आरभेदेव मतिमान् तत्पूर्वं तन्न चाचरेत् । पूर्वं मृताहमालोक्य पित्रोरेव पुरःस्थितम् ॥

न कुर्यात् पुत्रयोः कर्म भावुकं तत्कथंचन

भ्रातृणां भिन्नभिन्नानां विभक्तानां तथा पुनः ॥

तथैव वा विभक्तानां मध्ये कश्चन कुत्रचित् ।

विद्यमानः स्वपुत्रस्य मौज्जीं वा पाणिपीडने ॥

कतुं समुद्यतोऽतीव पित्रोः श्राद्धमुपस्थितम् ।

मोहात्प्राथमिकं चेत्तु तन्मध्ये तु तथा पुनः ॥

तच्छ्राद्धानन्तरं भूयः तद्भद्रं पुनराचरेत् । अतो न भावुकं कर्म श्राद्धात्पूर्वं समाचरेत् ॥

निर्वर्त्य पैतृकं श्राद्धं पुत्रयोस्तदनन्तरम् । स्वश्रेयसं प्रकुर्वीत न चेत्पीडाशिवादयः ॥

भवेयुरेव नितरां तथा तस्मान्न चाचरेत् ।

विवाहमौज्योः पश्चात्तु पुत्र्याः पुत्रस्य वान्ययोः ॥

गेहे प्रतिदिनं भव्यकर्माण्येव क्रमेण वै । शक्त्या प्रकुर्याद्विधिना तत्कमश्चापि वर्ण्यते ॥

हारिद्रशम्बर महामह आदौ दिनत्रयम् । बुधवारोत्सवश्रीकः स्थिरवारोत्सवः परः ॥

नीराजनोत्सवश्चात्र चित्रान्नोत्सवनामकः ।

भानुवारे ततः पश्चाच्चान्द्रे मोदकसंज्ञिकः ॥

क्षीरोत्सवे भौमवारे भक्ष्याख्यो गुरुवारके ॥

विवाहानन्तरोत्सवविशेषाः

कल्याणस्याष्टमदिने श्रीमान् लग्नोत्सवाख्यकः ।

नवमे दिवसे पश्चाद् भव्यताम्बूलनामकः ॥

गन्धचूर्णोत्सवश्रीकः पश्चात्पुष्पाभिधानकः । द्वादशे दिवसे गाननामाख्यः सुमहोद्भवः ॥

त्रयोदशदिने रथ्यः गौरीलक्ष्मीमहोत्सवः । चतुर्दशदिने पश्चाद्भव्यो नीराजनाख्यकः

° आशीर्वादोत्सवः पञ्चदशे चित्रोत्सवाख्यकः ।

षोडशे दिवसे वाद्यनामकोऽयं महोत्सवः ॥

वेणुतन्त्रीलयास्वादमृदङ्गमणिनामकाः । षडुत्सवविशेषाः स्युः सायंप्रातस्ततः परम् ॥

नीराजनं तत्सायाह्ने प्रकुर्यादादिनाष्टकात् । सुमंगलीगानपूर्वं वरयोरिति तत्क्रमः ॥

तृतीये मासि षष्ठे च वराहानोत्सवो महान् । द्वितीये च चतुर्थे च वराभ्वागमनामकः

महोत्सवः प्रकथितः पञ्चमे तु परस्परम् । संबन्धिनोरागमाख्यः सुमहामंगलोत्सवः ॥

एवमासाषट्कं तु कल्याणानन्तरं पुनः । तदीयभवने तत्र कल्याणानां परंपरा ॥

प्रभवेन्महती नित्यमत्यल्पस्यापि देहिनिः । अतः कन्यादानसमं त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥

दानान्तरं सत्यमुक्तं नार्थवादोऽयमीरितः । सर्वत्र कर्ममात्रे तद्ब्राह्मणानां सदा परा ॥

अत्यावश्यकता ज्ञेया तेषां वै यद्यसंभवे । तत्कृत्यमतिवैगुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥

विशेषेणातिदानानां पैतृकाणां क्रियावताम् । यज्ञानां प्रेतकृत्यानां सतां फलवतामपि ॥

अत्यन्तावश्यकत्वेन विप्रसान्निध्यमुच्यते । अपेक्षितं ब्रह्मणोऽपि विप्रसान्निध्यमात्रतः ॥

कर्मवैगुण्यसंत्यक्तं फलवच्चापि तद्भवेत् ॥

प्रतिनिधिः

सर्वेषामस्ति सर्वत्राभावे प्रतिनिधिः परः । विप्राभावे लोप एव न तु प्रतिनिधिः क वा ॥

सोमाभावे पूतिकः स्याद्द्रव्याभावे यवाः स्मृताः ।

कुशाभावे तु दर्भाः स्युर्दर्भाभावे तथापरे ॥

कुशादयो बहुविधा मौञ्ज्यन्ताः परिकीर्तिताः ।

तासां तासां तु समिधामभावे पैपलाः स्मृताः ॥

तेषामभावे तत्स्थाने कुशाद्यास्तृणराशयः ।

चूर्णानां तण्डुलानां वा दुर्लभे लौभ्यतोऽथवा ॥

मृत्तिका हि प्रतिनिधिः कृद्भाणां दुर्घटे तथा । तेषां प्रतिनिधिर्गावस्तासां प्रतिनिधिर्वसु

हिरण्यं कथितं सद्भिः तथा धान्यादिकं परम् ।

विप्रभुक्तिर्न चेद्भूयो गायत्रीजप एव वा ॥

दशसाहस्रमित्याह संहितापठनं तु वा । तिलहोमोऽथवा पूर्वं संख्यायाब्धिगता (?) ॥

अवगाहः शिष्टगोह भोजनं चेति केवलम् । उक्ता हि प्रतिनिधयः अध्वर्योद्गातृहोतृषु ॥

दुर्लभेषु तथान्येषु ब्रह्मादिषु महर्षिषु । न चलत्येव कर्मैतद्वैदिकं स्मार्तमेव वा ॥

तस्मात्तु ब्राह्मणो मुख्यः कर्ममात्रस्य सन्ततम् ।

अग्निसाध्यं मन्त्रसाध्यं क्रियासाध्यं तु यत्कृतम् ॥

तन्मात्रस्य ब्राह्मणोऽयं मुखमावश्यकं स्मृतः । श्रुतीनामाकरा ह्येते रत्नानामिव सागराः

ब्राह्मणप्रशंसा

विप्रा विप्रमुखेनैव पूजनीयाः प्रयत्नतः । यत्र वेदविदो विप्राः न प्राश्नन्त्यमृतं हविः ॥

न तत्र देवतास्तस्य हविरश्नन्ति कर्हिचित् । विप्रोच्यते स्वर्गो नूनं प्रायं प्रापक उच्यते

स्वर्गप्रापक इत्येतदातृन् विप्रोऽयमीरितः । अपि नारायणोऽनन्तो भगवान् वृषभध्वजः

पितामहो लोककर्ता साक्षात्स्कन्दोऽनिलः शिखी ।

तद्दानं नाभिनन्दन्ति यत्र विप्रा न पूजिताः ॥

वसन्ति ब्राह्मणे नित्यं वेदाक्षरनिकेतने । देवाः सर्वे हरिः श्रीमान् वेदविद्यो जगद्गुरुः

वेदबन्धो वेदरूपो भूतेशो भगवान् भवः । इन्द्रादयो लोकपाला वसवोऽष्टाश्विनावपि

रुद्रा एकादश तथा आदित्या निखिला अपि ।

असोमपाः सोमपाश्च पितरश्चापि तेऽखिलाः ॥

विप्ररूपेण सततं तिष्ठन्त्येव महेच्छया । तस्मात्तस्मिन् पूजिते तु पूजिताः सर्व एव ते ॥

भवन्त्येव न सन्देहस्तस्माद्वेदविदुत्तमः । सर्वदेवालयप्रोक्तः सर्वतीर्थालयस्तथा ॥

तस्य प्रसादात्सुलभो ह्यायुर्धर्मस्सुखण्डनम् ।

भगोभाग्यं धृतिर्नीतिः ह्रीः श्रीपुष्टिर्धृतिर्मतिः ॥

वृत्तिर्दया शुचिर्लज्जा तुष्टिः श्रद्धारमा परा । श्रीर्यशः स्वर्गमुक्ती च तादृशं को न पूजयेत् ॥

दानपात्रं विप्र एव सर्वेषामपि सन्ततम् । पठनात् त्रायते यस्मात्पात्रमित्युच्यतेऽखिलैः ॥

ब्राह्मणेष्वर्चितेष्वेव सर्वे वेदाः सुरादयः ।

अर्चिताः प्रभवन्त्येव भर्त्सिता निन्दिता अपि ॥

धिककृताश्च कृताश्चापि तथैव स्युश्च तेऽखिलाः ।

काणाः कुब्जाश्च मन्दाश्च दरिद्रा व्याधितास्तथा ॥

एवंरूपा बहुविधा अपि पूज्या निरन्तरम् । ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नाः वन्द्या एव भवन्ति वै ॥

नितरां क्षत्रियादीनां मौञ्जो विरहिता अपि । तावत्कालं ततो भूयः केवलं यद्यसंस्कृताः

पतिता इति विज्ञेयास्तेन वन्द्याः कदाचन । ब्राह्मण्यदूषकं नित्यं मद्यमेकं तु तत्क्षणात् ॥

तत्पानदुष्टा यदि वै पुनश्चित्तविवर्जिताः । भवन्त्येव न सन्देहः सन्देही पापभागभवेत्

तपस्तप्त्वासृजद् ब्रह्मा ब्राह्मणान् वेदगुप्तये । वृत्तये पितृदेवानां यज्ञधर्मतपःश्रियाम् ॥

निदानाय च गुर्वर्थमाचार्यत्वाय केवलम् । ऋत्विक्स्त्वहेतवे चापि शिवविष्णुप्रचोदितः

नास्ति विप्रसमो देवो नास्ति विप्रसमो गुरुः ।

नास्ति विप्रसमो बन्धुर्नास्ति विप्रसमं तपः ॥

नास्ति विप्रसमो मन्त्रो नास्ति विप्रसमो जपः ।

नास्ति विप्रसमं तीर्थं पावकं तारकं तराम् ॥

न विप्रसममस्तीह वर्णिनां सन्ततं महत् ।

न जातिर्न कुलं शौचं न स्वाध्यायः श्रुतं शमः ॥

कारणानि द्विजत्वस्य जननं ब्रह्मवीर्यतः । विवाहितायां धर्मेण परमेकं सनातनम् ॥

पश्चाद्वृत्तं प्रशंसन्ति ब्राह्मणस्य सुपूर्तये । वृत्तमेव ब्राह्मणस्य तन्महत्त्वैकारकम् ॥

वृत्तिहीने तु तद्भूयः सति सर्वं निरर्थकम् । किं कुलं वृत्तिहीनस्य करिष्यति दुरात्मनः

क्रिमयः किं न जायन्ते कुमुमेषु सुगन्धिषु । बहुना किमधीतेन कुशास्त्रेण दुरात्मनः ॥

तेनाधीतं श्रुतं चापि यः क्रियामधितिष्ठति ।

त्यक्तकर्मब्राह्मणनिन्दा

अधीतसर्वशास्त्रोऽपि कालसन्ध्यापराङ्मुखः । त्यक्तवेदो जडमतिः शूद्रादल्पतरः स्मृतः ॥

त्यक्त्वा देवं ब्रह्मनामा बुद्धवच्छास्त्रपाठकः ।

सन्ध्याकालकृतानेक वाङ्मुखो मन्त्रवर्जितः ॥

शूद्रादप्यतितुच्छोऽयं तन्मुखं नावलोकयेत् ।

दूष्यः स्याद्वृत्तदोषेण न पूज्योऽयं तु पामरः ॥

सत्यं त(१६)मस्तपोदानं अहिंसेन्द्रियनिग्रहः । वेदोदितानि कर्माणि दृश्यन्ते यत्र बाढवः

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव शुभानुगा । असंभिन्नात्ममर्यादस्स उ ब्राह्मण उच्यते ॥

यं न सन्तं न चासन्तं नाश्रुतं न बहुश्रुतम् । न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्स तु द्विजः ॥

सत्यं दानं दमश्शीलं आनृशंस्यं दया घृणा ।

दृश्यन्ते यत्र लोकेऽस्मिन् प्रोचुर्ब्राह्मणमुत्तमम् ॥

विद्या तपश्च योगश्च ब्राह्मणस्यैव लक्षणम् । विद्यातपोविरहितो नाम ब्राह्मण उच्यते ॥

त्रिशुककृशवृत्तिश्च घृणालुः सकलेन्द्रियः ।

विमुक्तो योनिदुष्टे(दोषे)भ्यः पात्रत्वं प्रतिपद्यते ॥

स्वाध्यायवन्तो ये विप्राः विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः ।

सत्यसंयमसंयुक्ताः सर्वकर्मसु कीर्तिताः ॥

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने । व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं शक्तिपूर्वतः ॥

श्रोत्रियस्त्वयमेवोक्तो मुख्यतः शास्त्रजालकैः । वेदैकशाखाध्यायी यः सर्वकर्मसु पावनः ॥

ओंकारपूर्विकास्तिस्रः सावित्री यश्च विन्दति । चरितब्रह्मचर्यश्च स वै श्रोत्रिय उच्यते ॥

शीलं संवसता ज्ञात्वा शौचं सव्यवहारतः ।

प्रज्ञानं कथनाज्ज्ञात्वा त्रिभिः पात्रपरीक्षणम् ॥

कुर्यादेवान्यथा विद्यात्प्रश्नतो न कदाचन । न ब्राह्मणं परीक्षेत कदाचिदपि विद्यया ॥

वेदेन सर्वथा नैव महादानेषु केवलम् । विद्यामात्रां विद्यमानां तत्स्वरूपं च तत्परम् ॥

ज्ञात्वैव सम्यक् पश्चात्तु दद्यात्तद्दानमुत्तमम् ।

क्षान्तिः स्पृहा तपस्सत्यं दानं शीलं दया क्षमः ॥

एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परमं पात्रमुच्यते ।

स्वाध्यायाढ्यं योनिमन्तं प्रशान्तं वानप्रस्थं पापभीरुं बहुज्ञम् ॥

स्त्रीषु क्षान्तं (?) कं गोशरण्यं व्रतैः क्लान्तं तादृशं पात्रमाहुः ॥

पात्रभूतब्राह्मणः

साङ्गास्त्रिचतुरो वेदान् योऽधीते स द्विजर्षभः ।

षड्भ्यो नियुक्तः कर्मभ्यस्तं पात्रमृषयो विदुः ॥

किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयं । पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ॥
किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम् । असंकीर्णं च यत्पात्रं तत्पात्रं तारयिष्यति
नैष्ठिकश्चोपकुर्वाणः सर्वशिष्यश्च सर्वथा । सर्वविद्यालयः श्रीमान् चत्वारो ब्रह्मचारिणः
अधीतवेदविद्येभ्यो ह्यधीयानेभ्य एव च । प्रजामात्रैककार्याय भार्यासंयोगकारिणे ॥
दानानि दद्याद्ब्रतिने तपोनिष्ठाय वेदिने । अधीतायावधीताय विधुराय च पुत्रिणे ॥
परोपकारिणे नित्यं क्रोधहीनाय सर्वथा । सदा पदाथवेदाय सदा शास्त्रप्रपाठिने ॥
हस्तस्थवस्तुमात्रैकप्रदात्रे प्रश्नमात्रतः । यद्दत्तं तदनुत्तं स्यात् स हि पात्रोत्तमोत्तमः ॥

दानपात्रविशेषाः

अध्वरी श्रोत्रियो विद्वान् ब्रह्मविद्ब्रह्मवाद्यपि । ब्रह्मनिष्ठः ब्रह्मपरं ब्रह्मण्यो ब्रह्मवर्धनः ॥

एते मुख्यतमाः प्रोक्ताः सर्वदानेषु सन्ततम् ।

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ॥

यत्र वृत्ति इमे चोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते । कर्ममात्रे ब्राह्मणो वै मुखं दाने तथा पुनः ॥

मन्त्रज्ञः श्रोत्रियः पश्चादनूचानस्ततः पुनः ।

अपूणः शास्त्रविशेषज्ञः ऋषितुल्यो ऋषिर्मुनिः ॥

ब्राह्मवादी ब्रह्मविच्च स्थुरेते चोत्तरोत्तराः । ब्राह्मणाः प्रथमं वेदे चरित्रे तदनन्तरम् ॥
 सद्गुणे सत्यवचने त्यक्तकोपे दयाश्रये । समालोक्त्या विशेषेण न वेदादिषु केवलम् ॥
 तेषां परः परश्रेष्ठो विद्यावेत्तादिभिर्गुणैः । ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यदा भवेत्
 अनुपेतः श्रियाहीनः मात्रज्ञो ह्यभिधीयते । एकदेशमतिक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः ॥

न च ब्राह्मण इत्युक्तो निभृतः सत्यवाग्धृणी ।

एकां शाखां सकल्पां च षड्भिरंगैरधीतवान् ॥

षट्कर्मनिरतो विप्रः वा को नाम महानयम् । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ॥
 शेषं श्रोत्रियवत्प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः । अनूचानगुणोपेतो यज्ञः स्वाध्याययन्त्रितः
 नित्याग्निहोत्री दर्शादिकरो वर्षपशोस्तथा । अनुष्ठाता नित्यशुचिः भ्रूण इत्युच्यते बुधैः
 एवं प्रतिवसन्तेऽपि ज्योतिष्टोमकरो महान् ।

वीर इत्युच्यते सद्भिरविच्छिन्नोऽग्निहोत्र्ययम् ॥

नित्यानन्दानपरतः शेषभोजी जितेन्द्रियः । लौकिकं वैदिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ॥
 आश्रमस्थो ऋषी नित्यमृषिकल्प इतीरितः । ऊर्ध्वरेतास्तपस्यग्नौ नियताशी महामनाः ॥
 शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसन्धो मुनिस्मृतः । निवृत्तसर्वतत्त्वज्ञो कामक्रोधविवर्जितः ॥
 ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तः तुल्यमृत्काञ्चनोऽपरः ।

महामुनिरिति प्रोक्तो दुर्लभो ब्राह्मणोत्तमः ॥

प्रतिग्रहासमर्थोऽपि कृत्वा विप्रः प्रतिग्रहम् । रत्वा परोपकाराय तद्धनं निस्पृहः स्वयम् ॥
 तारयिष्यति दातारमात्मानं च स्वतेजसा ।

असतस्तु समादाय साधुभ्यो यः प्रयच्छति ॥

धनस्वामिनमात्मानं सन्तारयति दुष्कृतात् ।

पात्रस्य हि विशेषेण दानस्यापि फलोत्तरम् ॥

समद्विगुणसाहस्रमनन्तं च यथाक्रमम् । दाने फलविशेषः स्याद्विंशत्यायामेवमेव हि ॥
 सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रूवे । श्रोत्रिये शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे ॥
 सहस्रगुणमाचार्ये भ्रूणे शतसहस्रकम् । वीरे तच्छतकं प्रोक्तं यद्वत्तं तन्नसंशयः ॥

बिवाहमौज्जीयज्ञार्थे सत्रार्थे वा विशेषतः । तत्कोटिगुणितं यत्तु दत्तं सर्वं न संशयः ॥
एतदत्तसमं तस्यात् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । प्रदत्तं विप्रमात्रे तु कृतोपनयने पुनः ॥
अनुपेते प्रदत्तं यत् न तद्दानं प्रचक्षते । तथैव कन्यकादत्ते मूकान्धवधिरेषु च ॥
विप्रवीर्यसमुत्पन्नमात्रेभ्यो दत्तमप्युत । प्रत्तं तद्वसुपुण्याय भवेदेव न संशयः ॥

तथैव प्राणिमात्रेभ्यो देहिभ्यो वा विशेषतः ।

यदत्तं कृपया तुभ्यं पारलोक्ष्याय केवलम् ॥

अब्राह्मणास्तु षट्प्रोक्ताः तान् वक्ष्यामि क्रमेण वः ।

आद्यो राजभृतस्तेषां द्वितीयः क्रयविक्रयात् ॥

यो जीवति स दासोऽयं द्वितीय इति चोदितः । तृतीयस्तु सदासर्वयाजनेनैव केवलम् ॥

वर्जावर्जादिराहित्याद्यो जीवति दुराशयः ।

अपङ्क्तियोग्योभोज्यान्नवैद्यदेवलयाजनात् ॥

स एव कथितः सोऽयंमकर्माहर्षाश्च (?) सन्ततम् । सर्ववर्णसमायुक्तग्रामयाजी तुरीयकः ॥

अब्राह्मणः प्रकथितः दुष्टबुद्धिदुःराशयः । ग्रामस्य नगरस्यापि सर्ववर्णसमत्वतः ॥

पौरोहित्यकरस्तेन जीवन्नब्राह्मणः परः ।

अनादित्यां तु यः पूर्वां सादित्यां पश्चिमां तथा ॥

नोपासीत द्विजः सन्ध्यां सषष्ठोऽब्राह्मणः स्मृतः ।

अपुत्रो ह्यनधीयानः परप्रेष्यो जितेन्द्रियः ॥

परपिण्डाशनो नित्यं यो वा स्याद् ब्राह्मणब्रुवः । विप्रप्रियो विप्रद्रोही विप्रदूषणकृत्सदा

विप्रनिन्द्यो विप्रवस्तुद्रव्यगेहादिहृत्सदा ।

विप्रब्रुव इति ख्यातो निन्द्योऽसौ वेदकर्मणाम् ॥

आचार्यलक्षणम्

अध्यापयेत्तु यः शिष्यान् कृतोपनयनान् स्वयम् ।

निरपेक्षकृपावासः सरहस्यान् सकल्पकान् ॥

वेदान् वेदौ तथा वेदं तदथ शास्त्रजालकम् । प्रवदन्ति तमाचार्यं महात्मानं मनीषिणः ॥

उपाध्यायगुरुकृतिविगादिलक्षणम्

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः ।

योऽध्यापयति भृत्यर्थं उपाध्यायः स उच्यते ॥

निषेकादीनि कर्माणि यः करोति घृणायुतः ।

कारयत्यपि वा प्रीत्या निरपेक्षोऽनसूयकः ॥

दरिद्रकालेऽध्यत्यन्तशून्ये ब्राह्मणदुर्घटे । संभावयति चान्येन तारयन्नेनमिच्छया ॥

कृपणोऽयमिति ज्ञात्वा स विप्रो गुरुरुच्यते ।

अग्न्याधानं पाकयज्ञान् अग्निष्टोमादिकानपि ॥

कारयेद्यदि नूनं स ऋत्विग्भवति केवलम् । अग्न्याधाने य अध्वर्युर्भवेदस्य स उच्यते

दीक्षागुरुर्महान् नित्यं गुर्वाचार्यसमश्च सः । गुरुणां प्रथमं दानं दद्याद्ब्रह्मनुक्रमात् ॥

ततोऽन्येषां तु विप्राणां दद्यात्पात्रानुरूपतः । गुरोरभावे तत्पुत्रं तत्पुत्रं तत्सुतं तथा ॥

तत्कलत्रं तद्गौहित्रं अन्यं वा तत्कुलोद्भवम् । संभावयित्वा दानेषु फलकर्मसु सन्ततम् ॥

शक्त्या प्रमेयमेवस्यादृतिविगाचार्ययोस्ततः । पञ्चयोजनमध्ये वा श्रूयते वा गुरुर्यदि ॥

तदा नातिक्रमेद्दानं दद्यात्पात्रेषु तत्परम् । सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रूवे ॥

श्रोत्रिये शतसाहस्रमनन्तं वेदपाठगे । तत्सहस्रगुणं प्रोक्तं गुरौ दत्तं तु यत्पुनः ॥

दीक्षागुरौ तथा ज्ञेयं उपाध्याचार्ययोरपि । आर्यशब्दोगुरुणां तु वाचकोऽयं भवेत्किल ॥

जातकादि क्रियाजालकारको योऽस्य केवलम् ।

सन्ध्याभिकार्यसन्त्राणां तत्स्वाधीनैककारकः ॥

वैश्वदेवब्रह्मयज्ञो तदौपासनकर्मणाम् । देवपूजास्थालीपाक श्राद्धमन्त्रप्रवाचकः ॥
 त एव गुरवस्त्वाद्याः पश्चाद्देवादिबोधकः । महामन्त्रोपदेष्टा च काममन्त्रौघबोधकः ॥
 ब्रह्मविद्याबोधकोऽपि गुरवः कीर्तिताः सतः । चेतसा दत्तमेतेभ्यो ह्यनन्तफलदायकम् ॥
 एतेभ्यः प्रथमं देयं सर्वकर्मसु सन्ततम् । तिष्ठत्वेतेषु नान्येभ्यो दद्यादेव तु धर्मतः ॥
 दत्त्वैतेभ्यः प्रथमतः पश्चाद्धर्मक्रमेण वै ।

अन्येभ्योऽपि महद्भ्यः स्यात् प्रदेयं यं च कंचन ॥

विमुखं नैव कुर्वीत सुमुखान्नैव कारयेत् । तिष्ठत्वेतेषु सर्वेषु महत्सु किल तत्पुरः ॥
 श्रोत्रियाचार्यत्विग्वन्धुश्वशुराणां सपर्पणम् । अव्दात्पुरादागतानां मधुपर्केण चोदितम् ॥
 तथैव सर्वपुरतो यज्ञादिष्वित्विजामपि ॥

मधुपर्कयोग्याः

वैधोऽयं मधुपर्कः स्यात्तथैव हि महोत्सवे । सीमन्तोन्नयने पुंसवने स्वश्रेयसागमे ॥
 गर्भाधाने विवाहान्ते फलदाने तथाविधे । श्वशुरस्याग्रपूजा हि प्रकर्तव्या विशेषतः ॥

तदभावे भ्रातरोऽस्य तत्पुत्रा वा तदीयकाः ।

अग्रगण्याः शास्त्रकल्पास्तादृशेष्वपि केवलम् ॥

विद्यमानेषु सर्वेषु महारुद्रेषु तत्पुरः । तदा विवाहमध्येऽपि राजहोमे कृतेऽथ च ॥

पत्नी सोदर्यस्य तस्य बालस्यापि विशेषतः ।

पूजा बहुमतिः कार्या गुरुस्त्यक्त्वैव सन्निधौ ॥

तेषामेव विशेषेण परा संभावना शिवा । बहुना किं तथा पित्रोः पूजाकर्मणि चागते ॥
 शुभकर्मसु सर्वेषु दिव्ये पुण्याहवाचने । मातृपूजा प्रथमतः ताते पश्यति चोदिता ॥
 पश्चात्तातस्य संप्रोक्ता श्रुतिमार्गानुसारिणी । तयोर्गुरुषु तिष्ठत्सु पश्यत्स्वपि विशेषतः ॥
 तयोर्हि पूजा कर्तव्या तत्पश्चाच्छास्त्रवर्त्मना । तद्गुरुणां प्रकथिता स (१) पूजा महती तदा
 क्रमश्लोकोऽत्र पूजायाः भार्गवेण पुराकृतः । तमहं संप्रवक्ष्यामि तज्ज्ञप्त्यै शुभकर्मसु ॥
 तात तत्ताततत्तात मातामहपितृव्यकाः । तद्भ्रातरः क्रमाद्देषां श्वशुराः मातुलाः परे ॥

तद्भ्रातरो मातृगोत्राः पितृगोत्राश्च बान्धवाः ।

पश्चादाचार्यवृन्दाः स्युः पूर्वोक्ता निखिला अपि ॥

गुरुपूजाक्रमः

पादपूजाकियास्वेवं संप्राह्याः क्रमशः सदा । तेषु तेषु च कार्येषु तेषां तेषां तथा तथा ॥
सम्यक्पूजा प्रकर्तव्या तत्पात्रं ते तथा स्मृताः । सभापूजादिकार्येषु गुरुपूजाग्रिमा मता
विवाहादिषु सर्वेषु शुभकर्मसु केवलम् । वैदिकेष्वखिलेष्वपि लौकिकेष्वपि केवलम् ॥
गुरुपूजा प्रथमतः धिषणोऽत्र गुरुर्मतः । ग्रामदेशस्थया पूर्वं धिषणस्यापि देवयोः ॥
तयोरीश्वरयोः पश्चादाचार्यादि क्रमेण वै । महोद्योगिज्ञानियज्ववेदी श्रोत्रियसूरिणाम्
पूजासभाया य (?) क्रमेणैवं महात्मनाम् । दीक्षाबीजेन कुर्याद्धि विशेषेषु तथा पुनः

सोमप्रवाकादीनां वरणक्रमेणपूजाक्रमः

सोमप्रवाकपूर्वेण मधुपर्कवदीरिता । सोमप्रवाकः प्रथमो द्वितीयोऽध्वर्युरुच्यते ॥
ब्रह्मा तृतीयः संप्रोक्तः सदस्यस्तु कृताकृतः । सर्वज्ञोऽयं दरिद्रश्चेद्यजमानस्तदा पुनः ॥
सोमप्रवाकश्च तथा न मुख्य इति केचन । अग्निष्टोमे प्राथमिके विभवे सति केवलम् ॥
सति चित्ते यथोत्साह (?) पूर्वचोदितः । तथा सोमप्रवाकोऽपि मुख्यत्वेनैव सर्वदा ॥
स ग्राह्य एव नितरां तत्र कर्मणि केवलम् । यदि प्रयोगबाहुल्ये संज्ञा ते यजमानतः ॥
यूपैकादशिनी पश्वेकादि(द)शि'न्यादिमार्गतः । तदा ते वै विशेषेण संप्राह्यावेव केवलम् ॥

बहवो यदि तज्ज्ञाः स्युस्तादृक्कर्मणि चेन्मनः ।

सोमप्रवाकबाहुल्यं सदस्यानन्त्यमेव च ॥

अंगीकार्यं विशेषेण तेन श्रेयो महद्भवेत् ।

होता चतुर्थः संप्रोक्तः तथोद्गाता च पञ्चमः ॥

अन्ये स्पष्टाः (?) द्वितीयाश्च तृतीयकाः । तुरीयकाःस्पष्ट एव तत्क्रमेणैव सन्ततम् ॥

तेषां पूजा तथा ज्ञेया श्राद्धकृत्येषु चेत्तदा ।

• तद्भोक्तृणां तत्र चापि पूजाकल्पिरियं स्मृता ॥

विश्वेषां किल देवानां आदौ सा शास्त्रचोदिता ।

पितुः पितामहस्याथ तत्पितुश्चेति तत्क्रमः ॥

मातुः श्राद्धे मातृवर्गः पैतृको नात्र वै भवेत् ।

पितुः श्राद्धे तथैव स्यान्मातृवर्गश्च धर्मतः ॥

यस्य यस्य भवेच्छ्राद्धं वर्गस्या (?) स्य च ।

अन्यश्राद्धेऽन्यवर्गस्य संप्राप्तिर्न्यायशास्त्रगाः ॥

कथं भवेदेवमेव होमब्राह्मणभोजने । पिण्डदानं च तस्यैव वर्गस्य नियमाद्भवेत् ॥

तदसाधारणं श्राद्धं मृताहार्यं प्रचोदितम् । पितृणामपि सर्वेषामेकमेव न चेतरेत् ॥

दर्शाधि(दि)कं तु यच्छ्राद्धं सर्वसाधारणं परम् ।

पित्रादीनां त्रयाणां च यतः साधारणं स्मृतम् ॥

तथा मातामहानां च दर्शादिर्न तथापरः । मृताहोऽयं यस्य वा स्यात् तद्वर्गस्येति निश्चयः

अष्टका नवदैवत्या मातृवर्गोऽत्र विद्यते । नान्दीश्राद्धे गयाश्राद्धे मातृश्राद्धे तथैव च ॥

एवं किलैव मर्यादा श्राद्धानां समुदीरिता । अष्टकासु च वृद्धौ च गयायां च मृतेऽहनि

मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्यादन्यत्र पतिनासह । तस्मादर्शादिकृत्येषु पित्रा सह किल क्रिया

निखिलापि प्रकर्तव्या यतो दर्शस्तु सर्वदा । षड्दैवत्यः प्रकथितः तादृशेषु तु मौढ्यतः ॥

मातुः क्रियां पृथक् कुर्याच्छ्राद्धेषु पतिना विना ।

स पित्रोस्तनयो मूढ एतत्संयोगविभागकृत् ॥

सह क्रियामात्रतस्तु तयोः संयोगसौख्यदः । प्रतिश्राद्धेषु कथितस्तथातस्तत्समाचरेत् ॥

तदेतदास्तां तत्सर्वं प्रसक्तानुव्रसक्तिः । तासु तासु क्रियाह्वासु ते ते स्युः पूर्वगा मता ॥

दानेष्वपि तथा ज्ञेयाः केषुचित्पूर्वगास्तराम् । किञ्चित्प्रत्युपकारैकशून्यानामेव केवलम् ॥

ब्राह्मणानां सुपात्राणां सर्वदानानि चोचिरे ।

कर्तव्यत्वेन विद्वांसः पुनरप्यत्र कानिचित् ॥

कन्यादानवरलक्षणम्

दानानि सुमहान्त्यत्र बन्धुष्वेव न चान्यतः । तत्रादौ कन्यकादने बन्धुत्वं रूपमेव च ॥
मनश्चक्षुर्निबन्धश्च स्व (.....) । आत्मतुष्टिर्विशेषेण निमित्तानि परस्परम् ॥
प्रेक्षणीयानि पश्चात्तु सुविद्या च कुलीनता । सौमुख्यं धर्मसंपत्तिः धनसंपत्तिरेव च ॥

प्रेक्षणीयाश्च तस्मात्तु बन्धुत्वं सर्वतोऽधिकम् ।

गुणानां प्रमुखं प्रोक्तं कन्यादाने हि सन्ततम् ॥

अशेषाणां च वर्णानां अशेषेष्वपि वच्मि वः । देशेषु सत्कुलीनत्वं प्रवरं चोभयं ततः ॥

तदन्वीक्ष्व विशेषेण किञ्चिन्न्यूनाय जातितः ।

गुणतो धर्मतो वापि क्रियात वाथवा तथा ॥

पौरुषाद्धनतो वापि विद्यातः संपदादिभिः ।

अवरायैव (... ..) नाधिकाय स्वयत्नतः ॥

अधिकाय कृते दाने कन्यायास्तत्परं परम् । सर्वलौकिककृत्येषु सामीचीन्यं न संभवेत्

न वैदिकेषु कृत्येषु प्रभवेद्वाधकं न तु । समीक्ष्यैवं चिरात्पश्चात् समीपेष्वेव बन्धुषु ॥

निर्दोषेषूत्तमेष्वेव तादृशेष्वेव यत्नतः । प्रकर्तव्यो मानिनः स्यात् संबन्धः शास्त्रसंमतः ॥

विशेषज्ञेन कर्तव्यः पित्रोः श्राद्धं तु केवलम् । योनिगोत्रादिसंबन्धरहिते ज्ञातसत्कुले ॥

सर्वप्रत्युपकारैकविहिते वेदसन्ततौ । अनूचाने शुद्धकच्छेसंपूर्णाङ्गेऽपि सद्गुणे ॥

प्रदेयं शास्त्रमार्गेण पात्रमेतादृशं यदि । असंभवे भिन्नजातौ स्वजातौ वा तथाविधम् ॥

पात्रमुद्धीक्ष्य यत्नेन पश्चाद्वातव्यमेव वै । जातिशब्देनात्रपरं समभाषैव सा पुनः ॥

एकभाषैव विज्ञेया नान्यभाषा निगद्यते । एकस्यामेव भाषायां जातयो देशसंभवाः ॥

भिन्नभिन्नास्संभवन्ति संबन्धस्तादृशासु चेत् ।

न कर्तव्यो भवेदेव श्राद्धमात्राय चेदलम् ॥

नाभिन्ना तु पराप्रोक्ता भाषे का शास्त्रसंमता ।

भाषैक्येसति तद्भिन्नजातिराचारमात्रतः ॥

पुनस्समानापरमा श्राद्धयोग्येति सा श्रुतिः । कन्यादानेनैव भवेत् किंतु तादृग्विधः परः
 एकभाषाजातिकस्तु संख्याह्यः संभवेद्वि वै । जायापत्योः कन्यादाने कर्तृत्वमुभयोरपि ॥
 एकासनस्थयोर्दभंस्तयोः स्नातयोस्सतोः । श्राद्धे तु सर्वपुत्राणां तादृशानां तदुच्यते ॥
 नात्रासनं तु पत्नीनां पैतृकेषु कदाचन । एकत्र सन्निवासश्च तच्छुचित्वं च वैधतः ॥

तस्मिन्काले सुविहिते न कदाप्येकमासनम् ।
 भ्रातृणामपि भक्तानां श्राद्धकालेषु सन्ततम् ॥
 ज्येष्ठेन सह भावः स्यान्नान्यो धर्मोऽस्ति धर्मतः ।
 प्रदक्षिणनमस्कारौ श्राद्धान्ते संप्रकीर्तितौ ॥
 पित्र्युद्देशेनविप्राणां तत्पत्नीनां जनस्य च ।
 शिष्टस्य निखिलस्यापि सर्वशास्त्रेषु चोदितः ॥
 अत्यल्पमपि तद्वच्मि ह्येवं तल्लौकिकेष्विति ।
 भ्रातृणामिति सर्वेषां शुचिनां दर्भपाणिनाम् ॥

तदङ्गतर्पणं कुर्यान्न कुर्याद्वै (...) यः । पादप्रक्षालनं तस्मिन् मधुपर्के वरस्य वै ॥
 पत्न्यर्पितजलेनैव कार्यं भवति शास्त्रतः । नैवं श्राद्धे प्रकुर्वीत पादप्रक्षालनं परम् ॥
 द्विजानामिति तस्मात्तु स्वार्पितेनैव पाथसा ॥

आपोशनजलप्रदातारः

आपोशनद्वयजलं मधुपर्के विशेषतः । पत्न्या प्रदेयमेव स्यात् तद्द्रव्यं च तथैव हि ॥
 प्रदेयमथवा कर्त्रा यथाचारं तदिष्यते । श्राद्धे त्वापोशनजलद्वयं कर्त्रेव केवलम् ॥
 प्रदेयं शास्त्रतो धर्मान्न तु पत्न्या कदाचन । तदापोशनकीलालतत्पुत्रत्वैकनिष्क्रयम् ॥
 प्रतिवर्षं भवत्येव तस्माद्देयं स्वहस्ततः । तदापोसनकीलालं तादृशं पितरोऽस्य वै ॥
 पुत्रदत्तं प्रकाङ्क्षन्ते पातुं विप्रमुखेन वै । ये तस्मात्पितृकार्थं प्रत्यब्दादिषु भक्तितः ॥
 आपोशनद्वयजलं विप्रहस्ते स्वहस्ततः । मुञ्चन्ति भुक्ता तनयाः त एव स्युर्न चेत्तु ते ॥

तज्जाता न भवन्त्येव नास्येते तनयाः स्मृताः ।
 नैषां पिता सो न भवेत् मातापरा वृथा ॥

ये के वा तान्न जानीमः तत्पिता कोऽपि कीर्तितः ।

नानयोः पितृपुत्रत्वधर्मोऽयं वा कथं भवेत् ।

श्राद्धीयापोशनयुगजलदाता कथं पितुः । सुतो भवेदयं मूढस्तस्मादेतस्य केवलम् ॥

तस्मिन् कर्मणि कर्तृत्वं सर्वश्राद्धेषु सन्ततम् । आपोशनद्वयजलदानतो नान्यतो मतम् ॥

अग्नौ कृतेषु श्राद्धेषु विप्राभावप्रयुक्तितः । अर्घ्या च मारकीलादे भूमावेव विनिक्षिपेत् ॥

आपोशनद्वयजलमात्रं केवलमुच्यते । अग्नावेव प्रदेयं स्यादिति वेदानुशासनम् ॥

एवं स्थिते प्राकृतेऽस्मिन् श्राद्धे प्रत्याब्दिकादिके ।

विप्रहस्तेद्यं तयोश्चापोशनद्वयशम्बरम् ॥

प्रदेयमस्मिन्नित्यर्थे को वा स्याद्विशयोऽधुना । पुत्रहस्तजलयत्तत्प्रोक्षितं विक्षितं तथा ॥

वस्तुजातं स्तुषापकं पितृणाममृतं भवेत् । अपिपुत्रशतैर्जातैः तर्पणं पैतृकं तु यत् ॥

न नष्टं प्रभवत्येव यथापोशनपाथसा । जातस्य पुत्रमात्रस्य तदेव फलमुच्यते ॥

आपोशनद्वयजलप्रदानं श्राद्धकर्मणि । विप्रहस्ते भुक्तिकाले नान्यद्यत्तु तथा स्मृतम् ॥

पित्र्येषु वा दैविकेषु सन्ततं भुक्तिर्मसु । विप्रहस्ते स्वहस्तैकदत्तं कं विश्वकृत्यकृत् ॥

कर्तृहस्तप्रत्तजलं स्वीकुर्यान्न तु योऽपि वा ।

सः नास्य वन्द्यः स्वीकार्यो वामदेवो गदाधरः ॥

व्यासः पराशरो वापि स साक्षात्कव्यवाहनः ।

दैवत्वेन ह्ययं भाव्यो विप्रो विप्रस्य सन्ततम् ॥

स एवापोशनजलगाहकः प्राश्य एव हि ।

यस्यान्नं यः समश्नाति तस्य न स्यात्पितेव वै ॥

वन्द्यः पूज्य उपास्यश्च ग्राहकोऽन्यो न चापरः ।

भावदुष्टो न भोज्यः स्या (.....) रोज्जरित्तकः ॥

दुर्मुखः पिशुनोरूक्षः पङ्क्तिहा पङ्क्तिदूषकः । भुक्तिकाले विप्रपङ्क्ति पात्रान्नगाप्रदूषकः

मृदुच्छिष्टादिना पापिपङ्क्तिहेति प्रकीर्त्यते । पितृश्राद्धत्रयं यो वा विप्राभावे न केवलम्

आमे व प्रकुर्याच्चेत्पुनस्संस्कारमर्हति । सर्वयत्नेन महता प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

पित्रोः प्रत्याब्दिश्राद्धमनेनैव समन्त्रकम् । स्वपत्नीबन्धुहस्तैककृतान्नेन समाचरेत् ॥
न्यायार्जितेनैक्षितेन प्रोक्षितेनातिभूतिना । सम्यक् स्पर्शयते नार्पि पृथिवी तेतिमन्त्रतः ॥

ब्राह्मणाभावे अनुकल्पः

कदाचिद् लभे विप्रे भोक्तुं कीटकदुर्गमे । कृत्वा सव विधानेन समन्त्रं तदनन्तरम् ॥

अन्नत्यागं क्षितौ कृत्वा परिषिञ्च्या (?) नं ततः ।

प्राणापानादिभिर्मन्त्रैः यावद्द्वान्त्रिंशदाहुतीः ॥

जुहुयादनले सम्यङ्मधुवातादिपूर्वकम् । सव कर्म समाप्याथ पिण्डदानं समाचरेत् ॥

परेऽहि तर्पणं कुर्यादथवा शम्बरेऽखिलम् । तदन्नं निक्षिपेद्वापि सर्वमूखं ततः परम् ॥

उत्तराङ्गं च निखिलं विप्राभावे त्वयं विधिः ।

अलाभे श्राद्धभोक्तृणां तस्मिन्नहनि केवलम् ॥

येन केन प्रकारेण श्राद्धं कृत्वा ततः पुनः ।

विप्रसंलब्धतः पश्चात् अन्नश्राद्धं समन्त्रकम् ॥

प्रत्याब्दिकाख्यं कुर्वीत न चेच्चण्डालतामियात् ।

नष्टतातो विप्रमात्रः प्रत्यब्दाख्यं विधानतः ॥

स्वान्नेनैव स्वहस्तेन स्वगृहे तत्समाचरेत् । कदाचित्स्वगृहे दैवाद्दुर्लभे सति तद्दिने ॥

यस्य कस्य गृहं वापि तदा विक्रयणादिना ।

श्वयत्वेनैव संपाद्य कृत्वा तत्स्वामिवाक्यतः ॥

तस्मिन् ततस्तत्कुर्यात्तु न कदाचित्पराश्रये ।

विवाहेऽन्नस्य पाकाय सर्वे बन्धुजनाः पराः ॥

विवाहे पाककर्तारः

संभोज्यान्नाः पराश्चापि सगोत्राश्चासगोत्रिणः ।

श्रोत्रियस्वीयभाषाश्च संग्राह्या एव केवलम् ॥

कल्याणपङ्क्तावेकत्र गायत्र्या प्रोक्षणं भवेत् । देवसवितः प्रसुवेति पृथ्वीतेपात्रमित्यपि

सर्वत्र चैतद्वस्त्वन्नमित्युक्त्वा च ततः पुनः ।

नानाविधेभ्यो गोत्रेभ्यो नानानामभ्यइत्यपि ॥

प्रतिपात्रस्थितान्नानि तस्मै तस्मै पृथक् पृथक् ।

दास्यामि सममेत्यैव क्षीरधारां क्षितौ न्यसेत् ॥

ब्रह्मभोजनकृत्येषु सर्वेष्वेवाविशेषतः । तदिष्टदेवतारूपब्राह्मणा इति चेतसा ॥

संबुध्या बोधयित्वैव भावयित्वा स्वचेतसा ।

प्राजापत्यामृचं जप्त्वा ध्यात्वा तां देवतामपि ॥

तथाच यं तु नद्यो यजुस्तथ जपेत्तथा । अयं साधारणो धर्मो विप्रभोजनकर्मणि ॥

पतितान् वर्जयेत्पङ्क्तौ पञ्चपातकिनस्तथा ।

जातिभ्रष्टान् दुष्कृतांश्च परिबिन्नादिकानपि ॥

कुण्डांश्च गोलकान् प्रात्यान् आरूढपतितानपि ।

यत्नेन वर्जयेद्दूरात् तथा माहिषकानपि । संन्याससंदेहनष्टाश्रमिणः शापदूषितान् ॥

चर्या निन्दितांस्तुच्छां भ्रष्टान् देवलकानपि ।

विशेषदीक्षितान् शैवान् तथासमय दीक्षितान् ॥

निर्वाणदीक्षितान् खर्वचक्रमण्डलदीक्षितान् । चक्रराजगदाखड्गशार्ङ्गसौपर्णदीक्षितान् ॥

पङ्क्तिभ्रष्टान् भोजयेन्न देवब्राह्मणपङ्क्तिषु ।

ये ब्राह्मणविशेषाः स्युर्जात्याचारादिसद्गुणैः ॥

विलक्षणा वेदशास्त्रसंपन्नाः सञ्चरित्रकाः । व्रतसंकल्पनियममस्वानङ्गीकृतभुक्तयः ॥

त आमेनैव तत्काले संभोज्या एव केवलम् । स्वीकृतस्वकरप्रतप्तसर्वतोमुखपायिनः ॥

एकपङ्क्तय इत्युक्ताः न तदीयान्नभक्षकाः ।

विप्रमात्राः सर्व एव बाला वृद्धाः प्रवीयसः ॥

शिखोपवीतिनः शुद्धवर्णा ब्राह्मण्यकेतनाः । संग्राह्याः स्युरमाप्रोक्ताः समाराधनकर्मसु ॥

उद्यतामाहृतां भिक्षां पुरस्तादप्रवेदिताम् । भोज्यां मेने प्रजापतिरपि दुष्कृतकारिणः ॥

विप्रपङ्क्तिप्रविष्टोऽयं शूद्रो ब्राह्मणवेषतः । भुक्तिकाले ज्ञातदेशे ज्ञातश्चेद्येन केनचित् ॥

कारणेन ततः सद्यः संताड्य पृथिवीक्षिता ।

तिन्त्रिणी (तिन्त्रिणी) तुच्छशाखाभिः निष्पत्राभिर्विशेषतः ॥

दग्धाभिर्निर्दयं सम्यक् आमासत्रयमप्यहो । निगलेन प्रवाध्योऽयं सति स्वे सर्वमाहरेत्

पूर्ववन्निखिलं गात्रं रक्तश्चुत्ताभिरेव वै । कृत्वा प्रहारैः सक्ररैः एवं मा कुरु तत्पुनः ॥

इत्येवं बोधयित्वैव गोमयेनाभिषिच्य च । तस्य दर्पं तथोत्सेकं नाशयित्वा विसर्जयेत् ॥

तत्पङ्क्तिदूषिता विप्राः दिनत्रयमुपोषिताः । पञ्चगव्यप्राशनेन यावकेन च केवलम् ॥

एकाह्वा शुद्धिमायान्ति नदीस्नानादिना तथा ।

अपात्सहस्रगायत्र्याः कूष्माण्डानां जपेन च ॥

चतुर्विंशतिविप्राणां भा(भो)जनेन च केवलम् ।

पुण्डरीकाक्षमन्त्रस्य जपेन च विशेषतः ॥

यथाशक्त्या कृतार्थाः स्युः शूद्रपङ्क्तिप्रदूषिताः ।

सकृन्मात्रस्य चैतत्स्यादावृत्तौ चेत्तथा तथा ॥

तत्कृत्यस्यानुमेयं हि चैवं चेत्तु दिनाष्टके । चापाग्रस्नानदशकं कूष्माण्डजपपूर्वकम् ॥

कृत्वोपनयनाख्यस्य कर्मणः करणं तथा । गायत्रीदशसाहस्रजपोब्राह्मणभोजनम् ॥

शक्त्या कृत्वा ब्राह्मणाय गां दद्यादिति निष्कृतः ।

प्रचोदिता हि विद्वद्भिरन्यथा पतितस्तु तु ॥

सर्वेषामपि विप्राणां समाराधनकर्मणि ॥

ब्राह्मणभोजने आपोशनप्रदाता

विप्रभोजनमात्रेऽपि तदापोशनपाथसः । स्वयमेव प्रदाता स्यान्मुख्योऽयं कल्प उच्यते

जामितायां स्वस्य चेत्तु तदात्री सहधर्मिणी ।

पुत्रपौत्रश्च तत्पत्न्या शिष्यत्विग्वन्धुरातयः ॥

तत्प्रदातार उच्यन्ते यथाश्राद्धं तदा तदा । श्राद्धकर्तरि दाढर्थेन विद्यमानो तदातराम्

तत्पत्नीपैतृकेविप्रहस्तआपोशनशंवरम् । न दद्यादेव नितरां यदि दद्यात्तु सा पुनः ॥

अपुत्रिण्यथवा नित्यदरिद्रा दुर्भगा भवेत् । तस्माच्छ्राद्धेषु सर्वेषु स्वयमापोशानाम्बु तत् ॥

विप्रहस्ते प्रक्षिपेत्तु श्राद्धकर्तैव पात्रगम् । पात्रान्तरस्थितं तोयं चण्डालत्वं गतस्य तत् ॥

मद्यपत्वैकदुष्टस्य भ्रूणजघ्नस्य पापिनः । सर्वसंकीर्णदुष्टस्य जनग्रामैकविद्विषः ॥

अतिदुष्टस्य तुच्छस्य गुरुतल्पगतस्य च । स्तेयिनोचौर्यजनकमातुलग्नस्य केवलम् ॥

पितृव्यस्य पितुर्वापि तादृश्या मातुरेव वा ।

द्वादशाब्दात्परं मृत्योः कृतकार्यस्य शास्त्रतः ॥

एकोद्दिष्टत्वेनतरां विहितस्य सदैव हि । पैतृकस्य प्रत्यब्दत्वेनैव प्राप्तस्य तस्य हि ॥

द्वयोरपि ब्राह्मणयोः देवे पित्र्ये च संस्थयोः । हस्तयोरन्यपात्रस्थं जलमापोशनाय वै ॥

प्रदेयमन्यहस्तेन न स्वहस्तेन कर्म तत् । तादृशं कथितं सद्भिरिति वेदानुशासनम् ॥

अयं भावः प्रकथितः पुराविद्धिर्महात्मभिः । पुत्रस्य जननात्पश्चात्पिता दुर्बुद्धितो यदि

चण्डालो यवनो भिल्लो जायते स्वयमेव वा ॥

यस्य पिता चण्डालत्वादिकं प्राप्तस्तद्धर्माः

परपीडादिना वापि बलाद्वा कामकारतः । पूर्वजातस्तत्तनयो निर्दुष्टस्सच्चरित्रकः ॥

तेन सद्भिर्वोपनीतो न संकीर्णश्च कैरपि । कृतनित्यक्रियः सम्यक् कृताध्ययन सत्क्रियः

जातः परं मृतस्तातस्तादृशो यवनात्मकः । मृतौतस्यास्य पुत्रस्य नाशौचं नोदकक्रिया ।

यदा प्रभृति स भ्रष्टस्तदा द्वेषः स्वयं परम् ॥

तत्कर्तव्यानि सर्वाणि पैतृकाणि विशेषतः । कुर्यादेव विधानेन न चेद्धर्मादयं तराम् ॥

भवेत्तु पतितः सद्यः श्राद्धत्यागात्तथा भवेत् । तादृशे पतिते ताते तनयस्यास्य वै सतः ॥

मृतेऽपि नैव चाशौचं सपिण्डो नोदकक्रिया ।

नावगाहः प्रकथितः मातुश्चाप्येवमेव हि ॥

चण्डालादिगतायाश्च सुरापायी विशेषतः ।

ब्रह्महत्या अपि भर्तृहत्याः भ्रूणादिहत्याश्च सर्वतः ॥

चोदितं स्वर्णहारिण्याः मर्यादा द्वादशाब्दिकम् ।

अत्यन्तक्रूरकृत्येषु द्विगुणं तस्य तत्स्मृतम् ॥

ततः परं पितृत्वादि धर्मोद्देशेन केवलम् । तदुद्देशक्रियां कुर्यात् तादृगुणविमुक्तये ॥

गंगातीरे सेतुपृष्ठे पुण्यक्षेत्रेषु कुत्रचित् । तत्क्रिया विहिता (?) सर्वथा यत्रकुत्रचित् ॥

न कुर्यादेव नितरां तस्मात्तत्रैव तच्चेत् । तदशीत्युत्तरशतसहस्रपरिमाणतः ॥

तानि कृच्छ्राणि कृत्वैव तृणसंस्कारतश्चरेत् । चतुर्विंशतिवर्षाणां परं वा द्वादशाब्दकात् ॥

सर्वं तत्प्रेतकृत्यं च धर्मशास्त्रोक्तवर्त्मना । कुर्यादेव स्वयं पुत्रः कृपादानस्य एव वा ॥

ज्ञातिर्यः कश्चन कृपायुक्तो मुषस्यैव तस्य हि ।

तादृशस्यास्य पापस्य प्रत्यब्दे तस्य पुत्रकः ॥

पतितस्य पुत्रेण कर्तव्यश्राद्धविधिः

एकोद्दिष्टविधानेन कृत्यं कुर्याद्विधानतः । सपिण्डीकरणे तस्य वस्वादीनां समष्टितः ॥

एकमेव क्षिपेत्पिण्डं एतस्याप्येकमेव हि । निक्षिप्य पिण्डं तेनैतद्योजयेदेव केवलम् ॥

एवमेव ततो द्वयं प्रतिस्वत्सरं ततः । एकोद्दिष्टविधानं स्यात्तौ देवौ कालकामकौ ॥

तादृशस्यास्य तच्छ्राद्धे जलपात्रं स्थितं तु यत् ।

अर्चनार्थं प्रथमतः स्वीकृतं मन्त्रपूजितम् ॥

तस्मादुद्धृत्य तन्नीरं तत्स्थानापन्नयोस्तयोः । द्विजयोर्हस्तयोः पूतं तदापोशनकर्मणै

स्वहस्ततः स्वयंकर्ता कृत्येऽस्मिन्न नियोजयेत् । किन्तुपात्रान्तरगतं जलं प्राकृतमेव वै ॥

समानीतं येन केन तदापोशनकर्मणः । प्रदेयमन्यहस्तेन न स्वहस्तेन सर्वथा ॥

तस्य शाकत्रयं श्राद्धे माषसूपो विधीयते । तदभावे तौवरिकः समौद्गः सर्वथा मतः ॥

क्रीताज्यमेव तस्यास्य न शरण्यं विधीयते ।

दक्षिणाभिमुखाद्भुक्तिः विश्वेषां वरणं परम् ॥

पितुः स्याद्वरणं पूर्वं पूर्वमेवाङ्गतर्पणम् । न पश्चान्न परेद्य वा श्राद्धकालस्तु संगवः ॥

सायं वा विहितस्तस्मात्कुतपो न तु सर्वथा ।

न खड्गपात्रं स्वीकार्यं तथा नेपालकम्बलः ॥

विश्वेषामपि देवानां पितुस्तर्हिस्तु कर्मणि । पादप्रक्षालनार्थाय मण्डलं पञ्चकोणकम् ॥

एकमेव भवेन्नूनं स्वागतं नैव केवलम् । नाज्यपादाभ्यञ्जनं च पवित्रं च द्विदर्भकम् ॥

देवार्थं कथितं सर्वैर्यत्तदेवात्र पैतृके । सदर्भत्रयतः कुर्याद्विकिरं नैव कारयेत् ॥

प्राणादिपञ्चकमनून् केवलानेव भोजने ।

क्रियमाणे जपेद्भूयात् श्रद्धायामिति पञ्चकान् ॥

वाक्यत्रयैकसुभगान् पवित्रानतिभावुकान् ।

न वदेदेव विधिना ते मन्त्राः किल पञ्च वै ॥

सप्तविंशतिवर्णात्सवच्छन्दोतिगो भवेत् । अनन्तरो महामन्त्रा एकोनत्रिंशवर्णकः ॥

तेनैतत्कथितसद्भिः विराजार्त्तिकचिद्नकः । प्रराडिति समाख्यातः पितृणामतिवल्लभः ॥

यथा वा प्रथमः प्रोक्तस्तृतीयोऽपि तथाविधः ।

चतुर्थपञ्चमौ चापि द्वितीयतुलितौ हितौ ॥

तथाविधानां मन्त्राणां नायं योग्यो यतो मतः ।

एतेनोत्तरमन्त्राश्च पञ्च तेऽप्यतिपावकाः ॥

अत्यन्त भावुकाः शर्मदायकाः कृतिवल्लभाः ।

उत्तरापोशनात्पश्चान्न वक्तव्या महत्तराः ॥

न हविः प्रोक्षणं कुर्यादग्नौ करणकर्मणि । कुर्याद्वस्तेन होमं तं मेक्षणेन न सर्वथा ॥

देवपूजाद्वैश्वदेवब्रह्मयज्ञात्परं तराम् । तादृशस्य क्रिया कार्या नान्नसूक्तजगस्तथा ॥

तस्याभिभ्रवणं सर्वं राक्षोघ्नं केवलं स्मृतम् । कृणुष्वपाज इत्येव नान्ये ते वैष्णवाः पराः

वाचनीया न वाच्याश्च पावमान्यास्तथैव वै ।

भोजनान्ते च गायत्रीं नोच्चरेदेव सर्वदा ॥

मधुत्रयं जपेन्नूनं नाक्षन्नमी महामनाः । पृथिवी ते मनुं नैव वदेत्तूष्णीममन्त्रकम् ॥

अन्नाभिमर्शनं कुर्यादेतत्ते लौकिकेन वै ॥

पतितस्य पौत्रेण कर्तव्यम्

शिष्टं सर्वं समं ज्ञेयं तादृश्या मातुरप्युत ।

श्राद्धमेवं विधं कुर्यात् अन्यथा किल्बिषी भवेत् ॥

पितुः कुर्वन्नपि श्राद्धमेकोद्दिष्टविधानतः । मृत्यव्दमेवंविधिना पुरा यत्तु यथाकृतम् ॥

पितामहस्य तच्छ्राद्धं सांगोपाङ्गैकसंयुतम् ।

यावज्जीवं तथा कुर्यात् न त्यजेद्यदि तत्त्यजेत् ॥

अधिकप्रत्ययवायी स्यात् तेन स्वकृतपुण्यतः ।

च्युतो भवति तस्मात्तु तद्यथोक्तं समाचरेत् ॥

तत्पुत्रास्तु ततो भूयः स्वपितुर्मरणात्परम् ।

त्यक्त्वा पितामहं पापं तादृशं रूपमास्थितम् ॥

प्रपितामहमुख्येषु पिण्डेषु त्रिषु तेष्वपि । त्रिधाकृतं पितुः पिण्डं योजयेरन्निति स्थितिः

सपिण्डीकरणश्राद्धे द्वादशेऽहनि धर्मतः । तत्पुत्राश्च तथैव स्युस्तत्पुत्रा अपि तत्तथा ॥

मातुरप्येवमेव स्यात्तादृङ्मातामहस्य च । एवमेव विजानीयात्सर्वत्रापि पुनश्च तत् ॥

पाककर्त्यः

तस्मात्पाकक्रियामात्रे श्राद्धकर्मणि सन्ततम् ।

प्रकर्त्री कथिता पत्नी मुख्यत्वेनैव शास्त्रतः ॥

मातापितृव्यपत्नी च पितामहादिकास्तथा ।

ज्ञातिपत्न्यः संनिष्ठाः न तत्तुल्याः प्रकीर्तिताः ॥

पत्नीशब्देनैव सर्वाः भ्रातृपत्न्यः प्रकीर्तिताः ।
 स्नुषास्तत्तुलिताः सर्वाः स्वगोत्रा उत्तमा मताः ॥
 पितृष्वसा मातृष्वसा भगिनी मातुलान्यपि ।
 श्वश्रूमुख्यास्तथा चान्याः मध्यमाः परिकीर्तिताः ॥
 यद्यप्यासामन्तरङ्गत्वमस्त्येव तथापि हा ।
 एता यतो भिन्नगोत्रास्ततः स्युर्मध्यमा तथा ॥
 सत्यो बान्धवा नूनं विज्ञातास्सच्चरित्रकाः ।
 समान भाषा धर्मादिगुणिनो ज्ञातपौरुषाः ॥
 स्वचेतसोऽधिका श्रेष्ठा अनूचानकुलोद्भवाः ।
 संभोज्यान्ता निर्विवादात् बन्धुतुल्या अबान्धवाः ॥

अधमाः कथिताः सर्वाः श्राद्धपाकाय शास्त्रतः । स्नुषापाकः पितृणां हि परमो मधुमत्तरः
 तद्दुर्लभेनाप्यपाकः तुलितस्तेन धर्मतः । पुत्रपाकः पौत्रपाकः नष्टपाकस्तथाविधः ॥
 भ्रातृपाकादिकास्सर्वे तुलिता एव केवलम् । उत्तमत्वेन निर्दिष्टाः पितृणां प्रीतिवर्धनाः ॥
 असंभवेस्नुषादीनां संभवे तान्परास्त्विति । सुमङ्गल्याश्च पुत्रिण्यः अनिवृत्तरज्जकस्ककाः
 अत्युत्तमा इति ज्ञेयाः पाककर्मणि पैतृके ॥

श्राद्धपाक्यनर्हाः

भिन्नभाषाकृतः पाकः रण्डापाकश्च गर्हितः ।
 शिवत्रिणीकृतपाकस्तु सर्वेषां मादको भवेत् ॥
 शिवत्रिणीदर्शनात्सर्वे निखिलाः पितरस्तु ते ।
 एतत्कव्यं न गृह्णन्ति हव्यं देवाः जगुः पिताः ॥

श्राद्धकर्मणि विज्ञेयं भिन्नभाषाकृतं तु यत् । हालाहलनिभं तत्स्यात् पक्वान्नं तेन तत्त्यजेत्
 ये भिन्नभाषास्तैः सर्वैः श्राद्धकर्मणि केवलम् । लेपनं मार्जनं धूली (१) र्जनमेव च ॥

श्राद्धे पाकानर्हं कृत्यम्

पात्रादीनां क्षालनं च शलाटूनां विशेषतः । खण्डनादिक्रियाणां च समीकरणमञ्जसा ॥
जलेध्मानयनं सर्वसूपतण्डुलधावनम् । तथा तत्क्षालनं चापि जलसंबन्धपूर्वतः ॥
(त)दमियोगकार्यं तद्वर्जयित्वाखिलं मनुम् । सिक्तधान्यादिपिष्टानां करणं केचिदूचिरे ॥
फलादीनां तथा भूयः समीकरणखण्डने । प्रशस्तेति यमः प्राह गुडताडनमेव च ॥
अपकानामतप्तानां वस्तूनां स्पर्शनं तथा । तत्तद्वस्तुविशेषैश्च योजनं केचिदूचिरे ॥
गन्धाक्षतादिकरणं सगोत्रैककृतं परम् । धान्यान्यन्यानि वस्तूनि संगृह्णाति पितृन् प्रति
यदातदादिपितरः सुस्वस्था हृष्टचेतसः । तिष्ठन्त एव नितरां इव ते कृतभोजनाः ॥
तस्माच्छ्राद्धदिनात्पूर्वं अब्दार्थत्वादिकालतः । पूर्वमेव प्रयत्नेन संगृह्णीयात्स्वशक्तिः ॥

तत्संभारान् यथाकामं तत्तृप्त्यर्थं महामनाः ।

शक्त्यभावे तु नितरां तच्छ्राद्धीयकथाः शुभाः ॥

तच्चरित्राणिचित्राणि स्वकृतास्तन्निमित्ततः ।

क्रियास्तास्तास्तत्र तत्र कथयन् स्वाप्तबन्धुभिः ॥

नयेद्दिनानि शनकैस्तावन्मात्रेण ते परम् । तत्तत्स्वीयकथामात्रमुदिताः शान्तमानसाः ॥

अस्मासु कुरुते भक्तिमिति निश्चित्य तत्सुतः ।

अस्मच्छ्राद्धं च विधिवत्करोत्येवेत्यतस्त्विति ॥

निस्संशयेन वर्तन्ते ततो नित्यमतन्द्रितः । वस्तुसंपादनाशक्तः प्रभवेत्तत्कथापरः ॥

मासद्वयात्पूर्वमेव धान्यावहनसंशुवौ । स्थले सम्यक् कारयीत संगृह्णीयाच्च तण्डुलान् ॥

शुद्धकुम्भकुमूलेषु गोपयेच्च स्वशक्तिः । मासमात्रात्पक्षमात्रादथवात्वादिनाष्टकात् ॥

धान्यावहननं सम्यक् कारयीतैव पूर्वतः । दिनत्रयाच्छ्रुत्यभावे पूर्वस्मिन् दिवसेऽपि वा

संपादनं तण्डुलानां कुर्यादेव विधानतः । सर्वाभावे तु सुतरां येनकेनाप्युपायतः ॥

सद्यो वा तण्डुलान् सम्यक् दारिद्र्यापत्सु संकटे ।

राष्ट्रक्षोभे जनक्षोभे नियमो नेति वेदिनः ॥

महात्मानः प्रोचुरिति तण्डुलक्षालनोदकम् ।
 श्राद्धात्पूर्वं गवां पानकार्यार्थं न नियोजयेत् ॥
 काकास्पृष्टं यथा तत्स्यात् गोपयेत्तावदेव हि ।
 अपि मार्जाल(र)संस्पृष्टं यावद्ब्राह्मणभोजनम् ॥
 विप्रभुक्तिश्चात्र परा तदनुप्रजनात्मिका । सर्वकार्येष्वेवमेव मर्यादाशास्त्रसंमता ॥
 धान्यावहनने तस्मिन् चूर्णिता येऽपि तण्डुलाः ।
 फलीकरणकाश्चापि पालनीयाः प्रयत्नतः ॥
 गवाद्यर्थेन योज्याश्च युक्ता यद्यभवन् तदा ।
 न पैतृकार्थे ते योज्याः अपि धान्येषु तेष्वपि ॥
 पित्र्यर्थत्वेन क्षिप्तेषु समुद्भृत्यान्यकार्यतः । नियोजयेन्न धान्यं तद् विनियुक्तं भवेद्यदि
 कुप्यन्ति पितरः सद्यस्तस्मिन् शिष्टं तु तत्परम् ।
 स्वेनैव भुक्तं यदि ते स्वशिष्टं स्वसुतादयः ॥
 अश्नन्ति किल तेनास्मत्पुत्रिरेवेति सादरम् ।
 स्वभोजनसमं सम्यक् मन्यन्ते प्राप्तकामकाः ॥
 एवमन्यत्र भूयश्च विनियुक्तं तदीयकम् । स्वभुक्तिशेषं स्वीयं हीति मन्यन्तेऽतिहर्षतः
 स्वभुक्त्यनन्तरं ते वै पितरः क्षुद्धिर्वर्जिताः ।
 स्वपुत्रं च तदीयांश्च क्षुधार्तान् संस्थितान् तदा ॥
 विलोक्य कृपया युक्ता अद्यास्माभिर्यथा बहु ।
 चर्वितं सुखमाकण्ठं तद्वदेतैरपि स्फुटम् ॥
 कर्तव्यं चर्वणं त्वद्य हीति वात्सल्यसंयुताः । दूयमानेन मनसा तिष्ठन्त्येव ततः किल ॥
 तत्प्रीत्यै स्वजनैः सर्वैर्भक्ष्यभोज्यैर्घृतान्वितैः ।
 भुञ्जीयाद्यावदावृत्तिर्न चेत्ते दुःखितास्त्वति ॥
 भवेयुरेव तस्मात्तु श्राद्धान्ते श्राद्धकृच्छ्रुचिः ।
 तच्छिष्टानखिलानद्यात्स्वबालानां च काक्षितम् ॥

तच्छिष्टानखिलानद्यास्ववालानां च कांक्षितम् ।

‘यद्यत्फलं वा भक्ष्यं वा खाद्यं वा पेयमेव वा ॥

पत्रं पुष्पं चन्दनं वा ताम्बूलं पात्रमेव वा । कांक्षितं तत्प्रदेयं स्यादन्यथा तेन पूजिताः ॥

भवन्त्येव न सन्देहस्तथा तत्प्रीतये ततः ॥

भूरिभोजनम्

भूरिभोजनकर्मापि तदन्ते सम्यगाचरेत् ।

भूरिभोजनकर्मेतत् श्राद्धान्ते स्यात्स्वभक्तितः ॥

पूर्वमेवेति जगदुः केचित्तत्र पुनः परम् । परेद्युस्तर्पणान्ते वै कर्तव्यत्वेन भक्तितः ॥

विहितं कर्म तत्प्रोच्य र्यतेराराधनं तथा । महात्मानो वसिष्ठाद्याः मतमेतन्महर्षयः ॥

सूत्रकाराः शौनकाद्याः धर्मज्ञा न्यायचिन्तकाः ।

नाङ्गीचक्रुश्च नितरां कुत एवमिति वचे(दे)त् ॥

तत्र युक्तिपरामाहुः श्रुतिसिद्धां सनातनीम् ।

सिद्धयहं समतिक्रम्य मृताहं वा गुरोः पितुः ॥

सहस्रकोट्युद्भवेषु चण्डालः कोटिज (?) । (.....) वत्येव तत्सिध्यहमृताहकौ ॥

अलङ्घनीयौ तनयशिष्याभ्यां तु ततो यतः । इति काठकवाक्येन तथैव च पुनः खलु ॥

जीवतोर्वाक्यकरणात् मृताहे भूरिभोजनात् । गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता

शाठ्यायनिब्राह्मणस्येत्येवं वैश्रवणेन च । मृतसिद्धिं तिथीं प्रोक्ते तयोः कालौ सुपावकौ

ततः कुर्यात्सिद्धिमृत्तितिथ्योरेव क्रिये तु ते । श्राद्धमाराधनां पुण्यां न परेऽह्नीति निश्चयः

यो वा लोके ततो वच्मि (?) स एव ब्राह्मणोत्तमः ।

आस्तिकः पितृभक्तश्च मातृभक्तोऽपि तत्त्ववित् ॥

विहिततत्पितृकार्याय प्रतिवर्षं प्रयत्नतः । सर्वाण्यपि च वस्तूनि धान्यादीनि च कृत्स्नशः

दधिक्षीरघृतादीनि मधुतैलगुडादिकम् । फलादीनि च रम्याणि दृष्ट (?) णितान्यपि ॥

हिरण्यं रजतं वस्त्रं पत्रं पात्रं सुमादिकम् । प्रभूतान्येव सर्वाणि संपाद्यानि स्वशक्तितः ॥

पर्याप्तान्यखिलानां च लोभशाढ्यविवर्जितः ।
 सर्वेषामपि बालानां ज्ञातीनां स्वस्य केवलम् ॥
 वनितानामागतानां स्वच्छ (?) शतस्य वै । यथावात्यन्तपर्याप्तानि भवेयुस्तथातराम्
 संपादयेच्छुद्धमनाः ततः कुर्याच्च पैतृकम् । तेन ते पितरस्सर्वे तद्बालाद्यतिभक्षणात् ॥
 स्वपुत्रयजमानस्य वृत्तिभुक्तिविशेषतः । अतिवृत्ता क्षुन्निवृत्ताः प्रयुजन्त्याशिष एव च ॥
 तमेनं तनयं दृष्ट्वा लोकान् तानुत्तमान् शुभान् ।
 गच्छन्ति तस्माद्भूयिष्ठवस्तुभिस्तत्समाचरेत् ॥
 शुद्धेन मनसा भक्त्या शुद्धद्रव्येण सन्ततम् ।
 कर्तव्यानि ब्राह्मणेन श्राद्धानि सुबहून्यति ॥

षण्णवतिश्राद्धसंख्यानिर्णयः

दर्शा द्वादशसंख्याकाः पाताः स्युस्ते त्रयोदश । धृतयश्च तथा ज्ञेयाः मनवश्च चतुर्दश
 युगादयश्च चत्वारः क्रान्तयश्चापि कीर्तिताः ।
 आदित्यसंख्यया ताश्च विज्ञेयाः स्युर्विचक्षणैः ॥
 महालयाः पञ्चदश अष्टकान्वष्टकाः पुनः । संख्यया द्वादशैव (स्युः) गजच्छाया च काचन
 मासि श्राद्धानि ज्ञेयानि द्वादशैवेति केवलम् ।
 पित्रोः श्राद्धद्वयं चापि श्राद्धानि स्युः स्वभावतः ॥
 अष्टोत्तरशतान्येवं चोदितानि मनीषिभिः । श्राद्धेष्वेतेषु सर्वेषु क्रान्तयो धृतयस्तथा ॥
 ते पाताश्चापि (?) गजच्छायापि सर्वशः ।
 न नित्याः कथिताः सद्भिरकल्मसास्ते यतस्ततः ॥
 तद्भिन्नान्यखिला ज्ञेयाः कल्मसा इति विशेषतः ।
 कल्मसत्वं चापि कथितमनिशा व्यभिचारतः ॥
 एककालागमत्वं हि दर्शानां तत्र वच्मि वः । सर्वेषामपि चैत्रादिमा (?) बहि ॥
 कल्मसत्वं कथितं सद्भिस्तेनैषां नित्यता स्मृता । मन्वादीनां तथैव स्यात्सर्वेषां क्रमतस्तथा

चैत्रमासतृतीयादौ पौर्णमासी च तद्द्वयम् । तन्मासेऽत्र प्रकथितं न वैशाखे ततस्तदा ॥
ज्येष्ठमासाष्टमी ज्ञेया दशम्याषाढकी तथा । पूर्णिमा च तथा ज्ञेया श्रावणस्याष्टमी परा
कृष्णपक्षस्य विज्ञेया ततो भाद्रपदस्य च । तृतीयेति प्रकथिता प्रशस्ता पितृकर्मणि ॥
आश्वयुक्शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके सिता । पूर्णिमा शुक्लपक्षस्य मार्गशीर्षे तु नैव हि ॥
पुष्यस्यैकादशी ज्ञेया माघमासस्य सप्तमी ।

पूर्णिमाऽर्चाप्यमावास्या फाल्गुने च प्रकीर्तिते ॥

युगाद्यस्तु विज्ञेयाश्चत्वारः शास्त्रवर्त्मना । नभस्यापरपक्षोऽथ महालय इतीरितः ॥
पक्षसंख्यैव निर्दिष्टाः तेऽहि पञ्चदशैव हि । केचित्कृष्णप्रतिपदं क्षीणसोमत्वसाम्यतः ॥
मासस्याश्वयुगाख्यस्य संगृह्य किल केवलम् ।

महालयास्ते कथिताः सम्यक् षोडशसंख्यया ॥

इत्युचुः किल केचित्तु परे ते दशसंख्यया । जगदुः केचन पुनः पञ्चचैवेत्यपरे तथा ॥
त्रयस्त इति भूयश्चाप्येकमेवेति केचन । प्रापणच्छिन्नत्वेनैव केचित्परं स हि ॥

महालयश्राद्धप्रशंसा

पक्षो महालयाख्योऽसौ पितृणामतिवल्लभः । अत्र दत्तं हुतं जप्तं तप्तं चोपकृतं कृतम् ॥
एकैकं कोटिगुणितं अक्षय्यफलदायकम् । तस्मात्सर्वेण नितरां देहि मात्रेण भक्तितः ॥
कार्यं महालयश्राद्धमन्यदा तेऽखिलास्तराम् ।

शपन्त्येनं दुःखतप्तास्तस्मात्तच्छ्राद्धमेककम् ॥

कुर्यादेव विधानेन न चेद्दोषो महान् भवेत् । सद्यः कुलं नश्यति च श्रीरप्येषा परा भवेत्
दिने दिने गयातुल्यं भरण्यां गयपस्तथा । दशतुल्यं व्यतीपाते पक्षमध्ये तु विंशतिः ॥
द्वादश्यां शतमित्याहुरमायां तु सहस्रकम् । एतन्महालयश्राद्धं षड्दैवत्यं प्रकीर्तितम् ॥
पक्षो महालयस्त्वेकः स मुख्य इति कीर्तितः । सकृदेव च गौणः स्यात्(तत्)पक्षोऽपि केवलम्
तथैव कथितः सद्भिर्द्विविधश्चेति सूरिभिः ।

षड्दैवत्यस्तत्र पूर्वः नित्यश्चापि तथा मतः ॥

नानादैवतकः प्रोक्तः नानाकारुण्यसंयुतः । सोऽयं द्वयं प्रयत्नेन प्रकर्तव्यं विशेषतः ॥
 पितृणामपि सर्वेषां तृपये तादृशो न तु । नित्योऽयं किल षड्देवः स तु चेत्सर्वदैवतः ॥
 सर्वाश्च देवता एताः विज्ञेया नित्यतर्पणे ॥

महालयनित्यतर्पणदेवताः

आदौ पिता तथा माता सापत्नी जननी तथा ।
 मातामहास्सपत्नीकाः आत्मपत्नी त्वनन्तरम् ॥
 सुतभ्रातृपितृव्याश्च मातुलासह भार्यकाः । दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भागिनेयकः
 पितृष्वसा मातृष्वसा श्वशुरो गुरुरर्थिनः । स्वामी सखा तथाचार्यस्तथैव स्यालकः परः
 पितृतीर्थैस्तर्पणीया देवताः पितृरूपकाः । कारुण्या इति विज्ञेयाः एतेषां प्रतिवत्सरम् ॥
 महालयाख्यं तच्छ्राद्धं कर्तव्यं श्रेय इच्छता ।
 एतेषां तादृशे श्राद्धे अर्घ्यं पिण्डं पृथक् पृथक् ॥
 प्रदेयमेव विधिना न चेद्दोषो महान् भवेत् । आदौ संकल्पकाले तु सर्वानेव समुच्चरेत्
 वसुरूपत एव स्यात्तदुच्चारणमप्युत । तदा तदा कर्ममध्ये समुच्चारणके परे ॥
 संप्राप्ते तु तदातीव कारुण्यानिति तान् वदेत् ।
 अर्ध्यकाले पिण्डकाले नामगोत्रादिभिस्तराम् ॥
 समुच्चरणमेव स्यात् तयोर्भिन्नस्थलेषु चेत् । यथारुच्येव तु परं कारुण्यानित्युदीरणम्
 तदा किमर्थमित्युक्ते तत्प्रयोगस्य वै तदा । सौलभ्यायेति कथितं पुनस्तेषां तथैव हि ॥

आवाहनप्रकारः

सौलभ्यायैव वरणं विप्रसंग्रह एव च । शक्तौ सत्यां एकैकस्य चैको ब्राह्मण एव हि ॥
 अशक्यविषये सर्वविप्राणामेकविग्रहे । आवाहनं सौकर्याय तस्मिन्महालये पुनः ॥
 पाक्षिके प्रथमे ये स्युः दिवसे ब्राह्मणाः स्मृताः । त एव सर्वपक्षस्य विनैव वरणं पुनः ॥
 आवाहनं च निखिलं कार्यमेवेति सा श्रुतिः । अयमेकप्रकारः स्यादक्षिणा च तथा स्मृता ॥

पक्षान्ते किल देयेति प्रतिनित्यं पृथक् पृथक् । प्रदेयैवेति च पुनः प्रकारः कथितः परः ॥
पक्षोऽयं यमलोकस्य शून्यकारक उच्यते । पितृणां स वरो दत्तो देवदेवेन विष्णुना ॥
नभस्यापरपक्षादि यावद्वृश्चिकदर्शनम् । पितृणां भूतलावासः पुत्रदत्तैकमुक्तये ॥
अतो मनुष्यमात्रो यः पितृणामतिपुष्टये । श्राद्धं महालयाख्यं तत्कुर्यादेव विधानतः

यस्तस्मिन् तादृशे काले पितृनुद्दिश्य धर्मतः ।

न करोति नरः श्राद्धं तं शपन्त्यस्य तेऽखिलाः ॥

नित्याश्च पितरो ये तु कारुण्याश्चापि केवलाः ।

विश्वेदैवैश्च सहिताः विष्णुना कुपिता ध्रुवम् ॥

अस्मिन् पक्षे गजच्छाया नामकं श्राद्धमेककम् ।

यदेन्दुः पितृदैवत्ये हंसश्चैव करे स्थितः ॥

याम्या तिथिर्भवेत्सा तु गजच्छाया प्रकीर्तिता । सकृन्महालयश्राद्धकरणं सकृदेव हि
यदा भवति चेत्तस्मिन् गौणपक्षे दिनादिकम् ।

सम्यगालोक्य कार्यं स्यादन्यथा बाधकं भवेत् ॥

पतिपत्नीभाग्यसंपद्ग्रहवृत्तिविनाशनम् । भवेदेव न सन्देहस्तस्मादुक्तप्रकारतः ॥

कुर्यान्महालयश्राद्धं तादृशं पितृतृप्तये ॥

सकृन्महालयश्राद्धकालनिर्णयः

सकृन्महालयश्राद्धममावास्याकृतं यदि ।

अनालोष्यैव शास्त्राणि ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ॥

पत्नी वा पशवो यद्वा सौभाग्यं वस्तुवाहनम् ।

वृत्तिक्षेत्राणि वा गेहाः लयं विन्दन्ति तत्क्षणात् ॥

तस्मादमायां यत्नेन न कर्तव्यं विपश्चिता । सकृन्महालयश्राद्धं सत्यमेव मयोदितम् ॥

चतुर्दशी तु सा होया ये वा शस्त्रहता नराः । विषोद्वन्धनघाताद्यैर्जलसर्पाग्निपातनैः ॥

दुर्मृता ये पापकर्मविशेषैस्त्यक्तजीविनः । तेषामेव प्रशस्तानां न तस्मात्तु तदाचरेत् ॥

द्वादशी तु यतीनां स्यात् प्रशस्ता पितृकर्मणि ।

तस्मात्तस्यां तु तत्कर्म तेषामेव परा स्मृता ॥

सुमङ्गलीनां नवमी प्रशस्ता परलोकदा । तस्यामेव ततः कार्यं सकृन्महालयारुहकम् ॥

अत्यन्तासाधारणेन पूर्वोक्तानां तु ताः स्मृताः ।

तिस्रोऽपि तिथयः सद्भिश्चतुर्थी चापि केवला ॥

रिक्तानां प्रथमा यस्मात् तादृशे कर्मणि त्वियम् ।

न मुख्यैवेति विज्ञेया तस्यां कर्ता तु केवलम् ॥

रिक्तत्वमेव प्राप्नोति तस्मात्तां संपरित्यजेत् ।

शेषाः स्युस्तिथयः सर्वाः दश ख्याताः सुपावनाः ॥

सकृन्महालयाख्येऽस्मिन् सर्वेषामपि सन्ततम् ।

पितुर्मृततिथिः पुण्या तस्मिन् कर्मणि केवलम् ॥

विना चतुर्दशीं दर्शं द्वादशीमपि वच्मि वः ।

यद्येतास्तिथयः स्युर्वे गृहिणीऽस्य तथाविधाः ॥

चतुर्दशी द्वादशी च दर्शस्तेषु न चाचरेत् । सकृन्महालयश्राद्धे पितृश्राद्धतिथिः परः ॥

अत्युत्तम इति ख्यातः आचारश्च तथाविधः । सर्वदेशेषु पुण्येषु क्षेत्रेषु विविधेष्वपि ॥

सर्वाभ्यर्हितकर्मतत् पितृणामतिवृत्तिदम् । अतिप्रशस्तं विज्ञेयं पितृणामतिवृत्तिदम् ॥

वृषोत्सर्जनमत्यन्तं परलोकैकहेतुकम् । गयाश्राद्धं तथा ज्ञेयं गौरीदानं च तादृशम् ॥

सकृन्महालयश्राद्धं यमयज्ञः सुपावनः । ततोभयमुखीदानं पनसागप्रपालनम् ॥

तत्प्रतिष्ठापूर्वकेण तज्जन्यफलदानकम् । तत्प्रीत्यै शुद्धचिरोन समानानीति चोचिरे ॥

महालयश्राद्धफलम्

यः पञ्चवारं मतिमान् कुर्यात् पक्षमहालयम् ।

तस्य नन्दन्ति पितरः सर्वान् कामास्तु पुष्कलान् ॥

प्रयच्छन्त्येव भूयश्च कृतार्थास्ते मुदा युताः । संघीभूयास्य तु स्वप्ने समागत्यैनमीदृशम्

इमां वाचं वदन्त्येव रे रे पुत्र वयं त्वया ।

कृताः कृतार्थाः संतृप्ताः सुखनित्या कृतास्तराम् ॥

प्रापितास्तत्पदं विष्णोः सुमहच्चक्रपाणिनः । तस्मादितः परं भूयः कर्मैतत्पावनं शिवम्
अतिप्रयत्नसाध्यं हि मा कुरुष्व महानपि । अस्मदर्थं कृतं साधो महत्तत्कृतवानसि ॥
महालयं तं पक्षाख्यं वदन्त्येवं सुनिर्वृताः । न संशयोऽत्र कर्तव्यः कर्मैतत्तादृशं महत् ॥

पुनः पुनः प्रवक्ष्यामि तत्परं तादृशः पुनः ॥

एकाष्टकाविधिः

अष्टकाख्या द्वादश स्युः पैतृकानित्यनामकाः ।

माघकृष्णाष्टमी पुण्या ज्येष्ठया या युता भवेत् ॥

सैकाष्टका प्रकथिता महती श्रुतिचोदिता । तस्यां सायमपूर्वं चतुश्शरावैकसंमतम् ॥

अष्टाकपालसंयुक्तं कृत्वा होमं विधाय च ।

शिष्टः स ब्राह्मणेभ्यो वै प्रदेयो भक्षणाय वै ॥

ते स्युः श्राद्धस्य भोक्तारः परेद्युस्तत्परं पुनः ।

कृत्यं सर्वं विधायैव परेद्युस्तान्निमन्त्र्य वै ॥

ब्राह्मणान् विधिना शिष्टान् उत्तरानखिलान्मनून् ।

मुखान्ते जुहुयादेव प्रतिष्ठाप्य हुताशनम् ॥

आज्याहुतीश्च सर्वेषां वपादीनां विधानतः । जुहुयादेव विधिना होमशेषं च तत्समम्

निर्वर्त्य पश्चान्मध्याह्ने मासि श्राद्धविधानतः ।

श्राद्धं कुर्याद्विधानेन न चेद्भूयो विधानतः ॥

दध्यञ्जलाख्यकं कृत्वा रात्रौ भक्त्या ततः पुनः ।

यथापूर्वं श्राद्धमात्रं कुर्यादेव विधानतः ॥

एवं कृते तु सर्वेषामष्टकानां तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥

लघूपायोऽद्य भवतां मयायं प्रतिपादितः । गवालम्भो निषिद्धोऽत्र योऽयं सूत्रप्रचोदितः

कलौ तु नितरां तस्मात् (च्छा)श्राद्धमात्रं तु तत्पुनः ।

यथोदितं तथा कुर्यात् एवं द्वादशवारतः ॥

अन्देशु तादृशेष्वेषु कुर्याच्चेत्तु विचक्षणः । पितरोऽस्य भवन्त्येव नित्यतृप्ता मुदायुताः
पूर्ववत्प्रवदन्त्येह कर्मेतदतिपावनम् । तादृशं सर्वकामानां पूरकं तारकं महत् ॥

मार्गशीर्षादिमासेषु कृष्णपक्षेषु ताः स्मृताः । सप्तमी नवमी चापि ते तेऽन्वष्टकनामके ॥
तिथी पुण्ये सुप्रशस्ते तन्मध्ये त्वष्टमी शिवा । अष्टमीतिप्रकथिता मासेष्वेषु चतुर्ष्वपि ॥
विज्ञेया द्वादश पुनः तच्छ्राद्धतिथयः क्रमात् । सर्वश्राद्धेषु गृहिणो वह्निरौपासनो भवेत्
सपिण्डकेषु श्राद्धेषु नापिण्डेषु कदाचन । एवं षण्णवतिश्राद्धक्रमोऽयं वै निरूपितः ॥

श्राद्धभेदाः नान्दीश्राद्धस्वरूपविचारः

पुनः श्राद्धानि कानि स्युर्घृतश्राद्धं च दाधिकम् ।

तीर्थश्राद्धं भौक्तिकं च जीवश्राद्धं च नामतः ॥

विलक्षणं तच्छ्राद्धानां चत्वारिंशत्तत्कदैवितम् ।

नित्याख्यं श्राद्धमेकं स्यान्नान्द्याख्यमपरं तराम् ॥

विलक्षणं हि सर्वेषां श्राद्धशब्दस्तु तत्र वै । अत्यन्तपार्थक्यपितृसंबन्धादेव ते तु वै ॥

देवत्वेनैव नितरां वन्द्याः सिद्धाः शिवाङ्गिनः ।

स्वश्रेयसैकशरणाः सुप्रसिद्धाश्च शास्त्रतः ॥

यदा यदा यत्र यत्र प्रवेशः स्यात्तु मन्त्रतः । अमी च किल देवानां तत्र तत्र तदा तदा ॥

धर्मास्सर्वे विरुद्धा स्ता(स्ते)लक्षणं च पृथक् पृथक् ।

दर्भाः सुमनसश्चित्राश्चन्दनं तनुलेपनम् ॥

महासुगन्धतैलादि हारिद्राकुंकुमादयः । मालिकाश्चूतपत्रौघमहालंकरणादिकम् ॥

वितानानि च शुभ्राणि रम्भापूगफलान्यपि ।

काण्डानि कदलीनां च कर्णिकारध्वजाश्रमाः ॥

महारग्वधपालाशपूगखादिरगोमुखाः । बाद्यालम्भनपूर्वाश्च दिव्यनीराजनक्रियाः ॥

गृहालंकरणादीनि गतप्रत्यागतानि च । सुसलोलूखलक्षिप्त हरिद्रातण्डुलौघकैः ॥
पुरन्ध्रीगानविक्षिप्तैः पर्यायोद्धरणोज्ज्वलैः । सताम्बूलाभ्यञ्जनैश्च निशाचूर्णाभिरञ्जनैः
तच्चित्ररङ्गवलयौघताट्टम्भवनमण्डनैः । चिरंटगानसुमुखसमागतजनाकुलैः ॥

नृत्यन्तस्ते समायान्ति शोभनाख्या हि देवताः ।

तेषां तद्ध्वनिमात्रेण प्राचीनावीतिहर्षिणः ॥

सिक्तक्षालितशुद्धाङ्गा स्यक्तसर्वानुलेपनाः । मुक्तपुण्ड्रललाटाश्च सुस्पष्टात्यन्तदुर्मुखाः ॥
नित्यास्पष्टप्रसादाश्च स्पष्टक्रोपा निरन्तरम् । त्यक्तालंकारशरणप्रवेशस्थितिचेतसः ॥

स्वविरुद्धक्रियाभीतिसंयुक्ताः सत्त्वराः क्षणात् ।

पलायनपरास्ते स्युस्तेषामेषां यतोऽन्वहम् ॥

स तेजस्तिमिरन्याय औत्पत्तिक इतीरितः । तस्मादेषामागमने शोभायै पितरस्त्विति
देवानां शोभनाख्यानां सुमुखानां मुचेतसाम् ।

मन्त्रेण जाते विधिना तदाह्वाने कृते किल ॥

महामंगलवाद्येन सुशब्देन त्रिवारतः । निःशब्दपरमास्ते तु तस्माद्दूरीकृताः पुनः ॥

यावत्स्वधर्मकाह्वानं तावन्नायान्ति तद्गृहम् ।

तस्मान्नानन्दीं प्रकुर्वन्वै प्रातःस्नात्वा विधानतः ॥

नित्यकर्म समाप्याथ ब्रह्मयज्ञं च तर्पणम् । तदङ्गभूतं निर्वर्त्य धृतालंकरणः शुचिः ॥

सुरम्यवाद्यशब्दौघैर्मंगलाख्यैर्मनोहरैः । सर्वान् बन्धून् समाहूय मित्राणि निखिलान्यपि

स्वग्रामिणः स्ववीथीस्थानन्यान् ग्रामान्तरस्थितान् ।

दूरदेशस्थितान् स्वीयान् सर्वानेवाविशेषतः ॥

आप्तान् जात्यन्तरजनान् तैरयं निखिलैरपि ।

कृताभ्यनुज्ञो गुरुभिः संवृतः सुमुखः शुचिः ॥

देवान्नत्वा प्रापयित्वा गणेशादिमुखानपि । कृतनीराजनविधिः समनुष्ठितमंगलः ॥

स्वीकृतानेकहारिद्राचूर्णाक्षतमुखक्रियः । पत्न्या साकं कृताभ्यङ्गस्तैलेनैव सुगन्धिना ॥

हरिद्राचूर्णतैलाभ्यामभ्यक्ताङ्गस्वष (?) विग्रहः । पुरन्ध्यानीतसुमुखः स्वच्छोष्णजलपूरतः

स्नात्वा तेन विधानेन स्नानांगं तर्पणं च तत् । प्रकुर्यादुपवीतेन तत्र यत्तर्पणं तदा ॥
 कर्तव्यमेव सततं अभ्यङ्गस्नानकर्मणि । तत आचम्य शुष्केण वस्त्रोणांगानि कृस्तशः ॥
 निर्मृज्य पश्चान्मस्तिष्कं निर्मृजेदिति तत्क्रमः । नित्यस्नानादिकृत्येषु शिरसः प्रथमं तु तत्
 प्रोक्तं निर्मृजनं नित्यं पीडितेनैव वाससा । तदार्द्रैव स्वीयानि (प्रक्ष्यालय) तु कदाचन
 यद्यन्यवाससा गात्रं निर्मृजेत्स्नानजं फलम् । तद्वस्त्रदातुरेव स्यात् पुत्रमित्रादृते तु तत् ॥
 नापत्सु दुर्गतेष्वेवं कदाचिद्रोगिणी क्वचित् । मर्यादैवं विजानीयाद् रोगिणः शुष्कवस्त्रतः
 गात्रनिर्मृजनं शस्तं न दोषाय भवत्यपि । शुभ्रे वस्त्रे स्वीये धृत्वा चन्दनेन स्वलंकृतः
 धृत्वा पुष्पाक्षतादीनि स्वर्णभूषणभूषितः । पुण्यानां वाचयित्वादौ ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥

पुण्याहवाचनविधिः

पुण्याहस्वस्त्यृद्धिशब्दैर्दक्षिणादानपूर्वकम् ।
 शान्तिरस्तु तथा पुष्टिस्तुष्टिरस्त्विति तत्परम् ॥
 वृद्धिरस्त्विति संप्राप्य चाविघ्नोऽस्त्विति तत्परम् ।
 आयुष्यमस्तु भूयश्चारोग्यमस्तु ततः पुनः ॥
 स्वस्त्यस्तु च शिवं कर्मास्त्वित्यनन्तरमेव वै ।
 अस्तु कर्मसमृद्धिश्च पुत्रपौत्रादिसंपदाम् ॥
 तथा वेदसमृद्धिश्च समृद्धिः शास्त्रसंपदाम् ।
 इति संप्रार्थ्य तत्पश्चात् तदुत्तरगतः पुनः ॥

अस्तु मे दिष्टनिरससंचयः पापसञ्चयः । सोऽयं प्रतिहतश्चास्तु यज्ञेयश्च तदस्तु मे ॥
 तथादित्यपुरोगा ये प्रीयन्तां ते ब्रह्मा इति । तिथिवातादिदिग्देवाः करणादिमुहूर्तगाः ॥
 त्रि(प्री)यन्तामद्य मत्कर्महेतवे सुकृदाय च । सर्वधोराणि शाम्यन्तु पापान्यपि विशेषतः
 प्रशान्त्विति नैऋत्यां दिशि वै संस्थितो वदेत् ।
 कलशाम्भो निक्षिपेद्वा सर्वेष्वेतेषु कर्मसु ॥

पुनः शुभानि वर्धन्तामिति तत्र स्थितो जपेत् । प्राङ्मुखेनैव नोचेत् पूर्ववद्वा जले जलम्

कलशस्थे निक्षिपेद्वापि तत्परं पुनरेव वै । शिवाश्च मासाकृतवः पक्षा ऋषय एव च ॥
ते वनस्पतयस्सर्वे सन्त्वोषधय एव च । सर्वे शिवाः संभवन्तु अहोरात्रे शिवे तथा ॥
उत्तरे कर्मणि पुनः अविघ्नोऽस्तु सदा मम । सर्वा क्रियाः शिवा भूय उत्तरोत्तरतः पराः
तथा क्रियास्संपद्यन्तामभिवृद्धिः पुनः पुनः । उत्तरोत्तरमस्त्वेव मंगलानि शिवानि च ॥

माहेश्वरीषु (?) स्तासर्वाः मातरः सपुरस्सराः ।

मरुद्गणा इन्द्रमुख्या प्रीयन्तामिति तत्परम् ॥

सर्वदेवाः प्रीयन्तां वै तथा विष्णुपुरोगमाः । ये वसिष्ठपुरोगास्ते तथर्षीणां गणाः पराः

प्रीयन्तामृषयः सर्वे छन्दांस्याचार्यवेदकाः ।

यज्ञाः प्रीयन्तां निखिलाः प्रीयन्तां दक्षिणास्तथा ॥

श्रद्धा मेधे प्रिये तां च श्रीमान्नारायणो विभुः ।

प्रीयतां भगवान्सोऽयं पर्जन्यो जगतां हितः ॥

विभुः स्वामी महासेनः सत्या एतास्तथाशिषः । भवन्तु सततं श्रीकाः उत्तरोत्तरशर्मदाः

पुण्याहनामकाः कालाः वाच्यन्तां ते क्रमोदिताः ।

प्रीयन्तामित्युक्तिकाले कलशोदकमेव तत् ॥

पृथक् पृथक् च कलशे निनयेत्तदुदक्स्थिते ।

कलशे प्राङ्मुखः स्थित्वा ब्राह्मणान् प्रार्थयेत्तदा ॥

ओं पुण्याहं भवन्तोऽद्य कर्मणोऽस्य ब्रुवन्त्विति ।

त्रिर्वाचयित्वा संप्रार्थ्य ब्राह्मणान् पूर्वमेव वै ॥

पूजितान् गन्धपुष्पाद्यैः ओं पुण्याहमिति स्म वै । तदुक्त्यनन्तरं भूयस्त्रिवारमथ पूर्ववत्
कर्मणे क्रियमाणाय प्रणवोच्चारणेन वै ।

चत्वारोऽष्टौ वा निखिलाः भवन्तः स्वस्ति कर्म च ॥

ब्रुवन्त्विति प्रार्थयित्वा वाचयित्वाऽथ पूर्ववत् ।

कर्मणः क्रियमाणस्य चर्धिं तां परमां सतीम् ॥

ब्रुवन्तु सर्वे कृपया चैकमत्यैव सांप्रतम् । भवन्तः सुमहात्मानः इत्येवं पूर्ववद्वदेत् ॥

प्रत्युक्तेऽथ ततस्तैश्चेति पूर्वच्छान्तिमाचरेत् ।

शान्तिरस्त्वित्यादिवाक्यजालैरेव यथाविधि ॥

पश्चान्मन्त्रास्तल्लिङ्गाश्च वाचयेदुच्चरेदपि । दधिक्रावादिनिखिलान् हिरण्यादिस्तथापरान्
पवमानस्सुवर्जनप्रमुखान् महदादिकान् । जप्त्वा तच्छ्रयोरित्येतेन मन्त्रेण तत्परम् ॥

शान्तिः शान्तिः शान्तिरिति त्रिवारेण समापयेत् ।

ततः परं समुत्थाय प्राञ्जलिः सन् द्विजान् समान् ॥

अष्टौ वा चतुरो वापि प्रार्थयेद्विनयान्वितः । मह्यं सह कुटुम्बाय शुद्धिकार्याय सांप्रतम्
युष्मान् स तत्प्रार्थयते त्वाशिषः परमाः शिवाः ।

सर्वदापेक्षमाणायाऽऽयुष्मते स्वस्तिसन्ततम् ॥

भवन्तोऽपि ब्रुवन्त्वेवं इत्युक्तास्तेऽपि तत्परम् । तथा ब्रूयुस्सुचित्तेन वृतास्ते तेन ये पुरा
तुभ्यं सहकुटुम्बाय सांप्रतं शुद्धिकर्मणे । महाजनान्नमस्कुर्वाणाय चायुष्मतेऽनिशम् ॥

स्वस्ति श्रीशिवसंघाताः भवन्त्वित्युत्तरं पुनः ।

ओं तत् स्वस्ति भवन्तोऽद्य ब्रुवन्त्विति तदुक्तितः ॥

ओं स्वस्त्विति प्रत्युक्तिः स्यादथ भूयश्च पूर्ववत् ।

पर्यायेऽथ द्वितीयेऽपि प्रार्थयेत्तान् द्विजर्षभान् ॥

तादृग्गुणविशिष्टाय मह्यं तद्वृद्धिकर्मणे ।

इति शिष्टं समानं स्यात् तृतीये चापि तत्परम् ॥

पर्यायेऽभ्युदयायेति कर्मणेऽन्यत्समानकम् । पश्चाद्विप्रावृतास्सर्वे बुध्यास्मेति च मन्त्रतः

अभिमन्त्र्याक्षतान् दद्याुः (?) पुनस्स तु । यजमानः प्रार्थयेच्च बुद्धिमस्याद्य कर्मणः ॥

भवन्तो वै ब्रुवन्त्वद्य पश्चात्ते ब्राह्मणास्तथा । ऋद्ध्यतामृद्ध्यस्समृद्ध्यिरित्येवं ब्रूयुरेव वै

वर्षाणां च शतं सम्यक् संपूर्णं च तथास्त्विति ।

गोत्राभिवृद्धिरस्त्वेवं शान्तिः पुष्टिश्च केवला ॥

तुष्टिरस्तु तथा पश्चाद् गोद्विजेभ्यः शिवं शुभम् ।

भवत्वित्यपि ते ब्रूयुः सर्वसंपत्तथास्त्विति ॥

अथ सर्वे प्रोक्षयेयुर्यजमानं कलत्रिणाम् । सर्वप्रोक्षणकालेषु बधूः स्यादुत्तरैव हि ॥

तस्मात्तु प्रोक्षणं तस्याः प्रथमं स्यात्ततः पुनः ।

यजमानस्य तु भवेत्तद्व्यत्यासेन चेत्कृतम् ॥

सद्यो गृहपतेरश्री भवत्येषां ततः पुनः । कालेन जायते नूनं तस्मात्तन्न तथाचरेत् ॥

स्वश्रेयसानि सर्वाणि चिरंटीपूर्वकाणि हि । भवेयुरेव सततं शुची वो मन्त्रजालकैः ॥

तैरेतैर्विहितं तत्तु स्नानं वोभययोर्भवेत् । मंगलेषु प्रोक्षणेन द्विजहस्तकृतेन वै ॥

समन्त्रकेण कथितं पौष्करं त्वभिषेचनम् । प्राच्यां दिशीति मन्त्रेण यजमानं कलत्रिणम्

प्राग्भागे मार्जनं कुर्युः दक्षिणायां च मन्त्रतः ।

दक्षिणे मार्जनं कुर्युः प्रतीच्यामिति मन्त्रतः ॥

पश्चिमे मार्जनं कुर्युः उदीच्यामिति मन्त्रतः ।

उत्तरे मार्जनं कुर्युः ऊर्ध्वायामिति मन्त्रतः ॥

मस्तके मार्जनं कुर्युः कृते त्वेवं हि मार्जने । सर्वतीर्थेष्वपगासु गंगादिषु चतसृष्वपि ॥

सागरेषु कृतस्नानः सद्यो नूनं भवेदयम् । प्रोक्षणान्ते ब्राह्मणेभ्यस्तत्कर्तृभ्यो यथामति

प्रदद्यात्तत्फलावाप्त्यै कर्मसाद्गुण्यहेतवे ।

ताम्बूलं दक्षिणां चापि मानसोत्साहमात्रकाम् ॥

पूर्वादिकप्रोक्षणकृतिसमये ब्राह्मणास्तु ते । प्रत्यङ्मुखा भवेयुर्हि दक्षिणायां दिशि स्मृताः

उदङ्मुखाः खलु प्रोक्ताः पश्चिमायां तु ते पुनः ।

प्राङ्मुखाः स्युर्विशेषेण चोदीच्यां तु ततः पुनः ॥

दक्षिणाभिमुखा कुर्युरेवं तत्प्रोक्षणे पुनः । विधिः प्रकथितः सद्भिः प्रथमे यो वृतः पुरा ॥

स एव पूर्वभागेकप्रोक्षणस्याधिपो भवेत् । विधिन्येव तथान्येऽपि सम्यगेव निरूपिताः

तत्प्रोक्षणैककर्तारः क्रमादेव समानतः । सर्वे समेत्योर्ध्वभागप्रोक्षणस्याधिपा मताः ॥

तत्तद्दिग्भागभूमिस्थास्तन्मुखा एव पूर्ववत् ।

संगृह्य दक्षिणां तस्मादत्तां विप्राश्च तत्परम् ॥

वास्तोष्पतेति मन्त्राभ्यां तज्जलं कलशत्रये । विद्यमानं शिवं पुण्यं सकूर्चेन सपल्लवैः ॥

अमीवहेति यजुषा शिवं शिवमिति द्विजाः ।

सर्वस्थलविशेषान् तान् गृहभूभागनिष्कुटान् ॥

परिषिञ्च प्रोक्षयेयुः शिवं शिवमिति क्रमात् । परिषिक्तं प्रोक्षितं तदेवं तत्स्थलजालकम्
कलार्हमेव भवति न चेत्तन्न भवत्यति । एवं पुण्याहं निर्वर्त्य कर्मादौ मंगलाख्यके ॥

पुनः संकल्प्य विधिना नान्दीं कुर्याद्विधानतः ।

संकल्पानन्तरं तत्र चेडाया वाचनं स्मृतम् ॥

ततः शिवं शिवं चेति शोभनं शोभनं तु वा । मंगलं मंगलं वेति कुशलं कुशलं तु वा ॥
उदाहरेच्छाद्धकर्ता पुनरेव ततस्तथा । शोभनाख्या देवतायाः तथैव ग्रामवासिनः ॥

(...) ज्ञाश्च सर्व एव मुदायुताः ।

सम्यक् समुच्चया भूत्वा समागत्यात्र संघशः ॥

वेदिकायां शिवाख्यायां मम पूजां कृतां पराम् ।

त्वीकृत्य मां वै रक्षन्तु धर्मपत्नी च बालकौ ॥

प्रा (.....) वन्तु प्रार्थयित्वैव तत्परम् ।

कुर्यात्तद्देवताध्यानं देवताश्चापि कीर्तयेत् ॥

अत्राद्यदेवता प्रोक्ता सा वृद्धप्रपितामहा । तदानन्तर्यका प्रोक्ता सद्भिर्वृद्धप्रपितामहा
वृद्धमाताऽथ संप्रोक्ता पर्याये प्रथमे स्मृताः । नान्दीमुख्या देवतास्ताः तिस्रस्सप्तमपूर्वतः
विज्ञेया एव सर्वत्र न तु प्रथमपूर्वतः । पश्चाद्वितीयपर्याये सवृद्धप्रपितामहः ॥

तत्पश्चादेवसंप्रोक्तस्तज्जो वृद्धप्रपितामहः ।

अथ वृद्धप्रपिता ज्ञेयस्त्रय एते मनीषिभिः ॥

ज्ञेया नान्दीमुखस्तस्मिन् कर्मण्यस्मिन् महोत्सवे ।

एवं मातामहाश्चापि ततो मातुः पितामहाः ॥

वृद्धशब्दैकसंयुक्ता मातुस्तत्प्रपितामहाः । मिलित्वा नवसंख्याकाः सपर्यायास्तु देवताः

त्रय एव समाख्याताः न ते षट्चोदिताः कदा ।

एतेषां स्मरणं कृत्वा नवानां तद्द्वयोरपि ॥

प्राधान्येनाप्राधान्येन ज्ञात्वा भक्त्या विद्वान्ततः ।

पौर्वापर्यं विनिश्चित्य मातृवर्गादितो जपन् ॥

इ (?) ति यजुषां त्रितयं चेदथा वरेत् । सर्वत्राप्येवमेव स्युः गणनायां तु सन्ततम् ॥

नान्दीनामात्मकं कर्म नव तद्देवतात्मकम् ।

देवतास्ताः सपत्नीकाः प्रोक्ता नान्दीमुखाः शिवः ॥

पर्यायेऽत्र तृतीयेऽस्मिन् (?) या एव वच्मि वः ।

विश्वेदेवाश्च ते ज्ञेयाः अस्मिन् कर्मणि सर्वतः ॥

सत्यो वसुश्च परमौ महात्मानौ शुभाकरौ । एकैकस्यात्र विज्ञेयौ द्वौ विप्रौ अथवा पुनः

वर्गस्य वा तथा ज्ञेयौ यथोत्साहं यथावलम् । एतदागमनं नित्यं शुभकर्मसु नान्यथा ॥

त एते नव्यदेवाः स्युर्मंगलध्वनिवेशिनः । धृतपुण्ड्रसमाराध्याः सुमुखाः स्वार्चनप्रियाः

कृततद्रङ्गवल्याढ्यागारनित्यप्रवेशकाः । तोरणश्रीराजमानाः कुंकुमाक्षतभासुराः ॥

चन्दनालंकृतजनाः सुगन्धालिप्तदिङ्मुखाः । एतादृशान्महाभागान् नित्यमंगलकामुकान्

पूजयेद्देव विधिना वेददर्भपवित्रतः । वरणानन्तरं तेषां यथा स्थानं प्रकल्पयेत् ।

हरिद्राचूर्णसंस्तीर्णभूतले हस्तमात्रके । चतुष्कोणे मण्डलेऽत्र देवानामिदमित्यपि ॥

पाद्यं दद्यात्पादयोर्वै तथा वर्गात्रयस्य च । मातृणां शोभनाख्यानां देवानां पाद्यमित्यपि

पितृणां शोभनाख्यानां देवानां पाद्यमित्यपि । एवं मातामहानां च पाद्यं दद्याद्विधानतः

पादप्रक्षालनं कृत्वा ब्राह्मणानां ततः स्वयम् । पादाव(?)प्रक्षालयित्वा तेषामाचनक्रियाम्

कारयतीतैव विधिना तस्याचमनमात्रकम् । वि (.....) मेव पवित्रकम् ॥

आन्तं कर्मासनं तेषां दद्यादेव पृथक् पृथक् । नात्र दर्भासनं दद्यात्(त) किन्तु पीलानि तत्पुरः

प्रयत्नेनैव संपाद्य दीपस्तम्भान् पृथक् पृथक् । प्रतिपूर्णपीठमेकं सदीप्तस्तम्भमासनम् ॥

दत्त्वा वस्त्रद्वयं रम्यं हरिद्राकुंकुमाक्तकम् । सपत्नीकः कुंकुमेन संस्कायण च संयुतः ॥

दत्त्वा यज्ञोपवीते च गन्धाक्षतसुमादिकैः । समलंकृत्य पुष्पाद्यैः प्राङ्मुखानां यथेच्छतः

तत्क्रमेणोपविष्टानां यथा वा स्थलसंकटे । मुखोपविष्टाः स्युः सर्वे तथैव विनिवेशयेत् ॥

दिशां तु नियमो नात्र यथारुच्यत एव वै । तदा कुर्यात्तच्च सव नान्द्याख्यं कर्म तादृशम्

चतुरस्रेषु सर्वेषु मण्डलेषु समन्ततः । रङ्गवल्लीचित्रितेषु पात्राणि निखिलान्यपि ॥

असंवाधान्येव कुर्यात् क्षिप्त्वा क्षितितले शुचौ ।

पात्राणां नासनं दर्भैः किन्तु पुष्पैः शुभाक्षतैः ॥

कुर्यादेव न चेत्तूष्णीं पात्रमात्राणि वा क्षिपेत् । पात्राभिधारणं पत्नी कुर्यादेवात्र केवलम्
संस्कार्यौ वा विशेषेण न स्वयं तत्समाचरेत् । तच्चाभिधारणं तूष्णीं पात्रेण न समाचरेत्
नापि दर्भादिना किन्तु भक्षणेनैव समाचरेत् । अपूपेन गुडेनाथ पुष्पेण च फलेन वा ॥
येन केन च नोचेत्तु हिरण्यरजतादिभिः । नान्दीशोभनदेवानां भुक्तौ पात्राभिधारणम्
कुर्यादेवं विधानेन न चेत्तत्पैतृकं भवेत् ।

परिवेषणप्रकारः

परमान्नं प्रथमतः पश्चात्सर्षपयुग्मकम् । चतुष्टयं च शाकानामन्नं सूपं फलादिकम् ॥

विविधानि च भक्ष्याणि लेह्यानि विविधान्यपि ।

मधुनात्र प्रदद्यात्तु तिलभक्ष्याणि यानि वा ॥

वर्जयेत्तानि सर्वाणि लावणानेव सुन्दरान् । चूतामलकनारङ्गल्लिकुचादिकखण्डकान् ॥

चिरक्षिप्तान् भाण्डगतान् यत्नगन्धादिवासितान् ।

अग्निसंयोगविधुरान् निहितान् चर्वणद्रुमान् ॥

संस्कृतान् विधिना यत्नात् तानत्र परिवेषयेत् । प्रभूताज्येन सर्वत्र पूर्णयित्वा क्रमेण वै ॥

अन्नं समभिधार्याथ गायत्र्या प्रोक्ष्य सर्वतः । समाराधनतन्त्रेण सर्वं कुर्यादतन्द्रितः ॥

सर्वत्रापोशनं हस्ते दत्वायं प्राङ्मुखः स्थित । पत्नीदत्तजलेनैव स्वकरं साक्षतं शुचिः ॥

पूरयित्वा वदेन्मन्त्रं महाभारतमध्यगम् । एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ॥

त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ।

एतं मन्त्रं समुच्चार्य क्रियमाणेन केवलम् ॥

ब्राह्मणानां भोजनेन भगवत्यो महत्तराः । सर्वात्मकाः सर्वधराः नान्दीशोभनदेवताः ॥

सुप्रीताः सुप्रसन्नाश्च वरदाश्च भवन्तुनः । इत्युक्त्वा तज्जलं पात्रे भूतले वा विनिक्षिपेत् ॥

अत्र तद्ब्राह्मणं ब्रूयात् ओदनं वाक्यवेदकम् ।
 ततस्तान् ब्राह्मणान् परिषेचनं शास्त्रतः क्रमात् ॥
 कारयित्वा विधानेन चापोशनजलं शुचि ।
 दत्त्वा सम्यग् भोजयित्वा चित्रान्नेर्दधिरञ्जितैः ॥
 दध्ना च तृप्तान् विज्ञाय कारयित्वा स्व (?) स्थितः ।
 उत्तरापोशनं दत्त्वा हस्तप्रक्षालनात्परम् ॥
 आचान्तानासनेष्वेतान् सूपविष्टान् गतश्रमान् ।
 अलंकृतान् पुनः कृत्वा ताम्बूलैर्दक्षिणादिभिः ॥

समभ्यर्च्य नमस्कृत्य ह्याशिषामक्षतांश्च तान् । मन्त्रदत्तानुत्तरीयानम्बरेणैवतः स्वयम्
 संगृह्योरसि क्षिप्त्वा(?)मपि तान् क्रमात् । प्रदाय स्वजनानां च नमस्कृत्वा(त्य)विसर्जयेत्

अत्र केचित्पिण्डविधिमिच्छन्त्यपि समन्मतम् ।

अस्यान्नाद्यां परं विप्र भोजनं परमं मतम् ॥

अनेन भोजनेनात्र नान्दीशोभनदेवताः । अतिरुप्ताः समाहूताः यावत्कर्म समाप्यते ॥
 तावत्तिष्ठति सुप्रीताः यावत्तेषां स्थितिर्भवेत् । तावत्पितृणां प्राचीनावीतपूजारतात्मनाम्
 प्रवेष्टुं नावकाशः स्यात् कुत एवं भवेदिति । कृते प्रश्ने प्रवक्ष्यामि तद्रहस्यमहं हि वः ॥
 त एते खलु विज्ञेयाः नान्दीशोभनदेवताः । अतिरुप्ताः समाहूताः यावत्कर्म समाप्यते
 तावत्तिष्ठति सुप्रीताः यावत्तेषां स्थितिर्भवेत् । तावत्पितृणां प्राचीनावीतपूजारतात्मनाम्
 प्रवेष्टुं नावकाशः स्यात् कुत एवं भवेदिति । कृते प्रश्ने प्रवक्ष्यामि तद्रहस्यमहं हि वः ॥
 त एते खलु विज्ञेयाः नान्दीशोभनदेवताः । पितरोऽमीघनात्यन्तविरुद्धाचारतत्पराः ॥
 निशब्दगमिनस्ते हि सशब्दागमिनस्त्वमी । निरलंकृतगोहैकसमागममुचेतसः ॥
 पितरस्तेऽखिला ज्ञेयाः नान्दीशोभनदेवताः । यत्नालंकृतगोहैकसमागमनमुस्थिराः ॥
 शब्दमात्रैक भीतास्ते शब्दमाधुर्यतत्पराः । मृताहृष्टिमात्रास्ते शुभमात्रैकमानसाः ॥

अमी सर्वे समाख्याताः अत एषां च तादृशम् ।

एकत्रापिसमावेशः तेजस्तिमिरयोरिव ॥

एतादृशानां नान्द्याख्यकर्मण्यस्मिन् शुभागमे ।

श्राद्धं सम्यङ् नचेत्कुर्यात्स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥

पशुतुल्यः स विज्ञेयो यद्यन्नेन कदाचन । कर्तुं कार्यविशेषैश्चेत्तादृशं श्राद्धमुत्तमम् ॥

न शक्यते तदा भक्त्या तदा मे न समाचरेत् ।

यदि तत्रापि तत्कर्तुं लौकिकैः कायवृन्दकैः ॥

तदाविधेन वामेन शक्तिहीनस्तदा पुनः । समग्रेण हिरण्येन सम्यगेव समाचरेत् ॥

दातृप्रतिगृहीतारौ कल्याणेषु समुद्यतौ । धनं नानाप्रकारेण संपाद्यैवातिचर्यया ॥

यावत्परिमितं सर्वं लौकिकेष्वेव केवलम् । विनियुज्य यथेच्छं तदेतत्कार्यं समुद्यते ॥

असत्कृत्यैव किमपि त्यक्त्वा शोभनदेवताः ।

अत्यन्तपामरा मूढाः कार्यं विस्मृत्य मोहतः ॥

कार्यमात्रकृतोत्साहाः प्रायेण बहवो जनाः ।

विद्वांसोऽपि जडा भूत्वा कर्मतत्सुमहच्छिवम् ॥

व्यर्थं कुर्वन्ति मनुजास्तेन दोषेण भूतले । मानुषा बहवोऽतीव दरिद्रा नष्टतेजसः ॥

नष्टप्रजा नष्टकामास्तथा नष्टायुषः परम् । संप्रन(ण)ष्टकुलश्चापि दृश्यन्ते भग्नमानसाः ॥

सम्यक् सर्वाणि कार्याणि बन्धुमित्रादिहेतवे । समीचीनानि वैगुण्यरहितान्येव कुर्वते ॥

भार्यापुत्रादि लोकानां भुक्तिश्रीभूषणस्रजाम् । वस्तुवाहनचेलानां विषये कोऽपि भूतले ॥

वैगुण्यं न करोत्येव किंतु सर्वं तु तादृशम् । अत्यन्तानुपपत्तीनां सहस्रमपि केवलम् ॥

नान्द्यादिदेवताविप्रस्वश्रेयसकृते भवेत् ।

यो वा विद्वान् महाभागो दरिद्रोऽपि स्वयं शिवम् ॥

कर्मैतद्वैदिकं सम्यक् करोत्यन्यो नरो न तु ।

सम्यक् पात्रं समुद्दीक्ष्य तद्योग्यं परमं स्वयम् ॥

स्वचेत (?) तत्कुर्यात् स्ववृद्ध्यै स्वश्रिये चिदे । चिरादिप्रापकं ज्ञेयं अग्निहोत्र्यपि वेद्यपि
अथैकभविकं ज्ञानं कर्मयोगरतात्मनाम् । शतजन्मभवं दानं तपोनिष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥

जपयज्ञप्रयुक्तेषु सहस्रफलिकं स्मृतम् । अभूतसंप्लवस्थाय प्रदानं ब्रह्मवादिनाम् ॥

मन्त्रपूर्तं तु यद्दानममन्त्रायास्तु दीयते । दातुर्निवृत्त्य हस्तं तद्धोक्तुर्जिह्वां निकृन्तति ॥

• उपरुन्धन्ति दातारं गौरश्वः काञ्चनं क्षितिः ।

अश्रोत्रियस्य विप्रस्य हस्तं दृष्ट्वा निराकृताः ॥

नान्दीकार्ये दीयते यद् धनं धान्यादिकं वसु । व्यसनापट्टणार्थं च कुटुम्बार्थं च याचते
दत्तं चेत्कोटिगुणितं भवेदेव न संशयः । एवमन्विष्य सर्वत्र सर्वदानेष्वयं विधिः ॥
सान्तानिकं यक्षमाणमध्वर्गं सर्ववेदसम् । गुर्वर्थपितृमात्रर्थस्वाध्यायाद्युपतापिनः ॥
नवैतान् स्नातकान् विप्रान् ब्राह्मणान् पूजयेत्सदा । तादृशेषु ब्राह्मणेषु पूजितेषु महात्मसु
पूजिताः सद्य एव स्युर्नान्दीशोभनदेवताः । वेदेन्धनसमिद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ॥
सन्तारयति दातारं महतः क्लिक्विषादपि । एकं वेदान्तिनं विप्रं पूजयेद्भद्रयान्वितः ॥
तस्य भुक्तौ भवेत्कोटिर्विप्राणां नात्र संशयः । वेदपूर्णमुखं विप्रं सुभुक्तमपि भोजयेत् ॥
न तु मूर्खं निराहारं दशरात्रोपवासिनम् । नान्दीकर्मणि कल्याणे वेदपूर्णद्विजोत्तमः ॥
अत्यन्तावश्यको ज्ञेयः अपि वा कृतभोजनः । कृतभोजनसंप्रह्ववर्णनं नान्नकार्यके ॥
हिरण्यादिककार्ये स्यान्न चाप्यामादिकेऽपि च । वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते ॥

क्रीडन्त्योषधयः सर्वाः यास्यामः परमां गतिम् ।

भयार्ता रोगिणो बालाः वृद्धाः संन्यासिनस्तथा ॥

अर्थिनो भोक्तुमिच्छन्ति तेषु दत्तं महत्फलम् । हृतस्वहृतदाराश्च ये विप्रा देशसंप्लवे ॥
व्रतिनो नियमस्थाश्च तत्समाप्तिमभीप्सवः । तपस्विनस्तपोनिष्ठास्तथा भैक्षचराश्च ये ॥
अर्थिनः किञ्चिदिच्छन्ति तेषु दत्तं महत्फलम् । जनययेव नितरां तादृशेषु ततस्त्यजेत् ॥
यत्किञ्चिदपि वा लब्धं तत्सद्यो वै विचक्षणः । संनिकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत्
भाजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम् । यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते ॥
दूरस्थं भोजयेन्मूढो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत् । तस्मान्नातिक्रमेद्दाने भोजने प्रातिदेशिकान्
संबन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा ।

भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून् सुचेतसः ॥

अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत् । यदि स्यादधिको विप्रो दूरे वृत्तादिभिर्युतः ॥

तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि संनिधिम् । स्वबन्धुदानकरणपक्षे तेषां दरिद्रता ॥
बहुप्रजादिकाक्षामकालः सद्गुणपूर्णता । दुष्प्रतिग्रहंशूद्रादिप्रतिग्रहतिरस्कृतिः ॥

विद्याभावेऽपि सन्ध्यादिसत्क्रियाकरणादिना ।

विद्यादत्तप्रीतिमत्ता च गर्वाभावः कृतज्ञता ॥

यदि स्थुरेते बन्धूनां श्राद्धेषु ग्रहणं भवेत् । यद्येते न गुणास्ते वै सद्गुणिन्यन्यजातिषु
लब्धे स एव संप्राह्याः न बन्धुरिति शासनम् ।

श्राद्धभिन्नेषु कार्येषु बान्धवा मनसो यदि ॥

स्वीकार्याः स्युरिति ग्राह्याः सम्मताश्चेन्न ते न तुः (?) ।

आत्मतुष्टिस्तु परमा दया चापि परा तथा ॥

बन्धुमात्रेषु विहिता सा हि धर्मस्सनातनः । न बान्धव पुरस्काराद्गर्विष्टं दुष्टचेष्टितम् ॥

दुष्प्रतिग्राहकं तीर्थशूद्रश्राद्धप्रतिग्रहम् । मत्तं व्रात्यं तथा जाड्यशालिनं कुत्सितं शठम् ॥

वेश्यापतिं च कितवं गायकं नटगोलकौ । कुनखं सज्जनमहादूषकं ब्रह्मनिन्दकम् ॥

पुरस्कुर्याद्दानमात्रे दूरतः श्राद्धकर्मसु । एतादृशं जनप्रीत्या कलत्रादिप्रपीडनात् ॥

पैतृकेषु प्रयुञ्जानः पितृणां मारको भवेत् । अपि स्वयं कालसूत्ररौरवाद्यालयो भवेत् ॥

दोषाभावे तु वक्ष्यामि निष्कृष्टार्थं परं त्वहम् । मातापितृषु यदत्तं भ्रातृषु स्वसुतासु च

जायात्मजेषु यदत्तं तन्नित्यं स्वर्गसंक्रमः । पितुः शतगुणं दानं सहस्रं मातुरुच्यते ॥

अनन्तं दुहितुर्दानं सोदरे दत्तमक्षयम् । भगिनीभागिनेयानां मातुलानां पितृष्वसुः ॥

दरिद्राणां च बन्धूनां दत्तं कोटिगुणं भवेत् ॥

पुरोहितप्रशंसा

पुरोहितेषु यदत्तं तदक्षय्यफलं लभेत् । आत्मनस्तु भवेत्पात्रं नान्यस्य स्यात्पुरोहितः ॥

सदा पुरोहितमतौ स्थेयं धर्मपरेण वै । पुरोहितो ह्यमुष्मै सः श्रेयस्कृत्तु सदा स्मृतः ॥

सन्ततं कोटिबन्धूनां मित्राणां तादृशं तथा । मातुलश्वशुरादीनां पित्रादीनां च किं पुनः

पुरोहितैकतुलितो श्रेयस्कामी न विद्यते । सद्यः पुरोहितत्यागात् तदसंमतिकृत्यतः ॥

नष्टप्रजाकलत्रादिसन्ततिः स्याच्छनैरयम् । सदा पुरोहितं तस्मात्सर्वकर्मसु चेतसा ॥
संप्रधार्यैव मतिमान् तानि कुर्यात्ततः परम् । पुरोहितमतिक्रम्य यत्कार्यं तदसंमतम् ॥
करोति तत्परां वृद्धिं लभते नैव केवलम् । पुरोहितमतेनैव कल्याणेषु विशेषतः ॥
बन्धूपूजादिकं सर्वबन्धाह्वानं यदा तदा । तद्वस्ताननतन्मन्त्रैः प्रकुर्यात्तत्समन्वितः ॥
तेन श्रेयो विशेषेण लभते संपदां श्रियम् । नान्दीमिमां च तस्मात्तु तन्मुखेन समाचरेत्

गुरुर्माता पिताचार्यः उपाध्यायश्च बान्धवः ।

सर्वं पुरोहितो ज्ञेयः पुत्रो मित्रं सुतस्सुहृत् ॥

महात्मना तेन विना न किमप्यस्ति देहिनः ।

गोप्यं गुह्यं रक्षणीयमपेक्ष्यं प्रार्थितं तथा ॥

सर्वकार्येषु मन्त्रोक्तौ शक्त्यभावे तथा परम् ।

तदुक्तमेव स्वप्रोक्तं प्रोक्तवान् भगवान् गुरुः ॥

तं विना नैव कुर्वीत सर्वकर्माणि सन्ततम् । तदुक्तीत्या कुर्वीत तदुक्तं नातिलंघयेत् ॥

तदुक्तलंघनकरः चण्डालत्वमवाप्नुयात् । तथाविधस्त्वेक एव त्रिशंकुर्लोकविश्रुतः ॥

नान्यः कश्चन विज्ञेयः गुरुद्विड्लोकनिन्दितः ।

तेन कर्मविपाकेन विश्वामित्रप्रपालितः ॥

अद्याप्यवाक्शिरा एव वर्ततेऽसौ विलक्षणः ।

कदाचित्तस्य विरहे श्राद्धेऽस्मिन् समुपस्थिते ॥

स्वस्यापि मन्त्रसामर्थ्यशून्ये प्रत्याब्दिके तदा ।

तिसृभिव्याहृति(ती)भिः स्यात् कर्म सर्वं विनाहुति (ती) ॥

तन्मात्रमन्नसंस्पर्शं पिण्डदानं च कृत्स्नशः । तन्मन्त्रैरेव कर्तव्यं अन्यथा तद्भवेन्न तु ॥

एतत्सामर्थ्यविकलः पितुः प्रत्याब्दिकं तु तत् ।

सर्वं व्याहृतिभिः कृत्वा मन्त्रविदुर्लभे ततः ॥

पुनः कुर्यान्मन्त्रविदः संभवे मन्त्रविच्च तम् ।

न चेत्पातित्यमाप्नोति सत्यमेतदुदाहृतम् ॥

सन्ध्या प्रत्याब्दिकाभ्यां तद्ब्राह्मण्यं लोकविश्रुतम् ।

येन केन प्रकारेण कृताभ्यां तत्र केवलम् ॥

अत्यन्तगुह्यं प्रथमं सर्वाङ्गीकृतमुत्तमम् । द्वितीयं तच्च सर्वत्र प्रकाश्यत्वेन सन्ततम् ॥
विप्रैकसाक्षिकं सर्वक्रियाविस्साध्यमेव तत् । अत्यन्तापदि च प्रोक्तं तन्मन्त्रैकक्रियापरम्
पित्रोरेव तथा ज्ञेयं पितृव्यस्यानुतस्य च । भ्रातुर्मातामहस्यापि तपस्वीनां तथा स्मृतम्

पित्रोः श्राद्धपरित्यागाच्चण्डालत्वमवाप्नुयात् ।

सद्य एव न सन्देहः तस्मात्कुर्यात्तु तद्यथा ॥

आपत्कलपे मन्त्रविदो राहित्ये केवलं तदा । व्याहृतीभिस्तत्करणं तदग्नौ करणं विना ॥
पिण्डदानं च तत्सर्वं कदाचित्संभवेत्सदा । न भवेदेव किं त्वेतत् सर्वदाऽपि समन्त्रतः ॥
कर्तव्यत्वेनोपदिष्टं ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । अतीतस्तत्संप्रवक्ष्यामि तद्विधानं समन्त्रकम् ॥

श्राद्धे प्रधानमन्त्राः

प्रधानमन्त्रा एते स्युः श्राद्धे प्रत्याब्दिके पराः ।

अग्नौ करणहोमस्य सोमायेति द्वयं परम् ॥

पृथिवीतेति मन्त्रोऽयं ज्ञेयमन्त्राभिमर्शने ।

अपां मेध्यादिकं मन्त्रजालं पिण्डविधौ स्मृतम् ॥

प्राधान्येनैव स्यात्कथितं सर्वसूत्रिभिः । एतत्सर्वात्मना त्यक्तुं शक्यते किल सर्वथा ॥
त्यक्तं चेन्मोहतः किञ्चिदेतेषु किल लघ्वणु । नष्टमेव भवेच्छ्राद्धं तस्मात्सर्वं समाचरेत्
श्राद्धकर्ता पूर्वदिनरात्रौ विप्रान्निमन्त्रयेत् ।

ब्राह्मणनिमन्त्रणम्

कृतभुक्तिक्रियानेव तत्पूर्वं न निमन्त्रयेत् । निमन्त्रणात्परं तेषां भुक्तिकर्म विशेषतः ॥

निन्दितं शास्त्रजालेन तस्मात्तन्न तथाचरेत् ।

ततः स्नातः परेद्यं च कृतसंध्याक्रियाञ्छुचीन् ॥

श्राद्धमद्येति विधिना स्वयमेव निमन्त्रयेत् । औपासनात्परं पूर्वं यथारुचि निमन्त्रणम्
सप्तानामपि पञ्चान्तमेकैकस्य निमन्त्रणम् । न सार्वत्रिकमेव स्यात् ब्राह्मणानां तु पैतृके ॥

ब्राह्मणसंख्या

विप्रत्रयं चैकैकस्य वरणं जुहुयात्ततः । भाव्यमेवेति निखिलैः परं नांगीकृतं च तत् ॥
किं त्वेकस्यैकैकमिति निश्चितं तु मनीषिभिः । सार्वसाधारणेनाथ सौलभ्येन सुनिश्चितम्
द्वौ द्वौ देवेऽपि च स्थाने त्येतच्चापि न सुन्दरम् । इत्येवमेतत्सर्वं वै निश्चित्यैव ततः पुनः
हिताय सर्वजगतां कृत्स्नस्यैवाविशेषतः । देवस्थानेऽप्येक एव पितृस्थानेऽपि केवलम् ॥
एक एवेत्यंगीचक्रः स विष्णुस्तु कृताकृतः । अग्नौ करणमन्येषां प्रत्यब्दे लौकिकानले ॥

अग्नौकरणम्

पित्रोरेवौपासने स्यात्पत्न्या मातामहस्य च । मातामहस्य तत्पत्न्याः सपत्नीमातुरेव य
पित्रोरपि तथा पत्न्याः श्राद्धमौपासनानले । पितृव्यस्य च तत्पत्न्याः ज्येष्ठभ्रातुस्तथैव च
प्रत्यब्दं श्राद्धमुद्दिष्टं लौकिकानाविति स्थितिः । पत्नीनाशादग्निनाशे कदाचिज्जायते यदि
पितुः श्राद्धाय यत्नेन तल्लाद्वात्पर्वमेव वै । दारक्रियां प्रकुर्वीत ज्येष्ठो यदि सुतस्तथा ॥
न तद्धिन्नास्तथा कुर्युः श्राद्धात्पूर्वं तु तादृशम् । श्राद्धानन्तरमेव स्यादन्येषां दारसंग्रहः ॥
वर्णी यद्यग्रजः सोऽयं पित्रोस्तु मरणात्परम् । प्रथमादाब्दिकात्पूर्वं विवहेदग्निहेतवे ॥
ज्येष्ठपुत्रो विधानेन वर्णी चेत्तन्मृते परम् । तस्मिन्नेवाद्यके चाब्दे विवाहाद्वहिहेतवे ॥

पित्रोस्तु मरणात्पश्चात् तस्मिन्नेवाब्दिके पुनः ।

विवाहो ज्येष्ठपुत्रस्य विहितो बहिहेतवे ॥

औपासनाग्नौ विधिवत् कृतं तच्छ्राद्धमेककम् ।

लौकिकाग्निं कृताच्छ्राद्धात्परं कोटिगुणाधिकम् ॥

यद्यौपासनवह्निः स दूरसंस्थो भवेत्तदा । प्रत्याब्दिके समायाते तदा स्याल्लौकोऽनिलः ॥
तदा कनिष्ठेऽग्निमिति संनिकृष्टेऽस्य पावके । औपासनाग्नौ तत्कुर्यादग्नौ करणमञ्जसा ॥

तेनैव कारयेद्वाऽपि विकल्पोऽयं समो मतः । दिनाष्टकात्पूर्वमेव श्राद्धार्थं पुनरेव वै ॥

स्थिताग्निरपि तं भूयः संदध्यादेव मन्त्रतः ।

असन्निहितभार्यश्चेत्तत्कार्याय तदा शुचिः ॥

संधाय तस्मिन् विधिना त्वग्रौ करणमाचरेत् । अग्न्यभावे पाणिहोम (?) सन्त्यत्र केचन तदाश्वलायनपरं याजुषाणां न तद्ववेत् । एषामपि विशेषेण ह्यग्निहोत्रे कदाचन ॥

होमकाले त्वनुगते ह्यन्येषामप्यसंभवे । पाणिहोमस्तु कर्तव्यो नात्र (?) कदाचन ॥

(.....) होमोऽपि चौखेयानां विधीयते । अजास्य होमः कथितः वैधानपरस्स तु

अप्सु होमस्तु नितरां काण्वानामेव चोदितः । यदि श्राद्धे होमकाले दैवादनुगतो यदि ॥

वह्निरौपासनो नूनं तदा संकल्पपूर्वकम् । सर्वप्रायश्चित्तहोमो व्याहृतीभिर्भवेत्तु वै ॥

अनाज्ञातत्रयं चापि इदं विष्णुश्च तत्परः । एतावतैव तत्कालतद्वह्नेरसिद्धिरुत्तमा ॥

भवत्येवात्र तत्सर्वं तस्मिन् पश्चात्समाचरेत् ॥

श्राद्धकर्तृधर्माः

कर्तृधर्माः पूर्वदिनप्रभृत्येव भवन्त्यमी । निमन्त्रिणप्रभृत्येव (?) भोक्तृधर्माः प्रचक्षते ॥

दानाध्ययनदेवेज्या जपहोमव्रतादिकान् । न कुर्याच्छ्राद्धदिवसे प्राग्विप्राणां विसर्जनात्

तस्मिन् दिने विप्रमुक्तेः पूर्वं कस्मै किमप्युत । न दद्यादेव तत्कार्यहेतवे चेत्समागतम्

वस्त्वपूर्वं तु गृहीयाद् यद्यद्ग्राह्यं तु तत्ताराम् ।

पूर्वस्मिन्नेव नितरां गृहीयात् दिवसेऽखिलम् ॥

मनस्वी शक्तिमान् दक्षो भक्तिमान् यः समाहितः ।

शुचिर्दक्षः प्रगल्भश्च बहुमित्रः सुपुत्रवान् ।

अतत्त्वज्ञो किञ्चनश्च बन्धुमित्रादिवर्जितः । स्वशक्त्यनुगुणात्सर्वसमीकरणमाचरेत् ॥

यदा तदा तद्दिने वा येन केनाप्युपायतः ॥

दरिद्रादेर्नियमाभावः

सर्वप्राणेन पित्रोस्तच्छ्राद्धमन्नेन यच्चरेत् ।

दरिद्रस्य न दोषोऽस्ति श्राद्धधर्मादिलोपतः ॥

रोहिणो ज्ञानिनस्तद्वदति बालस्य चैव हि । प्राशयित्वा श्राद्धकर्म पीत्वा वा तद्दिने ततः

न कुर्यादेव तच्छ्राद्धं न ताम्बूलं च खादयेत् ।

औषधप्राशने दोषो नास्त्येवेत्यखिला जगुः ॥

श्राद्धर्मरहस्यज्ञा प्राणनिर्गमनादिषु । निमित्तेषु प्रसक्ता नु धावनादिषु दैवतः ॥

राजचोरादिशार्दूलश्वशृगालमहापदि । पिबन्नपि जलं तूष्णीं सकृच्छ्राद्धं समाचरेत् ॥

अतिव्याध्यतिदाहादौ तापविस्मरणादिषु । अवशाज्जलपानेन श्राद्धभ्रे(भ्रं)षो न जायते

वर्णिनो गृहिणो वापि वनिनो वा विशेषतः । पित्रोर्मृताहकं नाम श्राद्धं यत्तत्समन्त्रकम्

सपिण्डकं सहोमं च सत्राह्वणभुजिक्रियम् । कार्यमेव प्रशंसन्ति न त्याज्यं तत्कथञ्चन ॥

त्यक्तमात्रेण पतितः स्यादेवात्र न संशयः ।

आदौ श्राद्धस्य संकल्पः विप्राणां स्नानतः परम् ॥

स्वस्य स्नानं तु विहितं न तत्पूर्वं कदाचन । स्नातैर्विप्रैः समेतो वै मध्याह्ने गृहमाविशेत्

भोजनाचमनकालः

पादप्रक्षालनात्पश्चात् तेषां स्वस्य च तत्परम् ।

आचामो विहितः स्वस्य तेषामपि विशेषतः ॥

कर्तुराचमनात्पूर्वं भोक्तुराचमनं यदि । शुनो मूत्रसमं तोयं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

पादप्रक्षालनात्पश्चात् यजमानः स्वयं यतन् ।

पाकस्सर्वस्समीचीनो जातः किमिति पाचकीम् ॥

पत्नीं पृष्ट्वा कोपहीनः सुमुखेनैव तत्परम् ।

तथा सिद्ध इति प्रोक्ते स्वयं दृष्ट्वा सभां कृताम् ॥

शक्त्या द्विजानां महतां प्रणम्यादौ विधानतः ।

धृत्वापवित्रं शक्त्या तां दक्षिणां शक्तिं कल्पिताम् ॥

(.....) । (.....) परिक्रम्य प्रणम्य च तथा पुनः ॥

न प्रथेत्येतेन वाथ नमस्कारो विधीयते । तदन्ते दक्षिणां तां च तत्पुरो निक्षिपेत्ततः ॥

अस्मात्पितुः प्रतिश्राद्धं सर्वे शृणुत मद्वचः ।

अधिकाराख्यसंपत्सा कर्तुमस्त्विति मद्गृ(हे)हम् ॥

(.....) । (.....) जोत्तमान् ॥

तां दक्षिणां भूतलेऽत्र निक्षिप्तां तेऽपि मन्त्रतः ।

स्वीकृत्य ह्यधिकाराख्यसंपदस्त्विति ते द्विजाः ॥

वदेयुरेव निखिलास्तत्परं तदनुज्ञया । प्राणानायम्य विधिना सुखासीनः पवित्रधृत् ॥

देशं कालं च संकीर्त्य यथावद्वत्सरादिभिः । संयुक्तमेव प्रवदेदन्यथा बाधकं भवेत् ॥

प्रातिसंवत्सरिकाख्याश्राद्धमस्य पितुर्मम । अन्नेन हविषा मन्त्रैः पार्वणाख्यविधानतः

सदैवमभ्यनुज्ञानात् करिष्येऽद्येति तत्परम् ।

विप्राणां वरणं कुर्यात् तत्तत्स्थाने यथाक्रमम् ॥

तिथिभेदोच्चारणेन मासे पक्षे विवत्सके ।

ऋतावप्ययने वाथ पुनः श्राद्धं भवेद्ध्रुवम् ॥

एकस्मिन्नेव दिवसे पित्रोः श्राद्धं उपस्थिते ।

मृत्तिक्रमाच्छ्राद्धकार्यं कर्तव्यं नान्यथा चरेत् ॥

पितुर्मृततिथौ माता मृता यदि तदा पितुः ।

श्राद्धं कृत्वा ततो मातुः श्राद्धं कुर्यादिति क्रमः ॥

मातुर्मृततिथौ तातः मृतो यदि तदा किल । पितुः श्राद्धं प्रथमतः कर्तव्यमिति केचन

मृत्तिक्रमेणेति केचित् न पितुः प्रथमं त्विति । अत्र शास्त्रीयवाक्यानां बहूनां भिन्नभिन्नतः

यथेच्छया विकल्पः स्यात् तत्राचारः परो मतः । एकस्मिन्नेव दिवसे तिथिद्वयसमागमे ॥

पूर्वानुष्ठेयकृत्यं यत् परतश्चेत्कृतं यदि । तद्व्यर्थमेव प्रभवेदतस्तत्पुनराचरेत् ॥

भर्तारमनुगच्छन्त्या मातुयदि तिथिः पृथक् ।

तत्तत्तिथ्योः स्तुते श्राद्धे कर्तव्यत्वेन चोदिते ॥

अयं हि प्रथमः कल्पः पितुः श्राद्धेन तेन वै । सहैव करणं नूनं केषांचित्संमतं तदु ॥

दक्षश्चेत्पृथगेवासौ तयोः श्राद्धं तदा तदा । स्वकाल एव कुर्याद्वै सह पित्रा तु दुर्बलः

पतिं समनुगच्छन्त्याः सह भर्त्र्यैव तत्परम् ।

अपि भिन्नतिथौ तस्याः मृतायाः करणं परम् ॥

श्राद्धस्य मुख्यकल्पो न किं त्वयं गौणसंज्ञिकः ।

एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ ॥

एकस्मिन्नेव दिवसे तयोः श्राद्धं सहैव वै । प्रतिसंवत्सरं कुर्यात् अनुमृत्या तथा भवेत्

अनुमृत्या भिन्नतिथौ पृथग्वेति सहैव वा ।

संशयः स्यात् तयोः श्राद्धविषये नेति चेन्नतु ॥

तयोः सहैव करणे तस्मिन् श्राद्धे तथाविधे । संकल्पादिषु सर्वत्र सम्यग् विवचनं भवेत्

उभयोः श्राद्धयोरत्र वैश्वदेविक एककः । वर्गद्वयस्य द्वौ विप्रौ पितुर्मातुश्च कीर्तितौ ॥

पुरुषवार्द्रसंज्ञानां विश्वेषां नाकिनां मुदा ।

स्थाने त्वाहवनीयार्थे क्षणं धृत्वा द्विजोत्तमाः ॥

कर्तव्यो वै भवद्भिस्तु प्रसाद इति तान् कुशैः ।

साक्षतैर्गुण्याद् भक्त्या चतुर्णां वरणे तथा ॥

वरणं घटते सम्यक् एकस्यावरणे कथम् । तादृशं वचनं चेति प्रश्ने ह्येतत्तदुष्करम् ॥

एकस्मिन्नपि पाके (.....) हि वर्णनम् । तथैवात्रेति विज्ञेयं शास्त्रज्ञैर्ब्रह्मादिभिः

एवमेव भवेत्तत्र पितृणामपि कर्मणि । वरणं शास्त्रविहितं विशेषोऽयं परः स्मृतः ॥

शर्मणामपि गोत्राणां रूपाणामपि केवलम् । वसुरुद्रादि (?) कानां चेति स्मृतोऽधिकम्

शिष्टः समः प्रकथितः (...) ॥

पादप्रक्षालनमण्डलार्चनम्

अनन्तरं श्राद्धकर्ता वदेदेवं द्विजान् प्रति । स्वागतं पितृभिर्देवैरिति प्रश्ने कृते ततः ॥

सुस्वागतमिति ब्रूयुः ब्राह्मणास्तेऽपि तस्य वै ।

यजमानस्ततस्तेषां वाक्यं श्रुत्वा त्वरान्वितः ॥

अंकणे मण्डले कुर्यात् पादप्रक्षालनाय वै । चतुरश्रं तु देवानां पितृणां वर्तुलं तथा ॥

गोमयेनैव विधिना प्रातः संपादितेन वै । देवस्थानस्यैतदासनमित्येवं कुशाद्वयम् ॥

निक्षिपेत्तस्य निकटे उदग्भागेऽथवा पुनः । पुरोभागेऽपि वा पश्चादर्चत प्रार्चतेति वै ॥

मन्त्रेणानेन भूयश्च इमे गन्धा इति स्म वै । ज्ञन्दनं निक्षिपेत्तस्मिन् मण्डले स्वकरेण वै ॥

पश्चादमी अक्षताश्च वदेदेवममी कुशाः । अष्टाध्वैरर्चनं पूर्णं अस्त्वित्येव जलं क्षिपेत् ॥

सदर्भं भूतले पश्चात् प्राचीनावीतिनार्चयेत् । पितृणां मण्डलं तद्वत्तत्रामी शब्दतोऽर्चनम्

गन्धस्य कथितं सद्भिः इमे शब्देन चाक्षताः ।

अमीशब्देन च कुशान् अष्टाध्वैरर्चनं च तत् ॥

समानमेव स्थलयोरिति शास्त्रविदो विदुः । इमे शब्दममी शब्दं एवं येन वदन्ति ते ॥

पैतृकस्यास्य हन्तारो भवेयुस्तत्क्षणेन वै । एतान्यष्टाध्व्यवस्तूनि तान्यत्र प्रक्षिपेत्तदा ॥

पूजाकाले प्रयत्नेन मत्पितृणां तु तैर्भवेत् । तानि द्रव्याण्यमून्येव कथितानि मनीषिभिः

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलास्तथा ।

यवाः सिद्धार्थकाश्चैव ह्यध्वर्योऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः ॥

क्रमेणैतानि वस्तूनि प्राचीदिक्क्रमतः क्षिपेत् ।

अथवा मण्डले यत्र कुत्र वा निक्षिपेत्स्वयम् ॥

तेषां निक्षेपणं येन केनचिद्वा कृतं यदि । कृत्स्नश्राद्धफलं तेन गृहीतं प्रभवेद्भुवम् ॥

अष्टाध्व्यद्रव्यसंपूर्णकरणं पैतृकस्य तत् । दोहनं कथितं सद्भिस्तस्मात्तन्नान्यवर्त्मना ॥

अष्टानामपि वस्तूनां यदि संपादनाक्षमः । भवेद्यं तदातीव तान् दर्भान् वा तिलाक्षतैः

तूष्णीं हस्तेन संगृह्य पयसा तत्र विन्यसेत् । अष्टाध्वैरथ संपूर्णार्चनमस्त्विति वा सकृत् ॥

न चेत्तूष्णीं तथा ब्रूयात्तत्कृत्स्नस्य फलं लभेत् ।

अनुक्त्वैवं वचोवापि यदि तूष्णीमशेषकम् ॥

सर्वमन्त्रद्रव्यजाल कृतं तद्विफलं भवेत् । मण्डलात्पश्चिमे भागे ब्राह्मणे स्वागते कृते ॥
तत्रैव विसृजेत्पाद्यं क्षालयेन्मण्डलोपरि । पादप्रक्षालनं श्राद्धे वरं स्याद्गुल्फयोरधः ॥
पितृणां नरकं घोरं रोमसंसक्तवारिणा । पितृणामपि देवानां पादप्रक्षालने तदा ॥
स्वागतं किं भवद्विर्वै ते (.....) तः । सुस्वागतमिति प्रोक्ते ब्राह्मणेन ततः पुनः ॥
पादप्रक्षालनं कुर्यादन्यथा व्यर्थमेति तत् । काले तस्मिन् स्वागतेति पादौ दर्भद्वयेन वा ॥
संगृह्य स्वागतमिति प्रश्नं कुर्यादतन्द्रितः । यदन्यथा (...) पितृ (...) किनामपि ॥
आह्वानं तत्क्षणेनैव श्राद्धं नष्टं भवेद्ब्रुवम् । तच्च दर्भद्वयं नोचेत्तत्पादोपरि हस्ततः ॥

स्वस्यैव संस्पर्शयित्वा सोमदिश्यां विनिक्षिपेत् ।

पितृणां दक्षिणदिशि कृत्वैवं पादयोः परम् ॥

क्षालना (.....) च्छन्नोदेवीऋचं जपेत् ।

यां कामपि तथा भूयः शिवेनेति हिरण्यकाः ॥

यासां राजेति वा नूनं तदापो वेति वा जपेत् ।

यदि मन्त्रानाधिकारिपुराणोक्तमनुं तु वा ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

इमं वा पुनरन्यान् वा श्लोकान् स्मृतिषु संस्थितान् ।

वदेद्वा मन्त्ररहितो व्याहृतीर्वा विशेषतः ॥

त इमे सर्वकालेषु श्राद्धादौ श्राद्धमध्यमे ।

श्राद्धान्तेऽपि विशेषेण वक्तव्या स्युः पुनः पुनः ॥

मन्त्रज्ञस्य तु नायं स्याद्विधिको (ज्ञो ?) ऽपि महात्मनः ।

तानत्युदाहरिऽयामि मन्त्रान् कांश्चित्पुराणगान् ॥

समस्तसंपत्समवाप्तिहेतवः समुत्थितापत्कुलधूमकेतवः ।

अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

आपदघनध्वान्तसहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः ॥

समस्ततीर्थांश्चुपवित्रमूर्तयो रक्षन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः ॥

आधिव्याधिहरं नृणां मृत्युदारिद्र्यनाशनम् । श्रीपुष्टिकीर्तितं वन्दे विप्रश्रीपादपङ्कजम् ॥
विप्रौघदर्शनात्सद्यः क्षीयन्ते पापराशयः । वन्दनान्मङ्गलावाप्तिरर्चनादच्युतं पदम् ॥
पुनर्नानाविधापाय परिहाराय सांप्रतम् । पादप्रक्षालने तेषां कर्तव्ये समुपस्थिते ॥
तदा कृताज्यसंसर्गात्तत्पादस्याखिलान्यपि । प्रनष्टानि भवन्त्येव वैगुण्यमपि (सम्भवेत्)

एतस्मान् मन्त्रत्रितयाच्छुक्रादीनां शिवात्मनाम् ।

पादप्रक्षालनं तेषां पितृणां त्रिदिवौकसाम् ॥

कृत्वा स्वयं तत्स्थलस्य पूर्वभागेऽश्रुशोधनम् । पश्चिमाभिमुखेनैव कुर्यादाचमनं सदा ॥
(...) मनायाथ जलं दत्वा स्वयं शुचि । ब्राह्मणानां स्थलं तत्तु (.....) ॥
प्रोक्षयेद्विधिवद्भक्त्या शुद्ध्यर्थं भूर्भुवादिभिः । अपेतवीतमनुतः यदि मन्त्राक्षमस्तदा ॥

पुराणोक्तं (.....) विधानतः ।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

मन्त्रेणानेन वा सम्यक् प्रोक्षणं तत्स्थले चरेत् ।

स्थलस्य प्रोक्षणे जाते ह्यासनान्प्रान्तरे क्षिपेत् ॥

ब्राह्मणानासनेष्वेव सम्यक् तानुपवेशयेत् । पुनः पवित्रपाणिः सन् व्याहृतीभिर्विधानतः

प्रथमान्तानेव भक्त्या संबुध्या विष्टरान् क्षिपेत् ।

प्रारम्भेषु च ये दर्भाः पादाशौचे विसर्जयेत् ॥

पादा शौचान्ते च ये दर्भा विष्टरान्ते विसर्जयेत् ।

विष्टरान्तेषु ये दर्भा विकिरान्ते विसर्जयेत् ॥

विकिरान्ते च ये दर्भाः विरामान्ते विसर्जयेत् ।

विरामान्ते च ये दर्भाः आसीमान्ते विसर्जयेत् ॥

आसीमान्ते च ये दर्भाः तर्पणान्ते विसर्जयेत् ॥

दर्भाहरणप्रकारः

दर्भसंग्रहणं कुर्यादादौ षोडैव तेन वै । पृथक् पृथक् कर्ममात्रे तस्मिन् सर्वत्र पेशलः ॥

दर्भसंग्रहणं कुर्यात् श्रोत्रियः स्वयमेव हि । कालेऽस्मिन् संगवे शुद्धो नाशुद्धस्तु कदाचन

कदाचित्पुत्रशिष्याभ्यां मित्राप्ताभ्यां च सन्ततम् ।

पुरोहितेन चानीताः स्वानि ता इति कीर्तिताः ॥

ऋत्विक्पुरोहिताभ्यां ते यदानीताः समित्कुशाः ।

निश्रे निःश्रेयसकलाः प्रोक्ताः स्वानीतेभ्योऽधिकाः पुनः ॥

कुतस्तथेति चेत्ते वै सदा स्वस्य सुचेतसः । हितकामा सदाशीसु संप्रार्थितमनोरथाः ॥

तद्दर्भलवने काले मामकोऽयं गृहे सुखे । भवत्येवेतीष्टदेवस्मृति सत्प्रार्थनापरः ॥

तस्मात्तदानीतदर्भाः सर्वकर्मसु देहिनाम् ।

प्रशस्ता एव नितरां स्वानीतास्तत्समा न तु ॥

तद्विष्टरप्रदानं त बह्वृचानां न संभवेत् । प्रदानानन्तरं तस्य विष्टरस्य तु याजुषाः ॥

सम्बुद्ध्यन्तेनासनस्य नं कुर्वन्ति वाग्यताः । षष्ठ्यन्तेनैव सर्वत्र देवानां त्रिदिवौकसाम्

रूपनाम्नां च निर्देशः षष्ठ्यन्ते संभवेत्तदा । चतुर्थ्यन्ते तथैव स्यात् प्रथमान्तेन विष्टरे ॥

रूपनिर्देशतो गोत्रप्रोक्ति तश्चेत्तु विष्टरे । समागतास्ते तिष्ठन्तः उपवेशनचेतसः ॥

पाददुःखेन नितरां तावन्तं कालदीर्घकम् । न सहन्ते ततः शीघ्रं रूपगोत्रादिकं न तु ॥

तस्मिन् कर्मणि तद्देयं एवमाह पितामहः । सर्वत्र पैतृके नित्यं कार्यमात्रे श्रुतीरितम् ॥

प्राचीनावीतमेव स्यात् दैविके तूपवीतकम् । आसनानन्तरं त्वत्र क्षणश्च क्रियतामिति ॥

ओं तथेति च तत्प्रोक्तेः पश्चादेव पुनस्तथा ।

प्राप्नुवन्तु भवन्तोति वै चेकवाक्यं वदेदयम् ॥

श्राद्धकर्ताथ भुक्ता(क्त्वा) स्य वदेत्प्रत्युत्तरं पुनः ।

प्राप्नुमश्चेति तत्पश्चात् दर्भानास्तीर्य भूतले ॥

विप्राराद्धौपासनस्योद्गभागे प्रोक्षितस्थले । पात्रद्वयं समासाद्य दर्भैराच्छाद्य तत्परम् ॥

समुद्घृत्य विधानेन प्रोक्ष्याक्षतसुपूजिते । शंनोदेवीतिमन्त्रेण कुर्यात्तज्जलपूरितम् ॥

यवोऽसीति च मन्त्रेण यवास्तत्र विनिक्षिपेत् । अर्चत प्रार्चतेत्येव चन्दनं तत्र निक्षिपेत्
तुलसीदर्भपत्राणि तत्र निक्षिप्य तत्परम् । ओं स्वाहानमः (?) प्रोक्ता तत्परमेव वै ॥
विश्वेभ्यो देवेभ्यो जुष्टं गृह्णामि मन्त्रतः । देवपात्रे संपन्नेति वदेत् कर्ता द्विजाग्रतः ॥
सुसंपन्नेति तत्प्रोक्ते स्वाहाध्यायविति तत्परम् । द्विवारमुच्चरेत्तस्य स्वध्यादित्युत्तरं ततः

आवाहनम्

भोक्ता वदेदयं कर्ता विश्वान् देवान् भवत्स्वहम् ।

आवाहयिष्येत्युक्त्वैवं आवाहय वचः परम् ॥

विप्र आवाहयेद्विश्वे(श्वे?)देवान् तस्मिन् यवैः कुशैः ।

विश्वेदेवासमन्त्रेण विश्वेदेवासनेन च ॥

स प्राञ्जलिस्ततो भूत्वा मन्त्रमेतदुदीरयेत् । आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः

ये वाऽत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ।

जप्त्वैवं तमुपस्थाय सावधानोऽस्मि वाक्यतः ॥

परं तत्पुरतः सम्यगुपविश्य स्वयं ततः । हस्तोदकं तत्कूर्चेन प्रदद्याद्विभिनैव वै ॥

प्रोक्षणात्परतो वापि तन्मध्ये वाऽद्य वा स्वयम् ।

यजमानः प्रार्थयेच्च ब्राह्मणान् तान् पुरःस्थितान् ॥

श्राद्धार्थं ये मया संपादिता भक्त्या हि देशतः ।

कालतस्ते पदार्था वै श्राद्धयोग्या भवन्त्विति ॥

भवन्तोऽद्य प्रब्रुवन्तु तानेवं प्रार्थये ततः । श्राद्धयोग्या भवन्त्वेवमुक्ते तैर्वचने ततः ॥

श्राद्धकाले गयां विश्वान् देवान् देवं जनार्दनम् ।

वस्वादीन् तान् पितॄन् ध्यात्वा ततः श्राद्धं प्रवर्तये ॥

मन्त्रमेनं(तत्)समुच्चार्य तिष्ठेत्तत्पुरतो ह्ययम् । प्रवर्तयेति तैरुक्तः कर्म तच्च प्रवर्तयेत् ॥

अर्घ्यदानम्

या दिव्या इति मन्त्रेण विश्वेदेवा इदं शिवम् ।
 वो अर्घ्यमिति लौकिक्या वाचाऽर्घ्यं समुपाहरेत् ॥
 अस्त्वर्घ्यं इति तेनोक्तो हस्ते शुद्धोदकं पुनः ।
 दत्त्वा भक्त्याऽर्चत प्रार्चतेति पश्चाच्छिवाक्षतैः ॥

अर्चयित्वाऽथ गन्धांश्च व्याहृतीभिरथाऽक्षतान् । धूपदीपौ चोपवीतद्वयं वस्त्रद्वयं पुनः ॥
 कुशद्वयं भूषणानि पात्र शक्त्या सुचेतसा । प्रदत्तमिति सुस्थेन भावयेदेव सन्ततम् ॥
 शक्त्या चेदेयमेव स्यात् शक्त्यभावे तु भावना ।
 सर्वत्र व्याहृतिर्ज्ञेया दानमात्रेण सर्वतः ॥

संपूर्णमर्चनं चेति वाक्यमुक्त्वा ततः परम् । संकल्पसिद्धिरस्त्वेवं भवन्तः प्रब्रुवन्त्विति ॥
 तस्योत्तरं तथैव स्यादस्तु संकल्पसिद्धिरुत्तमा । यथाविध्यर्चितं चेति वाक्यं प्रत्युत्तरं ततः
 अस्त्वित्येव च संप्रोक्तं ततो भवदनुज्ञया । पित्र्येऽर्चनं करिष्येति समनुज्ञाप्य तं ततः ॥
 कुरुष्वेति तथाऽऽज्ञातः पितृणामर्चनं चरेत् । पूर्ववन्निखिलं चात्र कथितं शास्त्रवेदिभिः ॥

परं त्वियान् विशेषोऽत्र कथितः शास्त्रवर्त्मना ।

अग्नेर्दक्षिणतो वापि द्विजानां पुरतोऽपि वा ॥

पात्रासादनकर्म स्यात् त्रीणि पात्राणि चात्र वै ।

स श्राद्धार्थं (?) प्रयोज्यानि पवित्रेषु कृतेषु हि ॥

उपरिष्ठादधस्ताच्च प्रोक्ष्योद्घृत्य च पूर्ववत् । तिलान् विकीर्य तूष्णीकं तेषु पात्रेषु तत्परम्
 पूर्ववज्जलमापूर्य तिलोऽसीति च मन्त्रतः । पितरं नामगोत्राभ्यां समुच्चार्य ततः पुनः ॥

इमान् लोकान् प्रीणया हि नः । स्वधा नम इत्येव तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत् ।

तत्पात्रयोः शिष्टयोश्च पूर्ववत्तेन तांस्तरान् ॥

मन्त्रेण विन्यसेदेव तद्दूहेनैव वाक्यतः । भृंगराजसमुत्थानि पत्राण्यत्र विशेषतः ॥
 दर्भपत्रैः पूरयेच्च स्वधा नम इतिस्म च । प्रतिपात्रजपः कार्यः पित्रे ते जुष्टमित्यथ ॥

गृहामीति वदेत्पश्चाद्द्वयोरप्येवमुच्यते । तदूहेनैव विधिना दर्भैस्तं शोधनं भवेत् ॥
 पितृपात्राणि संपन्नानित्येवं प्रवदेदपि । सुसंपन्नानीति पश्चात्तदुक्तोऽयं स्वयं पुनः ॥
 स्वधाऽर्घ्यं इति चोक्त्वाथ त्रिवारं तदनन्तरम् । स्वर्घ्या इत्युत्तरे जाते तदावाहनमाचरेत्
 उशन्तस्त्वेति मन्त्रेण ह्यायन्तु न ऋचा तथा ।

सावधाना भवन्तु त इत्युक्ते तदनन्तरम् ॥

समानमन्यन्निखिलं पूर्ववत्कथितं तु वै । मण्डलानामर्चनं च तैरुक्तस्तु समाचरेत् ॥
 पूर्ववन्मण्डलस्यापि करणं त्वत्र चोदितम् । पात्राणि मण्डलेष्वेषु प्रक्षिपेत्कानि तानि वै
 यदि पात्रं पानसं चेत्पितृणाममृतं भवेत् । पालाशं पय इत्युक्तं यद्यौदुम्बरनिर्मितम् ॥
 गुडेन तुलितं तत्स्यात् पौन्नागं दाधिकं भवेत् ।

रम्भाऽऽज्येन समाः प्रोक्ताः पनसस्तूतमोत्तमः ॥

शालाटुफलपत्रैश्च छायाकाष्ठमृदादिभिः । अत्यन्तपल्लभाशस्ता निरन्तरसुवृप्तिदा ॥
 वस्तुभिः सकलैर्दिव्यैर्गोधूमतिलखड्गकैः । मधुमाषमहाद्रव्यैः पनसोऽयं विशिष्यते ॥
 सर्वथा पनसद्रव्यदुर्लभे तु यदा भवेत् । यं कंचन पदार्थं वा पनसं भावयेत्तदा ॥
 भावयित्वा वदेच्चापि पनसोऽयं प्रकल्पितः । मयाद्या लभमानेन पदार्थोऽयमिति स्म वै
 तावता पितरस्सर्वे नित्यवृत्ताः स्युरेव ते ॥

स्वधाकारः

अग्नौ करणशिष्टान्नमादायाथाज्यमेव च । हस्तोदकं स्थानविप्रादीनां तेषां यथाविधि
 संप्रदाय तदाज्यं वै तेषु पात्रेषु तत्क्रमात् । अभिधार्यानन्नमादाय स्वधेयमिति निक्षिपेत्
 तत्पुनस्त्वभिधार्याथ दत्त्वा हस्तोदकं पुनः । मेक्षणं प्रहरेदग्नौ तूष्णीमेव समन्त्रतः ॥

यद्येको ब्राह्मणश्चेत्तु त्रयाणामपि केवलम् ।

तस्मिन्नेवाखिला धर्माः प्रयोज्या इति वै मनुः ॥

एवमेव पुनः पात्रे दैविके केवलाऽऽज्यतः ।

अभिधारणमेवस्यात् तथा सोदकमेव च ॥

यथाभौ करणं प्रोक्तं स्वधेयमिति मन्त्रतः । तच्छिष्टदानं कथितं तत्पात्रे तेन कर्मणा ॥
 श्राद्धकर्मण्येतदेवं प्रधानं स्यात्तथा पुनः । तच्छिष्टं पिण्डकार्याय प्रधानं स्यादतो यदि
 तन्नष्टं चेत्तदा श्राद्धं नष्टमेव भवेद्ध्युवम् । पुनः श्राद्धं च विहितं परेऽहि विधिनैव हि
 अग्नौ करणलोपे वा स्वधेयमिति यत्पुनः । हविःशेषप्रधानं तत् तस्य लोपेऽपि चेद्यथा
 तच्छिष्टपिण्डसंयोगलोपे वा श्राद्धनामकम् । कर्मतन्नाशमायाति तस्मादेतत् त्रयस्य च
 यथैव स्याच्च संपूर्तिस्तथा कुर्यात्तु पैतृकम् । पत्नीहस्तसमानीत भक्त्येनैव विचक्षणः ॥

अग्नौ करणकर्माख्यं कुर्यात्कर्म विधानतः ॥

स्तुषापाकः

स्तुषाहस्तैकरचितः पाकोऽमृतसमो मतः । स्वेवा स्तुषा कर्तुं स्तुषा तुलिते पाककर्मणि ॥
 यद्येते देवयोगेन तत्कार्ये शक्तिशून्यके । तत्पाकयोग्यकार्येषु स्यातां भक्ति समन्विते
 शक्ते ते यदि तत्कर्मकरणे जामितापरे । स्यातां तज्जन्म वैयर्थ्यं श्वगर्दभसमं भवेत् ॥
 तस्मात्प्रीतः श्वशुरयोः श्राद्धे यत्नेन भक्तितः । यथाप्राणं पाककर्मनिरताः स्युः पतिव्रताः
 श्वशुरश्राद्धकार्येषु पाकप्राधान्यकेषु वै । या श्रमं कुरुते भक्त्या साऽग्निष्टोमफलं लभेत् ॥

या स्वस्थैव वृथा गर्वात् तत्पाकविमुखा भवेत् ।

भ्रूणहत्यामवाप्नोति प्रतिजन्मनि दुर्भगा ॥

वन्ध्या दरिद्राऽऽथवा क्रूररूपिणी च प्रजायते ।

पाकाशक्येऽपि वा तूष्णीं स्नात्वा वा नियता शुचिः ॥

परिवेषणमात्रं वा कुर्यादित्येव सा श्रुतिः । स्तुषाहस्तैकपूतं तं पूतं पुत्रकरणे च ॥
 मन्त्रप्रोक्षणपूतं च तदग्नौ करणेन च । अतिपूतमतिश्लाघ्यं स्वधेयमिति मन्त्रतः ॥
 निक्षेपणेन च पुनः पूतं तत्प्रोक्षणेन च । अभिधारणतोऽतीव पूतं गायत्रिया ततः ॥
 प्रदानकालतद्गायत्रिया पूतं पुनस्तथा । परिषेचनपूतं च यजमानस्य तत्परम् ॥
 तदन्नममृतं ज्ञेयं दशपूतं तदा तदा । मन्त्रितं कुशपूतं च यजमानस्य हस्ततः ॥
 तदन्नं पितृणां वृषिहेतवे वै प्रकल्पते । दशक्रियापूतमिदं श्राद्धं कर्म न चेतरेत् ॥
 एतद्दशक्रियालोपे तन्न श्राद्धं प्रचक्षते । स्वधेयमिति निक्षिप्ते त्वग्नौ करणशिष्टके ॥

परिवेषणक्रमः

परिवेषणमेव स्यान्न तदन्यत्र तच्चरेत् । अन्नमादौ ततः प्रोक्तं पायसं तदनन्तरम् ॥
 भक्ष्याणि च फलान्येवं शर्करामधुमाक्षिकम् ।
 शाकानि सार्षपाख्यानि शाकानि तदनन्तरम् ॥
 पश्चाद्वनशाकानि घृतस्नेहैकजान्यपि । अपक्वरचितान्येवं रसायनमुखान्यपि ॥
 नानाविधानि चित्राणि लवणं न न एव च । घृतं दधि जलं पश्चाच्चरमे सूप ईरितः ॥
 परिवेषणतः पश्चात् सूपस्य न किमप्युत । गायत्रीप्रोक्षणात्पश्चात् भक्ष्याणां पातनात्परम्
 दर्भानुपरि संस्थाप्य तस्य शुद्ध्यर्थमेव वै ॥

अन्नसूक्तपठनम्

अन्नसूक्ताख्यमन्त्राणां पठनं सांप्रतं शिवम् ।
 करिष्ये इति संकल्प्य नमो ब्रह्मण आदितः ॥
 राक्षोघ्नादिमहामन्त्रान् पावनांश्चापि वैष्णवान् । प्रसरेदत्र विधिना ब्राह्मणैर्बहुभिः सह
 अहमस्मीति सूक्तं तदन्नाख्यं पाठनाच्छिवम् ।
 पितृप्रीतिकरं श्रीमद्राक्षोघ्नं तज्जपेच्छुचि ॥
 सह वा इति तद्वाक्यं राक्षोघ्नं कथितं बुधैः ।
 किं स्विदासीदथैव स्यादाब्रह्मन् श्रीप्रदायकम् ॥
 पठनीयं विशेषेण यजमानश्रिये परम् । सामाराधनकल्पेन पृथग्दानं निगद्यते ॥
 पृथक् च प्रोक्षणं कार्यं पृथक् च परिषेचनम् । यजमानः स्वयं कृत्वा तदन्नस्य ततः परम्
 प्रदानं कार्यमेव स्यात् सर्वं तेनैव मन्त्रतः । पृथिवी तेन विधिना भक्तमादौ स्वहस्ततः
 तद्वस्तस्य स्पर्शयित्वा भक्ष्याणां तदनन्तरम् ।
 फलानामपि शाकानां सर्वेषां च यथाक्रमम् ॥
 घृतस्य परमान्नस्य जलपात्रस्य चैव हि । स्पर्शयित्वैव तत्पश्चाद्देवान् संबुध्य तत्परम् ॥

एतद्वो हव्यमित्युक्त्वा गयेयं भूरिति स्म च ।

साक्षाद्गदाधरा एते ब्राह्मणाश्चेति भावनाम् ॥

कृत्वा तुष्टेर्दास्यमानं दत्तं चाक्षयतुष्टये । यथाभागं स्वाहा हव्यं तत्सन्न म मेति वै ॥

द्विर्वदन् साक्षतान् दर्भान् संगृह्य जलपूरितान् ।

जलप्राधान्यतो भूमावुदकपाश्वे विनिक्षिपेत् ॥

गयायां रुद्रपादादिदत्तमस्त्विति भक्तिः । ब्रुवन्तु च भवन्तोऽद्य गयायां दत्तमस्त्विति

वाक्यद्वये च संजाते ये देवा इति वै मनुम् । प्रजपेत्तु विशेषेण आगच्छन्त्विति तत्पुनः

पितृस्थाने तथा सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत् । विशेषोऽत्र पुनस्सोऽयं स्वधा विष्णो ततः पुनः

कव्यं रक्षेति तत्प्रोक्त्वा पितृसंबोधनं परम् । एतद्वः कव्यमित्येव देवताः पितरोऽत्र हि

इदमन्नं कव्यमेव ब्राह्मणो हवनीयके । दत्तं च दास्यमानं चातृप्तेस्तत्सर्वमित्यपि ॥

गयेयंभूरिति समं अन्नं ब्रह्माहमित्यथ । भोक्ता ब्रह्मेति वै ध्यात्वा रजतं पात्रमित्यपि ॥

वटच्छायेयमित्येव भावनापूर्वकेण वै । पितृभ्यो नामगोत्रादियुक्तेभ्य इति पूर्ववत् ॥

उक्त्वाखिलं वाक्यजालमिदमन्नं ततः पुनः । साक्षादमृतरूपं तदातृप्तेरिति तत्परम् ॥

अक्षय्यतृप्तये चेति शिष्टं सर्वं यथा पुरा । स्वधाकरमिति ज्ञेयं कांश्चिदत्र विशेषकान् ॥

भस्ममर्यादादिकान् चापि कुर्यादेव विधानतः ।

ये चेह पितरश्चेति मन्त्रं सम्यक् समुच्चरेत् ॥

सर्वेषामपि पात्राणां स्वयं भूयो विधानतः । कूर्चेन प्रोक्षणं कृत्वा परिषिच्य च तेन वै ॥

भोक्त्राऽप्येवं कारयित्वा तदापोशनशंवरम् । अर्चनापात्रं यत्तत् कुर्याद्विप्रकरस्थितम् ॥

एतत्कर्मैव नितरां सुपुत्रत्वप्रकारकम् । तत्कर्तुः कृतिनोऽतीव पितृनिष्क्रियदायकम् ॥

एतदर्थं पुरा सर्वे पितरस्त्वस्य जन्मनि । सर्वस्वदानकर्तारो ह्यभवन्नतिद्वर्षिताः ॥

आपोशनम्

तादृगापोशनजलप्रदानं सांप्रतं स्मृतम् । तत्प्रदानानन्तरं वै अमृतोपेति मन्त्रतः ॥
 तत्प्राशनं प्रकथितं यद्वत् तेन पाथसः । यद्यन्यत्प्राशनं कुर्युः तद्वत्ताच्छंवरं तु ते ॥
 स्वयं तत्पितरः सोऽपि सर्वे स्वपितरः क्षणात् । कालसूत्रैकशरणाः प्रभवन्ति न संशयः
 ततस्तु सर्वे भोक्ताः कदाचित्तादृशं खरम् । न कुर्युरेव सततं कर्म क्रूरं द्विजोत्तमाः ॥

श्रद्धायामिति मन्त्राणां प्राणाहुतिकृतौ तदा ।

यजमानो जपं कुर्यात् प्रतिस्वाहाकृतौ द्विजाः ॥

तदाहुतिक्रमेणैव प्रकुर्युर्विधिना द्विजाः । भस्मनो यदि मर्यादा न कृता चेद्यदा तदा ॥
 पात्रग्रहणमेतेषां वामहस्तेन चोदितम् । आभुक्त्त्यन्तं ततो वाच्यं यथामुखमिति स्म च

जुषध्वमिति तत्पश्चात् श्रावयिष्येति वैष्णवान् ।

पावनानपि रक्षोघ्नान् भुञ्जीयानिति च क्रमात् ॥

स्वाश्रावयेति चाप्युक्तस्तथा कुर्याद्यथामति ।

यथाशक्ति यथोत्साहं ब्राह्मणान् तत्र निक्षिपेत् ॥

अभिश्रवणम्

अभिश्रवणकार्याय यावद्देवदत्रये तथा । केचिदत्र पुनर्दत्ते जाते तत्परमेव वै ॥
 देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमोनमः

इति मन्त्रं समुच्चार्य पुनरन्यान् पुराणगान् ।

मन्त्रान् वदेयुस्तद्वक्त्या ते सर्वत्र कृताकृताः ॥

अथाप्युदाहरिष्यामि तानेतानपि वै क्रमात् । सप्तव्याधादशार्णेषु मृगाः काराञ्जने गिरौ
 चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे । ये स्म जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः
 प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदथ । अमूर्तानां च मूर्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम्

नमस्यामि सदा तेषां ध्यायिनां योगचक्षुषाम् ।

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ॥

हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु । ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ॥

* ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ।

यद्दोशवरो हव्यसमस्तकव्यभोक्ताऽव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ॥

तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ।

त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च यज्वनः ।

हव्यकव्यभुगोक्तसन् पितृदेवस्वरूपधृक् ॥

कर्ता क्रियाणां स स इज्यते क्रतुः स एव तत्कर्मफलं च तस्य ।

मृगादियत्साधनमप्यशेषं हरेर्नकिञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥

देशात्कालात्तथा मन्त्रतन्त्रोभ्यो हविषस्तथा ।

कर्तृभ्यश्चापि भोक्तृभ्यः द्रव्याद्वा न्यूनतस्तथा ॥

अतिरिक्तादिदं कर्म ह्यच्छिद्रमविकलं तथा । साग्रं च सगुणं भूयादित्येवं यूयमद्य वै ॥

वदतेति नमस्कुर्वात् तेऽप्यनन्तरमेव वै । तथास्त्वित्येव च महत्प्रीत्यैव निखिला अपि ॥

प्रवदेयुः सदस्यास्ते भोक्ताश्च समष्टितः । पुनश्च यजमानोऽथ युष्मद्वाक्यमहत्त्वतः ॥

सर्वैकल्यशून्येन श्राद्धेनानेन केवलम् । गयान्नश्राद्ध तुल्येन अक्षय्यप्रीतिरुत्तमतः ॥

पुनरावृत्तिरहितब्रह्मलोकाप्तिरस्त्विति । भवन्तो वै ब्रुवन्त्वद्य तद्वाक्यसमनन्तरम् ॥

तथास्त्वित्येव सर्वे ते प्रवदेयुर्द्विजा अपि । तद्वाक्यश्रवणात्पश्चान्नमो देवेभ्यो इत्यपि ॥

स्वधा पितृभ्य इत्येवं बृहते विष्णवे नमः । ओं तद्ब्रह्मेति नवकं यजुषां(वृ)बृन्दमप्यथ

यजमानो वदेत्सर्वं श्रद्धायामिति पञ्चकम् ।

जपेत्तु प्राञ्जलिर्भूत्वा ब्रह्मणि मात्मेति तं जपेत् ॥

परिषेचनतः पश्चात् भूय एव तदेव हि । धृतापोशनपाथस्तु तेषु भोक्तृषु सत्वरम् ॥

इमं पुराणवाक्यं च प्रवदेत्तच्च वच्यहम् ।

ईशानविष्णुकमलासनकार्तिकेय वह्नित्रयार्करजनीशगणेश्वराणाम् ।

क्रौञ्चामरेन्द्रकलशोद्भवकाश्यपानां पादान्नमामि सततं पितृमुक्तिहेतून् ॥

इत्युपस्था नमस्कृत्य चेयं भूमिर्गयेति वै । एते गदाधरा विप्रा वटच्छायेत्यमीत्यपि ॥

भावयेदेव मनसा पुनरेकं वदेत्तदा । वचनं तत्पुराणस्थं मन्त्ररूपमतीव च ॥
 गयायां धर्मपृष्ठेषु सदसि ब्रह्मणस्पतेः । गयाशीर्षे वटे चैव पितृणां दत्तमक्षयम् ॥
 एवमुक्त्वा गयगयेत्येवं सम्यक् समुच्चरेत् ।
 गयागयेति वा ब्रूयात् काशीकाशीति वाऽथवा ॥
 वटं तं वाथवा बिन्दुमाधवं संस्मरेत्यपि । एतत्सर्वं श्राद्धमात्रे कर्तव्यत्वेन केचन ॥
 जगदुः क्षत्रियादीनां स विप्राणामिति स्म वै ।
 अतः कृताकृतं प्रोक्तं भोजने श्राद्धकर्मणि ॥
 वृत्ते ब्रूयाच्छ्राद्धकर्ता गायत्री वेदमातरम् । अहमस्मीति सूक्तं च भोजनादौ क्रमेण तत्
 वेदाक्षरैरहितश्राद्धकर्ता तु केवलम् । नामत्रयजपं कुर्वन् ईशानं तं हरिं स्मरन् ॥
 आतृप्युपविशेत्तेषां तदनन्तरमप्युत ॥

ब्राह्मणभोजनानन्तरकृत्यम्

मधुत्रयं जपित्वाथ ह्यक्षन्नमीमदन्वथ । मधुमध्विति संपन्नं कर्ता ब्रूयादतन्द्रितः ॥
 सुसंपन्नमिति प्रोक्ते एतच्छ्राद्धे विशेषतः । संपादितेषु पक्षेषु पदार्थेष्वपि वस्तुषु ॥
 य इष्टः सोऽद्य प्रष्टव्यः इति संप्रार्थयेत् द्विजान् ।
 सर्वं संपूर्णमित्येव प्रोक्ते भोक्तृभिरप्यति ॥
 तृप्ताः स्थेति द्विवारं वै संबुद्धयन्तेन तान् वदेत् ।
 विश्वान् देवान् पितॄंश्चापि सति विष्णुं तमप्युत ॥
 तृप्ताः स्म इति तैरुक्ते तन्मंत्रं समुदीरयेत् । असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः

विकिरम्

तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदैविकम् । ततः परं पैतृकेऽपि स्थाने मन्त्रमिदं स्मृतम्
 तदुच्चरेच्च विधिना तत्कर्मणि तदा स्वयम् ।
 असंस्कृत प्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः ॥

दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम् ।

विष्णुस्थाने तथाप्येकं मन्त्रं तत्समुदीरयेत् ॥

वैष्णवं परमं भव्यं श्राद्धकर्मणि संस्थिते । असंशयो भवेद्विष्णुर्मौजसाधनमव्ययम् ॥

पितॄणां च वरं श्रेष्ठं विकिरान्नं च वैष्णवम् । एभिर्मन्त्रैर्विकिरान्नं दत्त्वा तत्पुरमेव वै
उच्छिष्टपिण्डं दद्याच्च तन्मन्त्रेण यथाविधि । तिलान् दर्भान्समास्तीर्य भूतले पत्रसन्निधौ

तन्मन्त्रं संप्रवक्ष्यामि कर्मणस्तस्य संप्रति ।

ये अग्निदग्धा येऽनग्निदग्धाः ये वा जाताः कुले मम ॥

भूमौ दत्तेन पिण्डेन तृप्ता यांतु परां गतिम् ।

अग्निदग्धानग्निदग्धेभ्योऽस्मत्कुल (प्रसूत) मृतेभ्यः ॥

अयं पिण्डः स्वधा नम इत्येवं तत्र निक्षिपेत् ।

अग्निदग्धानग्निदग्धाः मार्जयन्तां तिलोदकम् ॥

एतद्व इति तदत्त्वा तिलसंमिश्रितोदकम् । पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य सपवित्रकरः पुनः ॥

उच्छिष्टभागभ्योऽन्नं दीयतामित्येव वदेच्च तान् ।

तद्वाक्यं तु तथा प्रोक्तं यजमानेन ते द्विजाः ॥

भोक्तारश्च तदा कुर्यु रेतेनैव (?) स्व मन्त्रतः ।

यजमानकुले जाता दासा दास्योऽन्नं कांक्षिणः ॥

सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मयादत्तेन भूतले ॥

उत्तरापोशनम्

अमृतेतेति च मन्त्रेणोत्तरापोशनं परम् । यजमानः स्वयं दद्याद्विप्रहस्तेषु सादरम् ॥

तत्पीत्वा तेऽपि मन्त्रेण तेनैवान्तं समाप्नुयुः । श्रद्धायामित्युत्तराणि यजंषि स्वयमेव वै

यजमानो जपेदेव वांगुष्ठेनेति तज्जपेत् । यजमानोऽथ भूयश्च संकल्पं सम्यगाचरेत् ॥

पिण्डदानं

पिण्डदानं करिष्येति श्राद्धीयं स पितुरित्यपि ।

तिलोदक (... ..) ।

इति संकल्प्य विधिना पिण्डदानं समाचरेत् ॥

पितुयज्ञविधानेन सर्वमेव यथा तथा । उच्छिष्टसंनिधावेव पिण्डदानं नचान्यतः ॥

पिण्डपूजां विधानेन यथाशास्त्रं समाचरेत् । नैवेद्यमत्र भक्ष्याणि फलान्यपि विशेषतः

ताम्बूलानि प्रकल्प्यानि पुष्पगन्धादिकानि च ।

चिरन्तिकायाः श्राद्धे तु सिन्दूरं कुंकुमादिकम् ॥

तथा सुगन्धद्रव्याणि देयान्येव विशेषतः । वस्त्राभरणजातानि पिण्डानां तु पृथक् पृथक्

देयानि शास्त्रविधिना पितरः पिण्डरूपिणा ।

कर्तव्याश्च नमस्काराः ये कामा अत्र केवलम् ॥

वक्तव्याः प्रार्थनीयाश्च वरदाः पितरस्तथा ।

स च श्लोकोऽत्र वक्तव्यः गयगीतः पुराणगाः ॥

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्यात् गयाशिरे । उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥

अस्य श्लोकस्य पठनात् श्राद्धमेतत्सुपावनम् । गयाश्राद्धसमं भूयादित्याह भगवान् गयः

यजमानोऽपि तत्काले इमे पिण्डा मयार्पिताः ।

गयापिण्डसमा भव्याः भूयासुरिति बाढबाः ॥

ब्रुवन्त्वद्य भवन्तश्चेति वाक्यान्तेऽपि बाढबाः ।

गयापिण्डैकतुलितः भवन्त्विति वितीर्थं तम् ॥

वदेयुः कृपया सर्वे भोक्ताः परया मुदा ।

ततः कर्ता युष्मदनुज्ञया पिण्डानहं द्विजाः ॥

पिण्डोद्वासनम्

उद्वासयिष्ये शास्त्रीयवत्मना मन्त्रपूर्वतः ।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ॥

पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मुक्तिदायिकाः ।

पिण्डोद्वासनमन्त्रोऽयं ये तत्प्रोक्त्यपरागतिः ॥

सद्यः पितॄणां प्रभवेत् क्रमान्मुक्तेश्च दायकः ।

ततः स्वस्थिति कत्रोक्ते शोभनं हविरित्यथ ॥

वदेयुरपि भोक्तारः पश्चात्पिण्डस्थलस्य वै । उत्तरत्र पुनश्चापि शुभस्थानात्तुसिद्धये ॥

कूर्चेन प्रोक्षणं कुर्यात् तां भुवं दर्भतण्डुलैः ।

सम्यक् च पूरितां कृत्वा शान्तिरस्त्वादिकैः शतैः ॥

तानि सर्वाणि पुण्याहवाचने गदितानि हि । भोजनानन्तरं विप्रकरशुद्ध्यर्थकारणात् ॥

तिलस्पर्शान्तरं कूर्चपाथसा पात्रगेन वै । षड्वारं क्षालयेत्कर्ता तावता श्राद्धभुक्तिः ॥

अप्रायत्यं तु यज्जातं तत्करस्य विनश्यति । करशुद्धौ च जातायां तत्करेण ततः पदम् ॥

भविष्यमाणकार्याणां योग्यता महती भवेत् ।

कर्ता संप्रार्थयेत्पश्चात् भोक्तुः सर्वान् सुखस्थितान् ॥

विश्वे देवा हि पितरः परं युष्मदनुग्रहात् । अस्मद्गोत्रं सम्यगेव वर्धतामिति तान् वदेत्

ते स्वस्ति वर्धतां गोत्रं इति ब्रूयुरशेषकाः । देवतानां प्रसादोऽस्तु पितॄणामपि सन्ततम्

इत्यक्षतान् प्रदद्युस्ते स्वस्ति ब्रूतेति तान् वदेत् ।

श्राद्धे अन्नं तु मया दत्तं अक्षय्यं तद्भवत्विति ॥

ब्रूतेति प्रबदेत्कर्ता पितॄन् देवान् पृथक् पृथक् ।

सम्बुध्यन्तेन निर्दिश्य स्वधा स्वाहां विधानतः ॥

वाचयिष्येति कर्ताऽसौ वाच्यतामिति ते द्विजाः ।

ऋचे त्वेत्यादितो मन्त्रत्रयमुच्चार्य तत्परम् ॥

स्वधोच्यतां पित्रादिभ्यः भोक्तारश्च तथा पुनः ।

ओं स्वधेति ततो कर्ता स्वधा चास्त्विति बाडबाः ॥

ततः स्वधा संपद्यन्तां इति कर्तावदी वदेत् । संपद्यन्तां स्वधा चेति प्रत्युक्तिस्तस्य केबलाः

देवाः प्रीयन्तां विश्वे ते प्रि(प्री)यन्तां त इति द्विजाः ।

एवं पितॄणां स्यादेव चेति वाक्यद्वयेन च ॥

जलानि विप्रकरयोः तानुद्दिश्य तिलाक्षतैः । प्रदेयानि श्राद्धकर्ता सत्वरं तदनन्तरम् ॥

दक्षिणादानम्

हिरण्यं रजतं चापि दद्यात्तां दक्षिणां पराम् । पितुस्तु दक्षिणा देया द्विगुणा श्राद्धकर्मणि

दक्षिणाः पान्तु वाक्येन पान्तु त्वां दक्षिणा इति ।

प्रत्युक्तिरिति विज्ञेया तद्वाक्यस्येति सूरिभिः ॥

वाजेवाजेति मन्त्रेण उत्तिष्ठत पितर इति । अनुगच्छन्तु मन्त्रेण तदुद्भासनमुच्यते ॥

दर्भैरुद्भासनं कुर्यात्स्पृशन्नेतान् पितॄन् सुरान् ।

एवं पूर्वोक्तमन्त्राभ्यां अमीवाजस्य तां जपेत् ॥

अनन्तरं प्रार्थनाख्यां ऋचं शास्त्रायनीस्थिताम् ।

प्राञ्जलिः प्रपठेत्प्रह्वः तत्पुरस्तात्स्थितः स्वयम् ॥

ते अप्युदाहरिष्यामि सर्वेषां विशादाय वै । दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव नः

श्रद्धा च नो मा व्यगमात् बहुदेयं च नोऽस्त्विति ।

अन्नं च नो बहु भवेदतिथीश्च लभेध्वमहि ॥

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कंचन । ऊहेन चैतयोरुक्तिरेवं वाच्या विशेषतः

दातारो वोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव वः ।

श्रद्धा च वो मा व्यगमाद् बहु देयं च वोऽस्तु ॥

अन्नं च वो बहु भवेदतिथीश्च लभेध्वम् ।

याचितारश्च वः सन्तु मा च याचध्वं कंचन ॥

अथ कर्ताऽन्नशेषः किं क्रियतामिति वै वदेत् ।

ते विप्रास्तस्य च प्रोचुर्वाक्यस्योत्तरमञ्जसा ॥

इष्टैः सहैव भुञ्जन्तां इति वाक्यात्ततः परम् । ब्राह्मणानां स्वयं कर्ता स्वादुर्पसद इत्यृचः

दक्षिणाभिमुखस्तिष्ठन्नुपतिष्ठेत्तु वै पितृन् ।

प्राचीनावीतिना भक्त्या तत्पश्चाद्ब्राह्मणांस्तु ते ॥

मन्त्राक्षतान् प्रदद्युश्च वेदमन्त्रैः शिवप्रदैः ।

तान् स्वीकृत्य स्वयं भक्त्या चाञ्जलया भूय एव वै ॥

पुराणोक्तानि मन्त्राणि प्रवदन् भक्तिपूर्वतः । विप्रपादौ संस्पृशन् वै पीडयेच्च पुनः पुनः

तान् श्लोकानपि वक्ष्यामि पावनानघवारकान् ।

अद्य मे सफलं जन्म भवत्पादाब्जवन्दनात् ॥

अद्य मे वंशजाः सर्वे याता वोऽनुग्रहादिवम् । पत्रशाकादिदानेन क्लेशिता यूयमीदृशाः

तत्क्लेशजातं चित्ते तु विस्मृत्य क्षन्तुमर्हथ । वसिष्ठवामदेवादितुलितास्तु समागताः ॥

सूर्योपरागसदृशं पितृश्राद्धमभूमम । आसनैर्भाजनद्रव्यरूपकैर्दक्षिणादिभिः ॥

मयापराधिनाऽङ्गेन किमप्यद्य न सत्कृतम् । अग्नौ करणरूपाख्यं विप्रभोजनरूपकम् ॥

पिण्डप्रदानरूपं यत् कर्मत्रयमिदं तु तत् । यथोक्तं च यथाशास्त्रं गयाश्राद्धफलप्रदम्

अस्त्वित्यद्य भवन्तो वै ब्रुवन्त्वित्येव तान् वदेत् ।

तथैव ते प्रब्रूयुश्च तदनन्तरमेव वै ॥

तिलाक्षतैर्गृहपतिः श्रीकृष्णार्पणमस्त्विति । तदर्पणं जलैः कुर्यात्ततो नामत्रयं जपेत् ॥

गन्धपुष्पादिभिः पूजामलंकारादिभिः पराम् ।

कृत्वाथ भोक्तृणां तेषां ताम्बूलादिप्रदापनैः ॥

नितरां हर्षितां कृत्वा वेश्मसीमान्तमाव्रजेत् । अनुव्रजेयमित्युक्त्वानुव्रजेति पुनश्च तैः

अनुज्ञातोऽनुव्रजेत्तु कथान इति तज्जपेत् । सर्वसाद्गुण्यसिद्ध्यर्थं कर्मलोपनिवृत्तये ॥

स्वपितृणामूर्ध्वलोकस्यासिद्ध्ये तद्यजुर्जपेत् । रुद्रसंख्यानमः शब्दकायकं वेदशीर्षंगम् ॥

वामदेवायेति मनुं प्रजपेद्भक्तिसंयुतः । पश्चात्तु ताननुव्रज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥

नमस्कृत्य च साष्टाङ्गं कृतार्थोऽस्मीति भावयेत् ।

पादौ प्रक्षाल्य चाचम्य विप्रपूजां समाचरेत् ॥

ताम्बूलदक्षिणाभिश्च सर्वानेव प्रहर्षयेत् । यथाशक्त्या ब्राह्मणांश्च भोजयेदपि भक्तितः

पितृशेषभोजनम्

पुत्रान् पौत्रांश्च वन्धूंश्च मित्राण्याप्तान् परानपि ।

शिष्टानिश्रानाप्तलोकान् भृत्यवर्गानशेषतः ॥

तत्प्रीतये स्वयं चापि तच्छेषं प्राशयेच्छुचिः ।

मातृदारान् ज्ञातिदारान् भिक्षुता(का)नपि केवलान् ॥

मृष्टान्नैरेव नितरां समृद्धैः शक्तिसंभवे । स्वभुक्त्यभावे तेषां वै पितृणां तृप्तिरुत्तमा ॥

न भवेदेव तस्मात्तु सम्यक् सर्वैश्च वस्तुभिः । तद्भुक्तशेषैर्न परैः कुर्याद्भुक्तिं स्वबालकैः

तत्प्रार्थितप्रदानैकपूर्वकं सुमुखः सुहृत् ।

न तस्मिन् दिवसे कुर्याद्विमुखान् बालकान् स्वकान् ॥

उच्चैःस्वरेण नाक्रोशेत्ताडयेन्न तु भीषयेत् । बालावमानतोऽतीव पितरस्तेऽति दुःखिताः

भवेयुर्भग्नमनसस्तदुपर्येव तन्मनः । कालान्तरे स्वक्रियायाः एते कर्तार इत्यपि ॥

तदुपर्यति तत्प्रीतिर्महती सर्वदा स्थिरा ।

तिष्ठत्येव हि तस्मात्तु तद्दिनेऽस्मिन् विशेषतः ॥

स्वभुक्तशेषवस्तूनि तदतिप्रार्थितानि वै । प्रदद्यादेव सर्वाणि यानि तान्यधिकाशया ॥

तत्प्रदानैकमात्रेण तत्क्षणेन प्रवच्मि वः । गयाश्राद्धशतं तेन कृतमेव भविष्यति ॥

पाककालेऽपि बालानां रोदनस्योत्तरक्षणे ।

पाकक्रियां तां निक्षिप्य मातरस्तान् प्रगृह्य च ॥

स्नानक्रियापूर्वशुद्धान् शुद्धवस्त्रप्रतिष्ठितान् । स्तन्येन पाययेदेव तावन्मात्रेण तेऽखिलाः ॥

क्षुत्तृष्णारहिता भूत्वा परमानन्दनिर्भराः । पूर्णकामा नित्यवृत्तास्तच्चित्तास्तत्परायणाः

प्रभवन्त्येव नितरां नष्टक्षुत्कं तथाविधम् । दृष्ट्वा स्तनंधयं सर्वे तदुपर्यतिहर्षितः ॥

स्वश्राद्धकारकं कालात् निश्चित्यैव तथाविधाः । स्तन्यदानक्रियातुष्टा बालग्रहणसंभवम्

तद्वैगुण्यं नैव किञ्चित्पितरोऽस्य तन्दुमुखाः । अङ्गीकुर्वन्ति तस्मात्तु तदा स्तन्यं विधानतः
पाककाले प्ररुदतः पाकान् जातस्तथाविधान् । पाययेद्देव तन्प्रीत्यै तेन वैगुण्यनामकः ॥
प्रत्यवायो नैव भवेदिति व्यासोऽब्रवीत्पुरा । श्राद्धान्ते किल बालानां तदपेक्षितवस्तुनाम्
प्रदानमात्रतो नूनं गयाश्राद्धफलं लभेत् । स्वपत्नी वा स्वयं वापि भ्रातरो मातरोऽपि वा

तच्छिष्टभक्ष्यसर्वाद्यभक्षणाभावस्तदा ।

मान्या यदि स्थिताश्चेत्तु स्वस्थास्सन्तस्तदास्यते ॥

पितरो नैव तृप्यन्ते प्राप्तकामाश्च नैव ते ।

तस्मात्सर्वे तद्दिनेऽस्मिन् सम्यग्भुक्तिं सुवृत्तिकाम् ॥

कुर्वीरन् पितृवृत्त्यर्थं न चेत्तो स्युर्हि दुःखिताः ।

तस्मिन् दिने तु वत्सानां पानायाखिलमेव वै ॥

क्षीरं तूष्णीं पितृवृत्त्यैव पाययेत्तैर्विचक्षणः ।

तेन मात्रेण ते प्रीतास्तां प्रीतिं वार्षिकीं पराम् ॥

वृत्तौ तुष्टिं च पुष्टिं च प्राप्नुवन्त्येव तादृशम् । तत्कर्म कथितं सद्भिर्मन्त्रमेतत्सुपावनम् ॥
भोक्तृपात्राणि सर्वाणि खनित्वैव विनिक्षिपेत् । परेद्युः पुनरुद्धृत्य दूरतस्तु विसर्जयेत्
स्वगोचरं यदि भवेत् तत्पात्रं तद्दिने परम् । व्यर्थमेव भवेच्छ्राद्धं तस्माद्गोप्यं परं हि तत्

परेऽह्नितर्पणम्

तत्परेऽह्नि पुनः कर्ता श्राद्धाङ्गतिलतर्पणम् । तद्विधानेनैव कुर्यादन्यथा व्यर्थमेति तत् ॥

दर्शं तिलोदकं पूर्वं पश्चाद्दद्यान्महालये । आब्दिकेन परं पूर्वं परेऽह्नि तिलोदकम् ॥

श्राद्धे यावन्त उद्दिष्टा प्रातस्तानेव तर्पयेत् । श्राद्धप्रधानदेवानां तर्पणं स्यात्परेऽह्नि ॥

परेद्युर्षसि प्रातस्तर्पणं यत्कृतं नरैः । अमृतं तद्भवत्येव द्वितीये ग्रहरे पयः ॥

तृतीये जलमेव स्याच्चतुर्थे रुधिरं भवेत् । परेद्युर्षसि प्रातः तच्छेषैस्तिलदर्भकैः ॥

तदा कृतपवित्रेण तर्पणं तद्विधीयते । यः परेऽह्नि मूढात्मा पितॄणां तर्पणं यतन् ॥

न करोति विमूढात्मा पितृभिः सह मज्जति । रौरवे कालसूत्रे च यावदाभूतसंप्लवम् ॥

श्राद्धकर्ता न ताम्बूलं तावदेव न खादयेत् ।

खादयेद्यदि मूढात्मा श्राद्धहन्ता भवेत् क्षणात् ॥

मोहादकृत्वा यः श्राद्धं ताम्बूलं यदि खादयेत् । श्राद्धहन्ता भवेत्कर्ता रौरवं नरकं व्रजेत्
समाप्त्यनन्तरं तस्य ताम्बूलं न तु दुष्यति ।

श्राद्धं तत्तर्पणान्तं स्यात् तन्निवृत्तो तु तच्चरेत् ॥

दर्शादिकेषु श्राद्धेषु कृतेषु तदनन्तरम् । ताम्बूलचर्वणं शस्तं वृत्तत्वात्कर्मणः परम् ॥
द्वितीयवारभुक्तिस्तु तद्दिनेषु निषिध्यते । अभ्यञ्जनरतिश्चैव वर्त्मनो गमनं तथा ॥

श्राद्धं कृत्वा तु यो मौढ्यात् भुङ्क्ते परान्नमतिमूढधीः ।

पितरस्तस्य ते क्रुद्धाः शार्पं दास्यन्ति दुस्तरम् ॥

अन्नश्राद्धं तु मुख्यं स्यादितरन्नखिलं परम् । अमुख्यमेव सर्वत्र ह्यतोऽन्नेनैव तच्चरेत्
पात्रेष्वेव प्रदातव्यं मुख्येषु सततं सुधीः । वेदार्थज्ञानचर्याभिः सर्वश्रोत्रियसन्ततौ ॥

तत्पात्रं लभ्यते श्रीमत् नान्यत्र तु कथंचन ।

आदौ चर्याऽत्र कथिता सन्ध्यामन्त्रौककारिता ॥

सन्ध्यामात्रौकशून्ये तु ब्राह्मण्यं तत्र वै भवेत् ।

कुतः कथं केन कस्मात् इत्युवाच श्रुतिः परा ॥

तद्ब्राह्मणस्समीचीनः सर्वकर्मसु सन्ततम् । अत्यन्तावश्यको ज्ञेयस्तदभावेन किञ्चन ॥

ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं ब्राह्मणा जंगमं तपः । ब्राह्मणा जंगमा देवाः ब्राह्मणे विद्यतेऽखिलम्
तस्मात्तु ब्राह्मणाः पूज्याः सर्वेषामपि सन्ततम् । देवताचार्यगुरवः शिक्षकाश्च पुरोहिताः

याजकाः सर्वलोकानां कारका भव्यसंपदाम् ।

तस्मात्सर्वात्मना ते वै नाधिक्षेपस्य देहिनाम् ॥

ते पात्रभूता विज्ञेयाः पुनर्वन्द्या यथामुराः ।

अब्राह्मणेभ्यस्त्वधिकाः विज्ञेया ब्राह्मण ब्रुवाः ॥

तेभ्योऽधिका ब्राह्मणाः स्युस्तेभ्यश्च श्रोत्रियाः पराः ।

तेभ्योऽधिका वेदविदस्तेभ्यश्च ब्रह्मवादिनः ॥

न ब्रह्मवादितुलितः कोऽप्यस्ति जगतीतले । महात्मसु ब्राह्मणेपु विद्यमानेषु तत्पुरः ॥

• नागच्छेत् कोऽपि यानेन चतुरन्तेन वा तथा ।

रथेन वा शिविकया शकटेनापि वाजिना ॥

गजादिना वा किं भूयो नातुरस्य विधिर्मतः ।

यद्यागतश्चेत् किं तस्य श्रेयः स्वश्रेयसं महत् ॥

ह्रीः श्रीः कीर्तिश्च पुष्टिश्च लयं यान्त्यखिला अपि ।

यदि गर्वसमायुक्तो जपत्सु सुमहात्मसु । विद्यमानेषु शुद्धेषु तन्मध्यमशुचिर्जडः ॥

समानतः सद्य एव दण्ड्यः सर्वैश्च वाग्भिरुः ।

स्त्रीत्त्वद्दैर्गच्छमातिष्ठ दुरात्मन्निति वाक्खरैः ॥

भाषणैः परुषैः क्रूरैः यद्ययं द्विजनामकः । शूद्रश्चेत्पांसुनीराभ्यां प्रदूष्यः सहसा भवेत् ॥

शुद्धानां ब्राह्मणानां मध्ये शूद्रागमने तस्य दण्डः

स्नानं कृत्वोपविष्टानां ब्राह्मणानां सरित्तटे । यदि मध्यंगतः शूद्रो निर्भयेन कदाचन ॥

एवं कुर्वन् वस्त्रधरः सोष्णीषो गच्छ दूरतः । इत्युक्तेऽपि पुनारावं कुर्वन्निर्भयमास्थितः ॥

त्वं शब्देनैव हुंकुर्वन् गच्छेद्यदि स पाप्ययम् ।

ताडनीयो विशेषेण दाप्यश्च त्रिपणान्पुनः ॥

यदि स्पृशेन्निर्भयेन पुनर्गच्छन् जलेन तान् । दूषयन्नपि सिञ्चन्वै शपन् धावन्निरन्तरम्

तदा तदा निर्दयेन नास्त्वेवमिति कैरति ।

बोध्यमानोऽपि तत्त्यक्त्वा तृणीकृत्य च सज्जनान् ॥

जपन्नानादिकालेषु समागच्छन् पुनः पुनः । हुंकारवादिदुष्कृत्यैः संस्पृशन्नपि निर्घृणः ॥

स्ववस्त्रधूननाद्यैश्च पीडयन् क्रूरभाषणैः ।

मया त्वेन कृते तूष्णीं युष्माकं किमिति ब्रुवन् ॥

तन्मध्ये प्रलपन् गाढं ब्राह्मणान्योऽवमन्यते ।

स सद्यः सर्वं यत्नेन राजन्यावेद्य चाखिलैः ॥

ताडनीयः प्रबाध्यश्च चतुर्विंशतिकान् पणान् । प्रदाप्यश्च विशेषेण दूरप्रेषणकर्मणा ॥
 शिक्षणीयो विशेषेण सद्भिः सर्वैश्च केवलम् । विद्यागर्वेण शूद्रस्तु ब्राह्मणान् दूषयेद्यदि
 स राज्ञा निर्दयं बाढं सद्य आनीय सत्वरम् ।
 चपेटिकाप्रदानाद्यैः शिक्षयित्वा विशेषतः ॥

अष्टोत्तरशतान् दाप्यपणान्मासत्रयं पुनः । निगले योजनीयश्च धर्मज्ञेन महात्मना ॥
 विद्यागर्वेण शूद्रश्चेद्विप्रं न्यक्कृत्य साहसात् ।
 ताडयेद्यदि तं राजा सद्यः श्रुत्वा भुजिष्यतः ॥

ग्राहयित्वा ताडयित्वा सर्वयत्नेन भीतितः । पलायनपरं वापि कशाघातैरनेकशः ॥
 कारयित्वा महापीडां महानिगल(ङ्)बन्धनैः । मासषट्कं पातयित्वा तद्गर्वमखिलं यथा
 संप्रणश्येत्तथा कृत्वा सर्वस्वहरणाम्बिना । प्रणिन प्रेषयेदेनं न चेद्राष्ट्रं विनश्यति ॥
 यदि शूद्रास्तु बहवो धनिनो गर्वनिर्भराः । अन्तर्द्वेषा ब्राह्मणेषु विप्रभक्त्यानुमोदिनः ॥
 बहिर्वेषेण नितरां ब्राह्मण्या इव केवलम् । आसमानाश्चोरकृत्याः पश्यतामनुमोदनात्
 अन्तरं समुपाश्रित्य कल्याणेषूत्सवेषु वा । निमित्तान्तरमाश्रित्य प्रहारैरतिदारुणैः ॥
 ताडिताः प्रहृताश्चेत्तु वेदवादेषु निर्दयम् । रक्तप्रवाहपर्यन्तं करपादादिघट्टनैः ॥

शिरस्फोटनमूर्द्धादिपर्यन्तैः कारिताः खरैः ।

तान् सर्वान् धार्मिको राजा विप्रताडनदिग्जयान् ॥

श्रुत्वैव सत्वरं सम्यक् ग्राहयित्वा कुचेतसः । यथा तैः प्रहृता विप्रास्तस्माद्दशगुणाधिकम्
 उपानद्भिः कशाघातैः स्ताडयित्वातिनिर्दयम् । निगलैर्बन्धयित्वा च वर्षार्धं वर्षमेव वा ॥
 सर्वस्वहरणं कृत्वा सर्वोपायेन निर्दयम् । दयामकृत्वा सुतरां तदुपर्यतिपौरुषम् ॥
 समाश्रित्यैव धर्मार्थं विरूपकरणादिभिः । उपवासकृशान् कृत्वा जलमूत्रनिरोधनैः ॥
 अत्यन्तं दुःखितान् कृत्वा पश्चाद्राष्ट्राद्विवासयेत् ।

भवनान्यपि सर्वाणि कुड्याङ्गणमुखान्यपि ।

निर्मूलयित्वा नितरां तत्स्थले तत्परं पुनः । द्वैरुण्डान्यतिशीघ्रेण बीजान्यपि निरन्तरम्
 तदङ्कुरप्ररोहार्थं पातयेत्तत्पुरः स्थितः । एवं विप्रप्रहारस्य फलं त्विति निदर्शयन् ॥

तद्वृद्धिं कारयित्वैव तन्मुखादतिगह्वरम् । यवा वनं भवेद्घोरं तदा कुर्याद्दुष्टरात्मनाम् ।
तद्वेश्मभूमिसंस्थानं न चेद्राज्ञो महद्भयम् । भवत्येव पुनस्तस्मिन् राज्ये दुर्भिक्षमप्यति
अनावृष्टिः सुमहती कलहः सुमहान् भवेत् । शिवदीक्षापराः शूद्राः कलौ प्रायेण सन्ततम्
ब्रह्मद्विषः शूद्रदीक्षा वर्धन्ते तत्र तत्र वै । तेषां तु बकवृत्तीनां ब्रह्मण्यो राष्ट्रवर्धनः ॥

दीक्षां तदा तदा कुर्यात् न चेद्राष्ट्रं विनश्यति ।

राज्ञो ह्ययं सदा धर्मः प्रजानां परिपालनम् ॥

तच्चैवं हि प्रकथितं दुष्टनिग्रहपूर्वकम् । शिष्टानां पालनं सद्धिः धर्मज्ञैर्ब्राह्मवादिभिः ॥
शिष्टाः सर्वेऽपि कथिताः ब्राह्मणा एव मुख्यतः । शिष्टशब्दो ब्राह्मणेषु मुख्यत्वेनैव नान्यतः
तेषामेव सदादानपात्रता सा प्रचोदिता । तस्मात्ते सर्वदानानां मुख्यपात्राणि सन्ततम्
सर्वेषामपि वर्णानां एवं सत्यत्र कश्चन । विशेषो ह्यत्र विज्ञेयः कन्यादानस्य चेत्युनः ॥
तत्तज्जातिसमुत्पन्नः प्रवरः शास्त्रवाक्यतः । तत्तज्जातिषु भूयश्च तदवान्तरजातिजः ॥
तद्दानेषु प्रशस्ता वै तत्रापि च पुनर्महत् । बन्धुत्वमेव शस्तं हि श्रुतवत्त्वं च शीलता ॥

ब्राह्मणस्यैव भूदानम् तत्रापि सपिण्डादेः

भूदानेऽप्येवमेव स्याद्ब्राह्मणानां विशेषतः ।

ज्ञातित्वं वा सगोत्रत्व मादौ स्यादुत्तमोत्तमम् ॥

तस्माज् ज्ञातौ सगोत्रे वा विद्यमाने विहाय तम् ।

भूमिं न दद्यादन्यस्मै दत्ता साऽपि न सिध्यति ॥

एवं सत्यत्र यो मोहाद्विमानेषु भूरिषु । सगोत्रेषुत्र ज्ञातिषु च श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥

आहिताग्निषु विद्वत्सु मूढधीः सोमयाजिषु ।

अग्निचित्स्वतिरात्राप्तोर्यामयाजिषु सत्स्वपि ॥

अग्निहोत्रिषु पुण्येषु वाजपेयादियाजिषु । कथं कुर्याद्भूमिदानं सर्वशास्त्रैकनिन्दितम् ॥

सगोत्री पुरतस्तिष्ठन् दानकाले समाहितः ।

न कुर्यात्तं निरोधं सः न निरुद्धः क्रियाश्चरेत् ॥

अपि तूष्णीं स्थितो ज्ञातिर्दानकाले विचक्षणः ।

दानं पश्यन् क्रियमाणं ममैतं न मतं परम् ॥ ..

इति वा वृत्तिमात्रेण न दानं तस्य सिध्यति ।

भूदाने हि ज्ञातिमतिः सामन्तस्य मतिस्तथा ॥

ग्रामस्थानां मतिश्चापि सगोत्राणां मतिस्ततः ।

दायादानां मतिश्चापि समीपग्रामिणां मतिः ॥

हिरण्योदकधारा च सर्वेषां पुरतस्तु चेत् । तदानं सिध्य (?) न चेत्तेनैव सिध्यति ॥

तस्कराचरितं तत्र लिखितं च तदा तदा । प्रधानज्ञात्यलिखितं लिखितं दूरगोत्रिभिः ॥

चोरमार्गैकलिखितं लेख्यं दूषितमेव तत् । भूमिदानस्य पात्राणि पुत्राः पौत्राः पितामहाः

पितरो भ्रातरः स्त्रीणां श्वशुरास्तत्सुताः परे । भवन्ति दानपात्राणि विद्यमानेषु तेषु चेत्

अन्तरङ्गेषु सर्वेषु नान्यगोत्राय तच्चरेत् । अत्यन्तदुर्गुणी रुष्टो दीर्घवैरोऽपि केवलम् ॥

सगोत्रश्चेत् प्रार्थयित्वा तस्मै दद्याद्धरां कृती ।

आहिताग्निषु तिष्ठत्सु तानतिक्रम्य मौढ्यतः ॥

दद्यादनाहिताग्निभ्यो न कदाचन मानवः । सगोत्रगैव सततं सदा भूमिः सरिद्यथा ॥

समुद्रगा तथेयं च तस्माद्दद्यात्सगोत्रिणे । तिष्ठत्सु ज्ञातिवर्गेषु त्यक्त्वैनानन्यगां धराम् ॥

करोत्ययं द्विजान्हित्वा श्वदत्त श्राद्धकृद्यथा ।

अनाहिताग्न्याहिताग्न्योर्विवादे समुपस्थिते ॥

आहिताग्नेर्वदेत्पक्षमत्यन्तमपराधिनः । अपि तस्मिन् वदेन्नैव मन्तुं कमपि सर्वथा ॥

स एव धर्मः कथितः सतः श्रैष्ठ्यं प्रकल्पयेत् । एवमेव तथान्यच्च विज्ञेयं पुरुषर्षभैः ॥

ब्राह्मणस्याब्राह्मणस्य विवादे समुपस्थिते ।

ब्राह्मणस्यैव धर्मेण जयो वात्स्यो(च्यो) नराधिपैः ॥

अयोग्यायोग्ययोरेवं श्रोत्रियेऽश्रोत्रिये तथा । असत्सतोश्च सर्वत्र विज्ञेयं धर्मवादिभिः ॥

सर्वत्र भूमिं सततं ज्ञातीनामेव चाचरेत् । ते विशेषेण चेत्सन्तः श्रोत्रिया आहिताग्नयः

संनिकृष्टज्ञातयश्च किमुतेति महात्मभिः । विज्ञेयः सर्वदा तस्मिन् दाने महति भौमिके ॥

जीवनांशप्राप्तभूमिं प्रविभागसमागताम् ।

क्रमागतां वा सामान्यविद्यमानां विना मतिम् ॥

न दानमाचरेद्भूमिं निखिलानां सगोत्रिणाम् ।

कस्मैचिद्याचमानाय भिन्नागोत्राय छन्दतः ॥

पतिसंयोगविकलविधवानां तु सन्ततम् । न वृत्तिष्वधिकारोऽस्ति न ग्रहेषु धरासु वा ॥

जाते तु पतिसंयोगे तदूर्ध्वं वर्षपञ्चकात् । अप्रजा विधवा सा चेत्तस्यै दद्युस्तदीयकैः ॥

अन्नं वस्त्रं च यदि सा सुवृत्ता जनसम्मता ।

न तादृशो भवेत्सा च तस्यै नित्यं च तण्डुलान् ॥

वसनं त्रिपणक्रीतं मध्याह्ने सेन्धनं स्मृतम् । तादृश्या दैवयोगेन जीवनांशो धरात्मकः ॥

यदि लब्धस्स तु परं न देयक्रायकश्चन । विधवामात्रसंप्राप्त भूमिर्या साथ तज्जनान् ॥

यथाकथञ्चित्प्राप्नोति नान्या स्नानादिना क्वचित् ।

बहुज्ञातिषु तिष्ठत्सु शास्त्रज्ञेषु महात्मसु ।

विभक्तोष्वविभक्तोषु सुप्रसिद्धेषु भूतले । सर्वाचार्येषु नितरां तेषु यः प्रवरः परः ॥

तदाज्ञयैव सर्वेऽपि वर्तेरन्निति भूतले ।

मर्यादा कथिता सद्भिः गोत्रिणामप्यगोत्रिणाम् ॥

बन्धूनामपि सर्वेषां मर्यादा सा तु केवला ।

परैः प्रकथिता नूनं नातिलङ्घ्याऽखिलैस्तु सा ।

यस्मिन् देशोऽपि वा ग्रामे प्रसिद्धः सर्वदिक्ष्वपि ॥

विद्यमानो विद्यया वा श्रिया वा तस्य संमतिः ॥

स्थिता चेत्तत्तु सम्यग्वै शक्यते नात्र संशयः । देशप्रसिद्धविदुषो यत्कार्ये संमतिः परा ॥

तत्कार्यं क्षमते कर्तुं तद्दानं च धरादिकम् । यदि तत्स्वासंमतिः स्यात्तद्देशग्रामयोः परमा ॥

विद्यमानस्य तत्कार्यं न सिध्यत्येव सर्वथा ।

तत्प्राप्त्यैकसिद्धयर्थं तुच्छैस्तद्ग्रामवासिभिः ॥

यद्यत्कृतं तन्निखिलं मृषैवेति सुनिश्चयः । तद्वस्तुलेखनं यस्य कार्यस्यात्र प्रदृश्यते ॥

प्रामाणिकं तदेव स्यात् विना तल्लेखनं तराम् ।

तुच्छानां लेखनं चेत्तु तत्रत्यानां दुरात्मनाम् ॥

बहूनामपि किं तेन तन्न प्रामाण्यसाधकम् । यत्र यत्र महान्तो ये विद्याचारादिसद्गुणैः
प्रसिद्धाः शिष्यवृन्दैश्च तत्र तत्र परास्तु ते । तल्लेखनं विना सर्वं तुच्छानां लेखनं वृथा ॥
प्रसिद्धानां लेखनं चेदादौ तत्परतः पुनः । (लि)तिपिस्तदप्रसिद्धानां कार्याय प्रभविष्यति
यजमानलिपिर्यस्मिन् पत्रे पूर्वं प्रवर्तते । प्रसिद्धानां लेखनं च तत्पत्रं पत्रमुच्यते ॥

लिप्यभावे ग्रामकर्तुस्तत्समानां महात्मनाम् ।

प्रसिद्धानां तु विदुषां तत्तुच्छलिपिमात्रतः ॥

तत्पत्रमनृतं नूनं कार्यकृन्न भविष्यति । पश्चात्तल्लिपिकर्तारः राजदण्ड्या भवन्त्यपि ॥

अत्यन्तानुभवो नूनं न तु प्रामाण्यमृच्छति ।

आगमेन विशुद्धेन भोगो याति प्रमाणताम् ॥

कलापभोगश्शस्तो न भोगो मायासमुद्भवः ।

व्यामोहभोगो दाक्षिण्यभोगः पीडासमुद्भवः ॥

पीडाभोगो भृतेर्भोगो दयाभोगस्तथा परः ।

उपाधिभोगश्चरमो न भोगा इति कीर्तिताः ॥

अनागमं तु यो भुङ्क्ते बहून्यब्दशतान्यपि ।

चोरवद्राजदण्डेन दण्ड्यो भवति किलिबषी ॥

स्वामिद्रोहं जनद्रोहं विना वैरं शुचं तथा ।

सञ्चारं कलहं चापि विनैव प्रबलाश्रयम् ॥

स्याच्चेदनुभवः सोऽयं सम्यक् प्रामाणिको भवेत् ।

(.... ...) वच ॥

सखिक्षोभं गुरुक्षोभं तत्तद्रन्ध्रनिरीक्षणम् । दुष्टाश्रयणमत्यन्तं तत्करानुभवस्स तु ॥

विनैव न भवेन्नूनं तादृशानुभवः स तु । प्रभवेत् बाधकायैव न कीर्त्यै श्रेयसे श्रियै ॥

मुखाय वात्मनो (.....) । (.....) व कथिता सद्भिः स्वामिलब्धप्रतिग्रहाः

ग्रामिणो ग्रामकर्तारो धर्मतो ग्रामभागिनः । अत्र स्वामी ग्रामकर्ता य आदावकरोत्परम्
ग्रामं द्विजानां दानेन तत्सकाशप्रतिग्रहाः । ग्रामभाग (.....) ताः ॥
प्रतिग्रहिकराहृन्धप्रतिग्रहपरश्च यः । तद्वागी सोऽपि भवति न तैः साम्यं स विन्दति ॥
तादृशस्यास्य मध्याप्तक्षेत्रकस्य विशेषतः । पूर्वाः सर्वे पूजनीयाः ये स्युः कर्तृप्रतिग्रहाः ॥
ग्रामाधिकारिण (.....) त्तमोत्तमाः । रन्ध्रक्रियाक्रयस्वैरप्रविष्टा ये दुराशयाः
दुर्माणां दुश्चरित्राश्च नित्यदुष्टाश्रयाखिलाः । अकार्यकारिणोऽन्यैक कार्यप्राधान्यचेतसः

अन्यथा कारिणश्चापि राज्ञः स्युर्दण्डभागिनः ।

तत्रापि सद्यो यत्नेन विज्ञाताश्चेत्क्रियामुखात् ॥

रन्ध्रप्रविष्टाः सन्ताड्याः संशयो नात्र वच्मि वः । कालं प्रतीक्ष्य यत्नेन ग्रामभागैकचेतसा
ग्रामापदि ग्रामिभिस्तैर्दत्तभागस्तु संकटे । रन्ध्रप्रविष्ट इत्युक्तः (.....) तः ॥
क्रियाप्रविष्टः सर्वेषां संमत्या ग्रामकार्यकृत् । तद्दत्तभागस्तद्ग्रामेः क्रियाविष्टः स उच्यते ॥
तद्विरोधे दण्डनीयस्तदभावे परं त्वयम् । स्थाप्य एव सदा राज्ञा क्रियाविष्टस्तु सर्वतः ॥

(.....) तिर्यः क्रियाविष्टः स उच्यते ।

सोऽपि क्रियाविष्टतुल्यः तत्र भाग्येव सन्ततम् ॥

तद्ग्रामकार्यातिषु चेदयं नालं हि धर्मतः । गृहीतभोग्यवृत्त्याघसमाक्रान्तदिगन्तरः ॥

स्वैरप्र (.....) त एते सीम्नि चेत्स्वके ।

यदि स्थिताः साधवः स्युर्ज्ञात्वा धर्मं स्वकं सतः ॥

कृपया पालनीयाः स्युरुद्धास्यास्तेन चेत्खलाः ।

ये रन्ध्रादिप्रविष्टाः स्युस्तेषां प्रायेण सन्ततम् ॥

दुष्कृत्यं सहजं नात्र (.....) थापि यश्चकः ॥

ब्राह्मवृत्तिकहारकदण्डः

ज्ञात्वा स्वधर्मे संतिष्ठेत्स उ देवोऽन्यथा न सः ।

समीचीनब्राह्मणस्य स्थितां वृत्तिं धराकृतिम् ॥

दानव्याजापहर्तारो दण्ड्या राज्ञा विशेषतः । असमीचीनदानाख्य (...) परस्वकाः
ज्ञात्वा राजा सद्य एव शिक्षयेन्न तु मोचयेत् । दाक्षिण्यं समुपाश्रित्य तदाश्रयविशेषतः

उपेक्षिता यदि खलाः राज्ञः पापं महद्भवेत् ।

अन्यभो (....) घ्रेषु भुञ्जते ॥

तान्यनावृष्टिमिच्छन्ति महद्वा जायते भयम् ।

अयं हि राजधर्मः स्यात् संतः संपूजयेत्सदा ॥

असतो दण्डयेदेव चासन्तश्चाप्यमी मताः । (....) संस्थिताः ॥

कुशीलवास्तदा (....) राः नाट्यविद्याविशारदाः ।

प्रेष्या वार्षुषिकाश्चैव व्यपेताः स्वस्वधर्मतः ॥

परदिण्डाशना नित्यं शूद्रप्रेष्यास्तदुन्मुखाः । अव्रताश्चाप्यदी (... ..) ॥

परवृत्त्यपहर्तारः व्यवहारपराजिताः । निर्लज्जा निर्भया भूयो नाहं निर्जितवानिति ॥

वदन्तः संचरन्तश्च धर्मवक्त्तृन्सदा सतः । दूष (....) ॥

असत्यवाद (.....) राः चार (....) परास्तया ।

कुक्षिभरणकर्मेकप्रधानाः पापचेतसः ॥

पुनरन्ये दुश्चरित्राः विज्ञेयाः स्युरमी खलाः ।

असन्त इति तान् राजा ज्ञात्वा तत्कृत्यमप्यति ॥

अनुरु (...) तान् भूमिहर्तृन् विशेषतः ।

अग्निदान् विषदांश्चापि शस्त्रपाणीन् धनापहान् ॥

क्षेत्रदारापहर्तृश्च व्रात्यान् सर्वान् क्षतव्रतान् ।

भुजङ्गान् दुष्टचित्तांश्च सत्यज (...) दपि ॥

यदि वृत्रास्तु ते तूष्णीं परलोकाननश्वरान् ।

क्रियासंपादितान् सर्वान् नाशयेयुश्च तत्क्षणात् ॥

राजधानी यथा शून्या यथा कूपश्च निर्जलः ।

यथा हुतमनग्नौ च कृ (.....) कृतम् ॥

तादृशेषु तथा दत्तं भवेदेव न संशयः । न सुतस्य पितृद्रव्यमेवं वादी प्रसूर्मनाः ॥

पात्रान्नभुक्तिहा क्रूरः पोताऽस्य क्षीररोधकः ।

विश्वास(घा)पातको राजमित्रस्वामीगुरुद्विषः ॥

(.....) विषदा भूमिहारकाः । एकादशैते कथिताः प्रोक्ता निष्कृतिवर्जिताः

कदाप्येषां नोपकारः कार्य एव महात्मभिः । एकादशसु चैतेषु विप्रवेदविवर्जिते ॥

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे मल्ले च कितवे तथा ! रोदत्यु (.....) तं कृतम् ॥

नावेद्यपि प्रयच्छेत हेतुके नास्तिकेऽपि च । न पाषण्डेषु सर्वेषु वेदशास्त्रविदूषिके ॥

न बकव्रतिके पापे न वैडालव्रते तथा । न स्वाध्यायान्नरहिते तथैव च निराकृते ॥

धूर्ते (.....) । (.....) देवलके दत्तं भृतकाध्यापके तथा ॥

दत्तमेतेषु सर्वेषु वृथा दानं प्रकीर्तितम् । व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा ॥

विप्रजातौ सूत्रदा (.....) । (.....) भ्रू भ्रामयाजके ॥

वेदविक्रयिके चैव व्यालप्राहे तथैव च । ब्रह्मबन्धौ च यद्दत्तं तथैव वृषलीपतौ ॥

परिचारकलोकेषु आरूढपतिते तथा । भू (.....) ॥

दत्ततुल्यधनं वृद्ध्या गृहीतं चेत्सबन्धके । प्रशयति ततो वृद्धिस्तत्कृन्तति पुनर्हत्तम् ॥

नवीकृते पुनः पत्रे तद्विया तूत्तमर्णकः । गुप्तचौर इति ज्ञेयः (.....) ति ॥

उत्तमर्णाधमर्णदण्डः

पत्रे त्रिवारे यदि तु वृद्धिग्रहणभीतितः । नवीकृते तदा दण्ड्यो ऋणदाता भवेद्भ्रमम् ॥

यदि मध्यस्थमुखतः गृहीतो मासमास्यत ।

गृहीत (.....) त्तमर्ण (.....) स्तु तदाखिलम् ॥

अधमर्णेन तत्सर्वं देयमेवेति तज्जगुः । ऋणतुल्यग्रहणतः परं वृद्धिर्न धर्मतः ॥
भवेदेव ततः पश्चात् गृहीतो न्यायदूषितः ।

(..) नं (.....) शक्तादेवो मत्यापतेशिशुम् ॥

माता दद्यात्सभार्याया चेदयं तूभयोः सुतः । पुत्रप्रदाता पुत्री चेदयं द्वैमातृकोऽप्यति ॥

प्रदत्तसूनुर्नितरां दातृ (....) ।

स्वयं (... ..) मेण कु (....) माणि जनकः पुत्रवानपि ॥

प्रदत्तसूनुर्जनकस्य नूनं कृत्यानि सर्वाणि पृथग्विधानात् ।

कुर्वीत नो चेत्पितृघातकः स्यात् (.....) स्तदा पालकः ॥

(.....) पालकस्यैव सन्ततम् ।

सर्वाणि कुर्याद्विधिना जनकस्य तु नैव हि ॥

उभयोरपि चाशौचं पित्रोः कार्यं विधानतः ।

बन्धूनां भिन्नगोत्राणां समीपे त्रिदि (.....) ॥

(.....) पक्षिणी स्यात्तदेतत्तादृशं पुनः ।

दशाहमध्ये संप्राप्तं स्वकालप्राप्तमेव चेत् ॥

अनुष्ठेयमतिक्रान्तं नैवेत्येवेति केचन । केचित्तु पुनरत्युचुः अहर्मा (.....) ॥

(.....) र्थकम् । दशाहमध्ये विहितं तदूर्ध्वं स्नानमात्रकम् ॥

ज्ञात्याशौचं तु कथितं तस्मादेतद्यतोऽधिकम् । ततस्त्वेवं व्यवस्था हि महती परिकल्पिता

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासात्पक्षिणी भवेत् ।

अहस्तु नवमादूर्ध्वं स्नानेन शुध्यति ॥

बहूक्त्वा (कृत्या) किं महाभागाः ब्राह्मण्यं तु कलौ परम् ।

तिष्ठति श्राद्धसन्ध्याभ्यां तद्द्वयं तस्मात्तद्वयं चरेत् ॥

सन्ध्यां समन्त्रकां कुर्यात् तान् मन्त्रान्विस्वरादिभिः ।

रहितानेव महतां यत्नेनैवाभ्यसेत्सुधी ॥

समीचीनोच्चारणेन सन्ध्या ब्राह्मणकारिणी । मन्त्राणां तु पु (.....) ॥

(.....) तद्ब्राह्मण्यं च तादृशम् ।

• दोषयुक्तं गुणैर्हीनं तस्मात्सन्ध्यां यथाविधि ॥

सम्यग्गध्ययनं कृत्वा ब्राह्मण्यं तत्प्रसादये ।

तेन तद्वैष्णवं धाम (.....) ॥

मृताहं समतिक्रम्य चण्डालः कोटिजन्मसु । भवत्येवेति सा प्राह श्रुतिस्तस्मात्तु तं चरेत् ॥

सगुणं शास्त्रविहितं तेन मुक्तिं प्रपद्यते ।

अनन्तास्तद्गुणाः सन्तु ते त्वसाध्याः स्मृताः सदा ॥

अनुष्ठातुर्मतश्चेमे मुख्याः केचन तान् ब्रुवे । स्वस्वपत्नीज्ञातिबन्धुकृतान्नेन कृतं यदि ॥

पित्रोः श्राद्धं समीचीनकृतं साद्गुण्यमृच्छति ।

अकृतं चेत्तथा तत्तु (.....) पुरोक्तवत् ॥

तदन्यथा चेत्पतितः सद्य एव भवेद्भुवम् ।

स्वशब्देनाखिलाः प्रोक्ताः कर्तारो भ्रातरः स्वयम् ॥

पत्नीशब्देन तत्पत्न्यो निखिलाः प्रतिपादिताः ।

ज्ञातिशब्देन जननी पित (.....) का ॥

(.....) का स्मृताः ।

पितृव्यपत्नी तद्धर्मभागिन्यश्चापि कीर्तिताः ॥

बन्धुशब्देन भगिनी पितृष्वसृमुतादिकाः । कन्या सं पितृश्राद्धं भिन्नभावेषु सर्वथा ॥

न कुर्यादेव धर्मेण यथा तथा ह [?] । [.....] प्रदानं तत्र कीर्तितम् ॥

द्वितीयमपं तेन तुल्यं ब्राह्मण भोजनम् । तृतीयं च तथा कर्म पिण्डदानं ततः परम् ॥

तृतीयं च तथा कर्म पिण्डदानं ततः परम् ।

एतत्त्रयं श्राद्धशब्दशब्दितं पुनरेककम् ॥

तादृशं कर्मणि पुनः [.....] ।

[.....] तत्पात्रे हुतशेषान्नपातनम् ॥

तत्तुल्यं तत्प्रोक्षणं च तथा तत् स्पर्शनी कृतिः ।

संप्रदानं भोक्तृहस्ते तदापोशनपा (....) ॥

[....] भोक्तृहस्ते त [...] ।

[... ,] ॥

[....] श्राद्धं परेऽहनि ।

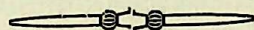
कर्तृहस्ताकृते तस्मिन् आपोशनजले यदि ॥

इति श्रीमार्कण्डेयस्मृतौ श्राद्धाख्यं प्रकरणं समाप्तम् ।

॥ शुभम्भूयात् ॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

लौगाक्षिस्मृतिः



लौगाक्षिविषयकधर्मशास्त्रप्रबन्धावतारः

लोकाक्षिः सर्वलोकानां सदाचारप्रवर्तकः । वेददीक्षाव्रतधरः सर्वलोकाक्षिरप्ययम् ॥
 सर्वासां ... । न तत्परः ... ॥

तयोः कर्ता कारयिता देशकालनिधिःक्षणात् ।

स मासेन विकल्पौघ तन्मर्यादाविशेषवित् ॥

कर्तृ क्रिया कार्यभेदाधिकारव ... । ... तेन सुन्दरम् ॥

यच्छास्त्रं परमोत्कृष्टं सर्वसंग्राह्यमित्यभूत् । सर्वलोकहितं तस्मात् सर्वशास्त्रैकसंमतम् ॥

विल ... । ... श्वतम् ॥

विषयागोचरं स्पष्टं कृपया तेन चोदितम् । शास्त्रमेतद्वेदसमं धर्मसारोत्तमोत्तमम् ॥

ब्राह्मणो वेद ... ।

(मुख्या ?) धिकारिणो नित्यं परे गौणाधिकारिणः ॥

सोऽयं ब्राह्मणशब्दस्तु दीक्षितः क्षत्रियेष्वपि । अरण्ये ... ॥

... भूतो यन्न संशयः । तेन तं ब्राह्मण इति ब्रूयाद्वै श्रुतिशासनात्

वेदोदितानि ... । ... ॥

... यातानि नैमित्तिकमुखान्यपि । नित्यान्यपि ... ॥

... वदाम्यहम् । त्रैवर्णिकानामेतेषामजस्रं प्रवदाम्यहम् ॥

धर्मार्थकाम | ॥

तयोरतिक्रमे तत्तु तत्क्षणेन विनश्यति । ब्राह्मण्यं श्राद्धसंध्याभ्यां स्थिरमेतेषु तिष्ठति ॥

ब्राह्म ... | जन्मना शूद्रतुलितो ब्राह्मणो विवदाम्यहम् ॥

ब्राह्मण्यामपि भार्यायां सत्कृतायां | ब्राह्मणत्वं ब्राह्मणात्तादृशात्सतः ॥

तत्तत्कालेषु कर्माणि तानि तानि क्रमेण तु । कर्तव्यानि यथाव ॥

... त्कालातिक्रमेऽपि गर्भाधानादि कर्मणाम् ।

पश्चाद्वा शक्यते कर्तुं प्रायश्चित्तस्य प्र (?) पूर्वकम् ॥

द्विजानां तानि कर्माणि | प्रायश्चित्तस्य करणे सुमहान् पुनः ॥

प्रत्यवायः प्रभवति तस्मात्तच्चित्तमाचरेत् । ॥

... | समाचरेच्च तच्चित्तं न चेच्छ्रूयौ भवेन्न तु ॥

विप्राभ्यनुज्ञा सर्वस्य कर्ममात्रस्य सर्वदा । संपत्करी च साद्गुण्यकारिणी च (तथा?) वद

... स्मरार्दितः । शतरुद्रजपात्पूर्तो दशभिर्दिवसैर्भवेत् ॥

विष्णुर्योन्यादिमन्त्राणां मुखे रजसि दर्शने ।

॥ पुण्याहं वाचयित्वादौ नान्दीं कृत्वा शुभे दिने ॥

सुलङ्घने सं च कर्तव्यः स एव प्रथमो महान् । षोड ... कः ॥

एतस्याः करणे सर्वकर्मणां त्यागसंभवम् । एनो महदवाप्नोति मूलहान्या द्विजोऽधमः ॥

श्रेयसा ... | ... मूलदानानि गन्धपुष्पस्नजामपि ॥

दानानि विधिना कुर्यात् सोऽपि कुर्यात्ततः परम् । हरिद्रा कुङ्कुमा ... ॥

... दिना तथा । द्वितीयं स्यात्सुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा ॥

सर्वासां प्रथमे गर्भे च ... | ... शाणोस्त्यागे प्रसूतेर्वा परं पुनः ॥

मन्त्रावृत्तिं विधानेन वित्तपूर्वं समाचरेत् । शाखामन्त्र ... ॥

... |

द्वादशानां श्रोत्रियाणामष्टानां यज्वनां न चेत् ॥

कपिलात्रयदानं वा ... | ... लग्नस्य दिवसस्य च ॥

निरीक्षणं च विहितं पुण्याहस्य च वाचनम् । नान्दीग्रहमुखं चापि फलदानादिकं तथा
..... शिखामपि ।

कर्मणो जातकाख्यस्य न लग्नादि निरीक्षणम् ॥

यदा स्याज्जननं गर्भपातस्य तु तथैव हि । तत् ॥

..... वैदिकम् । पितुः स्नानपरं कर्म जातकाख्यं श्रुतेरितम् ॥

तच्च स्नानममन्त्रस्यादूर्ध्वमुत्पत्य केवलम् । नदी हा ॥

उद्धृतेनाम्भसा स्नानं विहितं शास्त्रचोदनात् ।

स्नानोत्पादनतद्देवसंजातोऽर्घ्याम्भसा परम् ॥

प्रीयन्ते पितरस्तस्य हेतुना पितृणां तुष्टिहेतवे ॥

पुत्र जातात्परं भद्रं नान्यदस्ति जगत्त्रये ।

सूतकान्तेऽपि वा कुर्यात् जातकाख्यं सुपावनम् ॥

अत्यन्त । त्रिसूक्त जापादीनि पावनानि महान्त्यति ॥

मुद्गलादिप्रयोगानि बीजदाना न्यपि ।

शक्त्या नित्यं प्रकुर्याच्च नक्षत्रान्त ॥

..... गात् । उच्चाटनं च भूतानां पिशाचग्रहरक्षसाम् ॥

दूरीकरणकार्याय कुर्यान्नीराजनक्रियाम् । दिने दिने विप्रपूजा सायंकाले विशेषतः ॥

..... तेन श्रेयो महद्भवेत् ।

मातापित्रोः शिशोश्चापि पीडाया जन्मकारणात् ॥

उद्भूया यश्च शान्तिः स्यात् जायते च पदे पदे ।

फली करण ॥

..... कस्तु पावके । अयं कल्यादिभिर्मन्त्रैः परिषेचनपूर्वकम् ॥

कुर्याच्चापि विधानेन शिशोरायुष्यकारणात् ।

जामिताया ॥

..... दशदिनेऽपि वा । सूतकान्तेऽपि वा कुर्याज्जातकर्म विधानतः ॥

तस्यापि नामकरणात् पूर्वमेव विधीयते । अकृतानां स्वकालेषु जातकर्म ॥

.... इति धर्मज्ञा जगदुर्ब्रह्मादिनः ।
 स्वकालविहितेनैव कर्मणा येन केनचित् ॥
 नामादिकेन कार्यं स्यात् जातकादीति सोऽऽयमा ।
 स्वकालातिक्रमे ॥

.... तूष्णीं पृथक्कर्तुं न शक्यते ।
 नाम्नैव जातकं कुर्यात् नामान्नप्राशनेन च ॥
 अन्नाशनं च चौलेन चौलं मौञ्ज्याखिलं पुनः ।
 संतुष्ट ॥

.... स्वेन विहित मिति शास्त्रैकसंमतम् । मौञ्जी क्रिया तु सा सर्वकर्मणां प्रवरं परा ॥

तां येन केनचित् कर्ममात्रे न तु योजयेत् ।
 सा ब्राह्मणै ता प्रिया ॥
 नास्यैवेति श्रुतिः प्राह तया सर्वाः क्रियाश्चरेत् ।
 तन्नामव्यवहारार्थं नामकर्म विधीयते ॥
 एकादशे द्वादशेऽहि नो तत्कुर्यात्तु मुख्यतः ।
 भिन्न गौण एव परा न तु ॥
 क्रियमाणेषु मौञ्ज्यापि जातका दिकर्मसु ।
 क्रमेणैव पृथक्त्वेन तस्मिन्नेवाहनीति वै ॥

कर्तव्यत्वेन धर्मज्ञ सिद्धान्त इति शास्त्रहृत् । भिन्नहृतानि चेन्मोहाज्जनकादिवा ॥

.... र्थतां प्राप्य पुनः करणकर्मणः ।
 पात्रभूतानि जायन्ते तानि तस्मान्न चाऽऽचरेत् ॥
 तथापत्स्वपि वाच्यं (वक्ष्येव) तत् पुनः पुनरहं दृढम् ।
 पुरुषस्य ... तु रक्षणम् ॥

अयुग्यवर्ण स्त्रीणां तु चाख्यातोत्तरमेव वै । प्रवरार्हं सन्धिदीर्घस्वरवर्णसमं स्वकम् ॥

प्रवरं प्रवरार्हेण स । चेष्टया भिन्नपरं तथा ॥
सुमूलामूलरक्ताढ्यं रक्त पादि । रक्षितं बीज निविडं प्रा (प्रा) ॥

(अस्मिन्स्थले २२४ द्रष्टव्यम्) ।

कलौ निषिद्धं विज्ञेयं घृतमध्वादिकं तथा ॥

पृषदाज्यं क्षीरदधि तथा पक्कफलादिकम् ।

पायसं पानकं स्वादु मिश्रयित्वा सुखोलबणम् ॥

... .. त्र स्वर्णपात्रेण यत्नतः ।

पश्चात् कुर्यात् ब्राह्मणानां भोजनं च यथारुचि ॥

तत्पूर्वमपि केचित्तु तद्भक्तं प्रवदन्त्यपि । तत्र प्रधानमन्त्रास्तु भूरपां त्वदिकाः पराः ॥

चौलकालस्तु विज्ञेयो (?) तार्तिथीकस्तु वत्सरः ।

तत्रामनं च नियम औत्तरं केवलं परम् ॥

चूडा कर्मापि मौञ्जी च न कुर्याद्दक्षिणायने ।

पितामहादिभिः पूर्वैः सद्भिर्मातामहादिभिः ॥

पितृव्यमातुलाद्यैश्च तत्पत्नीभिश्च मातृभिः ।

समालोच्य प्रयत्नेन ह्यनुज्ञातश्च तैरिति ॥

... धानं पुत्रस्य पितरः ... माता शुभम् ।

य ... धाकृतं तूष्णीं स शिशु श्रेयसा न तु ॥

वाचनं सर्वथा वच्मि पुनः पुनरितीव वै । विनैवाज्ञां गुरुणां तु नामक्रमे पुरा किल ॥

कृत्वाशास्त्रेण मार्गेण द्रव्यत्यागपुरस्सरम् ।

साक्षाद्वसिष्ठो भगवान्विश्वामित्रोऽपि भार्गवः ॥

नष्टपुत्रा बभूवुर्हि कुत्सवत्सादयोऽपि ते ।

प्रवासादेत्य पुत्रं तं अङ्गादङ्गेति मन्त्रतः ॥

कृत्वा मूर्धन्यवघ्राणमेवं कर्णे च दक्षिणे ।

अङ्गमारोप्य तं कुर्याच्छ्रेयसे तस्य केवलम् ॥

अग्निरायुष्मदित्यादिः मन्त्रैर्ब्राह्मणवाचितैः ।

आशीर्वादाक्षतांश्चापि स्वयं स्वीकृत्य तच्छिरः ॥

अलं कुर्या महिषां कृते । षष्ठेऽन्नप्राशनं कार्यं मासि तस्य समन्त्रकम् ॥

कौतुकाख्यक्रियां कृत्वा परं नान्द्या यथाविधि । शुभे मुहूर्ते सुलग्ने च विशेषतः ॥

..... भिस्सा भक्षणकर्मणः ।

पुनर्जातकनाम्नोऽस्तु नियमः पूर्वमुक्तयोः ॥

दिनयोरेव तेनाऽत्र तल्लभादिनिरीक्षणम् ।

यथा संभवतः प्रोक्तं न तारादिबलादिकम् ॥

कुमारभोजनं चात्र वटुभिर्शक्तिसंभवैः । पञ्च ... नकैः कुर्यान्मात्रा संह शुचिक्रियैः

भक्ष्यभोज्यादिकैर्यो तु द्वयात्पूर्वं यथारुचि ।

दक्षिणादानकं तेषां भोक्तृणां तेन वर्णिनाम् ॥

पुण्याहानन्तरं नान्द्याः परं कौतुकबन्धकम् ।

अङ्कुरारोपणं कुर्यात्तदुक्तेनैव वर्त्मना ॥

पश्चात्तत्संकल्प उक्तः प्रतिष्ठा जातवेदसः ।

शक्त्यां सत्यां ग्रह मख ... परं सताम् ॥

सन्निधानेऽप्यसंसर्गं मुखं तत्केशवर्धनम् । शिखानिधानं च तथा तत्स्थानादनलस्य च ॥

उपसमिधमारभ्य भागा श्मेव वै । प्रधानहोमं कुर्वात जयादि च ततः परम् ॥

सर्वं तदोत्तरं तन्त्रं विधिनैव समाचरेत् । नीराजनं चाशिषां च करणं पूजनं ततः ॥

ब्राह्मणानां विशेषेण ताम्बूलं दक्षिणादिकम् ।

तदङ्गत्वेन भूदानं ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥

सर्वं सुमङ्गलीगानपूर्वकं सम्यगाचरेत् ।

मङ्गलानां च वाद्यानामस्मिन् कर्मणि वचम्यहम् ॥

अन्त्य करणं विधिचोदनात् ।

शक्त्यभावे तु तूष्णीकं यद्वा दैविकमुत्तमम् ॥

कर्ममात्रं सूत्रशास्त्रादाचारादिप्रचोदितम् । तन्मात्रमेव कुर्वीत तेन कर्मन दुष्यति ॥
वेदोक्तमन्त्रलोपे'तु कर्म तत्तु प्रणश्यति । सर्वं वैदिककृत्येषु यथा वा वेदचोदिताः ॥
मन्त्रा लुप्ता भवेयुर्न स्वरवर्णादिकैः पदैः । तथा यत्नेन कर्माणि सम्यगेव समाचरेत् ॥

यत्कर्म वैदिकं तत्तु विप्रसाक्षिकमाचरेत् ।

कर्म ब्राह्मणराहित्ये सादगुण्यं नाधिगच्छति ॥

एकस्यापि क्रियाज्ञस्य सर्वतन्त्रविदस्सतः ।

सर्वशाखामन्त्रतन्त्रसूत्रसर्वस्ववेदिनः ॥

अपि कर्मसु सर्वेषु वैदिकेषु वदाम्यहम् । ... तं विप्रसाक्षित्वरहिते विप्रसाक्षिके ॥
कृतमप्यकृतं कर्म तत्क्षणादेव तद्भवेत् । सदश्चापि तथा भूयः कर्तव्यत्वेन चोदितम् ॥
शाखाविदां श्रोत्रियाणां यन्त्रतन्त्रक्रियाविदाम् । सादगुण्यपरि ... ण सद्भृदाम् ॥
सभैव सर्वकर्माहो न कुतर्ककुचेतसाम् । वेदशाखागोत्रसूत्रभ्रष्टानां दुष्टचारिणाम् ॥
त्यक्तसंध्यापराणां च वेदमात्रैककोविदाम् । ... तुच्छानिरर्थका न ॥

न वैदिकक्रिया होमः स्यात्तेषामेकोऽप्यमन्त्रकः ।

मन्त्रविन्मध्यगश्चेत्तु सत्सभाप्यसभा भवेत् ॥

वेदभ्रष्टं तु विज्ञेयं कर्म चण्डा । सूत्रभ्रष्टस्तृतीयकः ॥

जातिभ्रष्ट इति ज्ञेयः सर्वकर्मविगर्हितः । सूत्रभ्रष्टश्च कल्माषः परिवित्तिसमस्सदा ॥

तस्मादेतान् सभामध्ये योजयेन्न तु वैदिके । सत्कर्माणि ॥

तानेतानखिलान्भ्रष्टान् वैदिको न समूहयेत् ।

उत्कृष्टं नोपनयनात्कर्मान्यदिह विद्यते ॥

वैदिकेष्वखिलेष्वेषु तद्धि ब्राह्मण्यमूलकम् । वसन्ते चोपनयनं (?) वापि मधुस्स तु ॥

मासाद्याः पञ्चमासाश्च वसन्त इति केवलम् ।

तत्सान्निध्यमहिम्नैव तत्पूर्वापरयोरपि ॥

अतो वसन्त माखाद्या गौणा इत्येव सूरिभिः ।

सिद्धान्तितः शास्त्रजालविधिज्ञैर्ब्रह्मवादिभिः ॥

गर्भाष्टमो ब्राह्मणस्य मौञ्ज्या मुख्य उदाहृतः ।
 कालः कालविधिज्ञैस्तैरष्टमः शुभ इत्यपि ॥
 तत्समत्वेन मनुना वर्णितो गौतमेन च । ब्रह्मवर्चसकामस्य पञ्चमोऽब्दो महात्मभिः ॥
 वर्णितो मुख्य एवेति मेधावी यदि बालकः ।
 तथैव षष्ठः प्रोक्तश्च तेजस्कामस्य चेत्सतः ॥
 नवमोन्नाद्यमामस्य दशमोऽब्दोऽपि निश्चितः ।
 एकादशस्य रुद्राब्दः वीर्यकामस्य वच्यहम् ॥
 आषोडशाद्ब्राह्मणस्य कालस्तद्योग्यतावशात् ।
 शब्दस्स तु सुविज्ञेयः न सर्वस्येति वै मनुः ॥
 मेधाविनं सुवचसं श्रुतिमात्रेण केवलम् । वेदवर्णग्राहकं चेत् तदैवोपनयेदिति ॥
 अनध्यायेषु सायाह्ने यामिन्यां दक्षिणायने ।
 अष्ट कास्वकेलान्मौ दिवसेष्वपि ॥
 हतान्मोहाच्छलान्मौख्यात्कृतोपनयनं वृथा ।
 पुनः करणमाप्नोति यथावन्नात्र संशयः ॥
 भिन्नशाखागोत्रसूत्रकृतोपनयनं कृतम् । रजस्वलपतिकृतं मुख्य ... ॥
 चिना कृतं मोहात्पुष्पवत्यां च मातरि । महातद्गुरुभिः पित्रा पितागमपुरोगमैः
 कृतोपनयनश्चापि कृतमेव न संशयः । अननुष्ठितसंध्येन ह्यकृतोपासनेन वा ॥
 पूर्वद्युः श्राद्धभोक्तृणा । कृतं तद्व्यर्थमेव स्यात् तथा तस्मान्न तच्चेत् ॥
 ब्रह्मवीर्यसमुत्पन्नो मूको यदि तु तं ततः । सम्यक् षोडशवर्षे जातकादि ॥
 ... वोपनयनं क्रियामात्रेण तन्त्रतः । तन्त्रं कुर्यादशेषं च तन्मन्त्रानखिलान्स्वयम् ॥
 वदेदेवं विधानेन कर्ता तत्कारणात्परम् । लिखित्वा सलिले ... तां धृतेऽथवा ॥
 उपदेशे प्राशयेच्च समिदाधानकर्म च । तद्धस्तेनैव तूष्णीकं स्वमन्त्रोक्त्याऽखिलं यथा ॥
 कारयेदेव तूष्णीकं क्रिया ... रम् ।
 सन्ध्यादिकं तथा नित्यं कारयित्वैव तत्करात् ॥

सर्वेषां कर्मणां तस्याभिनयात्कारयित च । तर्पणं ब्राह्मणं श्राद्धादिकमशेषकम् ॥
तन्त्राभि नयनादेवं ... केवलम् । ब्राह्मण्यं तस्य सुतरां पादामात्रमिति स्वयम् ॥
भृगुराह परे सर्वे तन्नास्त्येवेति चोचिरे । पाङ्क्त्येत्यत्वं तस्य स्तुतः स ... ॥

... योग्यतां पङ्क्तिदर्शने ।

अधिकारोऽस्ति तस्याऽस्य सर्वमन्त्रैकशून्यतः ॥

सर्वक्रियानर्ह एव जातिमात्रेण केवलम् । ब्राह्मणश्चेति वनासौ ... ॥

भर्तृणां च तज्जातानां चेद्ब्राह्मण्यमेव च ।

अमन्त्रजास्तु ते ज्ञेयाः साक्षात्तु वृषलास्तु ते ॥

पुरुषत्रयात्परं तेषां तद्वंश्यानां ततः पुनः । ... मुकवंशैक जन्मिनाम् ॥

क्लीबान्धवधिराश्रित्वितद्विन्ना अपि तत्समाः ।

वेदोक्तकर्मानधिकारिण एवेति शास्त्रहृत् ॥

... न योग्या हव्यकव्ययोः । कृत्योपनयनं तूष्णीमेतेषामपि तां ततः ॥

अन्नपानप्रदानादि कृत्यैः सम्यक् प्रपालयेत् ।

... बधिरजाश्चाश्वि त्रिपुत्रास्तुते ॥

तेषां परा योग्यत्वेऽपि न तत्सन्ततिरर्हति ।

न नैच्यन्यङ्गमाप्नोति संस्कृता सा न दुष्यति ॥

परेषां ह ... योग्यता पङ्क्तिदर्शने । मूक संततिवन्नेषा त्रिपूर्वं दोषगा न तु ॥

गर्भैकादश वर्षोऽयं राजन्यस्योत्तमो भवेत् । उपवीतेस्त ... शुद्धैकादश उच्यते ॥

गर्भं द्वादश वर्षस्तु वैश्योपनयने मतः ।

मुख्यत्वेनैव तत्तुल्यः शुद्धो द्वादशवत्सरः ॥

आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य गौणः कालस्स उच्यते ।

आचतुर्विंशवर्षस्तु गौणो वैश्यस्य शास्त्रतः ॥

राजन्यस्योपनयने ग्रीष्मो मुख्य इतीरितः ।

शरद्वैश्यस्य संप्रोक्तो रथकारस्य तत्पुरः ॥

वर्षा एवेति स मुनिः वसिष्ठो भगवान्महान् । स ... न कालश्च रथकारस्य चापरः ॥

सर्वेषामेव वर्णानामुपनीतिप्रपूर्विके ।

पुण्याहो दिवसे कार्यः नान्द्याह्वानं तथैव च ॥

देवतानां प्रतिष्ठा च नित्यं ब्राह्मणभोजनम् ।

तथैव चाग्निसन्धानमपि विप्रब्रुवस्य च ॥

कर्तव्यत्वेन विहितं परेद्युः प्रातरेव वै ।

अकृतानां जातकादिकर्मणां करणं तथा ॥

उपनीत्यङ्गवह्नेश्च प्रतिष्ठापनकर्मवत् । संकल्पोऽत्रवद्विजैः कार्य उपनीतेर्विधानतः ॥

उपनीत्यङ्गसंकल्पे वह्निनामीप्यमप्यति ।

अपेक्षणीयं सर्वेषामन्यथा तन्न सिद्ध्यति ॥

अतो यतः प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ।

उपनेष्येति संकल्पः नक्षत्रादिकसंभवम् ॥

.... च णमिति प्रोक्ता पुनः पुण्याहपूर्वकम् ।

कारयित्वा ब्राह्मणानां भोजनं ... ॥

कारयित्वैव विधिना चोपवीतस्य धारणम् ।

उपवीतधृतेः पूर्वं शुद्धाचमनकर्मणः ॥

कुमारभोजनं सम्यग्वदुभि कारयित च । मात्रा सीमन्तिनीभिश्च मङ्गलोद्गानपूर्वकम्

भोजनान्ते दिग्वपनं येनेत्यादि समन्त्रकैः ।

चतुर्भिर्विभा ... द्वपन्तमनुमन्त्रयेत् ॥

माता वा ब्रह्मचारी वा यत्क्षुरेण च दक्षिणे ।

उप्त्वायेति च मन्त्रेण लुप्तान् केशानशेषकान् ॥

उदुम्बरस्य वा मूले दर्भस्तम्बे च वा क्षिपेत् ।

स्नातमग्नैरुपसमाधानादिकविधानतः ॥

कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्त नायुदेनानले वटोः । हस्तेन समिधन्तां वै चाधेहीति वदेत् ॥

वटुं प्रति पिता पश्चात् निक्षिप्तायां ततः पिता । आतिष्ठेति च मन्त्रेण वटुमारोपयेत्तदा

- अश्मानं पूर्वनिक्षिप्तं रेवती स्वेति युग्मतः ।
अभिमन्त्र्य च तद्वस्त्रं या अकृन्तन्निति त्रिभिः ॥
तद्वासः परिधाप्याऽस्य वाचयित्वा च तत्त्रयम् ।
परीदमिति तत्पश्चादनुमन्त्र्यैनमेव वै ॥
मौक्षीं तं त्रिवृतां सम्यक् प्रादक्षिण्यविधानतः ।
आवर्तयत् त्रिस्वाहा द्वाचयेत्तामृचं यथा ॥
इयं दुरुक्ताद्युग्मं तन्मित्रस्येति ततः परम् ।
अजिनं चोत्तरं कुर्यादग्निष्टे दशभिस्ततः ॥

आ(म?)न्त्रेत्यवसाप्याऽथ समुद्रात्तत्समाचरेत् । तद्वस्त्रं परिगृहीयादग्नयेत्वादिकेनतः

- देवताभ्यो रक्षणाथमर्पयेत्तं वटुं तदा ।
देवस्य त्वेति मनुना पितैवोपनयेदमुम् ॥
अन्ते शर्मन्निति ब्रूयात् सुप्रजा इति दक्षिणे ।
कर्णे जपन्तं कुर्वीत ततो वटुरयं पुनः ॥
ब्रह्मचर्यं यजुर्जप्त्वा सुखं तिष्ठेत्तदुन्मुखः ।
को नामाऽसीति पित्रोक्ते वटुः स्वन्नाममन्त्रतः ॥

कस्येति च पुनः प्रोक्ते ह्याचार्येण समन्त्रके । प्राणस्येति वटुर्दद्यादुत्तरं तस्य मन्त्रतः ॥

- एष तेति पिता प्राह चाध्वनोमिति तत्परम् ।
वटुः ... योगे योगेति तत्परम् ॥
प्रधानहोमः कथितः विशेषः कोऽपि चात्र वै ।
द्वितीयतुर्यावाचार्यः स्वयमेव वदेन्मनून् ॥
सर्वाशिषोऽन्वाचयीत ।
कुमारेण प्रयत्नेन ह्याचार्योऽत्र शनैः शनैः ॥

जघतादि होमात्परतः ब्रह्मणः पुरस्तदा । कूर्चे कुमारदत्ते मनुनैव वै ॥

....

....

मन्त्रवतो द्विजान् । प्रार्थयति तदुक्त्यैव पादप्रक्षलनादयः ॥

तदर्थितो विधानेन सावित्रीं भो इतीव वै ।

संप्रार्थितोऽथ जप्ताश्च तद्गायत्र्यर्चनात्परम् ॥

सावित्रीमेव तां देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ।

पादशोऽर्धर्चशस्सर्वां क्रमेण व्याहृतीयुताम् ॥

पादेष्वन्तेषु वा कृत्वा वदेद्ब्राह्मणवृन्दके । वटु स्ततश्चगुरवे वरं दद्याद्गुरुस्ततः ॥

तं वरं प्रतिगृह्य न्यादेव विधानतः ।

देवस्य त्वेतादिकश्च यथावत्तद्यजुर्जपेत् ॥

उदायुषेति चोत्थाप्य तच्चक्षुरिति तत्परम् ।

आदित्यमुपतिष्ठेत यस्मिन्भूताख्यतन्त्रकम् ॥

कृत्वथामौ निक्षिपेच्च समिधः प्राङ्मुखो वटुः ।

तत्पूर्वधृतदण्डस्सन् उपतिष्ठेद्विभावसुम् ॥

समन्त्रस्सुश्रवश्चेति पालाशो दण्ड उच्यते । ब्राह्मणस्य क्षत्रियस्य नैयमोधस्समग्रकः ॥

औदुम्बरो बादरो वा दण्डो वैश्यस्य चोदितः ।

दण्डधारणतः पश्चात् स्मृतं च स यजंष्यपि ॥

प्रवाचयति विधिना पिता पुत्रेण तत्सदः ।

यदग्नेरपि पश्चात् भूयासमिति तत्परे ॥

चरमे परमे जाते वह्निकार्यं वटोर्मतम् ।

पश्चात्तदग्निकर्मान्ते पिता पुत्रं विधानतः ॥

शिक्षयेन्मनुना तेन ब्रह्मचार्यसि तत्परम् । आपोशानेत्यादिकैश्च तत्सर्वत्र च तद्वटोः ॥

वाक्यं च वाढमित्येव वाचयेदिति सा श्रुतिः ।

पश्चात्तु मारुभिक्षा सा विधिना कारयति च ॥

पदत्रयेण सा साक्षात् प्रकार्या ब्राह्मणैरिति ।

तत्राद्यं भवतीत्येव पदं तत्परमप्यथ ॥

भिक्षां देहि पदद्वन्द्वं क्रमोऽयं मनुनोदितः । भवन्मध्ययामराजा वैश्यस्तु भवदंत्यया
 भिक्षेतैव विधानेन भिक्षायाः परतोऽपि वा ।
 तत्संशासनमित्युक्तं भिक्षाकाले स्वयं गुरुः ॥
 नमस्काराय तन्मातुः स्वगोत्रप्रवरं वरम् ।
 वाचयीत विधानेन तद्वाचनविधिस्त्वयम् ॥
 कर्णौ पिधाय ह्रस्वाभ्यां नमस्कार निमित्ततः ।
 चतुः सागरपर्यन्तं गोद्विजेभ्यः शुभं ब्रुवन् ॥
 भवत्वित्येव तत्पादौ गृहीयाच्च ततः पुनः ।
 साष्टाङ्गं संप्रणम्यैतां भवतीत्यादिकं वदेत् ॥
 त्रिवारमेवं प्रथमे दिवसे निखिलेऽप्यति ।
 प्रवदेन्निखिलायां च भिक्षायां मौञ्जिवन्धने ॥

तद्विन्नदिवसेष्वेव सकृदेव वदेदति । मौञ्जीदिने मातृभिन्ना निखिलाश्च चिरंतनीः ॥
 न तु भिक्षां चाचयीत भिक्षाद्रव्यं च तद्दिने ।
 अक्षतांस्तण्डुलान् रम्यान् नारिकेलादयोऽखिलाः ॥
 फलानां ये विशेषाः स्युः भक्ष्याणां ये विशेषकाः ।
 हिरण्येन प्रदातव्या ताम्बूलेनाञ्जलित्रिकात् ॥
 नमस्कृतास्तेन नार्यः सर्वा लौकिकवाक्यतः ।
 तस्यमूर्धन्यक्षतान् रम्या शीं निरीक्षितः ॥
 अधीत्य चतुरो वेदान्साङ्गान् शास्त्राणि षट्पदम् ।
 पुराणस्मृतिशिल्पांश्च दीर्घायुष्मान् गृही (भवेत्) ॥
 दृष्ट्वा च निखिलाङ्गैः पुत्री पौत्री फलन्मनाः । कृतकृत्यो भवत्येव प्रयुञ्जीरन्महाशिषः ॥
 लब्धां भिक्षां च तां सर्वामाचार्याय निवेदयेत् ।
 यावदध्ययनं ह्येष भिक्षान्नो हि भवेद्भुवम् ॥
 सम्यक्कृत ब्रह्मचर्यं समिदाधानकोऽप्ययम् । अनुष्ठिताचार्यकुलवासो विप्रो भवेदपि ॥

मौञ्जी लब्धां ततो भिक्षां सद्य एव तदा किल । आचार्याय प्रयच्छन्ति महाकुलसमुद्भवाः ।

मौञ्ज्याङ्गदक्षिणां शक्त्या ताम्बूलानि पृथक् पृथक् ।

सदस्येभ्यो द्विजातिभ्यः प्रयच्छेद्देवचेतसा ॥

न्यकुर्यान्न तु तत्कुर्यात् तिरस्कुर्यान्न बाडवान् ।

पूजयेच्च शिवैर्वाक्यैः दानमानादिभिस्तदा ॥

यावन्तो वै सदस्यास्तु तावन्तो दक्षिणार्हकाः ।

विधवानां वर्णिनां च ताम्बूलं न कदाचन ॥

प्रदद्याथा स्तूर्णं किंतु दृष्ट्वा विसर्जयेत् ।

याचकेभ्यो द्विजातिभ्यो दरिद्रेभ्यो विशेषतः ॥

सततं सन्नरित्रेभ्यः प्रदद्याद्दक्षिणाः शिवाः । केभ्यो नटेभ्यो वा विटेभ्यः सभ्य एव वा

सद्दूषकेभ्यः पापेभ्यः शैलूषेभ्यो मलेस्वपि ।

असदर्पणबुद्धिभ्यः श्रोत्रियेभ्यो विशेषतः ॥

न सत्कर्मसु तेभ्योऽर्थं तूष्णीकं न विसर्जयेत् ।

अभ्यनुज्ञानिमित्तार्थं निक्षिप्तं यद्धनं तु तत् ॥

यज्वभ्यः श्रोत्रियेभ्यश्च विद्वद्भ्यश्च विशेषतः ।

मन्त्रार्थविद्भ्यो देयं स्यादन्यानर्थं हेतवे ॥

तद्धनं प्रभवत्येव ततस्तस्मान्न चाचरेत् । पलाशहोमपर्यन्तं मौञ्जीकर्म प्रचक्षते ॥

तावदन्नं यथा शक्त्या ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।

तृतीयदिवसे मौञ्ज्याः प्रकुर्यात्सुमहाशिवः ॥

तस्मिन्काले विशेषेण विष्णुलक्ष्म्या समायुतः ।

सान्निध्यं प्रकरोत्येव देवो वेदमयो विभुः ॥

तस्मात्तस्मिन् विशेषेण वेदवन्तो द्विजोत्तमाः ।

विशेषेण प्रपूज्यास्यः दानमानार्हणादिभिः ॥

कृतं स्वकाले मौञ्ज्याख्यमुत्तमं दिनम् । ब्राह्मस्योत्पादकं स्यादेवमेव न चेतरेत् ॥

तस्मिन्ननुष्ठिते सम्यगेकस्मिन्वा परे ... ।

मौञ्ज्याख्ये परमे दिव्ये कृतान्येवेतराण्यपि ॥

जातृकादीनि कर्माणि गौणकाले कृतान्यपि ।

मुख्यकालकृतानि स्युः उपनीत्या सदैव चेत् ॥

द्रव्यकालादिकैस्तस्य मुख्यस्य यदि संभवे । वैगुण्ये सर्वलोपः स्यादतो ज्ञात्वैतदप्यति

एकां वाऽपि क्रियां विद्वान् मौञ्ज्याख्यां सम्यगाचरेत् ।

तत्रैव मन्त्रसिद्धिः स्यात् तन्त्रसिद्धिः परा शिवा ॥

क्रियासिद्धिः तपस्सिद्धिः श्रेयस्संपन्महोन्नता ।

ज्ञानसिद्धिर्लोकसिद्धिर्भवत्यपि न संशयः ॥

पितोपनयनस्यादौ कर्ता पुत्रस्य धर्मतः ।

स्थिते तस्यापि पितरि पितुः स तु मनीषिभिः ॥

प्रोक्तः कर्तेति परमः तस्यापि पितरि स्थिते ।

स एव मुख्यकर्ता स्यात् पितामह इत्ययम् ॥

असौ कथं भवेत्कर्ता चेति प्रकृते सति । उत्तरं तत्र वक्ष्यामि तत्कर्मादौ तदङ्गके ॥

नान्दीकर्मणि ये देवा अस्य केवलाः ।

प्रभवेयुर्हि नान्यस्य तदुद्देशेन कर्म तत् ॥

समाप्यं किल तेनैव मुख्य कर्ताऽथ मुच्यते ।

ज्येष्ठस्य च पितृव्यस्य पितुः पितृश्चापि च ॥

प्रपितामहस्यासद्भावे पिता कर्ता भवेदिति । पुत्रस्योपनये वच्मि तथाऽन्येषामसंभवे ॥

सतां मातामहादीनां गुरुणामपि दुर्घटे । पिता पुत्रस्योपनीतौ कर्ता स्यादन्यथा न तु

तेषामनुज्ञया चेत्तु तद्धर्षेण सुचेतसा । प्रकृतोऽयं भवेदेव नान्यथा न्यायवादिनाम् ॥

मतिमेव विशेषेण ज्ञातव्यं गुरुबुद्धिभिः ।

आषोडशाद्ब्राह्मणस्येत्युक्तः कालः परो न तु ॥

अधिकोऽसत्कल्प एव वटोस्तस्य तु कुत्सितः । प्राप्तायामधिकायां तु तत्कर्मा नर्हतादिभिः

तदाऽहं कल्प प्रभवे वटोर्मध्ये विनिश्चितः ।

पञ्चमाब्दादिकं कालः परो मुख्यतमो मतः ॥

दशमाब्दे तादृशस्य व्यतीतेऽत्यन्तपातकम् । मातापित्रोश्च बन्धूनां प्रभवेन्नात्र संशयः ॥
वेदाक्षरप्रग्रहणशक्तिमस्तं यदा पिता । यदि नोपनयनेत्सद्यः महत्पातकमश्नुते ॥

मौञ्जीकर्मणि ये विप्राः समाहूतास्तु तत्प्रति ।

न गच्छन्ति न पश्यन्ति ते वै नरकगामिनः ॥

स्वकालातिक्रमे मौञ्ज्या दैवाद्वा मुख्यगौणयोः ।

पातित्यं तत्क्षणान्नूनं जातिभ्रंशोऽपि जायते ॥

उक्तानां षोडशाब्दानां येन केनाऽपि कर्मणा ।

व्यतिक्रमेत्तस्य यतो मौञ्ज्याः स्यान्न प्रयोजनम् ॥

हठाद्यद्यपि कृत्वा वा ब्राह्मण्यं नाऽऽप्नुयादसौ ।

किं त्वब्राह्मण्यमाप्नोति पाङ्क्तयो न भवत्यपि ॥

सत्कर्मकालासंभाष्यः नेक्षणीयश्च पैतुके । सत्कर्मणि महायज्ञे सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥

सन्ध्योपनयनात्पश्चात् कालेषु त्रिषु सा भवेत् ।

अग्निकार्यं तथा स्नानं तथैवाऽऽचमनक्रिया ॥

कर्मणामपि सर्वेषां नित्यमाहान्तयोर्भवेत् ।

सन्ध्यात्यागे ब्राह्मणोऽस्य ब्राह्मण्यं ना मश्नुते ॥

ब्राह्मण्यं स्नानसन्ध्याभ्यां नान्येनैतत्प्रजायते ।

सन्ध्याकार्यौ यदा मौञ्जी विद्यार्थस्य च केवलम् ॥

सावित्रग्रहमारभ्य यथा सन्ध्या तथा पुनः । ब्रह्मयज्ञश्च गायत्र्या भवेत्तत्तर्पणं तथा ॥

दीपकर्मक्रियायास्तु तथा सायं विधीयते । तत्पदं वेदमुखतः भवेन्नित्यं द्विजन्मनाम् ॥

मध्याह्ने ब्रह्मयज्ञस्य मुख्यकाल उदाहृतः । प्रातःकालादिकस्सर्वस्तत्समो नैव सर्वदा ॥

वेदोपक्रमणं कुर्यात् कृत्योपाकर्म शास्त्रतः ।

अकृत्वा तदुपाकर्म न वेदं समुपक्रमेत् ॥

नित्यं द्विजन्मनां प्रोक्तं श्रावण्यां वेदहेतवे ।

पौर्णमास्यामुपाकर्म प्रथमं ब्रह्मचारिणाम् ॥

प्रथमोपाकृतिसमं नेह कर्म शुभान्तरम् । तत्रैव क्षुरकर्मादौ ततः स्नानान्तरात्पुनः ॥
अभ्यञ्जनं यथावच्च संभवैर्भूषणादिभिः । अलंकारैश्च वासोभिः परैर्नीराजनादिभिः ॥
पीतकौपीननिबन्धदर्पणदण्डमुखैरपि । पीतमौञ्ज्यजिनस्तावक्षौमकुस्तुम्बरादिभिः ॥
प्रवेशनिर्गमाभ्यां च स्वस्तिवाचनपूर्वतः । सर्वमङ्गलवाद्यौघरञ्जनक्रियया तदा ॥
काण्डर्षिवेदहोमेन विरजाहोमतस्तदा । पाहित्रयोदशमहा जपहोमार्चनादिभिः ॥
कामो कार्षीज्जपेनैवं तन्मन्युरजपेन च । वेदाद्युपक्रममहा सत्कर्मक्रियया ततः ॥
तत्समस्तूतमो नास्ति तदाद्येव द्विजन्मनाम् । वेदादानपरिग्राहशास्त्रप्रवचनादिभिः ॥

लोके सर्वत्र दृश्यन्ते तदाद्येव च वर्णिनाम् ।

नित्यं कालद्वये होमः समिधामटवीक्षिताम् ॥

नित्यं कालत्रये सन्ध्यासमतिक्रमणं गुरोः ।

अत्यन्तशिक्षया स्नानं भिक्षाचर्यादिकं तथा ॥

वेदव्रतानां सर्वेषां समनुष्ठानमेव च । तत्तदुक्तेन विधिना तदा द्येव न तत्पुरः ॥

उपक्रमः प्रकर्तव्यः प्राजापत्याख्यकाण्डके ।

प्राजापत्यव्रतमिदं विधिना विधिचोदनात् ॥

कर्तव्यत्वेन कथितं तदारम्भेऽप्युपाकृतिः । उत्सर्जनं तत्समाप्तौ द्वयमेकस्य केवलम् ॥

कर्तव्यमेव तन्मन्त्रैः चरिष्यामीत्यचारिषम् । अग्ने व्रतपतेत्येव तच्चतुष्टयमन्त्रकैः ॥

एवं नवानां काण्डानामाद्यानां करणं बुधैः । पृथक्त्वेन प्रकथितं सोऽन्यानां च ततस्तथा

उपाकृतिस्तथोत्सर्गः नवानां च पृथक् पृथक् ।

तत्तल्लिङ्गैश्च तन्मन्त्रैः तत्तत्काण्डर्षिभिस्तथा ॥

पश्चादाग्नेयकाण्डानां समानां करणं बुधैः । प्रचोदितं विधानेन तत्तत्तल्लिङ्गमन्त्रकैः ॥

अनन्तरं वैश्वदेवकाण्डानां पूर्ववत्तथा । उत्सर्गोपाकर्मणी ते कर्तव्यत्वेन चोदिते ॥

एवं चतुश्चत्वारिंशत्काण्डानां समुपक्रमे । समाप्तौ च यथाशास्त्रमुपाकर्मे ततः पुनः ॥

उत्सर्जनं च कुर्वीत विधिनाऽनेन मन्त्रवित् । वेदं समभ्यसेदुत्तया गुरोरेव सकाशतः ॥

वर्णी सम्यग्वेदमेवं सादयित्वा ततः पुनः ।

तदङ्गानि च तन्मध्ये निद्रालस्यादिवर्जितः ॥

लोभमोहक्रोधहीनः वसन्नित्यं गुरोः कुले ।

श्रोत्रियानागतान्बन्धून् यज्वनो याजकानपि ॥

पितरौ प्रणमन् भक्त्या नित्यं कालद्वयेऽप्यति ।

भिक्षान्नमशनन्प्रयतो मधुमांसादि वर्जनात् ॥

स्वाध्यायकृतशास्त्रौघः सर्वविद्या विशारदः । ऊहापोहविशेषज्ञः क्रियातत्त्वं विशेषवित्

सर्वमन्त्रार्थकुशलः सूत्रतत्त्वविचक्षणः । मीमांसान्यायकुशलः धर्मधर्मिविवेकवान् ॥

अध्वर्यूद्गातृहोतृणां कार्यकर्तृत्वपेशलः । प्रायश्चित्तेन कुशलः स्नातकी प्रभवेदयम् ॥

तानि काण्डानि वेदस्य प्रवदामि च सुस्फुटम् ।

पौराडाशो याजमानो होता (?) हौत्रमेव च ॥

पितृमेधश्च कथितो ब्राह्मणेन च तत्परम् । तथैवानु ब्राह्मणेन प्राजापत्यानि चोचिरे ॥

तत्काण्डौघविशेषज्ञाः वसिष्ठाद्या महर्षयः । तद्विशेष प्रकाण्डार्थः सम्यगेतद्विभज्यते

पौराडाशा इषे त्वाद्या अनुवाकास्त्रयोदश । तद्ब्राह्मणं तृतीयस्यां प्रत्युष्टं पाठकद्वयम्

आद्याः षडनुवाकाश्च विश्वरूपप्रपाठके । समिधो यजतीत्याद्या अनुवाकास्तथा दश

अनुब्राह्मणमेतत्तत्प्रश्नद्वयगतं परम् । सन्त्वे त्याद्या याजमानाः अनुवाकाः षडीरिताः

अनुवाकास्ततः पञ्च पाकयज्ञादिकाश्च षट् । याजमानब्राह्मणानीत्युच्यन्ते वेदवित्तमैः

चित्ति स्नुगादयो मन्त्राः होतार स्तद्विधी इमौ । द्वितीये ह्यष्टके प्रश्ने द्वितीयश्च तृतीयकः

सत्यमित्यादिकः प्रश्न इष्टिहौत्रमितीरिते । देव वै नेति पञ्चाऽनुवाका स्तद्विधाः स्मृताः

परे युवांसं प्रश्नस्तु पितृमेध इतीरितः । इत्युक्तं काण्डनवकं प्राजापत्यं प्रकीर्तितम् ॥

काण्डानामथ सौम्यानां क्रियते च निरूपणम् ।

आध्वर्यका प्रहाश्चैव दक्षिणा (च) ततः परम् ॥

समिष्टयजुषां स्तोमः सोमस्त्वव भृतां तथा । वाजपेयः शुक्रियाणि सवश्चापि तथा पुनः

स ब्राह्मणानि सानुब्राह्मणान्यपि यथाक्रमम् ।

सौम्याख्यानि तु काण्डानि कथितानि महात्मभिः ॥

विशदायात्र वै तेषां पुनस्सम्यङ् निरूप्यते । आप उन्दन्तु देवस्य प्रश्नद्वितयमध्वरः ॥
ब्रह्मसंपवमानोऽनुवाकावप्यध्वरौ मतौ । सजोषा इन्द्रपर्यन्ता आददे प्रमुखा प्रहाः ॥
उदुत्यमनुवाकान्त्रीन् दक्षिणामूचिरे बुधाः । ब्राह्मणत्रयमेतेषां षष्ठः काण्ड उदाहृतः ॥

सत्रात्प्राचोऽनुवाकांस्त्रीन पितद्ब्राह्मणं विदुः ।

उभये वै प्रश्न आद्यः पञ्चमौ षष्ठसप्तमौ ॥

अग्नेः प्रपाठके तुर्यमन्तिमं चतुरस्तथा । अध्वरब्राह्मणं प्राहुरनुवाकानिमानपि ॥

त्रिवृत्स्तोम इति प्रश्नः समाख्यः परिकीर्तितः ।

नमो वाचे तदूध्व्रौ तु प्रश्नौ शुक्रिय तद्विधी ॥

पाकयज्ञमिति प्रश्नः सप्तमाद्याः षडीरिताः । अनुवाका वाजपेयाः तद्विधीन्प्रथमेष्टके
प्रश्ने तृतीये देवा वै यथेत्यष्टौ प्रचक्षते । एवं नवोदितान्काण्डान् सौम्यानाहुर्मनीषिणः

आग्नेयानां च काण्डानां क्रियतेऽथ निरूपणम् ।

अग्न्याधेयं त्वग्निहोत्रमग्न्युपस्थानमेव च ॥

महामिचयनं तद्वत् युञ्जानादिकमप्यति । सावित्रचयनं चैव नाचिकेताख्यकं तथा
तथा वैश्वसृजाख्यं च पुनरारुणकं ततः । तद्ब्राह्मणमनुब्राह्मणश्चापि क्रमतोदितम् ॥
आग्ने काण्डजालं स्याद्वेदमध्य गतं तथा । स्पष्टार्थमधुना भूयः सम्यगेव निरूप्यते
आधानं कृत्तिकास्वादि प्राङ् नवेत्यनुवाकतः । प्रथमे पुनराधानं काण्डे पञ्चमपाठके ॥
आद्यानुवाकाश्चतुरः तथैव प्रथमेऽष्टके । तृतीय पाठक्यानुवाकं च विबुधा विदुः ॥
उपप्रयन्त इत्याद्यमग्न्युपस्थानमुच्यते । समान्तमग्निहोत्रस्याङ्गिरसः पाठको विधिः ॥
उदस्यादनुवाकौ तच्छेष तन्निष्कृतिवत् । अग्निश्चतुर्थकाण्डोऽनुवाकावायुष आदिमौ

तस्य शेषतया प्रोक्तं तस्यैकं ब्राह्मणं बुधाः ।

आदितश्चतुरः प्रश्नानाहुः पञ्चमकाण्डजान् ॥

एकं द्वावेकमेकं चेत्यनुवाकान्विना क्रमात् । उत्तरेषु त्रिषु प्रश्नेष्वनुवाका दशोदिताः

अपरं ब्राह्मणं प्राहुः सप्ताग्नेरिद्धमीरिताः ।

ख्यातान्येवं हि काण्डानि ह्याग्नेयानि मनीषिभिः ॥

अथोच्यते क्रमेणैव वैश्वदेवाख्यकाण्डकम् । राजसूयक्रतुस्त्वेकः पशुबन्धास्ततः परम् ॥
इष्टयः युस्तस्था पश्चात् नाक्षत्रा इष्टयस्तथा । दिवश्येना अपाघाश्च पश्चात्सौत्रायणस्तथा
उपहोमाः सूक्तवाक्यान्युपवाक्यानि तत्परम् । पश्चाद्याज्यानुक्वाश्चाश्वमेधस्ततः पुनः
पूर्वमेधश्च सुमहान् सौत्रामणिरथापरः । अच्छिद्रं पशुहौत्रं च सर्वोपनिषदस्तथा ॥
एतद्वा ब्राह्मणवाक्यानि ह्यनुब्राह्मणमेव च । तथैवैकामिकाण्डश्च वैश्व देवानि षोडश ॥

काण्डानि (विदिता) न्येवं काण्डविद्धिर्महात्मभिः ।

एतेषां विशदार्थाय पुनः सम्यङ् निरूप्यते ॥

आद्य काण्डाष्टमः प्रश्नो राजसूयः प्रकीर्तितः ।

तद्ब्राह्मणं त्रयः प्रश्नाः षष्ठाद्याः प्रथमा(मे)ष्टके ॥

(.....) मग्निर्वा ऋतमेव तदुत्तरः । चत्वारोऽप्यनुवाकाः स्युः राजसूयात्मका इमे ॥
वायव्यं काम्य पशवः परे काम्येष्टयस्त्रयः । प्रश्नास्तृतीयकाण्डान् पानुवाक्यमुदाहृतः ॥

उभावामादयोन्त्यानु वाक्याद्यधिकविंशतिः ।

युक्ष्वाहीत्यनुवाकश्च याज्या विद्वद्भिरीरिताः ॥

समिदिशां जीमूतस्याद्यनुवाकचतुष्टयम् । अग्नेर्मन्वे समिद्धो गायत्री त्रिष्टुप् तदुत्तरः
एकादशादयो योवा अयुधेति च पाठके । अन्तास्तद्वत् सप्तमेऽपि काण्डे प्रश्नचतुष्टये ॥
विवर्जिते चतुर्थेन तुर्ये तु द्वादशादि(धि)काः । अनुवाका अश्वमेधमन्त्रास्तद्ब्राह्मणं बुधाः
प्रपाठकौ संगिरन्ते साङ्ग्रहण्या तदुत्तरौ । प्रजापतेः पवस्वानुवाकावपि तथेरितौ ॥
यदेकेनादिके प्रश्न द्वयोऽप्येकादशादिकाः । यो वा अग्नौ ततः पूर्वं माग्नेयोष्टा तदुत्तरः

यो वा अश्वस्य ते चा (.....) स्तद्विधयः स्मृताः ।

सांत्रायणं त्वङ्गिरसमित्रादि समुदाहृतम् ॥

चमवित्यनुवाकान्तमश्वमेधविवर्जितः ।

न वै तान्यनुवाकांश्च पञ्च सौत्रायणं विदुः ॥

जुष्ट प्राणादिकौ प्रश्नावुपहोमान्प्रचक्षते ।
आहुः सूक्तानि विबुधाः पीबोन्नमिति पाठकम् ॥
अञ्जन्ति त्वामिति प्रश्नः पशुहौत्रमुदाहृतम् ।
स्वर्द्धीत्वा सर्वा नग्निर्न इति प्रश्ना यथाक्रमम् ॥

सौत्रामण्यच्छिद्रनक्षत्रेष्ट्यस्सामुदाहृताः । आद्योऽके पञ्चमस्य पाठकस्यादिमा अपि ॥

अनुवाकास्त्रयो नक्षत्रेष्टिकाण्डतया मताः ।
सौत्रामणेः शेष उक्तोऽनुवाकोऽयं युवस्विति ॥

अष्टौ तु काठके हव्यवाडादीनां प्रचक्षते । संज्ञानमिति सावित्रो नाचिकेतस्ततः परः ॥
प्रोक्तो ब्रह्मानुवाकश्च चातुर्होत्रिय ईरितः । प्रोक्तो वैश्वसृजोऽयं चेत्यनुवाकचतुष्टयम् ॥
तेषां चतुर्णां काण्डानां हव्यवाड् ऋषिरीरितः ।
तुभ्यं देवेभ्योऽनुवाकौ दिवःश्येनेष्ट्यस्तथा ॥

तपसा देवेभ्य इति त्वपाघा उदिता बुधैः । ऋषयो वैश्वदेवास्तु काण्डयोरनयोर्मताः ॥
भद्रं कर्णेभिरित्युक्तः प्रश्ने अरुण केतुकः । अरुणाः काण्ड ऋषयस्तस्य तत्रैव कीर्तिताः

शं न इत्यनुवाकानां द्वादशानां मनीषिभिः ।
सांहित्यो देवताः उपनिषदः सं प्रकीर्तिताः ॥
उत्तरेषां त्रयाणां तु वारुण्यस्समुदीरिताः ।
प्रपाठकस्याम्भसीति याज्ञिक्यः प्रतिपादिताः ॥
स्वाध्यायब्राह्मणं प्राहुः सहवा इति पाठकम् ।
ब्रह्मा स्वयं भूः स्वाध्याय ब्राह्मणस्यर्षिरुच्यते ॥

प्रश्नः पुरुषमेधस्तु तृतीयाष्टक तुर्यकः । राजसूयादिका वैश्वदेवाः काण्डास्तु षोडश ।

एवं चतुश्चत्वारिंशत्काण्डानां तैत्तिरीयके ।
महाशाखाविशेषेऽस्मिन् कथिता ब्रह्मवादिभिः ॥
सर्वेषामपि चैतेषां काण्डानां तु पृथक् पृथक् ।
उत्सर्जनोपक्रमयोः काण्डर्षिं तं प्रधानकम् ॥

कृत्वा पतिं च सदसः कुर्यात्तस्मिन्द्वितीयकम् । सूक्तोपहोमांश्च तथा कुर्वीतैव विधानतः
 उपस्थानं ततः कुर्यादग्ने व्रतवदादिभिः । सर्वं निवर्तयेत्कर्म जयादिकसमन्वितम् ॥
 एतद्ब्रतं महानुष्ठानात्परं निखिले परे । अधीत्य वेदं वेदौ वा वेदान्वा वेदमेव वा ॥
 स्नानं कुर्याद्विधानेन गुर्वनुज्ञाप्रपूर्वकम् । तदुत्तरायणे कार्यं माघादिष्वेव केवलम् ॥

मुख्येषु कुर्याद् गौणेषु न कदाचन तां क्रियाम् ।

शुभे दिवसनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते ॥

स्नानं करिष्येति विप्र समीपे प्राग्विचक्षणः ।

सूर्योदयस्य गोष्ठं तमन्तर्लोम्ना स चर्मणा ॥

कृष्णाजिनेनापिधाय मौनी तिष्ठेदतन्द्रितः । सेवेत नातपं तस्मिन् दिवसेऽथविचक्षणः
 मध्याह्ने समिधार्भि तं प्रतिष्ठाप्य विधानतः ।

पात्रप्रयोगकाले तु समित्सूत्रादि वस्तु तत् ॥

यथार्हं प्रयुनक्त्यत्र चैकमेकं क्रमेण वै । तानि सर्वाणि पात्राणि मानुषाणि यतस्ततः ॥

पश्चात्तदाज्यभागान्ते इमं थं स्तोममर्हतः ।

पालाशसमिधं वह्नौ निक्षिपेदेवं तां स्थिताम् ॥

पश्चादग्नेरुपविश्य चेरकायां कटेऽपि वा । त्रियायुषेति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य क्षुरमेव तत् ॥

वज्रे प्रदद्याद्यजुषा ततः केशनिधनान्तकम् । समानमेव कथितं जघनार्थं व्रजस्य वै ॥

स्व मेखलां मन्त्रधृता विस्तस्य ब्रह्मचारिणे । दद्यात्तद्धारणार्थाय तां गृह्याथ सवर्ण्यपि ॥

इदमहमिति मन्त्रेण दर्भस्तम्बेऽथवा तथा । उदुम्बरस्य मूले वा उपगूहेत तामथ ॥

आपोहिष्ठेति तिसृभिः हिरण्येति च मन्त्रकैः ।

स्नापयीत विधानेन स्नानानन्तरमेव वै ॥

औदुम्बरेण काष्ठेन कुर्याद्वै दन्तधावनम् । उद्धर्तनं स्नानीयेन पुनः स्नानं विधानतः ॥

कृत्वा वासोहतं नूतनं सोमस्येति च मन्त्रतः । परिधाय प्राङ्मुखतः चन्दनं परमोत्तमम्

सुगन्धरम्यं नूतनं च नमो ग्रहमुखैः परैः ।

मनुभिर्देवताभ्योऽथ गन्धं दत्वा द्विजन्मनाम् ॥

महात्मनां सदस्थानां चापरास्विति मन्त्रतः ।

• स्वात्मानमनुलिप्याऽथ मणिं सौवर्णमेव च ॥

सूत्रप्रोतमलंकारयोग्यमौषधतस्ततः । उदपात्रे परिधान्यापाशोऽसीति मन्त्रतः ॥

सार्धतः कण्ठमूलेन धृत्वा तन्मणिमालिकाम् ।

ततो वादरिकं नूत्नं मणिं कृत्वा च पूर्ववत् ॥

अमन्त्रकं हस्तमूले विभृत्याद्विधिनैव वै । तद्धारणं वामकरे दक्षिणे प्रतिसरं यतः ॥

ततस्तदुत्तरं वस्त्रं रेवतीस्त्वेति मन्त्रतः । धृत्वा तस्य दशायां च प्रवृत्तौ विधिना कृतौ ॥

प्रबध्य तूष्णीं तत्पश्चात् दर्व्यामादाय तेन वै ।

आज्यमादाय विधिना चायुष्यमिति मन्त्रकैः ॥

अष्टभिश्चापि जुहुयाज्यादीनपि हावयेत् । ब्रह्मोद्गासनकालेऽथ प्रवृत्तश्चैकमुत्तमम् ॥

चतुर्भिरेव विभृत्यादितरंच तथैव वै । शुभिके शिरमन्त्रेण स्रजां शिरसि धारयेत् ॥

यामाहरदिति मन्त्रेण मालिकां च परिग्रहेत् । यदाऽञ्जनेति मन्त्रोणाङ्क्ते तच्चक्षुषी तदा

मयि पर्वतमन्त्रैस्तैः चतुर्भिरथ वैकतः । पर्वतं समुदेक्षेत यन्मे वर्चेति मन्त्रतः ॥

आदर्शनं समुद्वीक्ष्य प्रतिष्ठेत्स्थेति मन्त्रतः । उपानहौ योजयीत पादयोरिति तत्कमः ॥

पूर्वं दक्षिणपादे वै ततः स्पष्टं हि केवलम् । प्रजापतेरिति ततः छत्रं नूत्नं धरेच्च वै ।

देवस्य त्वेति मनुना वैणवं दण्डमेककम् । भृत्या द्वैसदो मध्ये पश्चाद्वाचं च यच्छ्रुति ॥

नक्षत्रोदयपर्यन्तं नक्षत्रेषूदितेष्वथ । दिशं प्राचीमुदीचीं वा दिशं निष्क्रम्य वैधतः ॥

दैवीष्णुर्वीरित्येतदर्थत्रयकं ऋच्छतः । उपस्थाय दिशः सर्वां नक्षत्राणि ततस्तदा ॥

पश्येच्चन्द्रमसं चापि पश्चान्मित्रेण येन वा । केन वा भाषणं कुर्यात्पत्नीलाभाय केवलम्

यावत्प्रयोजनं ब्रूयादधिकं नैव तद्वदेत् । एवं कर्तुं शक्तिहीनः मन्त्रसंस्कारदुर्भगः ॥

तूष्णीममन्त्रकं सर्वं कुर्यादिति विधिस्तु ।

कोऽपि गौणश्च कथितः न मुख्य इति वैदिकाः ॥

प्रोचुः किल महात्मानः तस्मादक्षस्तथा चरेत् । स्नानमेतद्विधानेन कृत्वा तत्परमेव वै

सद्य एव विधानेन लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् । अनाश्रमी क्षणमपि न तिष्ठेदिति गौतमः ॥

व्रती न ब्रह्मचारी स्यान्न गृही. न वनी यतिः ।

अतस्तस्मिन्दिने यत्नाद् द्वितीयाश्रममाचरेत् ॥

सती ज्येष्ठे विना तं वै हित्वा स्नात्वा स्वयं त्वरन् ।

विवहेन्न तु तूष्णीकं सोऽनर्थस्सुमहान्भवेत् ॥

परिवेत्ता भवेत्तत्र तज्ज्येष्ठस्तत्कनीयसः । परिवित्तिरिति ज्ञेयः तावुभौ सेवकर्मणाम् ॥

अनर्हौ द्विजवृन्देषु निन्दितौ कुत्सितावपि ।

ज्यङ्गं नेच्छन्तौ पापौ पतितौ पापिनौ ततः ॥

वर्जनीयौ भवेतां वै प्रायश्चित्तशतैरपि । शुद्धात्मानौ भवेतान्न यावदाचन्द्रतारकम् ॥

कृत्यमेतदति क्रूरं प्रायश्चित्तबहिष्कृतम् । दत्ते वर्णिनि तिष्ठेत्तु यदि जातस्तदौरसः ॥

तस्यैव ज्येष्ठता तस्य विवाहानन्तरं परम् । दत्तस्य कार्यं उद्वाहः नोचेत्तस्य दुरात्मनः

न दोषो जायते घोरः प्रायश्चित्ताक्षमो महान् ।

तद्दुष्टं परिवित्तत्वं परिवित्तित्वमेव च ॥

मौखी विवाहयज्ञैस्तैः तत्पूर्वकरणत्वतः । उभयोर्जायते नूनं तयोर्ज्येष्ठकनिष्ठयोः ॥

अनुजोद्वाहतः पश्चात्तज्ज्येष्ठः करपीडनम् । स्वस्य त्यक्तवैव तूष्णीकं यदि तिष्ठेत्ततः पुनः

प्रायश्चित्तशतैः स्वस्य गृहोल्का तुलितोऽपि वा ।

विप्रश्रेणी निवासाय विप्रैस्संचारिणाय वा ॥

अर्हाभासो भवेत्सत्यं न चेद्वच्मि ततः पुनः ।

श्मशानोल्का समानस्याद्ग्रामावासा क्षमस्तराम् ॥

प्रभवेदेव स ज्येष्ठः कारणान्तरकल्पनात् । विवहेद्यदि पापात्मा कुलनिर्मूलकारकः ॥

कपालचण्डालसमः न ग्रामस्थानमर्हति । अयं विधिः कन्यकानां सम इत्येव सर्वतः

सर्वेषामपि वर्णानां धर्मज्ञैः समुदाहृतः । यमयोः पुत्रयोर्मध्ये पूर्वं जातः कनीयसः ॥

पश्चाज्जातस्तु विज्ञेयो ज्येष्ठः कर्मसु सत्कृतः ।

आहिताग्निः सोमयाजी क्षुद्रजिह्वद्विजिन्महान् ॥

जाताष्ट पुत्रोपाषज्ञ अपि दत्तः स्वयं सुधीः । जननादौ रसस्यायं कनिष्ठत्वं प्रपद्यते ॥

अनुपेतोऽप्ययं पुत्रः पितृकर्मणि संगते । ज्येष्ठत्वं समवाप्नोति कनिष्ठत्वं न विन्दति ॥

औरसे सति दत्तस्तु स्वकर्तृत्वेन पैतृकम् ।

क्रियां यदि चरेन्मोहात्सा क्रिया विधिशून्यतः ॥

कृतप्राया न भवति पुनः करणमर्हति । यावत्पुनः क्रिया पुत्र औरसेनाचरेजडः ॥
पितृक्रियां स्वकर्तृत्वधर्मेण जनितश्रमः । पिता तावत्तस्य नूनं प्रेतत्वेन प्रपीड्यते ॥
अयं तावत्सूतकस्य यावत्तत्कर्मशास्त्रतः । करोति विधिना भक्त्या सर्वकर्मसु गर्हितः
तस्माद्धर्मेण विवहन् धर्मज्ञः स्वकुलोद्भवैः । स्वबन्धुभिः स्वमित्रैश्च सर्व शास्त्रविदुत्तमैः ॥
समालोच्य प्रयत्नेन सर्वधर्मविवृद्धये । कन्यकां सत्कुलोत्पन्नां सुलक्षणसमन्विताम् ॥
सर्वावयवसंपूर्णां दृढाङ्गां रोगवर्जिताम् । असमानार्णगोत्रां च विवहेच्च यवीयसीम् ।

वाग्दत्तां कार्यं सिद्धयर्थमन्यं नैवा ततादिभिः ।

गुप्तां दुर्लक्षणभिया विकटां ह्रस्वकेशिनीम् ॥

अतिनीचामतिक्रूरां निष्ठूरोक्तिमतीमिति ।

अतिरक्तामतिजवामति भाषणलोलुपाम् ॥

करालीं कालिकां रुग्णां पलितां रक्तमूर्ध्वजाम् । अत्यन्तलीलापरमां चरमां चण्डनिष्ठुराम्
कुनलीं श्वेतां निद्रामदसमाकुलाम् । लोलुपां मददिग्धाङ्गीं महारतिपरायणाम् ॥

नित्य दुःखमुखीं भीरुं वक्राङ्गीं वक्रनासिकाम् ।

अतिदुर्गन्धवदनां भीमदन्तां भयङ्करीम् ॥

कपूय कण्ठागरलां चटुलां नित्यहासिनीम् ।

अतिपाह्वय परमां महामालिन्यचेतसाम् ॥

मार्जालनेत्रां पृथुलभीमौष्ठ पुटनासिकाम् ।

संकां सांकरिकां जाड्यमालिन्यपरमां खलाम् ॥

दीर्घरोमाङ्किततनुं शार्दूलस्वरदुर्धराम् । कलिशीलां विशेषेण मतिमान् संपरित्यजेत् ॥

पालिकां खनुजां कुञ्जं वर्षकारीं विहाय च ।

वरयेत् कन्यकां धीमान् स्वीयवंशाभिवृद्धये ॥

शकुनानि परिक्षयादौ विचिन्त्य च पुनः पुनः ।

निमित्तान्यपि दिव्यानि हृदयाह्लादकान्यपि ॥

दृष्ट्वा विवाहयेत्कन्यां चापल्यात्स्वरितेन च ।

व्यामोहं गमयेन्नैव न तल्लग्नो भवेदपि ॥

बन्धुत्वेनागतान् दूरात्कन्यां दातुं समुद्यतान् ।

वयोऽधिकां कार्यकारां लोभात्तां न तु विश्वसेत् ॥

दूरबन्धून्प्रयत्नेन चिरकालविचारतः । वचनादिष्टबन्धूनां संबन्धाय परिग्रहेत् ॥

बन्धुत्वेनागतान्दृष्ट्वा पुरस्कुर्यादतीव च । सुप्रसन्नमुखो नित्यं पूजयेद्भोजयेदपि ॥

शक्त्योपकारं कुर्याच्च दानमानार्हणादिभिः ।

(?) न च क्रुध्यात्तिरस्कुर्यान्न तान्सुतः ॥

मिथ्यावाक्यानि तैर्ब्रूयान्नावमन्यन्न भीषयेत् ।

पूर्णकामान्प्रकुर्वीत सत्यां शक्त्यां तदर्शितान् ॥

सर्ववस्तुविशेषांश्च प्रदद्यादापयेत्तथा । यस्य गेहान्निवर्तन्ते पूर्णकामाः समागताः ॥

तस्य श्रेयः संपदश्च वर्धन्ते शुक्लचन्द्रवत् ।

अभ्यागता यस्य गेहादर्थिनो बान्धवाः स्वकाः ॥

मित्रादयो ब्राह्मणा वा तस्य सा श्रीर्विनश्यति ।

निमित्तानि मनोज्ञानि पश्यन्विप्रैस्सुहृद्गतः ॥

कन्यादातुर्गृहं गत्वा बन्धुभिर्ग्रामवासिभिः ।

पुण्याहवाचनं मन्त्रैः कारयित्वा विधानतः ॥

अनुहा...म...मन्त्रस्तान् स्वयं जप्त्वा तदा तदा ।

दर्शने दुर्निमित्तानां वाचं यच्छन्दिजन्मभिः ॥

स्वस्त्ययनमिति मन्त्रमथं होमुचमेव च । शिवं शिवमिति यजुः जपन्वा जापयेदपि ॥

कल्याणादौ विशेषेण वाचयंस्तद्गृहं व्रजेत् ।

गृहाद्बहिस्तस्य पादौ प्रक्षाल्याचम्य सिद्धये ॥

प्राणानायम्य विधिना देशकालौ प्रकीर्त्य च ।

तिथिं वारमृतुं मासं पक्षेण च समन्वितम् ॥

समुच्चार्य प्राकृतेऽस्मिन् न द्यौर्हं स्त्रियमुद्वहेत् । इति संकल्प्य तत्पश्चाद्रक्षावन्धनमेव च ॥
कृत्वा यज्ञोपवीतं तद्धृत्वा तन्मन्त्रतस्ततः । चतुरो ब्राह्मणान्नत्वा मदर्थं यूयमद्य वै ॥

कन्यां वृणीध्वं मद्योग्यां यद्वन्धुषु महोन्नताम् ।

इत्युत्तवा तान्ततो मन्त्रावादिमौ प्रेषधर्मतः ॥

उत्तवा तान्प्रेषयेच्चापि प्रेषिता स्तेन तेऽपि वै ।

गत्वा कन्याप्रदातारं प्राङ्मुखं समवस्थितम् ॥

स्वयं तदुन्मुखो भूत्वाऽथवा ते ब्राह्मणः स्वयम् ।

उदङ्मुखं प्राङ्मुखं च प्रत्यङ्मुखमथापि वा ॥

समुद्दिश्य वदेयुर्वै प्रपितामहपूर्वकम् । नणो पौत्राय पुत्राय चायुष्मै च सशर्मणे ॥
साक्षाच्छचीन्द्ररूपाय गौरीशंकररूपिणे । वाणीभाषा स्वरूपाय लक्ष्मी गोविन्दरूपिणे
नान्नोपेतामिमां कन्यां नन्त्रीं पौत्रीं च पूर्ववत् । सर्वमुत्तवा तत्क्रमेण वदेयुस्ते वृणीमहे
इत्युक्ते तैरथ पिता कन्याया स तु चेतसा । चाञ्चल्यरहिते नैव संमत्या स्वजनस्य च

निखिलस्य कलत्रस्य मित्रवर्गस्य कृत्स्नशः ।

वृणीध्वमिति संभाष्य तस्मै दास्यामि संप्रति ॥

इत्युत्तवैव ततस्तेभ्यो दत्त्वा ताम्बूल चेलके । प्रेषयित्वा तमामन्त्र्य स्वस्तिवाचनपूर्वकम्
सर्वमङ्गलवाद्यौघचिरण्टीगानपूर्वकम् । अभ्यञ्जनस्तनानमुखं कारयित्वा च शास्त्रतः ॥

अलंकारासने रम्ये स्थापयित्वा स्वयं ततः ।

पत्न्या समुपविश्यैव प्राणानायम्य वाग्यतः ॥

महासंकल्पमुच्चार्य मद्दं श्यानां मया सह । दशापरेषां पूर्वेषां पितृणां मुक्तिहेतवे ॥

चन्द्रमण्डलपर्यन्तं यव संख्याभिरेव वै । सूर्यमण्डलपर्यन्तं तिलसंख्याभिरेव च ।

सर्षपाभिस्सप्तऋषि लोकेपर्यन्तमित्यपि ।

वालुका ध्रुवलोकाख्यपर्यन्तं ब्रह्मलोकाप्तिसिद्धये ॥

महादानान्तवृत्तिं कन्याकादानमुत्तमम् । करिष्यामीति संकल्प्य तस्यै कुर्यात्ततः परम्
मधुपर्कमहापूजां तद्विधानेन पण्डितैः । कन्यादानात्परं वापि पूर्वं वा तं यथाविधि
कुर्याद्विवाहे जामात्रे सम्यगभ्यर्च्य शक्तितः ।

संकल्पानन्तरं तत्रायं ते कूर्चा इति स्वयम् ॥

कन्यादाता स्वयं दद्यात् कूर्चं दर्भमयं शिवम् । वरोऽथ तत्र मन्त्रेण राष्ट्रेत्युपविशेत्ततः ॥

आपः पाद्या इति प्रोक्ते आपः पादावनेजनीः ।

इति मन्त्रं जपेत्सम्यक् पश्चात्कर्ता स्वयं वरम् ॥

पादौ प्रक्षाल्य पूर्वं तु दक्षिणाङ्घ्रिमुखेन वै । पत्नी प्रदत्तनीरेण चन्दनेनार्चयेच्च तौ ॥

तदा वरो मन्त्रयेच्च मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।

आमागन्नित्यपि तदा विराजो दोह इत्यपि ॥

तच्छिष्टसलिलं पूर्वं नीयमानं जपेत् च ।

समुद्र(द्रादि)मिति मन्त्रेण मत्परोऽन्तं वरो जपेत् ॥

मधुपर्क त्रयोच्चारे तस्य विद्यामनुं जपेत् । आमागन्निति मन्त्रं चामृतोपेति मन्त्रतः ॥

तत्पत्नीप्रत्तसलिलं पश्चिमाभिमुखस्थितः । पिबेदेव वरो हस्तात्तदाचमविधानतः ॥

यन्मधुनो मधव्येन मधुपर्कं सकृत्ततः । सकृत्प्राश्य ततः तूष्णीम् द्विवारं भक्षयेत्परम् ॥

उत्तरेणाऽथ यजुषा पुनर्नीरं वरः पिबेत् । कन्यादाता गौरि त्युक्ते गौरस्यप मनुं जपेत्

समेत्यत्र स्वनाम्नो वै षष्ठ्यन्तोच्चारणं भवेत् ।

तदाऽमुष्येत्यत्र पश्चात्कन्यादातुश्च नाम तत् ॥

षष्ठ्यन्तोच्चारणं कुर्यात्स्वयमेव वरस्तदा । अग्निः प्रवाशनातु मन्त्राणां सर्वेषां केवलं जपः

ओमुत्सृजत पर्यन्तं कलौ कार्यस्समग्रकः । सिद्धमन्नं भूतमिति पश्येदित्यपि केचन ॥

प्रोचुर्महान्तो विबुधाः तदन्नस्य निरीक्षणम् ।

वरस्य विधिरित्येव सा विराडिति तत्परम् ॥

ओंकल्पयत पर्यन्तं जपेदिति विपश्चिताम् ।

आचारः सुमहानेवं तस्यान्ते सुमहानयम् ॥

साक्षाद्गो मधुपर्कोऽयं निन्दितः शास्त्रवेदिभिः ।

मधुपर्कस्य कालोऽयं विवाहः प्रथमो मतः ॥

अनूचानागमः पश्चात् श्रोत्रियस्यागमः परः । श्वशुरस्यागमो राज्ञः वत्सरात्परतः खमु
प्रायेण महतां पूर्वं कन्यादानस्य चोदितः । मधुपर्को महाभागै रयमेव महत्पथः ॥

कन्यादानात्परं सोऽयं केषां चित्खलु केवलम् ।

आचारो दृश्यते तस्माद्विकल्प इति तं विदुः ॥

कन्यादानात्पूर्वमेव कन्याव्रतमुखादिकम् ।

सत्यो महत्यस्तज्ज्ञास्तास्तदम्बाद्यास्तु तत्करात् ॥

प्रकुर्युरिति धर्मज्ञ समयो वैदिकैरपि । समनुष्ठित एवायं तद्व्रतं चेदमुच्यते ॥

गौरीपूजा शचीपूजा सर्वा अङ्कुरदेवताः । यास्तासामत्र पूजा च तत्तन्नाम पदैः परैः ॥

चतुर्थ्यन्तैर्विधानेन सा कार्याऽऽसनमूलकैः ।

... निशाबिम्बद्वये गौरि शच्या ते तत्र कल्पयेत् ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयादिषोडशैरुपचारकैः । प्रदक्षिणनमस्कारैः स्तोत्रैर्मङ्गलकारकैः ॥

अर्चयित्वा ततो भूयो मौनकाष्ठेन यत्परम् । तथा यत्कुशते ध्यानं तत्कन्याव्रतमुच्यते
कन्याव्रतात्परं कन्यादानसंकल्प इत्यपि । केचिदाहुः महात्मानः तत्प्रातरिति केचन

तत्परां तादृशीं कन्यां पत्न्यादाय सहैव वै ।

स्वयं प्राङ्मुखमासीनः पश्चिमाभिमुखस्य तु ॥

वरस्य वस्त्राभरणविहितस्य पुरोऽस्य वै । स्वस्य चाभ्य(भ्युप) विष्टस्य वेणुद्वन्द्वस्थितिर्भवेत्
तद्वधूवरयोस्तत्र पादद्वन्द्व स्थितिर्भवेत् । पूर्ववत्पुनरुच्चार्य स्वगोत्रप्रवरे तदा ॥

प्रपितामहपूर्वेण नर्त्रीं पौत्रीं सुतां च ताम् ।

लक्ष्मीं स्वरूपिणीं कन्यां लक्ष्मीनारायणस्य वै ॥

स्वरूपिणेऽद्य ते भूयो वरायेति च तत्परम् । प्रजासहत्वं कर्मभ्यः इत्येवं प्रतिपादयेत् ॥

प्रतिपादयामीति वदन् धर्मे चार्थे च तत्परम् ।

कामेनाचरितव्येति कर्ता वरमुदीरयेत् ॥

तच्छ्रुत्वाऽथ वरः पश्चाद्वह्निर्वाहणसंनिधौ ।

वदेन्नातिचरामीति स्वस्ति प्रतिवचो वदेत् ॥

तत्परं फलताम्बूलहिरण्याभरणादिभिः । शालग्रामेण च गवा धरणी क्षेत्रमन्दिदैः ॥
संगृह्यावरणाद्याख्यं दूरीकुर्यात्पटं तदा । जीरकांश्च गुडं मूर्ध्नि निक्षिपेतां वरौ तदा ॥

देवस्य त्वा मनुं जप्त्वा तन्मन्त्रान्ते ततः पुनः ।

राजात्वेत्यादिकं चोत्त्वा प्रतिगृह्णातु तत्परम् ॥

प्रजापतये कन्या (... ..) । तेनेत्यादि भवेत्तत्र तत्पूर्वं वेति केचन ॥

तन्मुहूर्ते सुमहति कन्यां दृष्ट्वा वरः स्वयम् ।

अभ्रावृष्टी जपं कुर्यादवधोरेत्यवलोकयेत् ॥

अत्रैव वरवध्वौ तौ आर्वाभ्याममुतः परम् ।

कर्तव्यानि तु कर्माणि प्रजाश्च विधिनैव वै ॥

समुत्पादयितव्यास्त्युरित्येवं तत्कर्म विदुः । (... ..) ॥

अथ दर्भं समुद्धृत्य चेदं मन्त्रेण वै वरः ।

तस्या वध्वाः समूहाया भ्रुवोरन्तरभागकम् ॥

संमृज्याथ प्रतीचीन निरस्य च जलं स्पृशेत् । रोदनादि निमित्तेषु जातेषु यदि वै वरः ॥

जीवां रुदन्तीति मनुं जपेत्तद्दोषशान्तये ।

युग्मान्मन्त्रवतो विप्रान् तत्स्नानीया(द)द्भ्य एव वै ॥

प्रेषयेत्प्रेषविधिना अर्यम्ण इति मन्त्रतः । दार्भमेण्वं निधायाथ तस्याः शिरसि तत्र च ॥

खेनसः खेन मन्त्रेण युगच्छिद्रं तु दक्षिणम् ।

तस्मिन् समं प्रतिष्ठाप्य शंते मन्त्रेण कर्तुं रम् ॥

अन्तर्धाय च तच्छिद्रे हिरण्येत्यादिकैः परैः ।

पञ्चभिर्मनुभिः सद्भिः स्नापयित्वा सकृत्ततः ॥

परित्वेति च मन्त्रेण वासोभ्यान्तां विधानतः ।

अहताभ्यां तथाच्छाद्य चाशासानेति मन्त्रतः ॥

तामासीनां च यौक्त्रेण संनह्येति च तेषु वै । पश्यत्सु निखिलेष्वेपु संनह्यात्सुकृतान्ततः
माङ्गल्यपूजां निर्वर्त्य मङ्गल्येति च मन्त्रतः । वध्नीयान्माङ्गलं सूत्रं तत्काले गानपूर्वकम्
तदा मङ्गलवाद्यानां विशेषो घोष ईरितः । कर्तव्यत्वेन शास्त्रज्ञैः महाशीर्वचनान्यपि ॥

तस्मिंश्च मङ्गलग्रन्थौ बृहत्सामेति मन्त्रतः ।

रक्षां च भस्मना कुर्यात् तत्राप्येवं विधीयते ॥

आदौ प्रतिसरे चापि वरयोरुभयोरपि ।

तत्सूत्रं भस्मना सम्यक् त्रिस्समृज्य च मध्यतः ॥

वध्वा दीर्घां ... भिरम्यां दृढां पश्चात्तु मन्त्रतः ।

विश्वेत्तातेति विधिना बन्धनं दक्षिणे करे ॥

वरस्य कथितं सद्भिः स्त्रीणां वामकरे तदा । माङ्गल्यधारणात्पूर्वं कौतुकं केचिदूचिरे ॥

तत्पश्चादपि केचिद्वा कौतुकं तच्च पूजया । वरयोर्बन्धनं कुर्यादाशीर्वादपुरस्सरम् ॥

सतां सतीनां सवासां सदस्यानां महात्मनाम् ।

एवं यज्ञोपवीतस्य माङ्गलस्य च पूजनम् ॥

बन्धनं कारयित्वाऽऽदौ पश्चात्तत्कर्म साधयेत् । प्रसङ्गादद्य कथितं तदेतन्निखिलं परम् ॥

आद्राक्षतारोपणं च तथैव कथितं शिवम् ।

मङ्गलाचारसंप्राप्तं कपिलात्र्यादि चोदितम् ॥

कृत्वाभिमुखं दम्पत्योः पृथक् षोडशदीपकैः ।

अष्टाभिर्वा विधानेन दीपपात्राणि पिष्टतः ॥

कृत्वा तेषु दशास्सिक्ताः कृत्वा तैलादिना ततः ।

दीपानुत्पाद्य सुज्वालान्प्रदक्षिण प(पु ?)रस्सरम् ॥

तौ वेष्टयित्वा तन्मध्ये पात्रद्वयगतान् शुभान् ।

अक्षतांश्च क्षतिं प्राप्नान्धवलान्भूरितेजसः ॥

सत्पात्रयुगलं ताभ्यां पृथङ् निर्दिश्य तत्परम् ।

वरः स्वाङ्गलिना स्वेन पयसा तौ वधूवरौ ॥

कल्पयित्वाञ्जलिं तत्राभिघार्य स्वेन तेन व ।

पयसा तण्डुलान् क्षिप्वाभिघार्यैतां स तण्डुलान् ॥

सोदकं कलशं तत्र चूतपल्लवरञ्जितम् । गन्धाक्षतालं कृतं च निक्षेपेत्तद्विधानतः ॥

एवमन्यो वरस्यापि तत्पयस्तण्डुलाक्षतैः ।

कृत्वाऽखिलं तदुपरि शान्तिरस्तीति तान्मनून् ॥

एकादश जपेत्सम्यक् क्रमेणैव तदा वरः ।

तत्क्रमं च प्रवक्ष्यामि शान्तिः पुष्टिः ततः परम् ॥

पुष्टिर्दृष्टिस्तथा भूयस्त्वविघ्नायुष्यकौ तथा । आरोग्यं तत्परं स्वस्ति शिवं कर्म तथा पुनः

कर्मवृद्धिः पुत्रवृद्धिः वेदवृद्धिस्ततस्तथा । समृद्धिरपि शास्त्रस्य समृद्धिर्धनधान्ययोः ॥

प्रत्येकमस्त्विति वदेदेतेषां मन्त्रसिद्धये । पदानांमस्त्विति ब्रूयात्केचिदेतान्मनून्परान् ॥

ऊचिरे द्वादशेत्येव त्रयोदश परे जगुः । पुनरेको महामन्त्र सर्वसिद्धिकरः शिवः ॥

प्रवाच्य इति तज्ज्ञास्ते जगदुर्ब्रह्मवादिनः । दम्पत्योर्जन्मनक्षत्रे सलग्ने सगृहे तथा ॥

ससोमेन क्रियेतां वै इत्युक्त्वा तत्परं पुनः ।

प्रजापतिः स्त्रियां चेति षण्मन्त्रानपि तान्क्रमात् ॥

जपित्वान्तेष्यसौ स्थाने प्रजामेकाम इत्यथ । समृद्धयतामिति वदेत्पर्याये प्रथमे किल ॥

एवं द्वितीयपर्याये वधूद्रव्येण पूर्ववत् । सर्वं कृत्वा स्त्रियां कुर्यात्तामेतां निखिलां पराम्

मन्त्रोक्तिस्सा वराधीना न वध्वा इति सूरयः ।

द्वितीये च तृतीये च ह्यसावित्यत्र तत्पदे ॥

पशवश्चापि यज्ञश्च भवतामिति सा श्रुतिः । सर्वं चतुर्थपर्याये तत्तद्द्रव्येण तौ वरम्

तूष्णीममन्त्रकं सर्वं कृत्वा तानक्षतांस्तुतौ । परस्परं निक्षिपेतां यथारुचि ततः परम् ॥

यथोत्साहं यथाशक्ति तण्डुलानां तयोरिति । अवकीरणमित्यूचुः शुभकर्मविदोऽनघाः

महर्षयो महात्मानस्तदनन्तरमेव वै । पश्चान्मुखीं वधूं गृह्य स्वहस्तेन वरस्तदा ॥

पूषा त्वेतो नय त्वेति मन्त्रेणाभ्यग्न्यानीय वै ।

अग्नेः पश्चाद्यथा स्थानमुपविश्य तथा सह ॥

उद्वाहः होमसंकल्पं प्राणायामपुरस्सरम् । कुर्याद विधानेन सुलग्ने विप्रसन्निधौ ॥
अग्नीन्धानादिकर्म धृतभागान्तमेव तत् । कृतान्त्रह्यपुरस्कार चक्षुरन्तं समापयेत् ॥
सोमः प्रथमयुग्मेन तामेतामभिमन्त्रयेत् । गृभ्णामीति महामन्त्रचतुष्टयत एव वै ॥
तस्याः पाणिं तु साङ्कुष्ठं गृहीयादग्निसन्निधौ । उत्थायाथ तया सार्धमग्नेरुत्तरभागके
एकमित्यादिकैर्मन्त्रैः वरस्सप्त पदानि वै । तद्विधानेन शनकैः कारयतीतैव सूनुतात् ॥

अन्तात्पदात्तु तास्सर्वान्प्रजपेदत्र वै मनून् ।

अग्निं प्रदक्षिणं कुर्याद्ब्राह्मणं चापि दक्षिणे ॥

विद्यमानं यथास्थानमुपविश्य कटेऽपि वा । एरकायां भद्रपीठ अलंकारासने शिवे ॥

सोमायेत्यादिभिर्मन्त्रैः प्रधानं होममाचरेत् ।

अग्नीन्धनादिकार्याणां करणं ऋत्विजाथऽवा ॥

सर्वत्र शक्यते कर्तुं तद्धोमश्च तथा पुनः । शक्यते शास्त्रवर्गेण याजमानादिकं परम् ॥

उद्देश्य त्यागजालं तु कर्तुरेवाखिलेष्वपि । वैदिकाख्येषु तन्त्रेषु चैवं धर्मज्ञनिर्णयः ॥

प्रधानहोमात्परतः तामेतामघचाश्मनि । वह्नौ तूत्तरभागस्थे ह्यातिष्ठेति च मन्त्रतः

अरोपयित च वरः स्वकरेणैव तां वधूम् । यथावदेव च पुनरुपविश्यासने शुभे ॥

अभिधार्याञ्जलौ तस्याः तथा लाजांस्तथाज्यतः ।

लाजान्द्विवारं तान्पश्चादावपेच्चापि पूर्ववत् ॥

(.....) स्य पुनस्सोऽयं स्वहस्ताभ्यां विधाय तान् ।

इयं नारीति मन्त्रेण जुहुयाद्विधिनैव वै ।

केचिदत्र महात्मानस्तस्या सोदर्य एव वै । लाजावपनकर्ता स्यात्तद्धोमे समुपस्थिते ॥

इत्येवमूर्धर्मज्ञास्ते कल्याणनिदानगाः । तस्मात्तु वहवो लोके तद्धोमसमये खलु ॥

तत्सोदर्यं समाहूय तान् लाजांस्तन्मुखेन वै । तदञ्जलौ प्रयत्नेन वापयन्ति ततः पुनः ॥

तस्य पूजां सुमहतीं वस्त्रभूषणचन्दनैः । प्रकुर्वन्ति श्रुति प्रोक्तैः मन्त्रैरपि विशेषतः ॥

तद्धोमानन्तरं पत्न्या वह्निं कुर्यात्प्रदक्षिणम् । तत्प्रदक्षिणकाले तु तुभ्यमग्रमनुव्रज्यम् ॥

जपित्वैव विधानेन पुनरातिष्ठ मन्त्रतः । तमश्मानं पूर्ववच्च वधूसारोप्य पाणितः ॥

तन्मन्त्रान्तं यथास्थानमुपविश्य तथा सह । द्वितीयामाहुतिं कर्तुं पूर्ववन्निखिलं चरेत्
 तस्या अर्यमणं मन्त्रः तत्परं पुनरेव वै । प्रदक्षिणेऽपि ते मन्त्राः तुभ्य मग्रादयस्त्रयः ॥
 वक्तव्या एव विधिना तत्पश्चात्पुनरेव वै । तेनैव मनुनाश्मानं तामारोप्याथ पूर्ववत् ॥
 उपविश्य यथास्थानं तृतीयामाहुतिं तथा । त्वमर्यमेति मन्त्रेण हुत्वा च तदनन्तरम् ॥
 प्रदक्षिणं च तैर्मन्त्रैः कृत्वा च तदनन्तरम् । यथास्थानं तथा बध्वा तूष्णीमुपविशेद्वरः ॥
 प्रदक्षिणत्रयेऽप्यस्मिन् ब्रह्मयन्नाद्बहिर्भवेत् । ब्रह्मणस्स बहिर्भावः तत्कालागतयोस्तयोः ॥
 मृत्युः कालस्य शान्त्यर्थं ब्रह्मविद्धिः सुनिश्चितम् । प्रधानहोमकालादौ क्रियमाणे प्रदक्षिणे
 सहेति ब्रह्मणस्सद्भिर्मन्त्रविद्धिः सुनिश्चितम् । विवाहमात्रे सर्वत्र लाजहोमे ह्युपस्थिते
 कालौ मृत्युः संनिहतौ भरेतां तन्निवृत्तये । सत्रह्यैव पटुः साक्षात्तस्माद्ब्रह्मा बहिर्भवेत्
 यदि कन्या ऋतुमती होमकाल उपस्थिते । प्रभवेत्तु तदा सद्यः शतकुम्भाभिषेचनम् ॥
 तूष्णीकं कारयित्वाऽथ पृषदाज्येन तत्परम् । अभिषिच्य व्याहृतिभिः तत्परं पुनरेव वै
 हविष्मतीति मन्त्रेण स्नापयित्वाग्निसंनिधौ । अन्यवस्त्रद्वयेनैनामलंकृत्य सुमादिभिः ॥

निशाङ्गलेपनं कृत्वा दर्भमौञ्ज्यादिभिश्च ताम् ।

वस्त्रवत्परितः कृत्वा तद्वह्नौ तदनन्तरम् ॥

चतुष्पात्रप्रयोगेण संस्कृताज्येन तत्स्रुचा । युञ्जानमन्त्रयुग्मेन जुहुयाज्जनसंसदि ॥
 जप्त्वा तन्मन्त्रयुगलं पुनर्जप्त्वा यथाविधि । होमशेषं समाप्याथ धेनुमेकां प्रदाय च ॥
 तं वह्निं दूरतः कृत्वा पञ्चगव्यं विधानतः । पञ्चगव्यं प्राशयेच्च तत्क्रमश्चात्र वक्ष्यते ॥

गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्च च गोमयम् ।

पयः काश्चनवर्णायाः नीलाया एव वै दधि ॥

घृतं तु सर्ववर्णायाः सर्वं कपिलमेव वा । अभावे सर्ववर्णानां सर्ववर्णेष्वायं विधिः ॥
 इरावतीदं विष्णुर्यन्मनास्तोकेति शं न वि । अग्नये चैव सोमाय गायत्र्या तदनन्तरम् ॥
 प्रणवेन ततः कुर्यात् स्विष्टकृच्च ततः परम् । गोमूत्रं फलमेकं तु अङ्गुष्ठार्धं तु गोमयम् ॥
 क्षीरं सप्तफलं चैव दधि त्रिफलमुच्यते । घृतमेकफलं प्रोक्तं पलमेकं कुशोदकम् ॥
 पूर्वं कृत्वा देहशुद्धिं प्राजापत्यं व्रतेन तु । पञ्चगव्यं पिबेच्चैव ब्राह्मणानामनुज्ञया ॥

प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य सद्यः कर्तुमशक्यतः ।

तस्य प्रतिनिधिः कार्यः सोऽयं चात्र निरूप्यते ॥

प्राजापत्यस्य गामेकां तन्मूल्यं वा द्विजातये । दद्याच्च तत्फलं सद्यो लभते तेन तत्कृतम्
भवेदेव न सन्देहः प्रकर्तव्यो महात्मभिः ।

द्वादशानां ब्राह्मणानां भोजनं वा न चेत्स तु ॥

दरिद्रस्याथ मुदितः शक्तस्य द्विगुणं ततः । पारायणं संहितायाः दश साहस्रसंख्यया ॥

गायत्र्याश्च जपः प्रोक्तस्तुलितश्चेति सूरिभिः ।

व्याहृतीभिस्तिलानां च दशसाहस्रसंख्यया ॥

प्राजापत्यस्य कृच्छ्रः स्यादथ वा पुनरुच्यते ।

प्रोक्तो (प्रोक्तं) महानदीस्नानं प्रोक्ता सैव महानदी ॥

नित्यप्रवाहसैवान्या कथिता परमोत्तमा । अखण्डा चैव कावेरी सप्तकृच्छ्रफलप्रदा ॥

नर्मदा तुङ्गभद्रा च पयोष्णी च महानदी । असिक्रिया वरुथा च शतपर्वा सरित्पटी

सिन्धुद्वीपवती श्वेता कृष्णवेणी पयस्विनी ।

गौतमी शान्तिमत्याख्या ताम्रपर्णी सुविश्रुता ॥

समुद्रगास्तथाप्यन्याः स्वर्णमुख्यादिका अपि । मन्त्रस्नानविशेषेण पञ्चकृच्छ्रफलप्रदाः

सागरस्नानतोऽतीव पर्वस्वेव न चान्यतः । फलं पञ्चदशानां तु चोदितं ब्रह्मवित्तमैः ॥

त्रिंशत्कृच्छ्रफलं तत्र चापाग्रे मौसलेन वै । स्नानतो लभते नूनं पुनर्मन्त्रैस्तु तत्र वै ।

द्वात्रिंशत्कृच्छ्रजं तस्याङ्गागीरथ्यां तु केवलम् । अष्टोत्तरशतमहाकृच्छ्राणां लभते तु तत्र

अशीत्युत्तरसाहस्रकृच्छ्राणां यत्फलं बुधैः । कथितं तत्र विबुधैः गङ्गासागरसंगमे ॥

तदेतत् कथितं सर्वं प्रसङ्गादेव नान्यथा । तादृशे समये तत्र विवाहे समुपागते ॥

क्रियाविशेषतश्चित्तकार्यायै न हि शुद्ध्ये । सद्यः प्रतिनिधिं कृत्वा कृत्वा तत्परमेव वै ॥

पञ्चगव्यक्रियाशेषं निर्वर्त्यैव क्रमेण वै । पञ्चगव्यं प्राशयित्वा तामेतां तु रजस्वलाम् ॥

तत्कार्यं साधयेत्पश्चाद् अन्यथा पतितो भवेत् ।

पञ्चगव्यप्रासनार्थं तत्स्नानक्रम उच्यते ॥

गोमूत्रं मध्यदेशे तु गोमयं पुरतो न्यसेत् ।

क्षीरं दक्षिणदेशे तु दधि पश्चिमतो न्यसेत् ॥ ”

आज्यमुत्तरदेशे तु ईशान्यां तु कुशोदकम् । तण्डुलेष्टदले पद्मे धान्यराशौ न चैत्पुनः

अथवा तिलराशौ वा पृथक् पात्रेषु निक्षिपेत् ।

गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥

आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्रावेति वै दधि ।

तथा शुक्रमसीत्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम् ॥

स्थापयित्वा च कूर्चेनालोढ्य सर्वतः । प्रणवेन समाहृत्य पात्रे महति चैकके ॥

एकीकृत्य च तत्सर्वं प्रणवेनैव केवलम् । अग्नौ प्रतिष्ठिते पूर्वप्रोक्तेनैव सुवर्त्मना ॥

हुत्वा तद्धोमशेषं च समाप्य तदनन्तरम् । तदर्शेषं तथा सम्यक्पाययित्वा ततो वरः ॥

अशेषब्राह्मणयुत एतत्कार्याय तां पृथक् ।

प्रदाय दक्षिणां शक्त्या जयादिं समुपक्रमेत् ॥

ब्राह्मणे च वरं दद्यात् योक्तमोचनतः परम् । इमं विष्यामीति मनुयुग्मेनाशीरुदीरता ॥

नीराजनात्परं सभ्यानां तु पूजां समाचरेत् ।

तस्मिन्नेव दिने होमात्परतश्चेत्तु सा तथा ॥

गृहप्रवेशात्पुरतो दिनत्रयमतीत्य वै । तां तथा स्नापयित्वाऽथ चतुर्थेऽहनि तत्परम् ॥

पञ्चगव्यं प्राशयित्वा दापयित्वा च गां तथा । गृहप्रवेशकार्याय मध्याह्ने तदुपक्रमाम्

कुर्यादेव विधानेन ह्युत्तमभनविधौ तथा । यदि स्यात्सा वधूरत्र क्रमोऽयं च निरूप्यते

यत्र स्यात्सा तथा तत्र स्थापनीया न चान्यतः । चालनीया विशेषेण वह्निरक्षणपूर्वकम्

पश्चाद्दिनत्रयातीते यत्पूर्वोक्तं तु तन्त्रकम् । तत्सर्वमखिलं कृत्वा गोमूत्रशतकुम्भकैः ॥

दशशान्तिं महामन्त्रैः चतुर्थेऽहनि तत्परम् ।

अभिषेकः प्रकर्तव्यः न चेत्सा शुद्धिभाङ् न तु ॥

स्नानात्परं तथा तस्या यावकाहार एककः । विशेषेण प्रकर्तव्यो दक्षिणाधेनुपञ्चकात् ॥

तदनन्तरमेव स्यान्न तन्मध्ये कथञ्चन । गृहप्रवेशहोमाख्यस्तावत्तद्वह्निरक्षणम् ॥

अप्रमादेन कर्तव्यं तन्मध्ये यदि तच्छुचौ । नष्टे वधूवरौ भ्रष्टौ भवेतामेव केवलम् ॥

तदोषपरिहाराय कारयित्वा शुभान्ततः ।

शनैः परिषदं पूर्णां श्रोत्रियाणां महात्मनाम् ॥

सभ्यानां कृत्यविद्यानां यज्वनां ब्रह्मवादिनाम् ।

विदुषामाहिताग्नीनां तथैवाग्निचितामपि ॥

यथाशक्त्या व्यूहयित्वा पश्चात्तु तदनुज्ञया ।

अतिरुद्र महारुद्रैः तामेतां घोषशान्तिः ॥

कूष्माण्डैः पावमानीभिः शिवसंकल्पतस्तथा ।

सकृज्जापैर्निष्कृतिः स्यादन्यथा सा न शुद्ध्यति ॥

विवाहात्पूर्वमेकं सां यदि स्यात्तु रजस्वला ।

संत्यज्यैव भवेन्नूनं तामेतां तादृशीं वधूम् ॥

योजयेच्छूद्रगोष्ठीषु न ब्राह्मीषु कदाचन । विवाहमध्ये संप्राप्ते ऋतुमत्याश्च संभवः ॥

नाङ्गीकार्यस्समैः सद्भिः प्रदूष्यो निन्दितस्त्विति ।

नैच्यङ्गतो न्यङ्गभाक्च हीनस्तुच्छस्त्वकच्छकः ॥

रण्डा पुत्रसमत्वेन निखिलैरेव लोक्यते । पुत्रस्य पुत्रकायाश्च नैच्यङ्गमनु वर्णयन् ॥

व्यभिचारः समुत्पन्नोऽप्ययं केवलमेव वै ।

न योग्यः सर्व कृत्यानां तस्य पश्चात्त्रिपूर्वकात् ॥

प्रजातानां तद्वंश्यानां तद्वन्धुकुपयैव हि । (... ...) ॥

सदाचरणसंकीर्त्य करणाभ्यां सदाश्रयात् । सर्वसंश्रवणाच्चापि जायते सत्परिग्रहः ॥

विवाहाब्दे सूतिकायाः तादृगब्दप्रसूतयोः । रजस्वलायास्तद्वर्षे जनाक्रोशौ महान्भवेत्

विवाहस्य चतुर्वर्षात्परं (...) मार्तवं यदि । स्त्रीणामपयशो नास्ति परं वर्षत्रयाद्यदि

वनितानां जनाक्रोशो नातीव प्रभवेत्परम् ।

वर्षद्वयाद्विस्मयः स्याज्जनाक्रोशश्च केवलम् ॥

भवत्येव हि वर्षात्तु परं तद्रजसा भवेत् । निन्दाकुत्सान्नर्हणं च तेनात्यन्तायशोभवेत्

जगत्यस्मिन्क्रूरतरं तदोपैकनिवृत्तये । वैशाखे कार्तिके मासे यदा वा रोचते यदा ॥

देवयोः शिवयोः शंभोः विष्णोर्वा प्रीतिहेतवे ।

दीपाराधनतो लक्षवर्तिकासंभवात्परात् ॥

सदोषः शाम्यतेऽतीव नान्यथा प्रवदाम्यहम् । दीपाराधनकृत्यस्य कार्तिकस्तूतमोत्तमः

स वैशाखो मध्यमः स्यान्माघमासोऽपि तत्समः ।

कार्तिके तत्कृतं कर्मकोटि कोटि गुणं भवेत् ॥

न तेन तुलितो माघः सर्वमासोत्तमोत्तमः । अनन्तगुणितस्यापि सवैशाखश्च पुष्कलः

सहस्रवर्तिभिः कुर्यादतिरिक्तं (दार्तिभ्यं) विष्णवेऽन्वहम् ।

गोघृतेनाऽथ तैलेन विशेषेण पुनस्तथा ॥

मधूकदिव्यतैलेन सर्वतैलोत्तमेन वै । यस्मिन्मासे समाप्तिः स्यात्तत्पौर्णम्यां समापनम् ॥

कुर्यादेव विधानेन तस्मिन्नेवं कृते तु तत् । सहस्रकोटिगुणितमुपमारहितं परम् ॥

जायते कर्मसु महदित्येवं ब्रह्मवादिनः । एकेन दीपदानेन देवदेवस्य कार्तिके ॥

आजन्म सञ्चितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । किं पुनर्लक्षसंख्याकैर्वर्तिवृन्दोद्भवैः शिवैः

दीपैर्दत्तैर्घृताक्तैश्च तत्फलं सर्वपापहम् । स एव भगवान्वेत्ति नान्यै (न्ये) ब्रह्मादयोऽखिलाः

मासत्रयस्य ते देवा नामशः शास्त्रचोदिताः ।

आर्यो दामोदरस्तत्र माधवो मधुसूदनः ॥

कार्तिकस्य च माघस्य वैशाखस्य च देवताः । महेश्वरो महादेवा वामदेवश्च देवताः

यथाशक्ति सुवर्णेन तत्तन्मासाधिदेवताः । कृत्वा तु पौरुषेणैव षोडशैरुपचारकैः ॥

पूजयेद्ब्रह्मादिकपालान् तत्तन्मन्त्रैस्तथैव च ।

सद्यो जातादिभिर्मन्त्रैः शिवाराधनकर्मणि ॥

सर्वेषामुपचाराणां मनवस्संप्रकीर्तिताः । पूजयित्वा विधानेन ऋत्विग्ब्राह्मणसंवृतः ॥

रात्रौ यामेषु सर्वेषु कलशस्थापनादिभिः । भक्त्या जागरणं कृत्वा प्रतियामं च पूजयेत्

दशा दशांशतः कुर्यात्तर्पणं च यथाविधि । तर्पणस्य दशांशेन होमं कुर्यात्समन्त्रकम् ॥

तर्पणोक्तेन मन्त्रेण पायसं स्याद्घृतान्वितम् ।

इदं विष्णु ऋचा (व) द्वा पालाशं वा विधानतः ॥

घृतं तु विष्णु गायत्र्या होमस्यायं विधिर्मतः । त्र्यम्बकेण मनुना शिवस्य मनुरुच्यते ॥

• गायत्री स्यात्तथा रौद्री होमकर्मणि वै मनुः ।

होमान्ते धूपदीपौ च नैवेद्यं च निवेदयेत् ॥

आचार्यपूजनं कृत्वा ऋत्विजामपि पूजनम् ।

क्रमेण कुर्याद्विधिना ब्राह्मणानां च पूजनम् ॥

गौ...त । सवत्सा.....सालङ्कारा गुणान्विता ॥

त्रिशत्फलं कांस्यपात्रं घृतेन परिपूरितम् । सुवर्णवर्तिकायुक्तमाचार्याय निवेदयेत् ॥

अथवा तं यथाशक्त्या दद्यादावश्यकं त्विदम् । व्रताभ ... वै घृतपूरितम्

यावज्जीवं जीवपत्नी भवेदेव न संशयः । रजो दोषाद्विमुच्येत पौर्णम्यां या ददाति सा

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ।

या चैवं कुरुते नारी तस्याः पुण्यफलं त्विदम् ॥

ब्रह्मवादि प्रकथितं श्रुतिशीर्षशतैरपि । अवाच्यानि च पापानि रहस्यैककृतानि च ॥

नश्यन्ति तानि सर्वाणि दीपदानप्रभावतः । चण्डालशूद्रकैवर्तरजकादिकगामिनी ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्क्षत्रप्रातिलोभ्यैकगामिनी । मातुलेयपितृव्यौघभ्रातृपुत्राभिर्मर्शिनी ॥

वालमी च पतिव्री च मातापित्रोर्वधे रता । गोव्री वा तस्करी वापि रजस्संकरकारिणी

वह्निदानरता चैव नित्यं चाप्रियवादिनी ।

पत्यौ जीवति या नारी मृते वा व्यभिचारिणी ॥

एवमादि महापापैरावृताऽपि कुलाङ्गना । विवाहाब्दरजोदृष्टिप्रसूतिजननाश्च याः ॥

कृत्वा चैतल्लक्षवर्तिदीपदानाख्यकृत्यतः ।

तेभ्यः पापविशेषेभ्यो लोकोक्तयादिमहांसः ॥

मुच्यन्ते नात्र सन्देहः प्रवक्ष्यामि पुनः पुनः । पुरुषोऽपि तथा घोरदुष्कृतानां शतैरपि

संवृतोऽत्यन्तदुष्कीर्त्या कृत्वा चैतत्सु कर्म वै । मुच्यते तत्क्षणादेव नात्र कार्या विचारणा

अतिगुह्यतमं चैतत्सर्वपापपानोदकम् । जातिश्रेष्ठ्यकरं चैव सर्वदा न फलप्रदम् ॥

एकदीपप्रदानेन कार्तिके मधुविद्विषः । कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोटयः ॥

तथैवात्युग्रपापानां कोटयोऽपि सहस्रशः ।
 नश्यन्ति नात्र सन्देहो नार्या वाथ नरस्य वा ।
 तस्मात्तु ब्राह्मणो भीतो जन्मवादात्कुलोद्भवः ।
 दशवर्षात्परं कन्यां कृच्छ्रेऽपि न विवाहयेत् ॥
 दशवर्षात्परं नारी कीर्तिता स्याद्रजस्वला ।
 सन्दिग्धां वर्जयित्वैव निस्सन्दिग्धां विवाहयेत् ॥
 सन्दिग्धाया विवाहेन लोकोक्तिः सा दुरत्यया ।
 जायतेति वसुकूरात्तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥

सांकारिका विवाहेन प्रायेणास्य वरेण(हि) । मन्दिरेह्यशुभान्येव जायन्ते श्रिय एव च
 वर्षकारी विवाहेन दाम्पत्यं पश्यतां वरम् । लोके जनानां सर्वेषां हेलनार्थं भवेत्खलु ॥

मुण्डा मिश्राधिका चण्डी ... तापालाविवहे ... ।

कदुकप्रोष्ठदुष्कर्म कलिकुत्सपराधिभिः ॥

नरः प्रदूष्यते केन तस्मात्कुर्याद्विचक्षणः । निर्दुष्टमेव नितरां विवाहं शास्त्रसंमतम् ॥

ब्राह्म्यादिकं सर्वयन्नात् न तिष्ठेत्तु निराश्रमी ।

निराश्रमित्वविप्रस्य श्रोत्रियस्य सुचेतसः ॥

कर्मठस्य वदान्यस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः । पुत्रिणो दानशीलस्य ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः

विदुरत्वादयो नस्युः निर्मलाः स्मृता । अमन्त्रज्ञो वेदहीनः कर्मश्रद्धापराङ्मुखः ॥

नित्यकर्मा करो नित्यं कुतर्कं कृतनिश्चयः । कृतश्रोत्रियविद्वेषो यज्ञदूषणतत्परः ॥

पुनः कुवृत्तयः ।

अपि सन्ध्या मन्त्रमात्रप्रोक्तिशक्ति विवर्जिताः ॥

सन्ध्याभासपरा नित्यं ब्राह्मणा नामधारकाः ।

अश्रोत्रियत्वतो ज्ञेयाः सततं पङ्क्तिदूषकाः ॥

सदा ब्राह्मण कृत्यानि खलु ।

नित्यं वेदामियुक्तस्य नित्यकर्मसु चेतसः ॥

अनग्निकत्वमेतस्य न जानीमः कथं किमु ।

• अपत्नीको ब्रह्ममेधान ध्यायोऽश्रोत्रियोऽपि सन् ॥

नापत्नीको ब्रह्ममेधमात्राध्यायी कथंचन । अश्रोत्रियः पुत्रहीनः ब्रह्मोज्झी वेदविक्रयी ॥

अति मौर्खः त्यक्तभार्यः पिद्गो पत्नीक ईरितः ।

अश्रोत्रियात्सपत्नीकाच्छ्रोत्रियो विधुरोऽधिकः ॥

बहुपुत्रवतो वापि कर्मठादग्निहोत्रिणः । सत्कर्मवत्पुत्रवांश्च प्रतिग्रहपराङ्मुखः ॥

पात्रं न्यूनमपत्नीकाच्छ्रोत्रियाद्वेदवर्जितः । ब्राह्मणो यदि वेदेन वर्जितोऽपि सदा शुचिः

कालसन्ध्यापरो नित्यमपरित्यक्तवह्निकः । वैश्वदेवब्रह्मयज्ञसत्क्रियः सत्सु पूजकः ॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मनिष्ठश्च सततं ब्राह्मणप्रियः ।

वेदमन्त्रप्रियो नित्यं वेदवित्प्रीति(त) मानसः ॥

विशिष्यते श्रोत्रियाश्च ब्राह्मणः पितृकर्मकृत् ।

सद्विवाहसुसंप्राप्तसौभाग्यो ब्राह्मणोत्तमः ॥

कुलाभिवृद्धिं लभते तद्विवाहमतश्चरेत् । प्रसङ्गादिदमाख्यातं श्रोत्रियादिनिरूपणम् ॥

तद्योक्त्रमोचनात्पश्चात् रथोत्तम्भनकालिकाः ।

क्रियाविशेषाः कर्तव्याः परेणाथ च तत्र वै ॥

सत्येनेति च मन्त्रेण रथोत्तम्भनमाचरेत् ।

योगे योगे द्वयेनाथ वाहौ तत्र सुयोजयेत् ॥

सु किंशुकेति मन्त्रेण रथमारोहतां वधूम् । वरोऽभिमन्त्रयतीतैवोदुत्तरमिति त्रिभिः ॥

तस्या न स्याधिकर्धीनां संपदर्थामि मन्त्रणम् ।

नीललोहितेति मन्त्रेण मार्गे सूत्रास्तृणं भवेत् ॥

ये वध्व इति मन्त्राणां त्रयेण गमनं भवेत् । तामन्दसेति च मनुं तीर्थाति क्रमणे जपेत्

अयं न इति मन्त्रं तु नौर्यदि स्यात्तदा जपेत् । तामुद्दिश्यैव वरो जपेद्ब्राह्मणसंवृतः ॥

अस्य पारेति च यजुस्तां तीर्त्वाऽथ जपेत्सुधीः । श्मशानोलङ्घने पश्चाद्यहतेचिदनुक्रमात्

मृचः षडपि होमे स्युः क्षीरवृक्षाद्यतिक्रमे । ये गन्धर्वाद्वायं जप्त्वा गृहानुत्तरया तया ॥

संकाशयामीति तदा ऋचा संकाशयेदति ।

आवामगन्निति ततो वाहौ तौ च विमोचयेत् ॥

अयं न इति मन्त्रोऽयं वाहमोचनकर्मणि ।

नियुक्तः स्यात्ततः पश्चाच्छर्मवर्मेति मन्त्रतः ॥

चर्मास्तरणकं कुर्याद्गृहान्भद्रानिति स्तवैः । वाचयित्वा च तां पश्चात्स्वयं तामुपवेशयेत्

आगन्नित्यादयो मन्त्रा इमं मेत्यादयस्तथा । गृहप्रवेशकार्येऽस्मिन्प्रधानो होम उच्यते ॥

इह गाव इति प्रोत्त्वा चर्मण्युपविशेत्तथा । नक्षत्रोदयपर्यन्तं नक्षत्रेषूदितेषु वै ॥

वाग्विसर्गश्च कर्तव्यः ततो मौनं भवेत्तयोः । सौमेनेति च मन्त्रेण तदङ्गे पुत्रमेककम् ॥

निक्षिपेज्जीव पुत्रा सा प्रस्वस्थ इति मन्त्रतः । तस्मै फलानि दद्याच्च एनापत्येति मन्त्रतः

स्वकामसिद्धिरुक्ता स्यात्तक्षेयं स्यात्सुमङ्गलीम् ।

ध्रुवक्षितीति मन्त्रेण ध्रुवं तं दर्शयेच्च वै ॥

सप्तर्षय इति ततः दर्शयेत्तामरुन्धतीम् । गृहप्रवेशकर्मास्य होमात्परत एव वै ॥

जयादयो भवन्त्येव ब्रह्मणो दक्षिणा भवेत् ।

वरोऽत्र याजको वध्वा तत्कर्मान्ते वधूः स्वयम् ॥

गां दद्याद्दृष्टमं वापि वरायेति द्विजोत्तमाः । केचिदाहुर्महात्मानः पुनः केचित्तु तस्य च

वरस्यापचितायैव ब्राह्मणायेति वै जगुः ।

यथाचारं व्यवस्था च कर्तव्या श्रुतिचोदनात् ॥

स्थालीपाकेऽत्राग्निरेव देवता स्यात्ततस्तथा ।

स्विष्टकृत्कथितस्सद्भिर्न कर्तव्या जयादयः ॥

सूच्युपस्तीर्य तत्स्थाल्यामभिधार्यावदाय वै ।

द्विवारमादौ तच्चाभिधार्य स्थालीं ततः पुनः ॥

मध्यामौ जुहुयादेतत्तद्द्विवारसमुद्धृतम् । सर्वस्थाली पाकधर्मः सोऽयं ब्रह्मविदीरितः

अथाभिधार्य तद्द्रव्यमेकवारेण तद्धविः । तद्द्विवारो ध्रुवार्किचिदधिकं गृह्य तद्धविः ॥

द्विवारमभिधार्यैव जुहुयात्तदुपस्थले । द्विवारमवदानं स्यादस्य स्विष्टकृतोऽपि वै ॥

सर्वत्र पञ्चावत्तीनां भिदेयं सार्वदेशिकी ।

• तामनूयाज समिधं हुत्वा रुद्राय तन्तिचराय वै ॥

इधमसंनहनं हुत्वा तत्पात्रकुशाक्रतः । दर्व्यामभ्यज्य निश्लेष मध्यमूले स्नुवे तथा ॥
मूलाञ्जने सव्यकरमधः कुर्याद्विधानतः । त्रिवारमैवं कृत्वाथ तृणापादानतः परम् ॥
पाणिद्वयेन तद्व्यां प्रतिष्ठाप्येष्टदेवताः । प्रहरेत्तु तदग्राणि त्रिरुद्दिश्य तृणं ततः ॥
क्रमेण प्रहरेदेतदङ्गुल्या त्रिर्निवेशनम् । कृत्वा भूमिमुपस्पृश्य मध्यमं परिधिं शुचौ ॥
प्रहृत्याथ तदन्यौ च प्रहरन्तौ विचक्षणः । तदग्रमुत्तरार्घ्यस्य तदङ्गारेषु हस्ततः ॥

(... ...) ।

प्राणानायाम्य तत्पश्चादुपोहति विधानतः ॥

परिधीनाभिमन्त्र्याथ तदाधारसमिद्धयम् । एकमेकं प्रहृत्यैव विद्वान्देवास्ततः परम् ॥

संस्त्रावभाज उद्दिश्य सर्वाश्चित्ताहुतीर्हुनेत् ।

अनाज्ञातत्रयात्पश्चादिदं विष्णोः परेण च ॥

त्र्यम्बकादेश्च तथा यद्विद्याख्याच्च तत्परम् ।

अस्कां द्यौरिति मन्त्रस्य पुनस्त्वा रुद्रकस्य च ॥

व्याहृतीरपि हुत्वाऽथ व्यस्ताव्यस्तैकधर्मतः । प्राणानायाम्य तत्पश्चात्कृत्वाऽथ परिषेचनम्

प्रणीत्यामप आनीय सदसीत्यादिकं जपेत् ।

प्राच्यां दिशीति तत्कृत्यं निखिलं च समाप्य वै ॥

समुद्रं व इदं यत्तत् कृत्वा पत्न्यञ्जलौ पयः । निनीय पतितं भूमौ तं निरन्तैः कुशाग्रकैः
शान्तिरस्त्वित्यादिकैश्च शिरसः प्रोक्षणं चरेत् । ततः परिस्तरान्सर्वानुत्तरेण विसर्जयेत्
ब्रह्मणे च वरं दद्याद्दर्शादिषु तु तद्विविधैः । शिष्टं तत्प्राशयेद्यन्नाद् ब्राह्मणं सर्पिसंयुतम् ॥

अन्वारम्भणिके तस्मै ब्रह्मणे दक्षिणा परा ।

पूर्णपात्रेण कल्प्या स्यादन्यथा न फलिष्यति ॥

पूर्णपात्रं च तत्प्रोक्तं कपिलादिमहात्मभिः ।

अष्ट मुष्टिभवेत्किञ्चित्तस्य चत्वारि पुष्कलम् ॥

पुष्कलानां तु चत्वारि पूर्णपात्रं तदुच्यते । गृहप्रवेश होमाख्येऽप्याग्नेयेऽत्र वरः परम् ॥
 याजकं न तु कर्ता स्यात्कारयितृत्वमेव हि । वरस्येति महात्मानः केचिदाहुर्मनीषिणः
 तेषां तु हृदयं देवो जानाति किल नापरः । समावर्तनमौञ्ज्योश्च सीमन्ते पाणिपीडने

चौलगोदानचिन्तेषु शम्याः कार्याः प्रयत्नतः ।

कार्याः परिधयो नात्र शम्याभावे तु ते वृथा ॥

भवेयुरेव तस्मात् तु तेषु शम्याः प्रकल्पयेत् । यत्र यत्र चरोर्होमः तत्र तत्र मुखाहुतिः ॥
 परिधिप्रहरं कुर्यात्संस्त्रावो विधीयते । प्रधानहोमात्परतः वरयोः स्वीयवेश्मनः ॥
 समागमनकार्याय मार्गमध्येति दूरतः । दिवसानामनेकेषामतिक्रमणहेतुना ॥

विवाहाग्नेः रक्षणार्थं सायं प्रातस्तदा तदा । तत्कालमात्रसंकल्पं गुप्त्यर्थमिति तं ब्रुवन्
 प्रातर्होमं करिष्यामीत्येवं संकल्प्य संयतः । गुप्तिहोमं प्रकुर्याच्च न चेत्स तु सुवैदिकः ॥
 वह्निर्नष्टो भवेदाशु तस्मात्कालेषु तेषु वै । गुप्तिहोमं विधानेन कुर्यादेव विधानतः ॥
 इयावान्संप्रयोगश्च संकल्पस्तदनन्तरम् । परिषिच्याऽथ मन्त्रेण होमश्च परिषेचनम् ॥
 एतावदेव कर्तव्यं नान्यत्किमपि तत्र वै । स्थालीपाकात्परं तत्र वरयोरुभयोरपि ॥
 प्राणायामो भवत्येव संकल्पस्य विधानतः । औपासनस्य कृत्यस्य सदो ब्राह्मणसंनिधौ
 ओं भूरिति मन्त्राणां पत्न्या वक्तुमशक्तिः । तथा वायुनिरोधस्य रेचकादेश्च केवलम्
 नारीणां योग्यताभावात्तदर्थं स्वयमेव तत् ।

वरः सर्वं स्वयं कृत्वा तत्परं लौकिकं वचः ॥

परमेश्वरतुष्ट्यर्थं करिष्येति तथा तु तत् । वाचयेदेव विधिना सर्ववैदिकं कर्मसु ॥
 नियमोऽयं विधिश्चापि तथैवेत्याह सा श्रुतिः ।

सहत्वमुभयोः प्रोक्तं विवाहप्रभृतिस्फुटम् ॥

औपासनारम्भः

तदेतत्सर्वशास्त्रेषु नीतं च बहुधा तथा । एवमौपासनस्यादौ समारम्भस्य यत्र तत् ॥

तिथेरुक्तः परं कर्ता प्रोक्तौपासनमित्यथ ।

आरभ्येति वचः प्रोत्त्वा तेषु शृण्वत्सु सत्स्वपि ॥

तेनोक्तेरथ भूयश्च यावज्जीवमिति ब्रुवन् । तण्डुलैर्वा यवैर्वेति यावदाधानमेव वा ॥

अर्धाधानं वाथ पुनः तदेतदखिलं परम् । एकौच्छ्वासेनैव वदेदेवं पत्न्यापि वाचयेत्

औपासनारम्भकाले ह्यभ्यनुज्ञा परास्मृता ।

ब्राह्मणानां सदस्यानां तत्रत्यानां महात्मनाम् ॥

अभ्यनुज्ञाप्रकारोऽयं स्वशक्त्युचितदक्षिणाम् ।

पात्रे कस्मिन्विनिक्षिप्य ताम्बूलैः सहतां ततः ॥

पत्न्या सह समाधाय तिष्ठन्वेदमनु जपेत् । नमो महद्भ्य इत्येवं नमस्सदस इत्यपि ॥

तन्मन्त्रोच्चारणात्पश्चान्नत्वा साष्टाङ्गपूर्वकम् । अशेषे हे... मे ब्राह्म भवत्पादाग्रदापिताम्

यत्किञ्चित्तामिमां भक्त्या क्षणिणां कृपयावयोः ।

स्वीकृत्यौपासनारम्भ योग्यतास्त्विति कृत्स्नतः ॥

भवत्त्य(वत्य)नुगृहाणेति वाचोत्त्वा पुनरेव वै ।

सं प्रणम्य समुत्थाय तिष्ठेतामभिमुख्यतः ॥

सा सभा चाथका दृष्ट्वा दक्षिणा तां च भक्तिः ।

समर्पितां तां संगृह्य अनयोर्वरयोस्सतोः ॥

औपासनारम्भयोग्यतास्त्वित्येव वदेच्च सा ।

एवं लब्ध्वाभ्यनुज्ञान्तां कुर्यात्संकल्पमेव तम् ॥

पूर्वोदितं यथावच्च ततस्तत्कालिकं पुनः । कृत्वा संकल्पमथ च चत्वारि मनुकं वदेत् ॥

अथ भूयो विशेषेण खिलमन्त्रान्पठेत च । सप्तहस्तचतुःशृङ्गः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः ॥
 त्रिपात्रसन्नवदनः सुखासीनश्शुचिस्मितः । स्वाहांतु दक्षिणे पार्श्वे देवीं वामे स्वधां तथा
 विभ्रदक्षिणहस्तैस्तु शक्तिमन्त्रं स्मृचं स्मृवम् । तोमरं व्यजनं वामैः धृतपात्रं तु धारयन्
 आत्माभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः । एतान्मन्त्रान्पठित्वाऽथ एष हीति मनुं जपेत्

अग्ने प्राङ्मुखदेवेऽह्य ममाभिमुखतःस्थितः ।

भवेति पूर्वभागेऽस्य सलिलं निक्षिपेत्स्वयम् ॥

जलेन तेन भीतस्तु स्वस्याभिमुख एव वै । विभावसुर्भवेदेव तदनन्तरमेव वै ॥
 प्रार्थयेत्तादृशं देवं सुप्रसन्नो भवेति वै । पश्चाद्भूयः प्रार्थयेच्च वरदो भवमेति च ॥

प्रार्थनात्परतो भूयो गायत्र्या परितोऽस्य वै ।

शुद्धिं जलेन तां कृत्वा पश्चिज्य स्वहस्ततः ॥

अलंकुर्यादक्षतैर्वा पुष्पैस्तत्कालसंभवैः । त इमे तत्र मन्त्रा स्युरग्नये नम आदिमः ॥
 नमो हुतवहायेति नमश्चापि हुतार्चिने(पे) । कृष्णवर्त्मनेध त्र्योऽयं पश्चाद् वमुखाय च ॥
 सप्तजिह्वाय च नमः नमो वैश्वानराय वै । अथ मन्त्रोऽयमुदितः नमो वै जातवेदसे ॥
 (?) यज्ञपुरुषायेति चरमो मन्त्र ईरितः । एवमग्निमलंकृत्य परिषिञ्चेत्ततः पुनः ॥

अदितेत्यादिभिस्सर्वैः चतुर्दिक्षु निरन्तरम् ।

परिषिञ्च्य विधानेन होष्यामि(मी)ति वदेद्द्विजान् ॥

जुहुधीति च तैरुक्तस्तत्स्थालीपाक देवताः । समुद्दिश्य हुनेन्नित्यं प्रातः सौर्याहुतिर्वरा ॥
 कर्तव्यत्वेन सा प्राहः श्रुतिस्साध्वी सनातनी ।

तयैकया महाहुत्या सौर्यया गृहमेधिनाम् ॥

प्रतिनित्यं सर्वभूतक्षुभ्रिवृत्तिसमुद्भवम् । यत्फलं जायते तादृक् फलं प्राप्नोति तत्क्षणात्
 अशेषव्रतकृच्छ्रौष यज्ञदानतपोर्जितम् । फलं च तत्क्षणान्नूनं जायतेऽत्यल्पयत्नतः ॥
 नित्यं प्रातर्वह्न्युपास्ति तत्परस्य महात्मनः । पुण्यायां बह्निशालायां तत्कार्यकरणोन्मुखाः

सर्वतीर्थानि चिबुधाः ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

गङ्गाद्याः सरितश्चापि सागरास्सप्तपावकाः ॥

तपांसि कृच्छ्रयज्ञाश्च निवसन्त्यतिसाध्वसात् ।

नित्यौपासनिनस्तस्मात्तीर्थचर्यादयोऽखिलाः ॥

ये धर्मास्ते यज्ञसाध्याः द्रव्यसाध्यश्च केवलाः । कर्तव्यत्वेन विहिता न भवन्त्येव ते परम्
एतत्कर्मासमर्थस्य बोधिता शास्त्रजालकैः । नित्यमग्निं विवाहेद्ध मेतं त्यक्त्वाऽपि यो जडः
धर्ममन्यं हि मनुते स शू (?) शस्मृतः । अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।

तस्मात्तदाहुतिसमो धर्मोऽन्यो गृहमेधिनाम् ॥

नास्त्येव सुतरां लोके तस्मात्तदधिकः कथम् ।

एतादृक् कर्म सिद्धयर्थं ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥

अन्यानि सर्वकर्माणि योग्यतापादकानि वै । सर्वाश्रमाणां गार्हस्थ्यं परमोत्कृष्टमुच्यते
तन्निष्ठः प्रदरेदाशु चित्तशुद्धिमुखेन वै । श्रेयांसि संपदस्तत्र सन्तोषसुखमुत्तमम् ॥
समागतप्रत्यवायपरिहारोऽपि सूक्ष्मतः । प्रयासाधिक्यराहित्यं सर्वापभ्रंशसन्ततौ ॥
प्रायश्चित्तैकसौलभ्यं सर्वाश्रमनिवासिनाम् । सर्वोपकारकरणयोग्यतातस्मिन् न तु ॥
आश्रमान्तरमत्युच्चमतस्तं नित्यमाश्रयेत् । तदास्तां प्रकृतेः पश्चात्कुर्यादुत्तरसेचनम् ॥
अदिते पूर्ववत्प्रोक्तान्वमंस्था इति सर्वतः । द्वितीयमन्त्रेऽनुमते तृतीये च सरस्वते ॥
चतुर्थे देवसवितः परिषेचनहेतवे । पृथक् जलं प्रगृहीयान्न त्वैवं सकृदुद्धृतम् ॥
औदास्यान्नैऋतानेयादथ नैऋतमारुतात् । पश्चान्मारुतभूतेशात्तावदैन्द्रान्तु तुर्यके ॥
होमस्य पूर्वापरयोः कार्यं स्यात्परिषेचनम् । श्रितायामाहुतौ कुर्यादुत्तमं परिषेचनम् ॥
सर्वकर्मस्वेवमेव कार्यं विधिवदेव वै । अग्नेत्वमिति मन्त्रेण सुम्नायेति च मन्त्रतः ॥

स नो बोधीति च ततः उपस्थानं समाचरेत् ।

स्वस्तीति च वदेत्पश्चादुपविश्याऽथ साञ्जलिः ॥

श्रद्धां मेधां यशः प्रज्ञां विद्यांबुद्धिंश्रियं बलम् । आयुष्यं तेज आरोग्यं देहिमे हव्यवाहन
इति मन्त्रं समुच्चार्य प्रणमेत च तं शुचिम् । नित्यमेवं सायं प्रातः वैदिको ब्राह्मणोत्तमः
अग्निर्देवो द्विजातीनां सूक्ष्मं हृदि तु योगिनाम् । प्रतिमा ह्यप्रबुद्धानां सर्वत्र समदर्शनाम्

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छिद्यमिच्छेद्धुताशनात् ।

मननाद् ज्ञानमन्विच्छेत्तस्मान्मुक्तिं समाश्रयेत् ॥

न कर्मणा न प्रजया न धनत्यागतोऽपि वा । तपसा केवलेनाऽपि तथा पुण्यशतादपि ॥

ज्ञानं न जायते नृणां किंतु तच्चित्तशुद्धितः । सा चित्तशुद्धिस्तु तथा नित्यै स्तैर(रे)वकर्मभिः

नित्यानामपि सर्वेषां कर्मणां वैदिकः शुचिः ।

श्रुतिश्च तादृशः प्रोक्तः विवाहो नैव नान्यथा ॥

स विवाहः पञ्चदीनात्मको मन्त्रैकरक्षितः । स्वशक्त्यनुगुणद्रव्यदानत्रयसदात्मकः ॥

तस्मात्तत्तुलितो कर्म विशेषो न तु देहिनाम् ।

औपासनस्तत्र जातो नित्योऽयं धार्य एव च ॥

मन्थ्यो भवेदनुगतः श्रोत्रियागारतोऽपि वा ।

आहार्यो विधिना भक्त्या उपवासोऽथवा पुनः ॥

एकस्यैव हि कालस्य सायं वा प्रातरेव वा ।

भार्यायाश्चाथ वा भर्तुः पक्षेष्वेतेषु सर्वतः ॥

भवेद्द्वयाहृतिहोमोऽपि सर्वचित्ताय सर्वदा ।

पाणिग्रहप्रधानाख्यहोमोऽयं यदि वै तथा ॥

मन्थ्यस्समाहृतश्चेत्तु पश्चान्मन्थ्याग्निरेव हि ।

सन्ध्या न मात्रे प्रभवेन्न चेच्छ्रोत्रियमन्दिरात् ॥

आहार्य एव प्रभवेत् एवं स्यान्नित्यचोदना ।

तथापि मन्थनं तूष्णीं यत्र कुत्रापि दारुके ॥

कतुं न शक्यते किंतु तद्विहस्यव(प)क्षकात् । पूर्वमेव प्रयत्नेन सुदिने च सुलग्नके ॥

तदीयजनको भ्राता पितृव्यो मातुलादिकाः ।

ऋत्विङ्मन्त्रं शिष्यगुरु तथात्यो यश्च कश्चन ॥

रोहिण्यादिषु तारेषु जयापूर्णादिषुत्यकौ ।

भार्गवे गुरुवारे वा सोमे सौम्ये परे स्वके ॥

प्रामात्प्राच्यामुदीच्यां वा संस्थिते कुञ्जराशने ।

शमीगर्भेऽथवा तस्य प्राच्यान्तरगता तु या ॥

शाखा तस्यां दृढं स्थूलभरणीकाष्ठमुत्तमम् । सार्धहस्तमितं क्षित्वा द्विधा विदलने क्षमम्
शनैर्निराद्रं कृत्वेमं कुर्यात्तदरणीद्वयम् । मधुपर्कात्पूर्वमेव पश्चात्तत्पाणिपीडने ॥

तत्काष्ठमन्थनं कृत्वा वह्निमुत्पाद्य तं स्थिरम् ।

तं योजयेद्विवाहेऽस्मिन्नग्निस्थापनकर्मणि ॥

एवं यत्नेन संस्थाप्य स्वीकृतानेर्महात्मनः । मन्थ्य एव सदा वह्निः प्रभवत्येव नान्यथा
यावदाधानिनो वह्निः सर्वस्मार्तेषु कर्मसु । अन्वाहार्यैकं पचनो भवेदेव न चापरः ॥
नित्यौपासनतः पश्चात्तत्साद्गुण्यैकं सिद्ध्ये । अनाज्ञातत्रयजपं कुर्यादेव तथा पुनः ॥

इदं विष्णुश्च जाप्यः स्यात्तथा व्याहृतयः पुनः ।

पश्चाच्छुचेः षोडशोपचारानपि यथाक्रमम् ॥

समर्पयामीति पृथगुक्त्वा तस्य समर्पयेत् । सर्वमेवं च निर्वर्त्य तमिमं मन्त्रमुच्चेत् ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोहोमक्रियादिषु ।

न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

एवं तमिमुक्त्वात्र वरमेकं पुनर्जपेत् । मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं हुताशन ॥

यद्धुतं तु मया देव परिपूर्णं तदस्तु ते । इति जप्त्वा तस्य भस्म गृहीयाद्धारणाय वै ॥

बृहत्सामेति मन्त्रेण रक्षारस्यै तद्भवेत् त्वरा । तृतीयदिवसे पश्चान्महदाशीः क्रिया शुभा

शेषहोमः ।

शेषहोमस्तुर्यदिनापररात्रे विधीयते । गन्धर्वोद्वासनं कृत्वा चोदीर्घावेति युग्मतः ॥

विशेषतस्तयोः पूजां कृत्वा ते विसृजेत्परम् ।

अग्नीन्धनादिकं कृत्वा चक्षुरन्ते ततः किल ॥

अग्नीत्यादिकमन्त्रैस्तैर्जुहुयादाज्यधारया । पृथक् जयादयश्चात्र भवेयुस्तत्परं पुनः ॥

ब्रह्मोद्वासनतः पूर्वं पश्चाद्वा पश्य मन्त्रकौ । भवेतां जपकार्याय दम्पत्योरुभयोः पृथक् ॥

यथालिङ्गं तच्छिरसः भूर्भुवस्सुवरित्यतः । आञ्जयविन्दुक्षेपणं च पश्चान्नाकवलिः परा
त्रयस्त्रिंशत्कोटिसंख्याक देवानां समर्चनम् । गौरीपूजा शचीपूजा गजविक्रयणोत्सवः ॥
डोलोत्सवश्शूर्पदानं सर्वव्रतपरिग्रहः । देवतोद्भासनं पश्चाद्वरिद्रासलिलार्चनम् ॥
तदुत्सवाङ्कुरत्यागः कौतुकादिविमोक्षणम् । मण्डपोद्भासनं पश्चात्स्वस्तिवाचनिकक्रिया ॥

ब्राह्मणानां भोजनं च फलदानादिकं तथा ।

आशीर्वादक्रियाचान्ते विवाहोऽयं समग्रकः ॥

अनेन संपदः सर्वा सप्त तन्तव एव च । पुत्रान्पौत्रान्श्च वैराग्यं ज्ञानं चात्र प्रतिष्ठितम् ॥
तज्ज्ञानसिद्धये बह्वौ क्रियानित्या श्रुतीरिताः । कर्तव्यास्युर्विशेषेणाकरणे प्रत्यवायदाः

अतो नित्या इति प्रोक्ता ब्राह्मणस्य महात्मनः ।

भार्यामात्रहते यस्मिन् तस्मिन्नहनि ते खलाः ॥

पाक यज्ञा हविर्यज्ञाः सोमसंस्थास्तथा पराः । ऋषयो देवताश्चापि पितरो ब्राह्मणास्तथा
सर्वे मिलित्वा संभूय कृतपाणिनिपीडनम् । समागत्य दृढं कठं परिगृह्णन्ति निर्भयात् ॥
सम्यग्गस्मदनुष्ठानं कुरु देहिन्निति द्विज । नत्वान्यजामोऽद्य वयं वदन्त इति ताः क्रियाः

तस्माद्विवाहितो विद्वान्तदादि नितरां भयात् ।

नित्यकर्मपरोभूयादन्यथा स्यादृणी स्फुटम् ॥

ऋषीणां देवतानां च पितृणामृणमुन्धितम् । जायमानं समुद्दिश्य तदपाकरणाय वै ॥
वेदोक्ताध्वरकृत्यौघान् शक्त्या कुर्वन् शनैः शनैः । ऋणत्रयात्सुप्रयुक्तो भवेदेव विचक्षणः
अन्यथा तदृणीभूयस्तैर्युक्तश्चेद्विचक्षणः । कृतार्थः सिद्धिमाप्नोति नचेद्गच्छेदधोगतिम्

ते सप्तपाकाः कथिताः कर्मोपासनमादिकम् ।

वैश्वदेवो द्वितीयः स्यात्पार्वणं स्यात्तृतीयकम् ॥

अष्टनासा तुरीयस्यान्मासि श्राद्धं तु पञ्चमम् ।

षष्ठं सर्पवलिः प्रोक्तं सप्तमं शूलिपूजनम् ॥

हविर्यज्ञास्तथा प्रोक्ता अभिहोत्रं पुरोदितम् ।

दर्शाविः स्यात् द्वितीयस्तु तृतीयं तदनन्तरम् ॥

कर्माग्रयणसंज्ञं वै चातुर्मास्यं तुरीयकम् । निरुद्धपशुवन्धोऽथ पञ्चमः प्रतिपादितः ॥

पष्ठः सौत्रामणिः प्रोक्तः पितृयज्ञस्तु सप्तमः ।

तथैव सोमसंस्थाश्च ज्योतिष्टोमः स आदिमः ॥

अत्यग्निष्टोमसंज्ञोऽथ द्वितीयः कथितो बुधैः । उक्थ्यश्च षोडशी पश्चादतिरात्रस्ततः परम

अप्तोऽर्याभो वाजपेयाः सोमसंस्थाः प्रकीर्तिताः ।

त एते निखिलाः कर्मविशेषाः नित्यसंज्ञिताः ॥

दैनंदिनाख्यकृत्यानां पश्चाद्भावित्य एव हि ।

दैनन्दिनक्रियाश्चापि ता एता इति कीर्तिताः ॥

स्नानसन्ध्याजपोहोमो देवतानां च पूजनम् ।

आतिथ्यं वैश्वदेवाख्यं षट्कर्माणि दिने दिने ॥

दैनंदिनानि कर्माणि ब्राह्मणेन विजानता । पुण्यदेशेषु कार्याणि नापुण्येषु कदाचन ॥

पुण्यदेशे पुण्यकाले योग्यकाले विशेषतः । विधिश्चद्वासमायुक्तं कृतं कर्म विशिष्यते ॥

आचारकर्मतः श्रेष्ठं स्मृतं कर्म ततः पुनः । श्रौत्रं कर्माधिकं श्रीमन्न तेन तुलितं क्वचित्

अभिन्नं सर्वजनैः परदुःखाकरं नृणाम् । हितं श्रेयस्करं भूरि कर्म कार्यं मनीषिभिः ॥

सतामनुद्बेगकरं सर्वशास्त्रैकसमतम् । अहेयं सर्वविन्दूनां यत्स्यात्कर्तव्यमेव तत् ॥

देशकालं वैदिकं च समयं स्वकुलक्षमम् । स्ववन्धुशिष्टहव्यं यत्कर्तव्यं न तु चेतरेत् ॥

यच्छास्त्रनिन्दितं दुष्टं कुवन्धुत्रातकारितम् । सतामसमतं कर्म त्याज्यमेव विपश्चिता ॥

सदा नैमित्तिकं कर्म नित्यात्कृत्याद्विशिष्यते ।

नैमित्तिकं पुरा कृत्वा पश्चान्नित्यं समाचरेत् ॥

तद्यथेति कृते प्रश्ने तत्रैतद्वि विशोधितम् । श्राद्धाङ्गतर्पणस्यादौ सन्ध्याया अपि पूर्वतः ॥

कर्तव्यत्वेन विबुधैः उपदिष्टं हि यन्नतः । तस्मान्नैमित्तिको धर्मो नित्येभ्यः पर ईरितः ॥

सर्वपुण्येषु देशेषु विधयो नात्र वशिषवः । एते स्युः धर्मदेशाश्च पठिता वेदशास्त्रयोः ॥

ब्रह्मावर्तः कुरुक्षेत्रं पाञ्चालाः शूरसेनयोः ।

मात्स्यदेशा मागधेयाः प्रयागः काशिकादयः ॥

आर्यावर्तश्च परमः कृष्णसारनिषेवितः । यागदेश इति ख्यातः दर्भदेशश्च केवलः ॥
 पर्शामूमिश्च परमः पावनो देश एव च । शमीगर्भ प्रदेशश्च राजवृक्षनिषेवितः ॥
 शम्यश्चत्थौदुम्बराढ्यो योऽयंखादिर पुञ्जवान् । विल्वकाहिततिन्दूकवैकङ्कतविशेषतः ॥
 देशाः पुण्यतमा ज्ञेयाः सर्वकर्मैक सुक्षमाः । सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ॥
 तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते । एष ब्रह्मऋषेर्देशो ब्रह्मावर्तादनन्तरम् ॥
 हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि । आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात् ॥
 तयोरेवान्तरे पुण्य आर्यावर्त इति स्मृतः । आर्यावर्तः पुरोदेशः ऋषिदेशस्ततोऽधमः ॥
 मध्यदेशस्ततो न्यून आर्यावर्तस्ततोऽधमः । विष्णुक्रान्ता मही सर्वा पवित्रेयं स्वभावतः
 तत्र दुष्टजना यत्र स देशो निन्दितोऽखिलैः । यत्र सज्जनसन्दोहो यत्र श्रोत्रियसंहतिः
 आहिताग्निप्रचारश्च स देशः पर उत्तमः ।

न सन्ति सज्जना यत्र श्रोत्रिया मन्त्रवित्तमाः ॥

कर्मण्याः कर्मकुशलाः स देशो सभ्य एव वै । त्याज्य एव भवेन्नूनं वसन्तत्र नराधमाः ॥
 कर्मभ्रष्टो भवेन्नूनं परलोकाच्च हीयते । यत्र विद्यागमो नास्ति यत्र नास्ति धनागमः ॥
 यत्र बन्धुजनाः सन्तः स्वाचारैकप्रवर्तकाः । न सन्ति तत्र विबुधान त्रिष्टेत्क्षणमप्यति
 यत्र ऋत्विग्जनाभावः वेदशास्त्रश्रुतिस्तथा । स्वाहाकारस्वधाकारवषट्काराः कदाचन ॥
 वसन् तत्र कथं मूढच्युतिं जातेर्नगच्छति । देशानां पुण्यदेशत्वं महदैकनिवासतः ॥
 असदैकनिवासेन कुदेशत्वं तथा स्मृतम् । अङ्गवङ्गादयो देशाः षट्पञ्चा षट्कभेदकाः ॥
 कदाचित्पुण्यदेशाः स्युः महतां संनिवेशतः । कदाचित्तदभावेन स्युस्ते पापविशेषणाः ॥
 चण्डालादिप्रदुष्टा ये देशाः पुण्यविशेषणाः ।

देवस्थलानि श्रीमन्ति स तान्देशाश्च पुष्कलाः ॥

देवगृहा विप्रगृहा र्भ(?)ल्लाभिरप वारिताः । उच्छिष्टादिप्रदुष्टाश्च जन्तुर्हिसादिकुत्सिताः
 गव्याक्रमणता नूनं पूताः सज्जनयोग्यकाः । भवेयुरेव दिवसैः कैश्चिदेकत्रिपञ्चभिः ॥
 गोविप्रहत्याशतकैः दूषिता अपि वच्मिवः । देवदेशविशेषाश्च घेन्वावासनिवेशनैः ॥
 पुनः शुद्धा भवन्त्येव तथामन्त्रोक्षणेन च । पापानामपि पुण्यानां शास्त्रमेकं निरूपकम्

पवित्रस्यापवित्रस्य शुद्ध्यशुद्ध्योर्द्विजन्मनाम् ।

शास्त्रज्ञानां वाक्यमात्रमेकं मुख्यं निरूपकम् ॥

शास्त्रं चतुर्दशविधमिति केचिन्मनीषिणः । अष्टादशविधं चेति पुनरुचुर्महर्षयः ॥

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।

पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गन्धर्वो वेद एव च । अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥

चतुर्दशानां विद्यानां धर्ममूलत्वमीरितम् । नायुर्वेदादिकस्यैतत् तस्य दृष्टैकमूलतः ॥

नास्त्येव धर्ममूलत्वं स धर्मः श्रुतिचोदितः । धर्मः स्याच्चोदनाप्रोक्तस्तदन्यस्तूपचारतः ॥

लिङ्गादि रूपा सा ज्ञेया मुक्तिदा श्रुतिचोदिता ।

श्रुत्यन्तर्गतलिङ्गलोढं तन्व्यप्रत्ययसुबोधिते ॥

धर्मशब्दो मुख्यतः स्यादन्यत्र ह्युपचारतः । पुराणाद्युक्त धर्माणां नानादानादिरूपणम्

सुकृतत्वं वदन्त्येते न धर्मत्वं तु वैदिकाः । धर्मत्वं किल तेषां तु गौण्या वृत्त्या न मुख्यतः

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च ।

क्रियते यस्स धर्मः स्यादतोऽन्यो नामधारकः ॥

वङ्गलपं वा स्वसूत्रोक्तं यस्य कर्मप्रचोदितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थं कृते सर्वं कृतं भवेत् ॥

छन्दोवदेव सूत्राणि भवन्ति खलु सूरिणाम् । वेदोक्तमपि सूत्रोक्तं तुलितं वैदिकोत्तमाः ॥

नाङ्गीकुर्वन्ति बाढं वै सूत्रकारस्तुतेऽखिलाः । सर्ववैदिक विज्ञानशालिनः किल वै यतः ॥

तस्मात्तदुक्तं वेदज्ञाः प्रत्यक्षश्रुतिचोदितम् । अपि त्यक्तवैव सुदृढं सूत्रचोदितमेव वै ॥

स्वीकुर्वन्त्येव निश्शङ्कं सूत्रं यद्यपि केवलम् । पौरुषत्वात्कर्तृकं हि तथा स्यात्तत्तु सूत्रकम्

नित्याच्छ्रुते न्यूनमेव नाधिकं पौरुषेतरात् । तस्मिन्वेदोपदेशोऽपि तैष्यां श्रावणकर्मणि

प्रधानहोमात्परतः श्रुतीनामुपदेशतः । परं कल्पोपदेशोऽपि क्रियते शास्त्रवाक्यतः ॥

तत्समत्वेन च तथा पाणिनीयस्य तत्परम् ।

ग्लौः ग्मेत्यादि (?) स्मर्यादादि बोधकतत्कृतः ॥

शास्त्रस्य तत्परं भूयः पञ्चादि ग्रन्थकस्य च । मयादिसूत्रकस्यापि मीमांसायुगमकस्य च

अथात इति तत्सूत्रद्वयस्यापि क्रमेण वै । तत्समत्वेन विहितोपदेशो वेदकर्मणि ॥

तस्मादेतानि सर्वाणि ह्यलङ्घ्यान्त्येव सर्वदा ।

पुराणधर्मशास्त्रादि(शास्त्रा)णि निखिलान्यपि ॥

न तैस्समानिति बुधाः प्रवदन्ति यतस्तु हि । नोपदिष्टानि तानि स्युः प्रतिसंवत्सरंपरम् ॥

उपदिष्टानि तु पुनः यानि कर्माणि तादृशे । स्युरेवलङ्घनीयानि गुरुणि प्रतिवत्सरम् ॥

द्विवारं बहुधा वृत्त्या यावज्जीवं विशेषतः ।

तस्मात्तु धर्मशास्त्रादि प्रोक्तादि निखिलान्यपि ॥

कर्माणि करणे नित्याभ्युदयादिप्रदानि हि ।

त्यागे तु प्रत्यवायैकप्रदानि न भवन्ति हि ॥

तस्मात्तु दर्शिते वेदाः प्रमाणान्यखिलाः पराः ।

तद्विन्नास्तदुपसर्जनकत्वे खलु हि कीर्तिताः ॥

आयुर्वेदादयस्तत्र चत्वारः केवलं नृणाम् । दुष्टप्रयोजकत्वेन धर्ममूला भवन्ति न ॥

आयुः परीक्षात्मकत्वात्प्रथमस्तत्र तादृशः । युद्धोपकरणत्वेन द्वितीयोऽपि तथाविधः ॥

श्रोतुः सुखाकरत्वेन तृतीयोऽपि तथा ननु ।

न्यायेनानेन तुल्योऽपि स्पष्ट एवार्थसाधकः ॥

सर्वं श्रौतेषु सर्वत्र स्मार्तं साधारणं भवेत् ।

दिक् प्राच्युदीची ग्राह्येति ह्यासीनत्वं च कर्मसु ॥

तत् त्र्यङ्गाणामनुक्तौ तु दक्षिणाङ्गं भवेत्तथा ।

कुत्सितो वा महस्तस्मादक्षिणः स्यादकुत्सितः ॥

यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्वं कर्मप्रदक्षिणम् । उपस्थानेषु सर्वत्र नोपदेशनमुच्यते ॥

अवस्थितिः स्यादर्घ्येऽपि विना सायं विशेषतः ।

आचान्तेन प्रकर्तव्यं कर्ममात्रं विचक्षणैः ॥

अपसव्यं तु पित्र्यं स्यात्प्राचीनावीतमित्यपि । नामान्तरं हि तस्यैव सव्यं दैविकमुच्यते

निवीतं मानुषं प्राहुः सव्येनैव च सर्वदा ।

स्थेयं द्विजेनोपवीतं विना तिष्ठेदपि क्षणम् ॥

यज्ञोपवीताभावेऽपि वाससा वाऽजिनेन वा ।

स्थेयं द्विजेनातिथत्नादन्यथा स्यात्तु पातकी ॥

सा मयाचारिका धर्मा जातिदेशकुलोद्भवाः

ग्रामाचाराः परिग्राह्याः ये च विद्याविरोधिनः ॥

युगधर्मा वर्षधर्मा मात्त(त्र)धर्मास्तथापरे । क्रियाधर्मा लोकधर्मा यत्रयत्र यथोचिताः ॥

परिग्राह्या विशेषेण नातिलङ्घ्याः कदाचन । यत्कृते दशभिर्वर्षैः त्रेतायां हायनेन तु ॥

द्वापरे तस्य मा तेन ह्यहोरात्रात्कलौयुगे । धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणां कलिस्साधुस्ततो महान् ॥

देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थपरिग्रहः । अग्निहोत्रहवण्याश्च(विष्या)लेहो लीढा परिग्रहः ॥

असवर्णासु कन्यासु विवाहास्तद्विजन्मनाम् । वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमधसंकोचनं तथा

अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शनमेव च । प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणांमरणान्तिकम् ॥

संसर्गदोषः प्रेतेषु मधुपर्के पशोर्वधः । दानहोमौ विना तूष्णीं पुत्रत्वेन परिग्रहाः ॥

शामित्रं चैव विप्राणां सोमविक्रयणं तथा । दीर्घकालब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ ॥

देवरेण सुतोत्पत्तिः दत्तकन्यापरिग्रहः । कमण्डलोश्च स्वीकारः कलत्रस्य प्रदानकम् ॥

पुत्रकार्याय चान्यस्य मांसेन श्राद्धकर्म यत् । ज्येष्ठांशदानं च तथा कन्यादूषणमेव च ॥

वालिकाक्षतयोन्याश्च वरेणान्येन संस्मृतिः ।

आततायी द्विजाग्रचाणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् ॥

द्विजस्याग्रे तु निर्याणं शोधितस्यापि संग्रहः । महाप्रस्थानगमनगोसंज्ञाग्निश्च गोसवे ॥

सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः । अधसंकोचनं तूष्णीं द्वेषदूरादिना परम् ॥

वरातिथिपितृभ्यश्च शुभ्रूषाकरणक्रिया । दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः ॥

अयोनी संप्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियः । षड्भक्तानशनेनापि हरणं हीनकर्मणाम् ॥

शूद्रैषदासगोपाल कुलमित्रार्यसारिणाम् । भोज्यान्नं तु गृहस्थस्य तीर्थसेवा च दूरतः

शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिकल्पनम् । ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य वचनादि क्रिया अपि ॥

जलानयन पाकादि कृत्येषु न्यङ्गशून्यतः । भृग्वग्निपतने चापि वज्र्या नाहर्मनीषिणः ॥

कलौ विशेषतः सन्तः पुरा किल महात्मभिः । निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः

साधूनां समयश्चापि प्रमाणं वेदवद्वदेत् । श्रुतिद्वैधं तु यत्रस्यात्तत्र धर्मावुभावपि ।
स्मृत्योर्विरोधे संप्राप्ते मनुवाक्यस्यसंमतिः । यदेव तत्परं प्रोक्तं बहुस्मृतिमतं तथा ॥

आचार्यस्य विरोधे तु स्वदेशात्तु व्यवस्थितिः ।

त्यक्ताया व्यभिचारिण्या बन्धुभिस्तत्कलत्रकैः ॥

स्वग्रामवासिभिर्लोकैः पश्चात्कल्पान्तरात्पुनः ।

स्वीकारो युज्यते नैव त्याग एव सदा मतः ॥

त्यागात्परं तु नारीणां पुनः स्वीकरणात्कुलम् । प्रदुष्टं प्रभवेन्नूनं तदीयं तन्महद्भयम् ॥

कृत्स्नस्य तत्कुलस्यैव जायते सार्थिकाखिला । नापि दुष्टा परित्यक्ता परसदोषशङ्कया ॥

तद्वन्धूनामबन्धूनां पश्चात्संग्रहणाक्षमा । प्रायेण नारी लोकेषु विधवा सधवा तथा ॥

सद्भुजङ्गदुरालापैः शङ्कितापि प्रदुष्यति । मद्बन्धापकीर्त्या पुरुषो दुष्टसंन्यासशब्दतः ॥

अतो ह्रियेत स पुनः तरेन्नैव प्रवच्मि वः । अपवादभिया स्त्री वा पुमान्वा सततं यतन्

जीवेत कीर्तिमानेव कीर्तिमान्पुण्यलोकभाक् ।

अपकीर्त्या निन्दितस्य नोर्ध्वं लोकं कथंचन ॥

यशो लभ्येत पुण्येन यशः क्रूरेण पाप्मना ।

अयशस्वी सर्वधर्मैः स्नानसन्ध्यादिकैः स्वकैः ॥

जपैर्होमैः स्तपोभिश्च ह्रियते नात्र संशयः । अप्रमत्तश्च सततं विनिद्रः कालनिद्रकः ॥

नित्यं देवान्भावयन्श्च प्रध्यायन्मनसा हरिम् ।

संस्मृत्य तदहः कार्यं सन्ध्योपासन मारभेत् ॥

शिरः प्रावरणं कृत्वा निवीती पृष्ठतो व्रजेत् । कर्णालम्बितसूत्रेण भूतबाधानिवृत्तये ॥

दिशोऽवलोकनं कृत्वा वृणैराच्छाद्य मेदिनीम् ।

विष्मूत्रावुत्सृजेन्मौनी दिवा चैव तु सन्ध्ययोः ॥

उदङ्मुखः प्रकुर्वीत रात्रौ चेदक्षिणामुखः । हलकृष्टे जले चित्यां वल्मीके गिरिमस्तके ॥

देवालये नदीतीरे दर्भदेशेषु वालुके । सेव्यक्षेत्रेषु सच्छाया मार्गेगोष्ठाम्बुभस्मसु ॥

अग्नौ च गच्छंस्तिष्ठंश्च विष्णुमूत्रे तु नोत्सृजेत् । सर्वे निषेधा नैव स्युः प्राणबाधा भयेषु वै

काष्ठादिना त्वपानस्थममेधं निर्मृजेत च । यथाजलं निर्भयं च लभेत च भवेत च ॥
तथा सर्वं यथाशास्त्रं प्रायश्चित्तप्रपूर्वकम् । कुर्यादेव विधानेन तथा सन्ध्यादिका अपि
आपत्काला कृताः पश्चाद्भवेयुर्नात्र पातकम् । कन्दमूलफलाङ्गारैः नामेधं निर्मृजेत च
पाषाणलोष्ठदुष्पत्रैः क्षुद्रैर्मर्मकपालकैः । आपत्सु निर्मृजेद्गुह्यं पुरीषोत्सर्जनात्परम् ॥

आपत्कल्पानि सर्वाणि विपत्स्वेव भवन्ति हि ।

तान्यनापत्सु कुर्वाणो नरो गच्छेदधोगतिम् ॥

शौचयत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः ।

शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम् ॥

शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।

मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥

वस्त्रेणान्तरितं शिशनं वामेनादाय पणिना ।

शुद्धाकारस्थिता मृत्स्ना शौचायालं समाचरेत् ॥

श्मशानवर्त्मवल्मीकं द्रुमं ध्यानजलस्थिताम् ।

अन्यशौचावशिष्टां तु तुषारङ्गारयुतां त्यजेत् ॥

रोगात्यन्तापरवशः राजपीडावशोऽपि वा ।

पलायमानश्च भिया शौचं कालोचितं चरेत् ॥

अरण्यकेषु मृत्स्नाया ग्रामेष्ववाहरणं विधिः ।

नीरतीरे शुचौ मृत्स्नां विधायाम्युक्ष्य वारिणा ॥

दक्षपाणिपुटाकृष्टे प्रथमं शोधयेन्मृदः । धात्रीसमानया यद्वा मृदामुष्ण्यर्धकल्मया ॥

आदाय दक्षहस्तेन वामपादौ नियुक्तया । मृज्जलोत्तरया पायुं क्षालयेत्पञ्चसंख्यया ॥

एकया क्षालयेच्छिशनं दशभिर्वामहस्तकम् । मृत्स्नाभिः सप्तभिः हस्तौ परिमृज्य शुभैर्जलैः

एकैकया मृदा पादौ हस्तौ प्रक्षाल्य चाचमेत् ।

एका तु मृत्तिके लिङ्गे तिष्ठः सव्ये करे मृदः ॥

करद्वयेमृद्द्वयं स्यान्मूत्रशौचे प्रकीर्तितम् । शौचमेव गृहस्थानां द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम् ॥

त्रिगुणं तु वनस्थानां यतीनां तु चतुर्गुणम् ।
 एवं शौचं दिवा प्रोक्तं रात्रावुक्तार्थमाचरेत् ॥
 पथि पादः समादिष्टो व्याधितानां तदर्धकम् ।

स्त्रीशूद्राणां च वालानां वृद्धानामन्धकस्य च ॥

गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्यान्न संख्यया । चित्तशुद्धयवधिः प्रोक्तः सर्वेषां शुद्धिरीरिता
 पुनरन्यो विधिः शौचे सर्वस्थानेषु मृत्तिकाः । पञ्चवारं प्रकर्तव्या गृहस्थैरेव केवलः ॥
 एतद् द्वयं क्षत्रियाणां वैश्यानां तु तृतीयकम् । तच्चतुर्गुणितं शूद्रजातेरिति तथा परः ॥
 आमादिचलने घोरे बहुमूत्रे च सङ्कटे । शरीरानुगुणत्वेन शौचकर्म समाचरेत् ॥
 ज्वरातिसारादिकृत्ये जलैर्नोष्णेन तच्चरेत् । यथाशक्ति यथायोग्यं तदा सर्वं समाचरेत्
 भ्रमविस्मरणादौ तु मासवर्षद्विवर्षकैः । त्रिवार्षिकादिभिश्चापि सर्वसान्ध्यादिके परे
 सर्वलोपे च संप्राप्ते तादृशस्य तु देहिनः । तत्कर्म निखिलं सम्यक् तज्जनास्तस्य मुक्त्ये
 स्वयं कुर्युस्तमुद्दिश्य तत्परं पुनरभ्यति । प्रकृतिस्वाङ्गतस्यैव हृढकायस्य तस्य हि ॥
 परिषदक्षिणापूर्वं चापाग्रस्तानदानकैः । शतकेन समग्रणे पुनस्संस्कारपूर्वकम् ॥
 धेनुदानैः शक्तिकृतैर्यावकाहारपूर्वकैः । पञ्चगव्यप्राशनेन ब्राह्मणानां प्रसादतः ॥
 कथञ्चित्प्रकृतिं प्राप्तं स्यक्तस्साध्योऽपि मुच्यते । प्रसङ्गादेतदुदितं चित्तं तत्त्यक्तकर्मणः
 एतच्चित्तं छलद्वर्पात्परं कर्तुं न शक्यते । शौचस्थानं परित्यज्य पादौ प्रक्षाल्य चाचमेत्
 दन्तनां धावनं पश्चात्कुर्यादित्येव तत्कमः । दन्तधावनतः पश्चात्प्रकृत्या वर्ष्मण पुनः ॥
 कुर्यान्मूत्रपुरीषे वा स्नानस्य परतोऽपि वा । सर्वः कायानुगुण्येन विधिर्भवति देहिनाम्

नोपरुद्धः क्रियाः कुर्यात्कर्ममध्येऽपि वा तथा ।

मूत्रवाधादिकाः प्राप्तौ तदा तत्कर्म संत्यजन् ॥

व्याहृतीनां जपं कुर्वन् इदं विष्णुं त्र्यम्बकम् ।

शक्त्या जपित्वा तत्कृत्वा पुनराचमनात्परम् ॥

तन्मन्त्रं न्यासपूर्वं वै दिग्बन्धनपुरस्सरम् । तद्व्याहृतीर्जपित्वैव पुनस्तत्कर्म चाचरेत् ॥
 तदामूत्रं पुरीषं वा वस्त्रमध्यगतं यदि । तद्वस्त्रं संपरित्यज्य शक्त्या वस्त्रान्तरं पुनः ॥

शुद्धं धृत्वा शुचिर्भूत्वा पुनः कर्म समारभेत् ।

यथा वा स्यान्मनःशुद्धिः पुनः स्नानादिनाऽथ वा ॥

तत्कर्म साधयेद्भूयः तावता कर्म तत्पुनः । प्रनष्टं न भवेदेव सम्यक् संपादितं भवेत् ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि ईशानाभिमुखोऽपि वा ।

प्रातःकाले तु कर्तव्यं शुद्धयर्थं दन्तधावनम् ॥

दन्तधावनतः पश्चान्मन्त्रेणानेन तत्पुनः । काष्ठं परित्यजेदद्भिः प्रक्षाल्यैव तु दूरतः ॥

आयुर्वलं यशोवर्चः प्रजाः पशुवसूनि च । ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

मन्त्रमेतं पुनः केचित्तत्स्वीकारे वदन्त्यपि । पुराणपठितं यस्मान्न नित्यं तु कृताकृतम् ॥

सर्वत्रैवं पुराणोक्त मन्त्राणां ज्ञेयमेव तत् । अपि वेदोक्तमन्त्राश्च विनियोजकवाक्यतः ॥

कृत्येषु विनियुक्ताश्चेत् त्यागे स्युः प्रत्यवायकाः ।

न चेत्तु प्रायिकाचारवर्त्मप्रोक्तिमतां तथा ॥

परित्यागे तु मन्त्राणां बाधकं नेति सूरयः । अर्थवाद ब्राह्मणानां विध्यनुब्राह्मणस्य च

मन्त्रत्वेनैव तूष्णीकं प्रवादनकर्मसु । तदनुक्तौ न किमपि बाधकं स्यात्कदाचन ॥

शिरीषार्जुनकारश्च चिरिविल्वैः सखादिरैः ।

औदुम्बरैरपामागैः स कामी चेत्सदाचरेत् ॥

समच्छेदाद्रसत्वग्भिः समपर्वनिरामयैः । अष्टाङ्गुलिसमायामैः कनिष्ठपरिणाहकैः ॥

कुर्यात्समैश्च ऋजुभिः दन्तानां शुभधावनम् । अशोकजम्बुकुटजचूतप्लक्षादियुक्तैः ॥

स चम्पकैरपामागैः द्वादशाङ्गुलसमितैः । दन्तशुद्धिर्मुक्षूणामथवर्णानुपूर्वशः ॥

ब्रह्मक्षत्रियविद्वद्भ्यः शेषाणां दन्तधावनम् । एकैकाङ्गुलतो न्यूनं दशपर्वादिकक्रमात् ॥

धात्री शुभ्रधवैरण्ड शैलूषोशीरसंभवैः । निम्बालिकुचसुक्षीरवृक्षैरङ्गुलिभिर्न तु ॥

दर्भकाष्ठैर्वर्णकाष्ठैः वेणुकाष्ठैश्च कीचकैः । धात्रीतिन्त्रिणिककाष्ठैः न कुर्यादन्तधावनम्

अर्काङ्गार व्यतीपात जन्मसंक्रान्तिपर्वसु ।

रिक्तासु प्रतिपत्पञ्चम्योः कृत्तिकायां मघासु च ॥

भरण्यां सार्षभे रौद्रे विशाखायां व्रतेऽहनि । श्राद्धाद्दे ग्रहणे चैवैकादश्यां व्रती नरः ॥

न कुर्याद्वन्तकाष्ठेन ब्राह्मणो दन्तधावनम् । तृणपर्णैः सदाकुर्यादमा एकादशीं विना ॥
 तयोरपि च कुर्वीत जम्बुप्लक्षाम्रपर्णकैः । मृताहे तु विशेषेण न कुर्याद्वन्तधावनम् ॥
 दन्तधावनतत्स्थाने ह्यपां द्वादशसंस्त्रया । गण्डूपकर्म कुर्वीत तेनास्यास्य शुचिर्मवेत् ॥
 तर्पणात्परतः प्रातः परेऽहनि विचक्षणः । दन्तानां धावनं कुर्यान्न तत्पूर्वं कदाचन ॥
 अत्रोदयं श्राद्धमात्रे नान्येषां तु कथञ्चन । सकृन्महालयेऽप्येवे दन्तधावनतः परम् ॥

स्नानविधिः

स्नानं कुर्यात्ततः पश्चात्कार्याः सन्ध्यादिकाः क्रियाः ।

नद्यादिषु सदा स्नानं द्विवारं गृहिणां सदा ॥

त्रिवारं वनिनामुक्तं सकृत् ब्रह्मचारिणाम् । उत्तमं स्यान्नदीस्नानं तीर्थादिषु तथोच्यते
 सरःस्वपि तटाकेषु ह्रदेष्वपि च मध्यमम् । कूपस्नानं सदा प्रोक्तं नोत्तमं मध्यमं न तु
 अधमं हीति विज्ञेयं तस्मात्स्नानं नदीमुखे । प्रकर्तव्यं विशेषेण ब्राह्मणः कर्मकृन्महान् ॥
 ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सज्जलानदी । यत्र नास्ति चतुष्टयं न तत्र दिवसं वसेत् ॥
 नदीतीरनिवासोऽयं ब्राह्मणानां धनं महत् । परमं कथितं सद्भिः स्वर्गद्वारकरः परः ॥

ब्रह्महत्यादि पापानि नानारूपाणि यानि वै ।

नदीस्नानेन नश्यन्ति नित्यं स्नातुर्महात्मनः ॥

तस्मात्समाश्रयेद्विद्यन्नदीतीरं सुदुर्लभम् । देवानामपि सेन्द्राणां सर्वपापनिवृत्तये ॥
 तीर्थकोटिसहस्राणि ह्रदकूपसरांस्यपि । नदीमज्जनमात्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
 कनिष्ठदेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च । प्रजापतिपितृब्रह्मदेवतीर्थान्यनुक्रमात् ॥
 प्रभूतैधोदके प्राप्ते निवासो ह्यथवा भवेत् । महात्मनो ब्राह्मणस्य वदन्त्येवं महर्षयः ॥
 गृहस्थो यदि शक्तः स्यादजस्रं स्नानकृद्भवेत् । द्विवारमेव विधिना सकृद्वाऽथ न चेत्युनः ॥
 सकृद्वाऽपि सकृत्कुर्युः मध्याह्ने प्रातरेव वा । प्रातः संक्षेपतः स्नानहोमार्थं तु विधीयते ॥

मध्याह्ने कर्मबाहुल्यात्संम्यक् स्नानं विधीयते ।

सन्ध्याहोमः प्रातर्नित्यं मध्याह्ने देवपूजनात् ॥

ब्रह्मयज्ञाद्वैश्वदेवादातिथ्यात्कर्म गौरवात् । मध्याह्ने स्नानमधिकं प्रवदन्ति मनीषिणः

तथैव भूयो वक्ष्यामि प्रातः स्नानं यथाविधि ।

(...) भ्योहोभ्यो गोभ्यश्च त्रिविधेभ्यश्च बाढवः ॥

अष्टभ्यश्चापि सप्तभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । प्रातस्नानेन सदृशं नास्ति कर्म पवित्रकम्
प्रातःस्नानं ततः प्रोक्तं सर्वकर्मात्तमोत्तमम् । प्राणानायम्य विधिना सर्वकर्मसु देहभृत्
इदं करिष्य इत्येवं कुर्यात्संकल्पमग्रतः । ओं भूरिति प्राणायामजपः कार्यो मनीषिभिः ॥

आदौ सर्वेषु कार्येषु जामितारहितः शुचिः ।

तिथिवारादिकानुक्ता(न्) निर्दिशेत्कर्मजं ततः ॥

स्नानसन्ध्यात्रये होमे ब्रह्मयज्ञे विशेषतः । वैश्वदेवेन विधिना साङ्गं संकल्पमाचरेत् ॥

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् ।

क्रियास्नानं तथा षष्ठं षोढा स्नानं प्रकीर्तितम् ॥

अशक्तस्तु सकृद्वापि शिरःस्नानं विनापि वा ।

शीतोदकं विना भूयः स्नानमाकरकं तु वा ॥

कटिस्नानं जानुपादस्नानं वा सर्वथा पुनः ।

उष्णेन वा कीलालेन तद्धिना मन्त्रतोऽपि वा ॥

भस्मना रजसा वापि स्नानं कार्यं मनीषिभिः ।

सर्वं शक्त्यानुगुण्येन शक्तिमुल्लङ्घनाचरेत् ॥

सर्वेषामपि शास्त्राणामिदमेव मनो महत् । (स्नान)मुल्लङ्घ्य तूष्णीकं यो मूढो रोगयुग्जडः

स्नानादिकं प्रकुरुते कर्मभ्यो हीयते हि सः । शक्तौ सत्यामुक्तकाले सूर्यस्योदयनादतिः ॥

तन्मुहूर्तद्वयात्पूर्वं स्नानं कुर्यादतन्द्रितः । तत्राशक्तस्य सूर्यस्योदयकालेऽथवा ततः ॥

कण्ठस्नानादिकंकुर्यादुष्णेन सलिलेन वा ।

आर्द्रवस्त्रेण वा कार्यं निर्मृजेताथवा न चेत् ॥

धारणं शुद्धवस्त्रस्य वस्त्रत्यागपूर्वकम् । भस्मनाङ्गं ससंस्पृश्य मन्त्रप्रोक्षणपूर्वकम् ॥

सर्वं कायानुगुण्येन स्वहितं स्नानमाचरेत् । सर्वेषामपि वर्णानामशक्तौ चोदकं विना

स्नानं कार्यमुपायेन द्वायास्नानं तु वा चरेत् । अशक्तिर्यावदेव स्यात्तावदेवं समाचरेत्
 प्रातर्मध्याह्नयोः स्नानं नित्यस्नानं प्रकीर्तितम् । उच्छिष्टानुपघातेषु अस्पर्शस्पर्शनेऽपि च
 ग्रहसंक्रमणादौ च स्नानं नैमित्तिकं स्मृतम् । पुण्यमाखादिकस्नानं काम्यं देवज्ञभाषितम्
 इष्टापूर्तक्रियायां तु यज्ञाङ्गं स्नानमुच्यते । मलापकर्षणं यत्तत् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥
 स्नानमेवं पुनस्तीर्थक्रियास्नानं तदुच्यते । स्नानमष्टविधं भूयो वारुणाग्नेयमारुतात् ॥

माहेन्द्रात्पार्थिवान्मन्त्राद्गौरवान्मानसात्तथा ।

वारुणं तद्विधा प्रोक्तं समन्त्रकममन्त्रकम् ॥

समन्त्रकं द्विजातीनां स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकम् । नदीसरिह्रदेखातर्गतप्रस्रवणेषु च ॥
 सरस्सु वा कृत्रिमेषु पुण्यतीर्थेषु वा तथा । वापीकूपतटाकेषु परकीयेषु वारिषु ॥
 पल्वलेऽल्पजले स्नानं भवेद्धारुणमुत्तमम् । तदेकेनालिके स्नानं पुष्करिण्यां तु मध्यमम् ॥
 कूपे वाप्युदपाने वा ह्यधमं मन्दिरे तथा । राजकार्यं प्रतिष्ठस्य सद्दर्शनत एव वै ॥
 कार्यबाधकलम्बस्य न निन्द्यं गृहमज्जनम् । राज्ञोराजसमानस्य धुरिणस्याधिशसने ॥
 तत्साम्राज्याभिषिक्तस्य गृहस्नानं न दुष्यति । नृपशत्रुमहाभीत्या ऋणदानातिपीडनैः
 अज्ञातवासिनश्चापि गृहस्नानं प्रशस्यते । अवगाह्य शिरस्कं यत्तदाद्यं काण्ड(ण्ड)मप्यथ

नाभिस्नानं कटिस्नानं द्वितीयमिति तज्जगुः ।

आर्द्रेणवाससाऽङ्गानामभिमर्शनमित्यपि ॥

तृतीयं कथितं पश्चादुष्णाम्भः सिक्तवस्त्रतः ।

निष्पीताद्गात्रमात्राभिमर्शः स्यात्तु तृतीयकः ॥

स्नानमेकं बहुविधं कथितं ब्रह्मवादिभिः । कल्पाम्भसि शिरोमज्जेन्नावगाहेत्समुद्रके ॥

स्रोतसोऽभिमुखं स्ना(या)न्मार्जनं चाधमर्षणम् ।

अन्यत्रार्कमुखो रात्रौ प्राङ्मुखो दक्षमुखोऽपि वा ॥

सन्ध्यामुखस्तु सन्ध्यान्ते तथैवाद्यं तयामयोः ।

तिष्ठन्नेव सदा स्नायाज्जानुमानात्परे जले ॥

अधश्चेदुपविश्यैव गृहे चैवोपविश्य च । गुल्फदभ्रजले कूपे महागाधजले तथा ॥

सम्यग्जलिना स्नायादल्पपात्रेण वा द्विजः ।

° पीठेष्वेव गृहे स्नायात्पापाणेऽप्यथवा तथा ॥

इकासूत्रते देशे पल्वलेन तु सर्वदा । मृत्तिकामन्त्रविधिना स्नानं मध्याह्न ईरितम् ॥

जीर्णाङ्गा निखिलालोका नित्यशीतासहिष्णवः ।

निवात आतपे नित्यं स्नानं कुर्युः समुन्मुखाः ॥

नभुत्तवाऽलङ्कृतो रोगी स्नानं कुर्यात्कदाचन । अभ्यङ्गस्नानपरतः वङ्गत्वाप्सु(नि)मज्जनम्

कुर्यादेव कदाचिद्वा तथाकृच्छ्रभमाङ्मतः । गृहे स्नाने (...) वितैः शीतलैर्वृथा

स्नानं कुर्यात्पुनः किं तु सुखोष्णेनैव पाथसा । सत्यामृष्टौ वृद्धिकामो तत्स्नायीत जलैर्गृहे

यदि स्नायात्कुबुद्धिस्तु फलतन्तैहिकादिकम् । कार्यं विना सुखत्यागी पशुरेव न संशयः

वृथा सुखार्थी पापीयान् भवत्येव न संशयः ।

वृथा सुखं च तज्ज्ञेयं साध्यानिद्रादिकं स्मृतम् ॥

सन्ध्याविधिः

सन्ध्याकाले सनिद्रो यः अभिनिर्मुक्त ईरितः ।

अतिपाप्यग्रगण्योऽयं तन्मुखं नावलोकयेत् ॥

अलक्ष्मीस्तन्मुखे नित्या ज्येष्ठा घोरा तथा पराः ।

दुश्श्रियो निवसन्त्येव हत्याब्राह्मचादिकाः खराः ॥

ब्राह्मणः सर्वयत्नेन सायं प्रातः समाहितः । सन्ध्यामात्रपरो भूयात्तावन्मात्रात्तरिष्यति

ब्राह्मण्यं ब्राह्मणानां तत्सन्ध्ययैव न चान्यथा । क्रियया प्रभवेन्नूनं प्रवदामि पुनः पुनः ॥

अनागतां तु ये पूर्वामनतीतां तु पश्चिमाम् ।

सन्ध्यां नोपासते ये तु कथं ते ब्राह्मणाः स्मृताः ॥

अशुद्धो वा विशुद्धो वा सपवित्रापवित्रकः ।

सन्ध्यां तीर्थे हृदे वापि भाजने मृण्मयेऽपि वा ॥

औदुम्बरे वा सौवर्णे राजते दारुसंभवे । यत्र कुत्रापि वा नित्यं येनकेनाप्युपायतः ।

गृहीत्वा वामहस्तेन सन्ध्योपास्ति समाचरेत् । पात्राद्यसंभवे चैव वामहस्तस्थितैर्जलैः ॥

सुखेन मार्जनंकुर्यात्करकादौ न धारया । कराभ्यां तु कुशान्धृत्वा प्राक्कूलेषु कुशेषु च ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि सन्ध्योपास्ति समाचरेत् ।

तिथिवारादिकानुत्तवाऽनुत्तवा वा शुद्धचेतसा ॥

परमेश्वरतुष्ट्यर्थमुपासिष्ये क्रियामहम् । सन्ध्याख्यामित्युदीर्यैव देवतीर्थात्कुशाग्रतः ॥

आपोहिष्ठेति तिसृभिर् मार्जयेन्मूर्ध्नि शुद्धये ।

ता एव तिस्रः परमा यजुष्ठेन क्रियासु चेत् ॥

नवप्रणवसंयोगात्प्रतिपादादिषु क्रमात् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

नवप्रणवयोगेन क्षिपन्वारि पदे पदे । विप्रुषोष्ठौ क्षिपेदूर्ध्वं मधो यस्य क्षयाय च ॥

धाराच्युतेन तोयेन सन्ध्योपास्तिर्विगर्हिता ।

तामेतां गर्हितां सन्ध्यां मूढात्मानो महर्षयः ॥

पितरो न प्रशंसन्ति न प्रशंसन्ति देवताः । मन्त्रपूतं जलं यत्तदापोहिष्ठादिमन्त्रितम् ॥

पतत्यशुचिदेहे तु सद्यःपूतो भवेद्ध्रुवम् । सन्ध्यात्रयेऽपि कर्तव्यमापोहिष्ठादिमार्जनम्

सूक्तैरुदेवतैरन्यैः कुशाग्रैर्देवतीर्थतः । प्रोक्षणानन्तरं सान्ध्ये तन्मन्त्रैर्याजुषैः परैः ॥

सायमग्निश्च मेत्युत्तवा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् ।

आपःपुनन्तु मध्याह्ने ततोऽप्यद्विर्द्विराचमेत् ॥

गालवोऽत्र क्रमं प्राह मन्त्राणां मार्जनस्य वै । आपोहिष्ठेति नवकं दधिक्रावाद्वयं ततः ॥

तदेवनवकंभूयः चतस्रश्च हिरण्यकाः । एतत्क्रमेण तत्कुर्यान्मार्जनं त्रिषु कर्मसु ॥

मार्जयित्वा विधानेन गायत्र्या द्विपदाख्यया ।

हस्तेनोदकमादाय क्षिपेद्भूमावधोमुखम् ॥

बहिर्जले नित्यमेव पादमेकं जलेक्षिपेत् । पुनस्तथा परं पादं भूमौ संस्थापयन्ततः ॥

हस्तेनोदकमादाय तदाचमनकादिकाः । क्रियास्सर्वाश्च कर्तव्याः अर्घ्यदानादयो जले ॥

निवर्त्यास्तिष्ठतास्तत्र तस्मान्नीरात्पुनस्तदा । समुद्धरणमेव स्यात्तच्च हस्तेन नान्यतः ॥

बहिर्जलेनोद्धरिण्या न गृहीयाज्जलं बुधः । सर्वकार्येषु तर्त्तिकु हस्तेनैव समुद्धरेत् ॥

यदिमन्दिरसन्ध्यास्यात्तदाचमनकादिकाः । द्विमुख्योदकतश्चेत्तु तत्पानोद्धरणादिषु

पृथक् पृथक् च कथितमतिरात्रफलं शिवम् । द्विमुखीगतपानीयं गोकर्णेन यतन्यदि ॥

स्वीकृत्याचमनादीनि कर्माणि कुरुते पुनः । अप्रोऽर्घ्यामसहस्रस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम्

• द्विमुखीगतपानीये गङ्गाद्याः सरितोऽखिलाः ।

पुष्करादीनि तीर्थानि कृच्छ्राणि च तपांस्यपि ॥

साङ्गावेदाश्च शास्त्राणि ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।

सर्वास्तीर्थाभिमानिन्यो देवता सागरा अपि ॥

महर्षयोमहात्मानः एतदुद्धरणाय वै । सदावासं प्रकुर्वन्ति नित्यायत्तत्समुत्सुकाः ॥

तस्मात्तु ब्राह्मणो नित्यं द्विमुख्युदकपात्रगः । नित्यकर्मकरो भूयात्तावन्मात्रेण केवलम् ॥

नित्यकर्मानुष्ठानान्निषिद्धकरणादपि । यत्पापं जायते नृणां तत्सर्वं वै विनश्यति ॥

रहस्यमेतत्परममज्ञेयं ज्ञानिनामपि । रहस्यबोधितं साक्षाद् देवदेवेन शंभुना ॥

जगन्मात्रे पृष्ठवत्यै शिवं पतितपावकम् । तीर्थानामुत्तरं तीर्थं सुलभं सर्वदेहिनाम् ॥

अशेषपापौघहरमज्ञानोन्मूलकं तथा । तादृग्जलेन कर्माणि विशेषज्ञो विचक्षणः ॥

प्रकुर्वन्स्यात्कृतार्थोऽयं तरत्यज्ञानजं तमः । तर्पिताः पितरस्तादृग्जलेन यदि वा सकृत्

गयाश्राद्धजमानन्दं प्राप्नुवन्त्येव तत्क्षणात् । प्रोक्षावशिष्टमुदकं कृत्वा रक्षां ततोदरे ॥

नासासमीपमानीय दुपदामित्यृचं जपेत् । पूरकेणोर्ध्वमादिष्टो धारयेदिन्दुण्मडले ॥

कुम्भकेनाथसर्वाङ्गव्यापकं पापसञ्चयम् । रेचकेन समानीय पाणौ संस्थाप्य दक्षिणे ॥

तत्पापं तु क्षिपेद्भूमौ चोरवन्नीचहस्ततः । तावन्मात्रेण निखिलं पापमाजन्मसञ्चितम्

लयमेति क्षणेनैव सत्यमेतत्प्रचोदितम् । द्वौ हस्तौ युग्मतः कृत्वा पूरयित्वोदकाञ्जलिम्

गोशृङ्गमात्रमुद्धृत्य जलं मध्ये जलं क्षिपेत् ।

दिवाकरस्य तुष्ट्यर्थं प्राङ्मुखोऽसौ पवित्रधृत् ॥

उपवीती विधानेन मध्याह्ने चोत्तरामुखः ।

सूर्यायैव तु गायत्र्या सावित्र्या चैव सन्ध्ययोः ॥

प्रातर्मध्याह्नयोस्तिष्ठन् सायमासीन एव वा ।

असावादित्यो ब्रह्मेति कृत्वाऽऽत्मानं प्रदक्षिणम् ॥

दैत्यहिंसानिवृत्त्यर्थमुपविश्य द्विराचमेत् । मन्देहानां वधार्थाय प्रक्षिपेदुदकाञ्जलिम् ॥

गायत्रीमन्त्रितं पूतं त्रिवारं तु तुरीयकम् । प्रायश्चित्तार्थमित्युक्तं पश्चादाचमनेन वै ॥

सा दैत्यपीडा नष्टा स्यान्नित्यमेव सदीरितम् ।

एवं ज्ञात्वा द्विजो नित्यमर्घ्यदानं यतश्चरेत् ॥

रक्षः पीडानिवृत्तिः स्यात्सूर्यस्यार्घ्यत्रयेण यत् । जायते तेन तस्यार्घ्यं अर्चनारूप उच्यते

असावादित्यो ब्रह्मेति यद्ध्यानं क्रियतेऽन्वहम् ।

तदेव सान्ध्यमित्युक्तं कर्म ब्राह्मण्यमूलकम् ॥

तद्गायत्र्या विस्तृष्टायाः सिद्धयर्थं पुनरेव वै ।

प्रातिलोभ्येन तां देवीं समाकर्षणमाचरेत् ॥

तन्मन्त्रमेव सततं वदन्ति ब्राह्मणोत्तमाः । यादचो प्रनयोयोधि हि मधीत्वस्यवदेगौभ

यंणिरेर्वतु वित्सत गायत्रीं जपकाले तु ब्रह्मयज्ञादिकेऽपि च ।

संहितोक्तिप्रकारेण वैदिकोक्तिर्निगद्यते ॥

गायत्रीप्रथमामन्ते णकारस्य प्रधानतः । मकारस्यहि संयोगः तस्मात्सोऽयं तु वर्णकः

संयुक्तनामको ज्ञेयः एक एवेति वेदहृत् ।

तत्राद्यपादो गायत्र्याः कृत्वा भिन्नं तु नोच्चरेत् ॥

अभिन्नपादा गायत्री दृढाबलवती सदा ।

प्रवरा सा विशिष्टा स्यादिति वेदविदां मतम् ॥

पुनः केचन गायत्रीं वर्णयन्ति महर्षयः । प्रविभक्तपदामेव जपेयुरिति सान्ध्यके ॥

भृगुराहात्र सर्वज्ञो गायत्रीं वेदमातरम् । पादत्रयेणैवसम्यग्विश्वाभिन्नोऽपि जैमिनिः ॥

ऊचतुश्च महात्मानौ गायत्रीजपतत्परौ ।

अच्छिन्नपादां गायत्रीं जपं कुर्वन्ति ये द्विजाः ॥

अधोलोकान् हि गच्छन्ति कल्पकोटिशतैरपि ।

छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यादिनाशिनी ॥

अच्छिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति । तस्मात्पादत्रयं भित्वा जपयज्ञं समाचरेत्

इत्येवं भगवानाहकाश्यपो वेदवित्तमः । सकण्वश्च तथैवाह गायत्री जपलक्षणे ॥

त्रिसन्ध्यासु जपेद्देवीं विच्छिद्यैव पदत्रयम् । अविच्छिन्नं जपेद्यस्तु रौरवं नरकं व्रजेत्
ब्रह्मयज्ञे तु सततं निखिलं तन्मतं परम् । अङ्गीकृत्य श्रुतिः प्राह पच्छोऽर्घर्चश एव वै ॥

पश्चात्सर्वांश्च सूत्रोक्तमतं चापि प्रगृह्य सा ।

सावित्रीं तां त्रिरन्वाह पच्छोऽर्घर्चश अनवानम् (?) ॥

इत्येवं किलतस्यां तु जपकालेऽन्वहं द्विजाः । यथेच्छतो जपेयुर्वै शास्त्राणां तु समत्वतः ॥
तुर्यपादस्तथाचैको गायत्र्या श्रुतिचोदितः । परोरजसेसावदोमित्येवं पापवारकः ॥
मूलश्रुत्या तथा सृष्टः शिव च गोसरहकः(?) । इत्येवं विधया ज्ञातो गायत्रीमातृवर्णने
तन्मातरश्च ता ज्ञेयाः पृथक्त्वेनाष्ट ईरिताः । पथिमतदिति मुखं वा न्यं हि तदनन्तरम् ॥

रोयोगो सा द्वितीया स्याद्रयो देवी तृतीयकम् ।

जनवच्च चतुर्थं स्यादस्य प्रसेति पञ्चकम् ॥

रेरेधीचो सातु षष्ठं स्यान्निमिदवेति सप्तमम् ।

यं वा यादोष्टमस्यान्मातृवाक्यक्रमो ह्ययम् ॥

एतेषां मातृवाक्यानां जपमात्रेण सन्ततम् ।

सिद्धिर्भवेत्तु गायत्र्याः कालात्तस्य च सान्ध्ययोः ॥

यत्पापं तस्य नश्येत्तु तदिदं गुह्यमीरितम् । कुशबृश्यां समासीनः कुशपाणिर्जितेन्द्रियः ॥

गायत्रीं तु जपेद्विद्वान् प्राणायामत्रयान्विताम् ।

पादयोश्च तथा जान्वोः जङ्घयोर्जठरेऽपि च ॥

कण्ठे मुखे तथा मूर्ध्नि क्रमेण व्याहृतीर्न्यसेत् । भूरङ्गुष्ठद्वये न्यस्य भुवस्तर्जनिकाद्वये ॥

ज्येष्ठाङ्गुलीद्वये धीमान् स्वः पदं विनियोजयेत् ।

भूः पदं हृदि विन्यस्य भुवः शिरसि विन्यसेत् ॥

शिखायां हृदि विन्यस्य स्वः पदं कवचे न्यसेत् ।

अक्ष्णोर्भगपदं न्यस्य भ्रुकुटीषु धियः पदम् ॥

प्रकारान्तरविन्यासः प्रोच्यते पुनरप्ययम् । हृदितत्सवितुर्न्यस्य न्यसेत्कण्ठे वरेण्यकम्
भगो देवस्य ह्रीत्येतन्न्यसन्मध्यमयोरथ । धीमहानामिकामध्ये धियः कानिष्ठिके न्यसेत्

प्रचोदयादिति ततः करतलादौ तु विन्यसेत् ।
 तत्सेति च पुनः पश्चाद्धृदये वै सुविन्यसेत् ॥
 वरेण्यं शिरसि स्वाहा भर्गो देवस्य तत्परम् ।
 शिखायै वौषडित्युत्तवा धीमहीति ततः पुनः ॥

कवचाय हि हुं न्यस्य धियोयोन इतीव वै । नेत्रत्रयाय वौषट् च प्रचोदयत एव वै ॥
 अस्त्राय फडिति प्रोत्तवा कुर्याद्दिग्वन्धनं ततः । व्याहृतीभिस्त्वथोङ्कारमात्रेणात्र ततः पुनः
 तद्ध्यानं कथितं सद्भिर्बहुधा तत्प्रकीर्तितम् ।
 अन्यन्यासं पुनर्वच्मि वसिष्ठेनोक्तमुत्तमम् ॥

तत्पदं विन्यसेत्पादयुग्माङ्गुष्ठद्वयेऽपि च । सकारं गुल्फदेशे तु विकारं जङ्घयोर्न्यसेत् ॥
 तुकारं विद्धि जान्वोस्तु वकारं चोरुदेशतः । रेकारं विन्यसेद्गुह्ये णिकारं वृषणे न्यसेत्
 कटिदेशे यकारं स्याद्भुङ्कारं नाभिमण्डले । गोकारं जठरे यो(ज्य)देकारं स्तनयोर्न्यसेत्
 वकारं न्यस्य हृदये स्यकारं कट एव तु । धीकारमास्ये विन्यस्य मकारं तालुमध्यतः ॥
 हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं तं च नेत्रयोः ।

भ्रुवोर्मध्ये तु योकारं योकारं तु ललाटके ॥

पूर्वानने तु नः कारं प्रकारं दक्षिणानने । उत्तरास्ये तु चोकारं दकारं पश्चिमानने ॥
 विन्यसेन्मूर्ध्नि यात्कारं सर्वव्यापिनमीश्वरम् । तद्गायत्रीस्वरूपेण परं बन्धं सनातनम्
 भावयित्वा वर्णरूपमुत्तरीत्या जगत्पतिम् । कृत्वा चैतद्विधिं न्यासमशेषं पापनाशनम्
 पश्चात्समाचरेन्न्यासं वर्णरूपसमन्वितम् । तत्पदं चम्पकाभासं ब्रह्मविष्णुं शिवात्मकम्
 शान्तं सनातनं रुद्रं ध्यायेत्संस्थानसिद्धये । सकारं चिन्तयेच्छ्याममतसीपुष्पसन्निभम्
 पद्ममध्यस्थितं सौम्यमुपपातकनाशनम् । विकारं कपिलं चिन्त्यं कपिलासनसंस्थितम् ॥
 ध्यायेत्सौम्यं द्विजश्रेष्ठः महापातकनाशनम् । तुकारश्चिन्तयेत्प्राज्ञः इन्द्रनीलसमप्रभम् ॥
 निर्दहेत्सर्वदुःखं तु ग्रहरोगसमुद्भवम् । वकारं दीप्तबह्व्यामं भ्रूणहत्याविनाशनम् ॥
 तुकारं स्फटिकप्रख्यमगम्यागमदोषहम् । णिकारं वैद्युतप्रख्यमभक्ष्याभक्ष्यदोषहम् ॥
 यकारं तारकावर्णं ध्यायेद्ब्रह्महनाशनम् । भकारं तु महाकृष्णं पूर्बहत्याविनाशनम् ॥

गोकारं स्वर्णरूपं स्यात् स्तेयदोषहरं परम् । देकारं रजतप्रख्यमपेयवृजिनापहम् ॥
वकारं मणिवर्णाभं मपाङ्क्तयादिपापहम् । स्यकारं पिङ्गवर्णं स्याद्विश्वासद्रोहि पापहम्
धिकारं मरकताकारं पैशुन्याद्यघहं विदुः । मकारं स्फटिकप्रख्यं गुरुतलपाघनाशनम् ॥

हिकारं गारुत्मताकारं तत्सङ्गादि महाघहम् ।

धिकारश्चि(ञ्चि)न्तयेच्छुक्लं क्षत्रहत्यादिदोषहम् ॥

योकारो ममरूपोऽयं भार्याहरणदोषहम् । द्वितीयं चैव योकारं रुक्माभं पापनाशनम्
नः कारं सूर्यसंकाशं चिन्तयेत्क्रौर्यपापहम् । प्रकारं तिलवर्णाभं शिवसायुज्यदायकम् ॥
चोकारं तु सुवर्णाभं विष्णुसायुज्यदायकम् । सितवर्णं दकारं तु ब्रह्मसायुज्यदायकम् ॥
यात्कारमुशिरः प्रोक्तश्चतुर्वदनसप्रभः । प्रत्यक्षफलदो ब्रह्मविष्णुरुद्रस्वरूपकः ॥
आग्नेयं प्रथमं तत्र द्वितीयं वायुदैवतम् । तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैद्युतं तथा ॥
पञ्चमं यमदैवत्यं षष्ठं वारुणमुच्यते । बार्हस्पत्यं सप्तमं तु पार्जन्यं त्वष्ट्रं विदुः ॥
कौबेरं नवमं विद्याद्वैधं दशममुच्यते । एकादशं तु रौद्रं स्यादादित्यं द्वादशं भवेत् ॥
त्रयोदशं वैश्वदेवं साध्यं तच्च चतुर्दशम् । ध्रौवं पञ्चदशं ज्ञेयं षोडशं भानुदैविकम् ॥
प्राजापत्यं सप्तदशं गारुडं तदनन्तरम् । एकोनविंशं विज्ञेयं कौमारं चिन्तितार्थदम् ॥
आश्विनं चैकविंशत्यं प्राजापत्यं च विंशकम् । सर्वदैवतकंचेति चैकविंशकमक्षरम् ॥
द्विरूपं तस्य विज्ञेयं महा.....ख्यकं पुनः । रौद्रं द्वाविंशकं प्रोक्तं ब्राह्मं चैव ततः परम्
वैष्णवं चतुर्विंशं तु चैवमक्षरदेवताः । जपकाले तु संस्मृत्य तासां सायुज्यगो भवेत् ॥
अथासां दर्शयन्मुद्राः सुमुखं संपुटं तथा । ततो विततविस्तीर्णौ(णौ) द्विमुखत्रिमुखे ततः
चतुर्मुखं पञ्चमुखं षण्मुखाधोमुखं पुनः । व्यापकाञ्जलिकं चैव शकटं तदनन्तरम् ॥

प्रथितं यमपाशं च ततः स्यात्सन्मुखोन्मुखम् ।

विलम्बिमुष्टिकानामिमत्स्यकूर्मवराहकाः ॥

सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं ततो मुद्गरपल्लवौ ।

चतुर्विंशति मुद्रास्ताः कथिताश्च यथाक्रमम् ॥

अज्ञानादर्शयन्मुद्रा महाजनसमागमे । महापापमवाप्नोति तन्मन्त्राश्चा(?)पि हीयते ॥

क्षुभ्यन्ति देवतास्तस्य पितरो विलपन्त्युत । तस्मान्निदर्शयेन्मुद्रा यस्यकस्यापि देहिनः
भक्ताय वैदिकायैव(त)तःशुद्धस्य देहिनः । भक्तस्यैव वदेत्प्रीत्या नाभक्ताय कदाचन ॥

कुर्यादाद्यन्तयोर्देव्या जपस्य ध्यानमुत्तमम् ।

तद्ध्यानं च प्रवक्ष्यामि तेषामेकं श्रुतीरितम् ॥

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवच्छायैर्मुखैस्ती(स्य)क्षणैः ।

युक्ताविन्दुनिवद्धरत्नमकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम् ॥

गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं ।

शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे ॥

इति ध्यात्वा सुखासीनो जपं कुर्यात् त्रिकर्मसु । हस्तेनावर्तयेद्देवीमक्षसूत्रैरथापि वा ॥

प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि जपमात्रविचक्षणः ।

सूर्यस्याभिमुखः प्रातः गुरुदेवान्निदिङ्मुखः ॥

न्या(ना)साग्रन्यस्तदङ्गमौनी गायत्रीजपमाचरेत् ।

त्रिविधो जपयज्ञः स्यान्मानसोपांशुवाचकः ॥

मानसो मनसःकार्यो मन्त्रवाक्यार्थचिन्तया । उपांशुरोष्ठसंस्पर्शमात्रस्य श्रुतिगोचरः ॥

उच्चैर्भाषा जपः कार्यः परश्रवणगोचरः । मुक्तिदो मानसो ज्ञेयोपांशुः सर्वत्र सिद्धिदः ॥

क्षुद्रकर्मणि भाष्यः स्यादित्युक्तः त्रिविधो जपः ।

प्रातरुत्थाय पाणिभ्यां हस्ताभ्यां दिनमध्यमे ॥

अधोमुखाभ्यां पाणिभ्यां सायं संलक्षितो जपेत् ।

तिष्ठन्नेव जपेद्देवीं प्रातरासूर्यदर्शनात् ॥

मध्याह्ने तु जपेद्देवीं मासीनस्तिष्ठतोऽपि वा ।

कुशबृस्थां समासीनः सायं नक्षत्रदर्शनात् ॥

प्राङ्मुखस्तु जपेत्प्रातः मध्याह्ने प्रागुदङ्मुखः ।

प्रत्यङ्मुखस्तु सायाह्ने दैवे वा गुरुसंनिधौ ॥

तन्मुखस्तु जपं कुर्यात्तन्मन्त्रं तत्र सिद्ध्यति । अविदित्वा ऋषिच्छन्दो दैवतं योगमेव च

यो ध्यायेद्वाजपेद्वापि पापीयान्जायते हि सः ।

अतः ऋष्यादिकान्ज्ञात्वा मन्त्रमात्रस्य मानसः ॥

जपं कुर्यात्प्रयत्नेन देवता तेन तुष्यति । मन्त्रसिद्धिश्च भवति तस्मात्तत्तु तथा चरेत् ॥
मन्त्रार्थज्ञस्य विदुषो नैतदावश्यकं परम् । ऋष्यादितत्परिज्ञानकथनं कृत्स्नमेव वै ॥
तदर्थज्ञानोपायस्य सरण्याः प्रतिपादनम् । नित्यं जपेत्तु सावित्रीं सान्ध्यकर्मस्वतन्त्रितः
पृथक्त्वेन सहस्रं वै न चेदष्टोत्तरं शतम् । अष्टाविंशतिसंख्याकं दशन्यूनं कदाचन ॥
न कुर्यादेव सहसा कुर्याच्चेद्ब्रह्म नश्यति । विशेषेणात्र भूयश्च ब्रह्मचारिगृहस्थयोः ॥
अष्टोत्तरशतान्यूनमष्टाविंशतिमेव वा । वानप्रस्थयतीनां तु सहस्रान्यूनमुच्यते ॥
यतिरत्र प्रकथितः कुटीचकबहूदकौ । हंसस्य परमहंसस्य न गायत्रीजपः स्मृतः ॥
तयोर्जपः प्रकथितः प्रणवस्यैव केवलम् । सूतके मृतके वापि गायत्र्या जप उच्यते ॥
सन्ध्यात्रयोदशैवेति प्रदोषेऽपि तथैव वै । देशक्षोभे महापत्तौ मार्जना(ध्या)द्यसंभवात्
सन्ध्यागतं सहस्रांशुं मन्त्रैः कुर्यादुपस्थितम् । जलाभावेनार्घ्यमात्रं रजसैतद्विधीयते ॥

दिग्भ्यश्चैव विदिग्भ्यश्च देवताभ्य प्रणम्य च ।

आत्मपादौ तथा भूमिं सन्ध्याकालेऽभिवादयेत् ॥

आयुर्विद्यां तथा रोग्यः स्त्रियः कामास्सुदुर्लभाः ।

मनसा चिन्तितानर्थान्प्राप्नोति पुरुषर्षभः ॥

अर्घ्यदानात्परं सम्यगुपविश्यासने शुभे । व्याघ्रचर्मादिके शुद्धे ओमित्येकाक्षरं मनुम्
आयातु वरदां चेति यदह्नादिति तत्परम् । सर्ववर्णेति च ततः ओजोसीत्यादिकं ततः

अत्यन्तसप्तकं जपत्वा तदन्ते वेदवित्तमः ।

अभिभूरोमिति प्रोक्तवा गायत्रीमिति तत्परम् ॥

आवाहयामीत्युक्त्वा च सावित्रीं च सरस्वतीम् ।

छन्दर्षीश्च श्रियं पश्चात्प्रोक्तेषु च पृथक् पृथक् ॥

आवाहयामीत्यावाह्य गायत्र्यादिकशेषकम् । समुदीर्याथ योन्यन्तो मन्त्रमध्ये पुनश्च वै
प्राणापानव्यानोदानसमानार्कवाक्यके । विनियोगपदं चान्ते प्रथमां तेन वर्णयेत् ॥

ओं भूरिति च तस्यास्य वाक्यान्तं खण्डयेत्परम् ।

तत ओं भुव इत्येव ओ ँ सुव इति स्म वै ॥

समाप्य वाक्यं तत्पश्चादों महति स्म च । ओं जनः पञ्चमं च ओं तपः षष्ठमप्यथ ॥

ओ ँ सत्यं सप्तमं स्यादूर्ध्वलोकैकराजकाः ।

भूरित्यादि महाशब्दाः सप्तव्याहृतिवाचकाः ॥

ओंकाररूपा इत्येवमोंकारो ब्रह्मवाचकः ।

एवं संचिन्त्य विबुधः ओमापो ज्योतिरित्यपि ॥

वाक्यशेषं पूरयित्वा तदन्ते पुनरेव वै । भूर्भुवस्सुवरोमुत्तवा सर्वैरेतैश्च मन्युभिः ॥

त्रिवारं रेचकं कृत्वा पूरकं कुम्भकं तथा । मन्त्रज्ञो मन्त्रवाक्येन प्राणायामं समाचरेत्

सर्वकार्येष्वेवमेव प्राणायामविधिः स्मृतः । एवं कर्तुं शक्तिहीनः एकं वाक्यमशेषकम् ॥

तूष्णीकं वा जपेन्नित्यं त्रिवारं नासिकाकरः । प्राणायामफलं मूढो लभतेऽपि न संशयः

ब्राह्मण्यस्य प्राणायामः निदानं सा यथा शिवा ।

गायत्री सर्ववेदानां माता श्रेयस्करी परा ॥

सन्ध्याप्रयुक्तगायत्री मन्त्रसंख्यजपं ह्यहम् ।

करिष्येत्येव संकल्प्य पूर्वोक्तैर्नैव वर्त्मना ॥

जपं कुर्याद्यथाशक्ति तत्तन्यासादिकं पुनः । (मन्त्र)तत्तर्पिन्यासबीजमुद्रास्त्रादिकमप्यति

आहिताग्नेर्वैदिकस्य मन्त्रार्थज्ञस्य कर्मिणः । अत्यन्तावश्यकत्वेन करणं नेति वेदिनः ॥

प्रोचुः किल महात्मानः तदेतदखिलं पुनः । वेदकर्मादिकं तूष्णीं तूष्णीकस्यैकतन्त्रिणः ॥

अमन्त्रस्य विहितं वैदिकस्य तु तस्य चेत् । प्रधानवेदोक्तमन्त्रमात्रस्यैव परं पुनः ॥

उक्तिमात्रेण सन्ध्यामात्रं गायत्रमेव च । जपमात्रं प्रधानं चेत्तदुपस्थानमेव च ॥

गोत्राभिवन्दनं चैव दिङ्मनस्कारमध्यकम् । कर्तव्यत्वेन विहितं नान्यत्किमपि तस्य वै

तथा किमर्थमित्युक्ते तस्य वेदोक्तकर्मणः । अभिहोत्रस्य मुख्यत्वात्तस्योद्धरणकर्मणः ॥

उदयास्तमनात्पूर्वं कर्तव्यत्वाख्यहेतुना । तत्रोक्तस्य तस्यास्य दुर्भाक्तत्वं न संशयः ॥

तान्त्रिकादपि च स्मार्ताद्वैदिकं कर्मसूरिभिः । सर्वोत्तरमिति प्रोक्तं तस्मादेतं तु दुर्बलम्

दीक्षासु चैतुनस्तत्र सन्ध्याकालेऽस्य केवलम् ।

परित्यागः प्रकथितो वाग्विसर्गात्परं पुनः ॥

अर्घ्यमात्राभ्यनुज्ञानं गायत्रीदशकस्य च ।

निखिलस्याङ्गजालस्य न्यासबीजादिकस्य वै ॥

स वाग्यतस्तप इति श्रुत्यैतद्वि निरूपितम् । नक्षत्रदर्शनात्पश्चाद्वाग्विसर्गश्च चोदितः ॥

तस्मान्नित्यं वैदिकः स्यादाहिताग्नेर्द्विजन्मनः । दशप्रणवगायत्रीमेकादौ सान्ध्यकर्मणि

आपोहिष्ठात्रयंपश्चाद्दिक्रावद्वयं तथा । हिरण्यवर्णाश्चत्वारः द्रुपदाख्या तथैकका ॥

गायत्री पापसन्त्यागे गायत्र्यर्घ्यं तथैकका । असावादित्य इत्येतदोमित्येकाक्षरं परम्

आयतु मन्त्रस्तत्पश्चाद्यदह्नादिति तत्परम् । गायत्रीजपतः पश्चान्मित्रस्येति त्रयं ततः ॥

ओं नमः पञ्चकं तच्च यास तत्परम् । उत्तमेशिखरेचेति स्ततोमयाथ चरमा ॥

गात्रोभिवादनंचेति प्रातः सन्ध्या यथैव सा ।

सायं सन्ध्या मध्यमा च विशेषः पुनरप्ययम् ॥

तयोः सन्ध्ययो प्रोक्तः प्रथमप्रोक्षणात्परम् । सतारकनवकान्नित्यं जलप्राशनकर्मणि ॥

सूर्यश्चेति मनुस्त्वादौ मध्यमेऽपः पुनन्त्विति ।

अग्निश्चेति तथा सायं भेदस्तु श्रुतिचोदितः ॥

उपस्थानेऽपि मध्येऽस्मिन्नासत्येनोद्वयं पुनः । उदुत्यं च तथा चित्रं तच्चक्षुरिति तत्परम् ॥

ज्योक्च सूर्यं तथा शिष्टन्न ममवत सूरिभिः ? ।

सां ज्ञेयैरित्येवं तन्निरूपितम् ॥

चरमायां तु सन्ध्यायामिमंमे वरुणेतिवै । तत्त्वायामीति च ततः यच्छिद्धिते ततः पुनः

यत्किंचेदं कितवासः ऋचः ... । सममन्यत्प्रकथितमेतावन्नाधिकं पुनः ॥

एतावदेवतेसर्वे महात्मानो महर्षयः । सप्तर्षयः काश्यपाद्या नारदाद्याः सुरर्षयः ॥

सनकाद्याश्चयोगीन्द्राः सर्वलोकोत्तमोत्तमाः । अकर्तुमन्यथाकर्तुं कर्तुं चापि जगद्वशे ॥

चराचरसुरासुरमिलितं शक्तिमत्तराः । अनया सन्ध्यया पूर्वं बभूवुर्लोकपूजिताः ॥

(एक)द्वित्राश्च बहवः नैव स्युःकेतु ते पुनः । चत्वारिंशतिसंख्याकाः प्रातःकाले श्रुतीरिताः

एतत्किञ्चित्त्रयपञ्चान्मध्ये सान्ध्येऽत्रकर्मणि । मन्त्रद्वयं विकल्पेनाधिकया च त्रयं पुनः ॥
ख्यकार्येऽत्र प्रधानं चात्र केवलम् । ब्राह्मण्यमूलं गायत्री मात्रमेवात्र तत्समम् ॥
 नान्यत्कमपिवक्ष्यामि सत्यमेव तथा पुनः । सत्यं सत्यं प्रवक्ष्यामि रमो द्विजः ॥
 सर्ववन्द्यः सर्वगुरुः सा गायत्री विकारतः । दशप्रणवसहिता व्याहृतिन्यासवर्णनात् ॥
 दशप्रणव गायत्री सेवनान्यापि सा तथा । सर्वकर्मसु ... प्राणायामाख्यकर्मणः
 असावादित्यमन्त्रोऽपि तदङ्गत्वेन वै भवेत् । तत्प्रोक्षणादिमन्त्रास्तु गर्भाङ्गा एव सर्वथा
 न तु प्रधानिनो ज्ञेया तत्स्थाने वेदवित्तमाः । हिरण्यशृङ्गमन्त्रादिपवमानादिकस्तथा
 यद्देवा देवकैः भूयः इदं विष्णवादिकैरपि । अन्यैस्तथावेदगतैः यैः कैश्चित्तैस्तु पावकैः ॥

प्रोक्षणादीनि तान्यत्र कर्तुं शास्त्रेण सन्ततम् ।

शक्यन्ते किलतद्वत्त गायत्रीमात्रमत्यति ॥

विकल्पवाक्यतो वच्मि स्वीकर्तुं तन्न शक्यते ।

त्यागमात्रेण सा सन्ध्या तद्ब्राह्मण्यविनाशिनी ॥

नैव नित्यं प्रयत्नेन पुनः पुनरतीव वै । आवर्तयन् त्रिसन्ध्यासु स्वरवर्णादिकैरपि ॥

सा सम्यक् स्वरवर्णैकपठिता ब्राह्मण्यमूलका ।

सद्ब्राह्मण्यप्रदा नूनं न चैद्वैगुण्यदायिनी ॥

तस्याः सामीचिन्यसिद्धयेऽत्र सर्वे द्विजोत्तमाः ।

(वेदाध्य)यनकर्माख्यं चक्रभ्रमणशाणकम् ॥

नित्यं यत्नेन कुर्वन्ति न चेत्सा सर्वथा शिवा । सम्यगुच्चारणार्थाय न भवेदेव वच्म्यहम्

वेदाध्ययनसच्छिक्षा संस्कृतावाङ्महात्मनाम् । तत्स ... रणाय भवेदिति सन्मतम् ॥

यस्त्यक्तवेदाध्ययनं गायत्र्युच्चारणाक्षमः । सम्यग्भवेदेव तस्माद्गायत्रीमात्रमप्यति ॥

तज्ज्ञैः सुशिक्षितो भीत्या तन्मन्त्रानपि सांगतः ।

अधीत्य कर्म तैः कृत्वा देही सायं कृती भवेत् ॥

न चेत्पाप्येव विज्ञेयो द्विजमात्रो नराधमः ।

नोर्ध्वलोकानवाप्नोति ह्यधोलोकान् स गच्छति ॥

गायत्रीमूलको विप्रो न निन्द्यः स्यात्प्रवक्ष्यहम् ।

भूयोभूयः प्रवक्ष्यामि ब्राह्मण्यं तन्महात्मनाम् ॥

गोपनीयं ग्रयत्नेन स्पष्टीकरणाक्षयम् । सन्ध्याशिखोपवीतैस्तैरन्विष्टः प्रथमैः पदैः ॥

ब्राह्मण्यं बुद्धिपूर्वेण पालनीयं महात्मनाम् । युगानुरूपाः सर्वत्र ब्राह्मणा भूतलेऽधिकाः ॥

तथा देशानुरूपाश्च कदाचित्तु तथा तथा । प्रदृश्य(न्ते)वर्धते सन्तौ सन्तश्च ते पराः ॥

तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः ।

यस्मिन्देशे यदाचारा ब्राह्मणा धर्मवर्धकाः ॥

संप्रदायाश्च कृत्याश्च ताः कदाचिन्न लङ्घयेत् ।

स्नानं स्नातजलस्नानं स्पर्शस्नानं समीक्षणात् ॥

सततं संगवस्नानं मध्याह्नस्नानमेव च । (...) दिषु तत्तेषां दूषणाय न ॥

देशधर्मास्तादृशाः स्युः त एते दूषणाय न । नौपासनं कचिद्देशे न स्थालीपाकमेव च ॥

न देवार्चा ब्रह्मयज्ञः सान्ध्यं कर्मत्रयं च तत् ।

एकदाका (...) मन्त्राभसक्ति रपि केवला ॥

प्रदृश्यते तत्र तत्र मृत्तिका शौचशून्यता । एकवारो धृतजला त्रिवार च मनःक्रिया ॥

एवं जातीयकाचारा युगदेवाविपर्ययात् । द्विजत्वजातिनाशाय न भवन्त्येव सर्वदा ॥

परं तु तादृशं ब्रह्मदोषयुक्तं भवत्यति । सामीचीन्यं नैति तस्मात् तत्तिष्ठतु यथा तथा

तज्जातिभाव (.....) वन्द्यं न निन्द्यं पूज्यमप्यति ।

अप्रशस्तं यद्यपि स्यात्तथाप्ये तत्तु जातितः ॥

स्वीकार्यमपि संग्राह्यं वाङ्मात्रेण समर्चयेत् ।

याचितस्तेन दद्याच्च शक्त्या तन्न तु वञ्चयेत् ॥

तद्वञ्चनेन ते देवाः शब्दिताः स्युर्नसंशयः । यतस्तु ब्राह्मणः सर्वदेवरूप इति स्मृतः ॥

तदेतदास्तां बहुना पौनः पुन्येन किं वृथा ।

स्तानौपासनतः पश्चात् कुर्याद् वै ब्राह्मणोत्तमः ॥

वेदानध्यापयेच्छिष्यवृन्दकं शास्त्रमेव च । अधिगच्छेद्दीश्वरं च यदृच्छालाभकोप्यति ॥

संतुष्ट एव प्रभवे (...) भवेन तु । मध्याह्नस्तानपरतः ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् ॥

ब्रह्मयज्ञः

उदयानन्तरं केचित्तमिच्छन्ति द्विजोत्तमाः ।

प्राक् सायान्तस्यकालः स्यादित्येवं वेदिनां मतम् ॥

प्रागग्रेषूदगग्रेषु दर्भेषु सुसमाहितः । प्राणानायम्य विधिना देशकालाबुदीर्य च ॥

तिथौ च प्रकृते पुण्यनक्षत्रादियुते शुभे । परमेश्वरतुष्ट्यर्थं ब्रह्मयज्ञेन संप्रति ॥

यक्ष्येऽहमिति संकल्प्य विद्युन्मन्त्रेण तेन वै । अवनिज्य करद्वन्द्वं त्रिराचामेत्ततः परम्
द्विवारं परिमृज्यैवमुपस्पृश्य सकृज्जलम् । शिरश्च चक्षुषी पश्चान्नासिके श्रोत्र एव च ॥

हृदयेऽलेभ्य विधिना पञ्चार्धचर्श एव च ।

ततः सर्वां च गायत्रीं व्याहृतीभिः समन्विताम् ॥

पादादिषु तथान्ते वा चोपदेशविधानतः । त्रिरन्वाह विधानेन ह्यनवान ... ताम् ॥

ऋचो अक्षर इत्युक्त्वा त्रिवारं चार्थसिद्धये ।

शक्त्या प्रश्नानुवाकौघ मन्त्राणां ब्राह्मणस्य वा ॥

विधीनामार्थवादानां क्रमाद्वागान्दिने दिने ।

तत (...) नखिलानपि ॥

अधीयीतैव धर्मेण तदीयेनैव नान्यथा । एवं स्वर्यं वर्जयित्वा समस्वरसमाश्रयात् ॥

उच्चैर्वेदेद्वहिर्ग्राप्ते ग्रामे तु मनसैव वै । तं स्वाध्यायमधीयीत तपस्वी पुण्यवान्भवेत् ॥

ऋचामध्ययनेनापि भवेयुः क्षीरकुल्यकाः । भवेत्कल्पितवान्नित्यं तेषां च यजुषामपि ॥

स्वरोच्चारणतो विद्वान् घृतकुल्या (...) ।

प्रभवत्येव सततं तत्सामाध्ययनेन चेत् ॥

सोमधारा महाकुल्या कारकोऽयं सदा भवेत् ।

तदन्तर्गतगाथानामितिहासानुरूपिणाम् ॥

पुराणानां च प (...) तीः प्रियाः । कल्पातल्पानल्पभोगजनको जनयेदपि ॥

यजेत्प्रशनेन शक्तश्चेत् अनुवाकेन वाऽथवा । मन्त्रेण वाक्यमात्रेण प्रज्ञा तेनैव नान्यथा

ब्रह्मयज्ञं प्रकुर्वीत (... ...) नित्यमेव वै ।

नमो ब्रह्मण इत्युत्तवा परिधानीयकामृचम् ॥

त्रिराहर्द्धपाणिस्सन्वृष्टिमात्रेण तत्परम् ।

समापयेज्जलं स्पृष्ट्वा तान्दर्भांस्तत्रनिक्षिपेत् ॥

स्वाध्यायी तु वेदस्य ब्रह्मयज्ञाय सन्ततम् । इपेत्येत्यनुवाकान्तमनुवाकांस्ततः पुनः ॥

चतुरस्त्रीनथद्वौ वा यथाशक्ति समभ्यसेत् । अभ्यस्तमात्र (.....) मधीयीतैव तत्परम्

भद्रं कर्णेभिरित्यत्र नात्यन्तं ब्रह्मपाठके । मन्त्रद्वयं त्रयं वापि समधीतैव तत्परः ॥

ऋग्वेदेऽप्यग्निमीलेति अग्नआयाहि सामनी ।

शंनोदेवी (...) परमे वेदवाक्यमृचं तु वा ॥

वदेदधीत्य विधिना साक्षात्कल्पे ततः पुनः । अथातोदर्शपूर्णैति प्रणयत्यन्तकं जपेत् ॥

वृद्धिरादैच् सूत्रमध्ये तत्त्रयं समुदीरयेत् । ऋग्वेदलक्षणेचापि ग्लौःग्मेति च वदेत्तथा ॥

पञ्चसंवत्सरमिति ज्योतिः सूत्रं च तद्वदेत् । मयरेत्यादिकं सूत्रं छन्दोविचिति मध्यगम्

अथाऽतो जैमिनेः सूत्रमथाऽतो व्यासभाषितम् ।

अहं वृक्षस्य तत्पश्चाद् भूभुवः सुवरित्यथ ॥

नमो ब्रह्मेति तेषां तत्परिधानीयकामृचम् ।

त्रिरुत्तवा वृष्टिवाक्यं च समुच्चार्य जलं स्पृशेत् ॥

धृतान्दर्भानप्सु नित्यं निक्षिपेदिति तत्क्रमः । यावदध्ययनात्तस्य वेदाध्येतुर्दिने दिने ॥

फलं भवति तावच्च वेदानध्येतुमप्यति । फलं भवेत्तस्यमुक्तमाद्रचित्तस्य कर्मिणः ॥

वेदिवेदैकसच्चित्तशालिनः कृतिनः सतः । गुह्यमेतत्प्रकथितं समस्तोपनिषद्गतम् ॥

अजस्रं ब्रह्मयज्ञान्ते यत्किञ्चिद्दक्षिणां ततः । प्रदद्यात्तु तदङ्गार्ये सायं यज्ञो दिने दिने

कर्तव्यत्वेन विहितो जामितारहितेन वै । ब्रह्मयज्ञमकुर्वाणो ब्राह्मणो यदि मूढधीः ॥

भुङ्क्ते तूष्णीं सद्य एव वेदद्रोह्यपि दुग्गुरोः । देवद्रोही पितृद्रोही तीर्थद्रोही भवेदपि ॥

तस्मात्तु ब्राह्मणो विद्वान्देवर्षिपितृतृष्टये । स्वानृण्याय भुक्त्यर्थं ब्रह्मयज्ञपरो भवेत् ॥

सततं ब्रह्मयज्ञान्ते तदङ्गं तच्च तर्पणम् । द्विराचम्य ततो देवान् ऋषीन् ऋषिगणानपि ॥
 पितृन् पितृगणांश्चैव तर्पयेदनुपूर्वशः । देवानृषीन्पितृन्नित्यमक्षतैरेव तर्पयेत् ॥
 विशेषदिवसेष्वेव पितृणां तर्पणं तिलैः । तद्दिने श्राद्धधर्माः स्युः तत्कर्तुं नात्र संशयः ॥
 तर्पयित्वा पितृन्यस्तु तिलदर्भैः समाहितः । द्वितीयां कुरुते रात्रिं कांगतिं (प्राप्य) मूढधीः
 कालसूत्रमधो याति यावदभूतसंप्लवन् । तिलतर्पणकृन्मर्त्यो स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ॥

स्वरेतसा पितृन्सोऽयं स्नापयेत् अचिरेणवै ।

देवानृषीन्पितृंश्चापि स्वशाखा चोदितान्परान् ॥

तर्पयतीव विधिना तत्तत्तीर्थेन नान्यतः । देवतान्देवतीर्थेन ऋषितीर्थेन तानपि ॥
 पितृंश्च पितृतीर्थेन तर्पयेदन्वहं द्विजः । द्वितीयया विभक्तयाऽत्र सर्वेषां तर्पणं भवेत् ॥
 पदेन तर्पयामीति ह्यनुषङ्गो भवेदपि । अनुषङ्गो द्वितीयान्ते कदाचिन्नादितो भवेत् ।
 चतुर्थ्यन्तेन चेत्तत्तु तर्पणं वै तदा पुनः । नमः पदान्तेऽनुषङ्गः एवं तर्पणनिर्णयः ॥
 स्नानान्ते ब्रह्मयज्ञान्ते तीर्थे तीर्थविशेषके । विधिज्ञः तर्पणंकुर्याद्देवादीनां यथा क्रमम् ॥
 गर्ते वापि शुचौ देशे स्थले विस्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञस्तर्पणंकुर्यात्तदे पात्रेऽथवा शुचौ ॥
 सर्वतोमुखसामीप्यं ब्रह्मयज्ञस्य सन्ततम् । विशेषेण प्रशंसन्ति काननं वहिरप्यति ॥
 ग्रामो गृहो मध्यमः स्यात्तस्मात्तत्रैव संचरेत् । गृहे ग्रामेऽपि भूयश्च ह्यह्निर्दश उत्तमः ॥

कृतस्नानः कृतजपः कृतहोमो जितेन्द्रियः ।

ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा यत्र तिष्ठेज्जलाशयः ॥

तत्र गत्वा प्रयत्नेन ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् । उक्ताशासु जलाभावे तं दिनं वा व्रजेत वा ॥
 प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य कुशास्तरे । पूर्वास्य उत्तरास्यो वा जानुमध्यकरद्वयः
 अधः कृत्वा परं सव्यं दक्षिणं परिविन्यसेत् ।

पवित्रपाणिदर्भस्थः स्वकरौ दक्षिणोत्तरौ ॥

कदलीपुष्पवत्कृत्वा ब्रह्मयज्ञपरो भवेत् । विना रौप्यसुवर्णाभ्यां विना पुष्पाक्षतैः कुशैः
 विना मन्त्रैस्तु देवर्षि (र्षीन्) तर्पयेत्तेन निष्फलम् । खड्गमौक्तिकहस्तेन रत्नैः पुण्यैः सुशोभनैः
 हिरण्येन कुशैर्दर्भैः कृतं तर्पणमुच्यते । जले स्थित्वा नरोयस्तु देवर्षिपितृतर्पणम् ॥

तद्व्यर्थमेव भवति व्योम्नि तत्तु विनश्यति । स्थले स्थित्वा जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः

• नोपतिष्ठेत तद्वारि पित्रादीनां निरर्थकम् ।

यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितृन् ॥

तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् । वामपादं जले कृत्वा स्थले कृत्वा तु दक्षिणाम्

शुचिस्थले समांसीनो जानुमध्यं करद्वयः । उपवीती पवित्राभ्यां युक्तहस्त उदङ्मुखः ॥

फेनबुद्बुदकीटादिरहितं वारि निर्मलम् । पूर्णेनाञ्जलिनाऽऽदाय देवतीर्थेन तर्पयेत् ॥

देवान्ब्रह्मादिकान्सर्वान्पुत्रपौत्रगणानपि । भूर्भुवः स्वर्देवताश्च व्यस्ताव्यस्ताश्चताः पृथक्

तर्पयेत्तु क्रमेणैव शुद्धयज्ञोपवीततः । देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ॥

पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कुश्माण्डा भैरवादयः ।

जलेचराः भूमिचराः वाय्वाधाराश्च जन्तवः ॥

तृप्तिं तेनैव गच्छन्ति भूर्भुवस्तर्पणेन वै । तेनैव चाम्बुना भूयो मोदन्ते दशवार्षिकम् ॥

कराङ्गुष्ठयुगासक्तब्रह्मसूत्रेण मानुषान् । सनकादीनृषींश्चैव कृष्णद्वैपायनादिकान् ॥

भूर्भुवस्वस्थितानन्यान्पत्नीपुत्रांश्च पौत्रकान् । कण्ठस्थयज्ञसूत्रोऽयमृषितीर्थेनचाक्षतैः ॥

वेदकाण्डभृषींश्चैव सूत्रकाण्डं ऋषीनपि । तर्पयेदेवविधिना पूर्ववत् प्रत्यङ्(मुख)द्विजः ॥

प्राचीनावीतिना पश्चात्पितृजातिसमाश्रितान् । तर्पयेत्पितृतीर्थेन जर्तिलैर्वा यवैर्नवैः ॥

पैतृकेषु दिनेष्वेव तिलैस्तत्तर्पणं चरेत् । सोमश्च पितृमान्पूर्वं देवता तत्र तत्परम् ॥

यमोऽङ्गिरस्वास्तपश्चादग्निष्वात्तास्ततः पुनः ।

अग्निः सोऽयं कव्यवाहः पुनर्वर्हिषदस्तथा ॥

तानेतानखिलान्पत्नीन्पुत्रपौत्रगणानपि । तर्पयेच्च पृथक्त्वेन पितृतीर्थेन भक्तियुक् ॥

एते हि देवपितरः पित्रादीनथ मानुषान् ।

त्रीन्पित्रादींस्तथा मातृस्तथा मातामहानपि ॥

मातामही पितृव्यादीन्सपत्नीं जननीं तथा ।

मातृवर्गात्परं मात्रा साकं वा तां पृथक् च वा ॥

तर्पयेदेव विधिना मातामहकपूर्वतः । मातामह्यादिकानां तु परतस्वलत्रय

सततं ब्रह्मयज्ञान्ते तदङ्गं तच्च तर्पणम् । द्विराचम्य ततो देवान् ऋषीन् ऋषिगणानपि ॥
 पितृन् पितृगणांश्चैव तर्पयेदनुपूर्वशः । देवानृषीन्पितृन्नित्यमक्षतैरेव तर्पयेत् ॥
 विशेषदिवसेष्वेव पितृणां तर्पणं तिलैः । तद्दिने श्राद्धधर्माः स्युः तत्कर्तुं नात्र संशयः ॥
 तर्पयित्वा पितृन्यस्तु तिलदर्भैः समाहितः । द्वितीयां कुरुते रात्रिं कांगतिं (प्राप्य) मूढधीः
 कालसूत्रमधो याति यावदभूतसंप्लवन् । तिलतर्पणकृन्मर्त्यो स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ॥

स्वरेतसा पितृन्सोऽयं स्नापयेत् अचिरेणवै ।

देवानृषीन्पितृंश्चापि स्वशाखा चोदितान्परान् ॥

तर्पयतीतैव विधिना तत्तत्तीर्थेन नान्यतः । देवतान्देवतीर्थेन ऋषितीर्थेन तानपि ॥
 पितृंश्च पितृतीर्थेन तर्पयेदन्वहं द्विजः । द्वितीयया विभक्त्याऽत्र सर्वेषां तर्पणं भवेत् ॥
 पदेन तर्पयामीति ह्यनुषङ्गो भवेदपि । अनुषङ्गो द्वितीयान्ते कदाचिन्नादितो भवेत् ।
 चतुर्थ्यन्तेन चेत्तत्तु तर्पणं वै तदा पुनः । नमः पदान्तेऽनुषङ्गः एवं तर्पणनिर्णयः ॥
 स्नानान्ते ब्रह्मयज्ञान्ते तीर्थे तीर्थविशेषके । विधिज्ञः तर्पणं कुर्याद्देवादीनां यथा क्रमम् ॥
 गर्ते वापि शुचौ देशे स्थले विस्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यात्तटे पात्रेऽथवा शुचौ ॥
 सर्वतोमुखसामीप्यं ब्रह्मयज्ञस्य सन्ततम् । विशेषेण प्रशंसन्ति काननं वहिरप्यति ॥
 ग्रामो गृहो मध्यमः स्यात्तस्मात्तत्रैव संचरेत् । गृहे ग्रामेऽपि भूयश्च ह्यल्लदिर्दश उत्तमः ॥

कृतस्नानः कृतजपः कृतहोमो जितेन्द्रियः ।

ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा यत्र तिष्ठेज्जलाशयः ॥

तत्र गत्वा प्रयत्नेन ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् । उक्ताशासु जलाभावे तं दिनं वा व्रजेत वा ॥
 प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य कुशास्तरे । पूर्वास्य उत्तरास्यो वा जानुमध्यकरद्वयः

अधः कृत्वा परं सव्यं दक्षिणं परिविन्यसेत् ।

पवित्रपाणिदर्भस्थः स्वकरौ दक्षिणोत्तरौ ॥

कदलीपुष्पवत्कृत्वा ब्रह्मयज्ञपरो भवेत् । विना रौप्यसुवर्णाभ्यां विना पुष्पाक्षतैः कुशैः
 विना मन्त्रैस्तु देवर्षि (र्षीन्) तर्पयेत्तेन निष्फलम् । खड्गमौक्तिकहस्तेन रत्नैः पुण्यैः सुशोभनैः
 हिरण्येन कुशैर्दर्भैः कृतं तर्पणमुच्यते । जले स्थित्वा नरोयस्तु देवर्षिपितृतर्पणम् ॥

तद्व्यर्थमेव भवति व्योम्नि तत्तु विनश्यति । स्थले स्थित्वा जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः

• नोपतिष्ठेत तद्वारि पित्रादीनां निरर्थकम् ।

यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितृन् ॥

तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् । वामपादं जले कृत्वा स्थले कृत्वा तु दक्षिणाम्
शुचिस्थले समांसीनो जानुमध्य करद्वयः । उपवीती पवित्राभ्यां युक्तहस्त उदङ्मुखः ॥
फेनबुद्बुदकीटादिरहितं वारि निर्मलम् । पूर्णेनाञ्जलिनाऽऽदाय देवतीर्थेन तर्पयेत् ॥
देवान्ब्रह्मादिकान्सर्वान्पुत्रपौत्रगणानपि । भूर्भुवः स्वर्देवताश्च व्यस्ताव्यस्ताश्चताः पृथक्
तर्पयेत्तु क्रमेणैव शुद्धयज्ञोपवीततः । देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ॥

पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कुश्माण्डा भैरवादयः ।

जलेचराः भूमिचराः वायवाधाराश्च जन्तवः ॥

वृत्तिं तेनैव गच्छन्ति भूर्भुवस्तर्पणेन वै । तेनैव चाम्बुना भूयो मोदन्ते दशवार्षिकम् ॥
कराङ्गुष्ठयुगासक्तब्रह्मसूत्रेण मानुषान् । सनकादीनृषींश्चैव कृष्णद्वैपायनादिकान् ॥
भूर्भुवस्वस्थितानन्यान्पत्नीपुत्रांश्च पौत्रकान् । कण्ठस्थयज्ञसूत्रोऽयमृषितीर्थेन चाक्षतैः ॥
वेदकाण्डऋषींश्चैव सूत्रकाण्ड ऋषीनपि । तर्पयेद्देवविधिना पूर्ववत् प्रत्यङ्(मुख)द्विजः ॥
प्राचीनावीतिना पश्चात्पितृजातिसमाश्रितान् । तर्पयेत्पितृतीर्थेन जर्तिलैर्वा यवैर्नवैः ॥
पैतृकेषु दिनेष्वेव तिलैस्तत्तर्पणं चरेत् । सोमश्च पितृमान्पूर्वं देवता तत्र तत्परम् ॥

यमोऽङ्गिरस्वास्तत्पश्चादग्निष्वात्तास्ततः पुनः ।

अग्निः सोऽयं कव्यवाहः पुनर्वर्हिषदस्तथा ॥

तानेतानखिलान्पत्नीन्पुत्रपौत्रगणानपि । तर्पयेच्च पृथक्त्वेन पितृतीर्थेन भक्तियुक् ॥

एते हि देवपितरः पित्रादीनथ मानुषान् ।

त्रीन्पित्रादींस्तथा मातृंस्तथा मातामहानपि ॥

मातामहीं पितृव्यादीन्सपत्नीं जननीं तथा ।

मातृवर्गात्परं मात्रा साकं वा तां पृथक् च वा ॥

तर्पयेद्देव विधिना मातामहकपूर्वतः । मातामह्यादिकानां तु परतस्वकलत्रकम् ॥

सततं ब्रह्मयज्ञान्ते तदङ्गं तच्च तर्पणम् । द्विराचम्य ततो देवान् ऋषीन् ऋषिगणानपि ॥
 पितृन् पितृगणांश्चैव तर्पयेदनुपूर्वशः । देवानृषीन्पितृन्नित्यमक्षतैरेव तर्पयेत् ॥
 विशेषदिक्सेध्वेव पितृणां तर्पणं तिलैः । तद्दिने श्राद्धधर्माः स्युः तत्कर्तुं नात्र संशयः ॥
 तर्पयित्वा पितृन्यस्तु तिलदर्भैः समाहितः । द्वितीयां कुरुते रात्रिं कांगतिं (प्राप्य) मूढधीः
 कालसूत्रमधो याति यावदभूतसंप्लवन् । तिलतर्पणकृन्मर्त्यो स्त्रियं वा योऽधिगच्छति ॥

स्वरेतसा पितृन्सोऽयं स्नापयेत् अचिरेणवै ।

देवानृषीन्पितृंश्चापि स्वशाखा चोदितान्परान् ॥

तर्पयतीतैव विधिना तत्तृतीयेन नान्यतः । देवतान्देवतीर्थेन ऋषितीर्थेन तानपि ॥
 पितृंश्च पितृतीर्थेन तर्पयेदन्वहं द्विजः । द्वितीयया विभक्त्याऽत्र सर्वेषां तर्पणं भवेत् ॥
 पदेन तर्पयामीति ह्यनुषङ्गो भवेदपि । अनुषङ्गो द्वितीयान्ते कदाचिन्नादितो भवेत् ।
 चतुर्थ्यन्तेन चेत्तत्तु तर्पणं वै तदा पुनः । नमः पदान्तेऽनुषङ्गः एवं तर्पणनिर्णयः ॥
 स्नानान्ते ब्रह्मयज्ञान्ते तीर्थे तीर्थविशेषके । विधिज्ञः तर्पणं कुर्याद्देवादीनां यथा क्रमम् ॥
 गर्ते वापि शुचौ देशे स्थले विस्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यात्तटे पात्रेऽथवा शुचौ ॥
 सर्वतोमुखसामीप्यं ब्रह्मयज्ञस्य सन्ततम् । विशेषेण प्रशंसन्ति काननं बहिरप्यति ॥
 ग्रामो गृहो मध्यमः स्यात्तस्मात्तत्रैव संचरेत् । गृहे ग्रामेऽपि भूयश्च ह्यह्निर्दश उत्तमः ॥

कृतस्नानः कृतजपः कृतहोमो जितेन्द्रियः ।

ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा यत्र तिष्ठेज्जलाशयः ॥

तत्र गत्वा प्रयत्नेन ब्रह्मयज्ञं समाचरेत् । उक्ताशासु जलाभावे तं दिनं वा व्रजेत वा ॥
 प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य कुशास्तरे । पूर्वास्य उत्तरास्यो वा जानुमध्यकरद्वयः

अधः कृत्वा परं सव्यं दक्षिणं परिविन्यसेत् ।

पवित्रपाणिदर्भस्थः स्वकरौ दक्षिणोत्तरौ ॥

कदलीपुष्पवत्कृत्वा ब्रह्मयज्ञपरो भवेत् । विना रौप्यसुवर्णाभ्यां विना पुष्पाक्षतैः कुशैः
 विना मन्त्रैस्तु देवर्षि (वीन) तर्पयेत्तेन निष्फलम् । खड्गमौक्तिकहस्तेन रत्नैः पुण्यैः सुशोभनैः
 हिरण्येन कुशैर्दर्भैः कृतं तर्पणमुच्यते । जले स्थित्वा नरोयस्तु देवर्षिपितृतर्पणम् ॥

तद्व्यर्थमेव भवति व्योम्नि तत्तु विनश्यति । स्थले स्थित्वा जलेयस्तु प्रयच्छेदुदकं नरः

• नोपतिष्ठेत तद्वारि पित्रादीनां निरर्थकम् ।

यत्राशुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितृन् ॥

तर्पयेत्तु यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् । वामपादं जले कृत्वा स्थले कृत्वा तु दक्षिणाम्
शुचिस्थले समासीनो जानुमध्य करद्वयः । उपवीती पवित्राभ्यां युक्तहस्त उदङ्मुखः ॥
फेनबुद्बुदकीटादिरहितं वारि निर्मलम् । पूर्णेनाञ्जलिनाऽऽदाय देवतीर्थेन तर्पयेत् ॥
देवान्ब्रह्मादिकान्सर्वान्पुत्रपौत्रगणानपि । भूर्भुवः स्वर्देवताश्च व्यस्ताव्यस्ताश्चताः पृथक्
तर्पयेत्तु क्रमेणैव शुद्ध्यज्ञोपवीततः । देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ॥

पिशाचाः गुह्यकाः सिद्धाः कुश्माण्डा भैरवादयः ।

जलेचराः भूमिचराः वाय्वाधाराश्च जन्तवः ॥

वृत्तिं तेनैव गच्छन्ति भूर्भुवस्तर्पणेन वै । तेनैव चाम्बुना भूयो मोदन्ते दशवार्षिकम् ॥
कराङ्गुष्ठयुगासक्तब्रह्मसूत्रेण मानुषान् । सनकादीनृषींश्चैव कृष्णद्वैपायनादिकान् ॥
भूर्भुवस्वस्थितानन्यान्पत्नीपुत्रांश्च पौत्रकान् । कण्ठस्थयज्ञसूत्रोऽयमृषितीर्थेन चाक्षतैः ॥
वेदकाण्डकृषींश्चैव सूत्रकाण्ड कृषीनपि । तर्पयेदेवविधिना पूर्ववत् प्रत्यङ्(मुख)द्विजः ॥
प्राचीनावीतिना पश्चात्पितृजातिसमाश्रितान् । तर्पयेत्पितृतीर्थेन जर्तिलैर्वा यवैर्नवैः ॥
पैतृकेषु दिनेष्वेव तिलैस्तत्तर्पणं चरेत् । सोमश्च पितृमान्पूर्वं देवता तत्र तत्परम् ॥

यमोऽङ्गिरस्वांस्तत्पश्चादग्निष्वात्तास्ततः पुनः ।

अग्निः सोऽयं कव्यवाहः पुनर्वर्हिषदस्तथा ॥

तानेतानखिलान्पत्नीन्पुत्रपौत्रगणानपि । तर्पयेच्च पृथक्त्वेन पितृतीर्थेन भक्तियुक् ॥

एते हि देवपितरः पित्रादीनथ मानुषान् ।

त्रीन्पित्रादींस्तथा मातृस्तथा मातामहानपि ॥

मातामही पितृव्यादीन्सपत्नीं जननीं तथा ।

मातृवर्गात्परं मात्रा साकं वा तां पृथक् च वा ॥

तर्पयेदेव विधिना मातामहकपूर्वतः । मातामह्यादिकानां तु परतस्वकलत्रकम् ॥

सुतभ्रातृपितृव्यास्तु मातुलाः सहभार्यकाः । दुहिता भगिनी चैव दौहित्रो भागिनेयकः
 पितृष्वसा मातृष्वसा श्वशुरो गुरुरर्थिनः । स्वामी सखा तथाचार्यः तर्पणक्रम ईरिताः
 एतेषां तर्पणकरः वंशोद्धारक उच्यते । स्नानार्थमेनं गच्छन्तं त एते निखिलाः स्वकाः ॥

अत्यन्ततृष्णया नित्यं तदीयसलिलार्थिनः ।

देवता अनुगच्छेयुस्तस्मात्तेषां जलार्थिनाम् ॥

प्रयच्छेत्सलिलं भक्त्या तदाशापूरणाय वै ।

यो यज्ञान्ते तर्पयेत् त्वां सोऽयं तेषां महाशिषाम् ॥

नित्याश्रयो भवेन्तो चेत्तेषां शापस्य भाजनम् ।

भवेत्किरातस्तद्भक्त्या स्वपितृणां तु तृप्तये ॥

सुखाय तत्कामपूर्तिकरो विद्वान्महामनाः । अल्पयत्नेन सुमहच्छ्रेयसां संपदामपि ॥

नित्याश्रयः प्रभवति कुलमस्य च वर्धते । भूर्भुवः स्वः पितृमन्त्रतर्पणेन तु तेऽखिलाः ॥

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः । तेषामाप्यायनायैतद्भवेत्तु सलिलं तु तत् ॥

ये बान्धवाबान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।

तेऽपि तृप्तिं परां यान्ति ये दुःखात्तोयकांक्षिणः ॥

येऽग्निदग्धाः कुले जातादग्निदग्धाः कुलोद्भवाः । तथा दत्तेन नीरेण तृप्तिं यान्ति पराम्परे

तस्मात्तथा भूर्भुवः स्वः तर्पयामीति तर्पयेत् । नित्यमेतत्तर्पणं तु कथितं सुमहात्मभिः ॥

नैमित्तिकं तथाप्यन्यत्तर्पणं तत्र कथ्यते । संबन्धनामगोत्रेण स्वधान्तेन ततोन्ततः ॥

वखादिरूपं निर्दिश्य तर्पणं यत्तु तादृशम् । तन्नामगोत्रग्रहणे पुरुषं पुरुषं प्रति ॥

तिलोदकाञ्जलीं स्त्रीं स्त्रीनुच्चैरुच्चैर्विनिक्षिपेत् ।

प्राङ्मुखस्तर्पयेद्देवानृषींश्चैव ह्युदङ्मुखः ॥

दक्षिणाभिमुखः पश्चात्पितृस्तांस्तर्पयेत्सदा ।

एकैकमञ्जलिं देवान् द्वौ द्वौ तु सनकादयः ॥

तथा त्रींस्त्रींश्च पितरः प्राप्नुवन्तीति शास्त्रगाः ।

एकाञ्जलिं स्त्रियस्सर्वाः प्राप्नुवन्त्येव नित्यशः ॥

मातृमुख्याश्च यास्तिष्ठः मातामह्यादिकास्तथा ।

अञ्जलित्रयभागिन्यः सपत्नी जननी तु सा ॥

नित्यद्वयञ्जलिगात्रोक्ता सर्वतर्पण मात्रके । तस्याः प्रत्यादिदके श्राद्धे परेऽहि तिलतर्पणे
सैवत्र्यञ्जलिगातत्र मात्रे ज्ञेया विचक्षणैः । एतत्तर्पणतुल्यानि पुनरन्यानिकानिचित् ॥
सन्त्येव तर्पणान्यत्र कर्तव्यानि महात्मभिः । तत्राद्यमेकं कथितं यमतर्पणसंज्ञकम् ॥
तदुत्सवचतुर्दश्यां तत्कार्यं धर्मकांक्षिभिः । कृष्णाङ्गारकवारे च तत्कार्यं स्याद्यमक्रतौ ॥
श्लोकैरैतैर्मस्कारकरणात्परमेव तत् । यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ॥
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च । औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय ते नमः । चतुर्दश्यां तु मन्त्रस्य पदैरैतैस्तु तर्पणम् ॥
तर्पयामीति सर्वत्र द्वितीयान्तैः क्रमाच्चरेत् । एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात् त्रीनुदकाञ्जलीन्
यज्ञोपवीतिनाकुर्यात्प्राचीनावीतिनाऽपि वा । देवत्वं च यमत्वं च यमस्यास्ति द्विरूपता

यमोनिहन्ता पितृधर्मराजः वैवस्वतो दण्डधरश्च कालः ।

प्रेताधिपो दत्तकृतानुसौरिः कृत्यं च सर्वमसकृज्जपन्ति ॥

यत्र कचन नद्यां वै स्नात्वा कृष्णचतुर्दशीम् । तत्सर्वं धर्मराजं तं तर्पयित्वा विचक्षणः
निखिलेभ्यश्च पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । एवमेव पुनर्माघसप्तम्यां कृष्णपक्षके ॥

भीष्मतर्पणम्

अष्टमीदिवसे चैव भीष्मतर्पणमाचरेत् । सप्तम्यादिषु पुण्येषु दिवसेष्वत्र पञ्चसु ॥
दद्यात्प्रदद्याद्भीष्माय तर्पणं प्रतिवत्सरम् । तेन तर्पणमात्रेण सहस्रद्विजभोजने ॥
यत्फलं कथितं सद्भिस्तदवाप्नोत्यसंशयः । मन्त्रेणानेन कुर्वीत तर्पणं तच्च पण्डितः ॥
वैयाघ्रपादगोत्राय साङ्कृतिप्रवराय च । गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे । महात्मने ब्रह्मण्याय तदीयदिनपञ्चके ॥

मन्त्रेणानेन सलिलं दद्याद्भीष्माय भक्तिः ।

तावता कृतकृत्योऽयं नित्यश्रीको भवेद्भ्रुवम् ॥

ब्रह्मयज्ञात्परं नित्यं देवपूजां समारभेत् । सर्वसंभृतसंभारः प्रयतो देवतोन्मुखः ॥
 एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि पूजयेत् । अपूज्यभोजनं कुर्वन् नरकं प्रतिपद्यते ॥

प्रातर्मध्यन्दिने सायं विष्णुपूजां समारभेत् ।

यथा सन्ध्या यथा होमः देवपूजा तदा बुधैः ॥

नित्यत्वेनैव विहितस्तस्मात्काले समाचरेत् ।

अशक्तो विस्तरेणैव प्रातस्संपूज्य केशवम् ॥

मध्याह्ने चैव सायाह्ने पुष्पाञ्जलिकमाव्रतः । पूजाकार्यकरो नित्यं भवेद्भक्त्या दृढव्रतः ॥

विना सन्ध्यां विना होमं नैव पूजां समाचरेत् ।

ब्रह्मयज्ञात्परं पूर्वं यथा रुचि समाचरेत् ॥

प्रतियामे मुहूर्ते वा प्रातस्सायं दिवानिशम् । देवचित्तो नरोभूयादन्यथा न भवेदपि

तन्नित्यतर्पणादूर्ध्वं वैश्वदेवादधो भवेत् । अकुर्वन्देवपूजान्तां ब्राह्मणो यदि भोजनम् ॥

करोत्यपण्डितो मूढो सर्वपाप्यग्रणी स्मृतः । तमेतं पापिनं भ्रान्तं धर्मराजोऽतिकोपतः ॥

ग्राससंख्या लोहपिण्डान् प्रतप्तान्प्राशयेद्यमः । तर्पणान्ते धृतं स्वेन तथाद्रुं वस्त्रमन्तिमे ॥

कृत्यानां वेदगीतानां निपीड्य पितृतृप्तये । आचम्य प्रयतोभूत्वा सुमुखः शुद्धमानसः ॥

देवानामर्चनं कुर्याद्ब्रह्मादीनामतः परम् । ब्रह्मार्पणं विष्णुमीशानं सूर्यमग्निं गणाधिपम् ॥

दुर्गां सरस्वतीं लक्ष्मीं गौरीं वा नित्यमर्चयेत् ।

स्वमन्त्रैरर्चयेद्देवान् पत्रपुष्पैरथाम्बुभिः ॥

शाठ्यायनीं ब्राह्मणोक्तान्पुरा कौपीतकानपि । ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ॥

स्कन्दं क्षेत्रपतिं शक्रं देवमग्निं गणाधिपम् ।

दुर्गां सरस्वतीं लक्ष्मीं गौरीं गङ्गां शिवामपि ॥

अन्यांश्चाभिमतान्देवान्भक्त्या चाक्रोधनोत्वरः ।

शैवं पाशुपतं शाक्तं सौरं वैनायकं तथा ॥

वैष्णवं वैदिकं चेति पूजाकल्पस्तु सप्तधा । स्थण्डिले प्रतिमायां वा जलेऽपि हृदयेऽपि वा

भानौ वा स्वर्णरत्नेषु गोब्राह्मणवनस्पतौ । अग्निर्देवोद्विजातीनां योगिनां हृदये हरिः ॥

प्रतिमास्त्रयुद्धानां सर्वत्र समदर्शिताम् । पौरुषेणैवसूक्तेन गायत्र्या प्रणवेन वा ॥
अष्टाक्षराख्यमनुनांस्थवा द्वादशाक्षरैः । गुरूपदिष्टमार्गेण देवं वाह्येन चार्चयेत् ॥
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वपापहरः शुभः । सर्वदुःखहरः श्रीमान्सर्वशान्तिकरः परः ॥
अष्टाक्षराख्यमन्त्रस्य ऋषिर्नारायणः स्वयम् । छन्दांश्च देवी गायत्री परमात्मा तु देवता
गन्धाक्षतादिसकलमनेनैव निवेदयेत् । अनेनाभ्यर्चितो विष्णुः प्रीतो भवति तत्क्षणात्

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः ।

ओं नमोनारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥

आवाहनासनेपाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा । स्नानं वस्त्रोपवीतं च भूषणं तदनन्तरम् ॥

गन्धः पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च ।

ताम्यूलं च ततो दत्त्वा नत्वा स्तुत्वा समर्पयेत् ॥

यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।

मुङ्क्ते स याति नरकं शूकरेष्वपि जायते ॥

शूद्राणां च भवेन्नित्यं शुश्रूषा देवतार्चनम् ।

महात्मनां ब्राह्मणानां नान्यदस्ति कदाचन ॥

स्त्रीणां तु पतिशुश्रूषा तामृते देवतार्चनम् । नान्यदस्ति जगत्यस्मिन् तदध्वसरणत्सदा ॥

भूशुद्धिं भूतशुद्धिं च कृत्वा चैवात्मरक्षणम् । मूलं च चतुरावृत्य दक्षनासास्थितासनम् ॥

मूलं षोडशधाऽऽवृत्य प्राणायाम इति स्मृतः । प्राणं तं हृदि विन्यस्य नकारं विन्दुसंयुतम्

शिरस्येव तु मोङ्कारं शिखायामपि विन्यसेत् ।

भकारं कवचे न्यस्य राकारं नेत्रयोर्न्यसेत् ॥

यकारेणास्त्रविन्यासं णकारमुदरे न्यसेत् । पृष्ठे यकारं विन्यस्य चतुर्थ्यन्तैर्नमोन्तकैः ॥

ओं नं तु हृदये चेति प्रयोगोऽयं प्रचोदितः ।

क्रुद्धोलकाय महोलकाय वीरोल्कायेति च क्रमात् ॥

द्वयुल्काय च सहस्रोलकायाङ्गुलीष्वपि पञ्चसु ।

स्वाहान्तैः प्रणवाद्यैश्च तथा वामाङ्गुलीषु च ॥

हृदये च तथा शीर्षे शिखायां कवचे न्यसेत् ।
 दशदिक्ष्वपि विन्यासात् ध्यायेन्नारायणं हृदि ॥
 अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः धूपदीपैर्मनोहरैः । ओं क्रुद्धोलकाय स्वाहेति हृदयायेति च क्रमः ॥
 गन्धाक्षतैः स्वमात्मानं पुष्पैः पञ्चभिरर्चयेत् ।
 पीतवस्त्राम्बुना प्रोक्ष्य कुर्यात्तु जलशोधनम् ॥
 सौवर्णरजतं ताम्रं मृद्भाण्डं स्वस्तिकासनम् । देवस्य दक्षिणे स्थाप्य गायत्र्या पूरयेज्जलम्
 प्रणवेनापि मन्त्रैर्वा पूरयेद्धृदयादिभिः । गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ॥
 नर्मदेसिन्धुकावेरि जलेऽस्मिन्संनिधिं कुरु ।
 गङ्गादि चैवाह्वावाह्य गन्धपुष्पाणि निक्षिपेत् ॥
 धेनुमुद्रां महामुद्रां दर्शयेन्मूलमन्त्रतः ।

शङ्खपूजा

शङ्खमन्त्राम्बुनाप्रोक्ष्य पीठमन्त्रेण वारिणा । देवस्य पुरतः कुर्याच्चतुरश्रं(सं) तु मण्डलम्
 जातवेदसमन्त्रेणाम्निबीजेन चानलम् । अभ्यर्च्य वायुबीजेन पीठे स्थाप्यैव पूजयेत् ॥
 वायुमन्त्रेण चामन्त्र्य स्थाप्याब्जे सूर्यमण्डलम् ।
 बीजेनैव च तं यष्ट्वा गायत्र्या हृदयादिभिः ॥
 गन्धपुष्पैरथाभ्यर्च्य मातृकाक्षरमालया । हकारादि नकारान्तं विपरीतेन मूलतः ॥
 जलं वक्त्रबीजेन (?) पूरयित्वाऽभिमन्त्रयेत् । गारुडं धेनुमुद्रां च महामुद्रां प्रदर्शयेत् ॥
 गङ्गाद्यास्तत्र चावाह्य मन्त्रेणैव तु पूर्ववत् । हृदि प्रविष्टं विक्षिप्य शिरोमन्त्रेण मण्डनम्
 शिखायां चार्चयेच्छङ्खनेत्रेणैव निरीक्षणम् । कवचेनावकुण्ठयाथ कुर्याद्दिग्वन्धमन्त्रतः
 मूलेन दशधामन्त्र्य कुम्भेनाऽऽत्माभिषेचनम् ।
 गन्धपुष्पाक्षतान्प्रोक्ष्य पीठं यजनसाधनम् ॥
 पाद्यार्घ्यादीनिपात्राणि पूरयेच्छङ्खवन्मुदा ।
 पाद्ये चाचमनीये च गन्धपुष्पाणि निक्षिपेत् ॥

जाजीगन्धलवङ्गादि निक्षिपेन्मधुपर्कके । स्थापयेत्स्नानपात्राणि पयोदधिघृतंमधु ॥
 •शर्कराचोष्णवारीणि रत्नस्वर्णौदकानि च ॥

पीठपूजा

आसाद्य मूलमन्त्रेण पीठपूजामुपक्रमेत् । देवस्य दक्षिणेभागे मण्डूकं वामपर्वके ॥
 कालाग्निरुद्रं संपूज्य पीठस्याधः क्रमान्ततः । आधाररूपिणीं शक्तिं मूलप्रकृतिमेव च ॥

कु(कू)र्मशेषं वराहं च पृथिवीं क्षीरसागराम् ।

श्वेतद्वीपं च गन्धाद्यैः चतुर्थ्यन्तैः स्वनामभिः ॥

संपूज्य शुद्धिमन्त्रेण निर्मितं चतुरश्र(स्त्र)कम् । चतुर्द्वाराणिसंपूज्य द्वारपालान्क्रमाद्यजेत्
 क्वाटद्वितयं यष्ट्वा गेहलीवास्तुकां यजेत् । देवस्य वामभागे तु गुरुरूपं हरिं यजेत् ॥

आग्नेयपीठादिगणे गुरुं दुर्गां सरस्वतीम् । क्षेत्रपालं समभ्यर्च्य ब्रह्मादीनपि तेषु वै ॥

धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च स्वनामभिः । प्रागादिषु च पादेषु अधर्माज्ञानकैः क्रमात्

अवैराग्यमनैश्वर्यमधोशेषासनंयजेत् । ततोपरि महापद्मं ततोऽप्याग्नेयमण्डलम् ॥

सोमविम्बं रवेर्विम्बं सत्वादिषु गुणत्रयम् । अग्न्यादिविम्बत्रितये व्याप्तश्च परमात्मकम्

अन्तरान्तं ततो यष्ट्वा प्रागादिषु दलैस्तथा ।

विमलोत्कर्षिणीं ज्ञानं क्रियायोगा स्तथैव च ॥

प्रज्ञाधीरा तथा सत्या पद्ममध्येऽप्यनुक्रमात् ।

नामभिः पूजनीयास्ताः चतुर्थ्यन्तैस्तथा हरिम् ॥

शालग्रामे च तं देवं पट्टे मन्त्रादिकल्पिते ।

हृत्पद्मे संस्थितं देवं स्थिरविद्युल्लतानिभम् ॥

नानारत्नप्रतीकाशमूर्णराजिविराजितम् । घण्टानिनादसंयुक्तं नादान्तं च समुद्रवम् ॥

द्वादशान्तं ततो नीत्वा मन्त्रस्थं तं तथात्मना । चिदानन्दमये देवे ध्यात्वैकं वा प्रभेदतः

तस्माद्विनिर्गतं देवं मन्त्रमूर्तिमयं परम् । प्रस्फुरत्तारकाकारं ध्यात्वा भ्रूमध्यसंस्थितम् ॥

पुनरञ्जलिनाऽऽवाह्य मूलमन्त्रेण रेचयेत् । विम्बस्य हृदयाम्भोजे देवंस्थापनमुद्रया ॥

स्थापयेन्मूर्ध्नि विन्यस्य पुष्पमञ्जलिनायुतम् ।

स्थापयामीति संस्थाप्य देवञ्चाधिकमुद्रया ॥

तं संनिधापयामीति मन्त्रेणैवावकुण्ठयेत् ।

निरोधयामीति च ततस्त्ववकुण्ठयामीति च ॥

एवं हि मुद्रया ऋष्यादिकं सकलकर्म तत् । विन्यसेद्देवदेवायाऽऽसीनं मूलमन्त्रतः ॥

पाद्यमर्घ्यं चाचमनं मधुपर्कं तथा क्रमात् ।

कल्पितेभ्योऽथ पात्रेभ्यो दत्त्वाऽथ स्थापयेद्भरिम् ॥

कल्पितेभ्योऽथ पात्रेभ्य अर्घ्यमाचमनं ततः । तत्पाद्यमुपवीतं च दत्त्वा गन्धादिकं पुनः
अक्षतानपि पुष्पाणि धूपदीपादिकं क्रमात् । नैवेद्यमपि ताम्बूलैः कर्पूरादिसुगन्धकैः ॥
गन्धेभ्यश्चन्दनं पुष्पं चन्दनादगरुर्वरः । कृष्णागरुस्ततः श्रेष्ठः अस्पृष्टैश्चापि जन्तुभिः ॥
अरण्यसंभवैर्यद्वा स्वात्मारामसमुद्भवैः । यद्वा त्रितैः पञ्चपुष्पैस्तुलसीजातिसंभवैः ॥
अन्यैः पुष्पैस्त्रिलोकेशं पूजयेत्त्रिदशेश्वरम् । येऽर्कपुष्पैस्त्रिलोकेशं पूजयन्ति जनार्दनम् ॥
तेभ्यस्तु सुमहद्दुःखं क्रोधाद्विष्णुः प्रयच्छति । उन्मत्तकेन ये मूढा पूजयन्ति त्रिविक्रमम्
उन्मादं प्रबलं तेषां ददाति गरुडध्वजः । काञ्चनी मालतीपुष्पैः ये यजन्ति सुरेश्वरम् ॥

दारिद्र्यदुःखं बहुलं तेभ्यो विष्णुः प्रयच्छति ।

गिरिकर्णिकया विष्णुं ये यजन्त्यवुधाः नराः ॥

तेषां कुलक्षयं घोरं कुरुते मधुसूदनः । अक्षतैरर्चयेद्विष्णुं चक्राङ्कप्रतिमासु वा ॥
दारिद्र्यदुःखं बहुलं क्रोधाद्विष्णुः प्रयच्छति । आदौ पादद्वयं पूज्य गन्धपुष्पैर्यथोचितैः
ततो वक्षःस्थलं विष्णोः पूजयेन्मस्तकं ततः । ततो देवं नमस्कृत्य परिवारान्प्रपूजयेत् ॥
प्रागादिषु च पत्रेषु हृदयादिचतुष्टयम् । वह्निनैऋतवायवीश कोणेष्वस्त्रं प्रपूजयेत् ॥

वासुदेवं यजेत्प्राच्यां दक्षे संकर्षणं यजेत् ।

प्रद्युम्नं तु यजेत्प्राच्यां प्रतीच्यामनिरुद्धकम् ॥

वह्नौ शान्तिं यजेद्विद्वान् श्रीं यजेद्राक्षसे दिशि ।

वायौ सरस्वतीं यष्ट्वा रौद्रकोणे रतिं यजेत् ॥

चक्रं शङ्खं गदां पद्मं कौस्तुभं कुशलं तथा ।

खड्गं च वनमालां च प्रागादिषु यजेत्क्रमात् ॥

प्रागादिषु चतुर्दिक्षु ध्वजं गरुडमेव च । ततः शङ्खं निर्धिं पद्मं निर्धिं चैव यजेत्क्रमात्
वह्न्यादिषु च कोणेषु पूजयेत्तु विनायकम् । हर्यक्षं च ततो दुर्गां विष्वक्सेनमिति क्रमात्
प्रागादीशानपर्यन्तं लोकपालान्यजेत्क्रमात् । पश्चात्तु देवदेवाय दद्यादुदकपूर्वकम् ॥
धूपं नीचैः प्रदातव्यं दीपमुच्चैः प्रदापयेत् । प्रदापनेनात्र मन्त्रप्रोच्चारणमिति स्मृतम् ॥

दत्त्वाऽथ परिवारेभ्यो नैवेद्यं स्नानशोधनम् ।

कृत्वा तु शङ्खवत्सर्वं दत्त्वा संप्रोक्ष्य तत्परम् ॥

चक्रेण हरयेत्तं तु वायुबीजेन शोधयेत् । दग्ध्वा च वह्निबीजेन ह्यमृतीकरणं ततः ॥
निर्विषीकरणं कुर्यात्ततो गरुडमुद्रया । धैनुमुद्रां दर्शयित्वा मूलमन्त्रेण योजयेत् ॥
पुष्पैरभ्यर्च्य नैवेद्यं पुष्पं देवाय पञ्चकम् । समर्पयेत्तु विधिना मूलनोदकपूर्वकम् ॥
अमृतापिधानात्पश्चाद्गण्डूषं मुखवासनाम् । ताम्बूलं च ततो दद्यात्ततो नीराजनं हरेः
ततो नैवेद्यमुद्घृत्य विष्वक्सेनाय दापयेत् । अर्घ्याष्टकं ततो दत्त्वा दर्पणं व्यञ्जनं तथा
छत्रं चोपानहौ दत्त्वा नृत्तगीतैःस्तवैरपि । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥

परां गतिमवाप्नोति नित्यं क्रतुफलं लभेत् ।

विष्णोर्विमानं यः कुर्यात्सकृद्भक्त्या प्रदक्षिणम् ॥

अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः । तेजो रूपं ततो देवं संहरिण्या प्रपूर्य च ।
प्रविश्य देवे सर्वास्तु तं देवं हृदि मुद्रया । स्थापयित्वाऽर्चनं सर्वं कुर्यान्नारायणार्पणम् ॥
अग्निश्रोमसहस्रैस्तु वाजपेयशतैरपि । यत्फलं कथितं सद्भिस्तत्फलं लभते वशात् ॥
हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः । पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः ॥

भवेदेव न सन्देहः सन्देही पातकी भवेत् ।

एवं ह्यभ्यर्चितो विष्णुः प्रीतो भवति तत्क्षणात् ॥

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्मलैः ।

एवमर्चयितुं विष्णुं यद्यशक्तोऽन्वहं नरः ॥

संकल्पमात्रं कृत्वा वा पुरुषसूक्तेन केवलम् ।
 द्वादशाष्टाक्षरात्मभ्यां मन्त्राभ्यां वा नचेत्पुनः ॥
 आपोहिष्ठादिभिर्वाऽपि तूष्णीकं वा यथा तथा ।
 शालग्रामे शङ्खतोयमात्रेण स्नपनं वरम् ॥
 उद्धरिण्याऽथ वा कृत्वा गन्धाक्षतसुमादिभिः ।
 पूजयित्वा शक्तिमात्रात् केशवादिमुखैः पदैः ॥

तुलस्या वाऽभ्यर्चयित्वा कुसुमैर्वा न चेत्पुनः । तूष्णीकमात्रमात्राद्वा धूपदीपौ तथैव हि
 (उ)शक्तिमात्रादर्पयित्वा पक्वान्नं यत्तु केवलम् । सव्यञ्जनं सूपयुक्तं ताभ्यां विरहितं च वा
 निवेदयित्वा देवाय तत्पश्चात्तन्निवेदनम् । तद्भक्तेभ्यस्ताक्षर्यशेषसनकादिभ्य एव च ॥

समर्प्य कृतकृत्यः स्यात् भक्तिहीनोऽपि केवलम् ।

(यः पूजयित्वा देवेशं न कुर्याद्भक्तपूजनम् ॥

निरर्थकं भवेत्तत्तु तस्मात्तद्भक्तपूजनम् । प्रयत्नेन प्रकुर्वीत तं निर्माल्यसमर्पणम् ॥
 भक्तपूजनमित्युक्तं तद्यत्नान्नित्यमाचरेत् ।) शालिग्रावणामयुगमस्य पूजनं कार्यमन्वहम्
 गृहिर्वर्णिवनस्थानां नित्यं संपत्करं परम् । तद्युग्मपूजनं तेषां न प्रशस्तं महात्मभिः ॥
 निन्दितं दुःखफलदं तथा तस्मात्तु तच्चरेत् । शिलाभेदेन सा पूजा गर्हिता वेदमार्गिणाम्
 सर्वमूर्तिष्वेक एव भगवान्विष्णुरव्ययः । सान्निध्यं कुरुते नित्यं तस्माद्ग्रावणां समर्चनम्
 एकमेव प्रकर्तव्यं न पृथक् तत्कदाचन । समष्टिपूजनादत्र श्रीमान्नारायणो विभुः ॥
 सान्निध्यं कुरुते सर्वैः देवैर्भक्तैस्समन्वितः । अनेकग्रावयोगे तु देवदेवस्य तस्य वै ॥
 सान्निध्यं तद्विशेषेण भवेदिति महर्षयः । यत्र द्वादशसंख्याकाः सा(शा)लग्रावाणनामकाः

वर्तन्ते स हि देशो यः साक्षाद्वैकुण्ठसंज्ञकः ।

आविर्भावो भगवतः प्रतिमास्वपि केवलः ॥

सा(शा)लग्रावमुखेनैव न स्वातन्त्र्येण वच्मि वः ।

प्रतिमानां प्रतिष्ठा सा सा(शा)लग्रावणा समीपतः ॥

तस्मात्कार्या विधिज्ञेन वेदमन्त्रैः सुभक्तितः ।

प्रतिमाऽत्र पूजा सा वैदिकानां विशेषतः ॥

गर्हिता तत्प्रसादादि गर्हणं न तु वैदिकम् । असंभोज्यान्नहस्तेन यदन्नं वै निवेदितम् ॥

तदग्राह्यं भवत्येव तादृशं तं न संस्पृशेत् ।

असंपूज्या अपाङ्क्तेया अपात्राः पात्रदूषकाः ॥

तान्त्रिका वेदवाह्याश्च द्वेषिणः कुण्डगोलकौ । तथा देवलकाः सर्वे ब्रह्मप्रद्वेषिणोऽपि ये अभिनिर्मुक्तकुनखि श्यावदन्तककुष्ठिनः । परिविन्ना अभ्युदिताः परिवित्तय एव च ॥ अपकीर्तिं हता बन्धुत्यक्ता ब्राह्मणनिन्दिताः । पुनरन्ये कुत्सिता ये तत्कृतं यन्निवेदितम् तदस्पृश्यस्पर्शनेन स्नानप्रक्षालनादिना । शौचं संपादनीयं स्यात्तादृशस्य तु भक्षणान् ॥ अप्रायत्यमवाप्नोति तेन चित्ति भवेदपि । असंभोज्यान्न हस्तेन यदन्नं विनिवेदितम् ॥

तन्निर्विशङ्कं येऽदन्ति ते जातिभ्रंशिनः स्मृताः ।

सततं वैदिकानां तु प्रशस्तं स्यान्निवेदितम् ॥

संभोज्यान्नैककरतः संस्कृतं पावनं शिवम् । निवेदितेन रुच्यर्थं भोजयेन्न निवेदितम् ॥ न पीडयेत्पिण्डयेच्च न त्यजेन्न निषेधयेत् । न प्रोक्षेत्परिषिञ्चेच्च कुर्यान्नोच्छिष्टमप्यति ॥ माहात्मद्वयहस्ताभ्यां रचितेऽपि निवेदिते । न भोजयेत्पुनः किं तु पृथक्त्वेनैव निक्षिपेत् सुपक्वमन्नं विधिना शुद्धे पात्रान्तरे शिवे । सुखोष्णयित्वाभिघार्य सूपव्यञ्जनसंयुतम् ॥

भक्ष्यभोज्यफलोपेतं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।

धूपदीपात्परं यन्नाद्गायत्र्या प्रोक्ष्य पाथसा ॥

सत्येन परिषिच्येदं मन्त्रैः प्राणादिपञ्चकैः । निवेदेत्येत्पञ्चशाख चाञ्चल्याभिनयेन वै ॥ घण्टानादप्रपूर्वेण देवाय परमात्मने । भक्तिगन्धो भक्तवश्यो दयालुर्दीनवत्सलः ॥ भक्तापराधानखिलान् क्षमते तत्कृतान्परान् । एकं तमेवापराधं सहते न तु केवलम् ॥ दीपदानात्परं यत्तद्व्यवधानकृतं हरिः । नैवेद्यमत्यसह्यं हि तद्विना क्षमते स्वभूः ॥

यद...त्यं निखिलं तस्मान्न कुर्यात्तु तथा नरः ।

कदापि बुद्धिमानत्र देवनिक्षिप्तचित्तकः ॥

नैवेद्यमचिरात्कुर्यात् दीपादथ विचक्षणः । चिरायमाणे नैवेद्ये सोऽनर्थस्सुमहान्यतः दिनमेकं दशरथः चिरात्कृत्वा निवेदनम् । पुरा जन्मान्तरे कार्यान्तरयोगेनतादृशः ॥

पश्चाज्जन्मान्तरे तस्य फलं घोरं सुदारुणम् ।

अवाप किल मेधावी महाभक्तशिरोमणिः ॥

अप्ययं तदलंघ्यं वै तादृशं प्रवदामि च । नष्टायुर्नष्टनामश्च पुत्रशोकेन पीडितः ॥
सूनोरसंनिधौ कायं विससर्ज हि पार्थिवः । तत्पूजया स भगवान् क्रीतस्तत्पुत्रतां गतः
अपि तच्च फलं तस्मै तादृशं च ददौ पुनः । तस्माद्विद्वानत्र नित्यं तत्पूजास्वपि यत्नतः ॥
नैवेद्यमचिरात्कुर्याद्दीपादथ विचक्षणः । तथैव पुनरप्येकं भक्तानां तत्समर्पणम् ॥
तत्पूजान्ते प्रकर्तव्यमन्यथा तेति कोपतः । शपन्त्येनं बलिमुखाः भक्तास्ते सनकादयः ॥
तस्मात्तेषां प्रकर्तव्यं तन्नैवेद्यसमर्पणम् । एतेन शिवपूजापि प्रोक्तप्रायात्र केवला ॥
तत्राद्या या वैदिकी सा सर्वैः मन्त्रैर्निगद्यते । सर्वेषामतिसौलभ्यमार्गेणैवाऽतिसूक्ष्मतः

महेश्वरस्तत्र मध्ये प्रपूज्यः स्यात् त्र्यम्बकः ।

आदित्यः पूर्वभागे तु अम्बिकादक्षिणे शिवा ॥

विष्णुर्देवः पश्चिमे स्याद्गणनाथस्ततो(थो)त्तरे । क्रमेण स्थापनीयाः स्युः पूजनेऽत्र शिवस्य तु
‘‘‘‘‘दं लिङ्गं’ वाणानामैकविश्रुतम् । सौवर्णं राजतं वापि तथा मारकतन्तु वा ॥

रातं वा रसलिङ्गं वा सद्योजाताख्यकं तु वा ।

अघोरनामकं वापि न चेत्तत्पुरुषाख्यकम् ॥

वामदेवाख्यकं श्रीमान्न चेदीशानसंज्ञिकम् । एतेषु लभ्यते यद्वा तदेकं वा त्रयं यजेत् ॥

सर्वाणि यानि वा यस्य तावन्त्यो वाऽत्र पूजयेत् ।

पूर्वोक्तैः परिवारैस्तु समष्ट्यै वाऽत्र पूजनम् ॥

वैदिकस्यैव विहितं तान्त्रिकस्य न तद्वदेत् । तद्गौरी शिवनाथाख्यं गौरीपूजनकर्मणि
स्वीकार्यमिति पूजाविधिज्ञाः प्राहुरित्यथ । स्फाटिके सूर्यमूर्तिः स्यात्प्रकल्प्या मन्त्रवित्तमैः

सा(शा)लग्रामिणि हरिः प्रोक्तः श्रौणः कल्प्यो विनायकः ।

सा(शा)लग्रामेषु शिवयोः मूर्तयो विविधाः पराः ॥

प्रशस्ताः स्युस्तास्तु सतां वैदिकानां महात्मनाम् ।

पूजाकर्मसुसंग्राह्या उत्तमत्वेन सन्ततम् ॥

दैर्नदिनावाहनं तु पञ्चानामत्र वैदिके ।

न कार्यमेव किं त्वेतत् कार्यं वच्म्यस्य निश्चयम् ॥

दिना.....काति करणे तत्पूजायां परं तु तत् ।

आवाहनं तत्प्रभवेत् पञ्चगव्याभिषेचनम् ॥

पञ्चामृताभिषेकश्च देवताऽऽज्ञानसिद्धये । सा(शा)लग्नमे सर्वथैव न तथाऽऽवाहनं भवेत्
प्रतिमानां वैदिकानां पक्षे पक्षे भवेत्तु तत् । महाभिषेकात्परतः अपिधानक्रिया च सा ॥
तदीय वाससैव स्यात्तद्भ्रमस्यापनुत्तये । धूपो दीपश्च नैवेद्यं त्रयमेव च तत्क्षणे ॥
कर्तव्यत्वेन कथितं तद्विधिज्ञैर्महात्मभिः । (अपि चण्डालसंस्पृष्ट सा(शा)लग्नावा तु सन्ततम्
पूतः प्रक्षालनाच्छुद्धो भवत्येव ततः पुनः । तत्तीर्थं चापि नैवेद्यं न स्वीकार्यं दिनत्रयम्
फलादिकं चेत्संग्राह्यमोदनं निन्दितं भवेत् । पूर्णसूक्ताभिषेक्ष तत्परं तस्य वैदिकम् ॥

प्रकार्यं इति तज्ज्ञास्ते प्रवदन्ति मनीषिणः ।

उच्छिष्ट दूषितो यस्तु सा(शा)लग्नावा दिनद्वयात् ॥

पूर्णसूक्ताभिषेकश्च तत्परं तस्य वैदिकम् ।

प्रकार्यं इति तज्ज्ञास्ते प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

उच्छिष्टदूषितो यस्तु सा(शा)लग्नावा दिनद्वयात् ।

पूर्णसूक्ताभिषेकस्य योग्यः स्यादिति योगिनः ॥

चण्डालहस्तगः साक्षात् सा(शा)लग्नावा तु पक्षतः ।

जलावासेन शुद्धिः स्यात्ततश्चावाहनादिकम् ॥

प्रतिमानिखिलाश्चापि शिवविष्णवादिकाः सदा ।

प्रतिष्ठया तच्छास्त्रोक्तविधयैव न चान्यथा ॥

पूज्या योग्याश्च पूताश्च स्युः संग्राह्याश्च सन्ततम् ।

भवेयुरेव सर्वेषां यतीनां योगिनां विना ॥)

आदित्यादिकपञ्चानां नित्यवैदिक पूजने ।

रुद्रपूर्वादयो मन्त्राः तत्तन्नामार्चनादिकाः ॥

सर्वा अप्यत्र कर्तुं वा शक्यन्ते ब्रह्मबुद्धितः । सर्वोपास्यं सर्ववन्द्यं सर्वनामास्पदं परम्
सत्यज्ञानानन्दरूपं जगज्जन्मादि कारणम् । तद्ब्रह्म कथितं यस्मात्तदेवातो महेश्वरः ॥

ब्रह्मविष्णुसूर्यशक्तिनाममात्रेण भिन्नतः ।

निगद्यतेऽतस्तद्ब्रह्म शिव एव वचा (हरेः) परः ॥

हरिरेव शिवः साक्षात् तयोर्भेदो न सर्वथा ।

भेदकृत्पापमाप्नोति पुनर्वचमपि सूक्ष्मतः ॥

शिवस्य हृदयं विष्णुः विष्णोश्च हृदयं शिवः ।

यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः ॥

आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् । सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति
यथारुचि ततो नित्यमभीष्टसुरपूजनम् । जलाभिषेकपुष्पाद्यैः दीपाद्यैश्च निवेदनैः ॥
कुर्यादेव विधानेन कृतकृत्यो भवेत्ततः । प्रणवो व्याहृतिर्माया बीजिनी करणी च सः
व्याहृत्या संपुटयुतो निखिलाकाररूपकः । सर्वमन्त्रस्वरूपश्च सर्वकारणवाचकः ॥

तथा सूर्यस्य वायोश्च इन्द्रस्याग्नेस्त्रयस्य च ।

उमाया अप्य.....कायाः स्वरूपोऽयं क्रियादिकः ॥

सुपुष्टिस्तस्य वृक्षस्य यथा गन्धः सुशोभनः ।

याति दूरात्तथा तस्य गन्धस्पर्शो महात्मनः ॥

तस्मात्तु गन्धाद्गवान्गान्धारयति शंकरः । गान्धारश्च महादेवो देवानामपि लीलया
सुगन्धस्तस्यलोकेऽस्मिन्वायुर्वाति नभस्थले । तस्मात्सुगन्धिकं देवं सुगन्धं पुष्टिवर्धनम् ॥

अस्यावेशः पुरा शम्भोः हृदि योनौ प्रतिष्ठितः ।

तस्य देवं सुवद्गण्डहिरण्मयमजोद्भवम् ॥

चन्द्रादित्यौ स नक्षत्रा भूर्भुवस्वर्जनस्तपः । सत्यलोकमतिक्रम्य पृथिवीजस्य तस्य वै ॥
पञ्चभूतान्यहंकारो बुद्धिः प्रकृतिरेव च । पृथिवीवीजस्य तस्यैव तस्माद्ब्रै पुष्टिवर्धनः ॥
तं पुष्टिवर्धनं देवं धृतेन पयसा तथा । पयस्संयुक्तदूर्वाग्रैः कुशकेन धृतेन वा ॥
सधृतेन तिलेनैव गल्ल (ङ्गू) च्या पायसेन वा । मधुसंयुक्तगोधूमयवबिल्वफलैरपि ॥

कुमुदार्कशमीपत्र गौरर्पसपवारिभिः । भक्त्यालिङ्गे यथा न्यायं नित्यं देवं प्रपूजयेत्
ऋतेनानेन भास्पांशाद्बन्धनाज्जन्मयोगतः । मृत्योश्च बन्धनाच्चैवमक्षय्यं ते च तेजसा
उर्वारुकेण पक्वानां यथाकालादमृत्युकः । तथैव कालस्संप्राप्तः ऋतेनानेन यस्ततः ॥

पञ्च मन्त्रविधं कृत्वा शिवलिङ्गं प्रपूजयेत् ।

तस्य पापक्षयोऽतीव भविता मृत्युनिग्रहः ॥

त्र्यम्बकसमो नास्ति देव देव घृणानिधिः । प्रसादशीलः प्रीतश्च तथा पुत्रधनप्रदः ॥
तस्मात्सर्वं परित्यज्य त्र्यम्बकं तमुभापतिम् । त्रियम्बकेण(न) मन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः

सर्वावस्थां गतो वाऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः ।

ध्यात्वा शिवं कृतार्थः स्यात्सरुद्रश्च भवेच्छनैः ॥

हस्तादत्वा च भूतानि दत्वा द्रव्याण्यप्यसंख्यया ।

परेषां कृतकृत्यः स्याच्छिवार्चनपरो नरः ॥

छन्दोऽनुष्टुप्कहोलश्च गायत्री वाथ वा पुनः । मृतसंजीविनीरुद्रवीजस्तत्प्रणवः स्मृतः ॥

उमाशक्तिस्तु कथिता विनियोगो यथेच्छया । अनेन पूजयेद्देवं त्र्यक्षरेण जगद्गुरुम् ॥

अक्षमालाधरो देवो दक्षिणेन तु पाणिना । वामेन मृतकुण्डं च धारयेदमृतान्वितः ॥

वरलाभं पाणिश्च दिव्याभरणभूषितः । शुक्लः सुपीतवासाश्च पद्मस्योपरि संस्थितः ॥

ओं जुं सो मूलमन्त्रः स्यात् पूज्यो मृत्युंजयः शिवः ।

गन्धादिभिर्यथान्यायतनाग्नावाहनादिकम् ।

वस्त्रे(स्तेनै)णैव कर्तव्यः अर्घ्यं तेनैव दापयेत् । मृत्युञ्जयोक्तकल्पेषु ब्राह्मणं तेन पूजयेत् ॥

करशुद्धिस्तु मूलेन कवचं तेन कारयेत् । ऋषिं शिरसि विन्यस्य मुखे छन्दो हृदिस्थले ॥

कुर्यात्तु देवताध्यानमस्त्रं च दशदिक्षु वै । प्रातःकाले च मध्याह्ने प्रदोषे च विशेषतः ॥

भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दश नाडिकाः ।

प्रातःकालः सविज्ञेयः शिवपूजाविधौ नृणाम् ॥

प्रातःकालं समारभ्य आसन्ध्यां मध्यमः स्मृतः ।

अस्तमानं समारभ्य यावत्सप्त हि नाडिकाः ॥

तृतीयाधममोद्धेयः कालत्रयसमर्चने । त्रिवारमात्रकरणात् प्रातः प्रभृति सन्ततम् ॥

आरात्रि सार्धयामं वै यदा वा स्यात्तदा स तु ।

नियमः प्रभवेन्नूनं न संकल्पो विनश्यति ॥

यद्वा मध्याह्नवेलायां शिवं यष्ट्वा तु सन्ध्ययोः ।

पञ्चोपचारान्कुर्वीत तावत्पूजाफलं लभेत् ॥

जलसंग्रहणं कुर्यात् पात्रपुष्पादिसंग्रहम् । कर्तव्यमुदकादूर्ध्वं शुद्धः सन् जलसंग्रहम् ॥

कुर्यादेवातिभक्त्यैव नाशुद्धस्तु कदाचन ।

स्नानं कृत्वा तु मध्याह्ने पुष्पाद्युत्पादयन्ति ये ॥

देवतास्तं न गृह्णन्ति पितरो गुरवस्तथा । तस्माद्दिनोदयादूर्ध्वं मध्याह्नात्प्राक् समुद्धरेत् ॥

स्वाराससंभवं श्रेष्ठं तत्तु स्यादुत्तमोत्तमम् । मध्यमं वनसञ्ज्ञातं क्रयलब्धं निरर्थकम् ॥

परकीयारामजं तु तत्फलार्थं तमुच्यते । शूद्रोपवनजो यस्तु निरर्थकमिदं स्मृतम् ॥

(वाय)वीर्यं वाडवानां द्वयोरर्धफलं लभेत् । शतपुष्पसमं विल्वं तथैव तुलसीदलम् ॥

तुलसीपुष्पतुलितं विल्वपुष्पसमं तु वा । न वस्तुलोके परमं वर्तते यत्र कुत्रचित् ॥

प्राणायामं च संकल्पं विना देवं न पूजयेत् ।

संकल्पात्परतो विद्वान् कलशार्चनमारभेत् ॥

गन्धपुष्पाक्षतैः सम्यक् तीर्थावाहनकैः परैः ।

आपोवेत्यादिभिर्मन्त्रैः तन्मुद्रादर्शनादिभिः ॥

तन्मन्त्रपठनात्पश्चात् तज्जलेनोद्धृतेन वै । पूजाद्रव्याणि चात्मानं प्रोक्षयेत्तत्परं पुनः ॥

यागगेहस्य पूर्वादिदिक्षु द्वाराणि पूजयेत् ।

द्वारमन्त्राम्बुनाप्रोक्ष्य द्वारपालान् यजेत्क्रमात् ॥

गणपो भारती लक्ष्मीः सर्वद्वारोर्ध्वगाः स्मृताः ।

द्वारस्य दक्षिणे वामे मध्यमे परिवर्तिनः ॥

प्राक् द्वारे दक्षिणे नन्दि गङ्गा च द्वारमास्थितः ।

गणेशो दक्षिणे द्वारे पश्चिमे तु सरस्वती ॥

भृङ्गा सिन्धुश्च तत्पूर्वं सौम्यद्वारस्य पश्चिमे ।

गौरीतापौ च तत्पूर्वं दण्डश्चापि पयोष्णिका ॥

ऋषभा.....प्रत्यङ्गद्वारे दक्षिणभागगौ । स्कन्दो गोदावरी वामे तेषामावाहनादिकम्
कृत्वा द्वाराणि संख्याद्य पूर्वदक्षोत्तराणि च । कुर्वीत दक्षिणद्वारप्रवेशं सर्वकर्मसु ॥

कवाटद्वितयं यष्ट्वा सुवाहुं विमलं यजेत् ।

धामशाखां समाश्रित्य गेहलीमस्पृशन्त्यजेत् ॥

दक्षपादं पुरस्कृत्य वास्तुपालं ततो यजेत् । यजेन्निर्ऋतिकोष्ठे तु ब्राह्मणं जगदीश्वरम् ॥
गणेशस्थापनं वायौ गुरुगामीशकोणतः । देवं प्रदक्षिणीकृत्य वह्निकोणं समाश्रयेत् ॥

प्रतीचीमग्रतः शम्भोः नोत्तरां योषिदाश्रयेत् ।

स प्रतीचीयुतः पृष्ठं तस्मादक्षं समाश्रयेत् ॥

पश्चिमद्वारहर्म्यं नु यजेन्निर्ऋति (?) कोणगः । प्रणवेनासने प्रोक्ष्य बीजं सारस्वतं स्मरेत्
कणिकां संस्मरेत्तत्र दशप्राकारभूषिताम् । स्वरयुग्मं दलेष्वेव चन्द्रादींस्तत्क्रमाद्यजेत् ॥
पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वकारं विन्दुसंयुतम् । आग्नेयादिषु कोणेषु उकारं विन्दुसंयुतम् ॥
मातृकाभरणं कृत्वा उपनिन्यु ह्युदङ्मुखः । पद्मासनसमासीनः प्राणायामक्रमान्वितः

भूतशुद्धिर्विधायैव मन्त्रशुद्धिर्विधाय च ।

मन्त्रन्यासं ततः कुर्यात्त्रिकोणं मण्डलं शुभम् ॥

समीकृत्याखिलं विद्वान् ऋषिछन्दादिपूर्वकम् ।

शङ्खं चैवार्घ्यपात्रं च पाद्यमाचमनीयकम् ॥

साधारणं जलेनैव क्षालयेदस्त्रमन्त्रतः । देवस्य पुरतः कुर्यात् त्रिकोणं मण्डलं शुभम् ॥

अग्निबीजं समालिख्य जातवेदसमर्चयेत् ।

अस्त्रेण क्षालितां धारां वायुबीजेन निक्षिपेत् ॥

रविमण्डलमध्यस्थं विन्दुयुक्तमकारतः । स्नापयित्वा रविं पूज्य गायत्र्या गन्धपुष्पकैः ॥

क्षकारादिककारान्तमातृकां च विलोमयेत् ।

आनीय चोदकं शङ्खे तीर्थान्नाराचमुद्रया ॥

आवाह्यैव तु गङ्गादीन् तकारेण सविन्दुना । अमृतीकरणं कुर्यादमृती भुव इत्यथ ॥
 निर्विषीकरणं कुर्यात् का च गारुड मुद्रया । हृदा संपूजयेच्छङ्खं कवचेनावकुण्ठयेत् ॥
 अस्त्रेण रक्षयेच्छङ्खं कवचेनावकुण्ठनम् । अस्त्रमन्त्रेण चालोक्य धेनुमुद्रां तु मूलतः ।
 दर्शयित्वा ततो मन्त्रं स्पृष्ट्वा चैवाष्टधा जपेत् ।

आत्मानं द्रव्यजातं च प्रोक्षेद्यजनसाधनम् ॥

पाद्यार्घ्याचमनीयादि पात्राण्येवं हि साधयेत् ।

अभावे चैव पात्राणां शङ्खेचैवापि तन्त्रतः ॥

आत्माऽर्चनं प्रकुर्वीत गन्धाद्यैरष्टपुष्पकैः । तन्मालावलयं कृत्वा देवं वेदस्वरूपिणम् ॥
 यजेदेव विधानेन वैदिको नित्यमेव वै । ह्रस्वदीर्घाच्चितान्विन्दूनं ब्रह्मरन्ध्रशिरोन्तरात्
 मन्त्रान्समुच्चरेन्मन्त्री देवमभन्त्रेण वारिणा ।

प्रोक्ष्याङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां पूजापर्युषितं त्यजेत् ॥

वामहस्तेन संमृज्य पीठकं दक्षहस्ततः । मूलेन पाणिना देवं गङ्गाद्यवनयावधि ॥
 मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरुत्तानैर्लिङ्गमस्तके । पुष्पं निधाय दत्त्वाऽर्घ्यं लिङ्गमुद्रां दृशेद्भृदि ॥
 अङ्गुष्ठेन स्पृशेलिङ्गं पश्चात्पादं तु मुष्टिना । अस्त्रेण हस्तं प्रक्षाल्य यजेद्देवं गणाधिपम्
 पूर्वं संकल्पिते पीठे गुरुं चैव प्रपूजयेत् । आधारशक्तिं संपूज्य मूलप्रकृतिमेव च ॥
 कूर्मं शेषं वराहं च पृथिवीं च यजेत्क्रमात् । ततो रत्नमयीं वेदीं मण्डपं स्थलमेव च ॥
 पीठपादेषु चतुर्(तुर)षु वह्निकोणे गणेश्वरम् । उमां सतीं च तत्पश्चात् क्षेत्रपालां (१) च वह्नितः
 धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च यथाक्रमात् । यजेताधर्ममज्ञानमवैराग्यमनैश्वरम् ॥

इन्द्रादिषु चतुर्दिक्षु अवजं चैव दलाष्टकम् । मूलकन्दं च नादं च दले चैव तु केसरम् ॥
 रजस्तमो गुणं सत्त्वं मूलादिक्रमतो यजेत् । अष्टैश्वर्यसरूपाणि दलान्यष्टौ प्रपूजयेत् ॥

अष्टौ संपूजयेच्छक्तीः वामां ज्येष्ठां च काद्रिकाम् ।

कालां च कलवी करणीं ततो बलविकारिणीम् ॥

बलप्रमथनीं सर्वभूतदमनीं क्रमात् । तथाष्टशक्तयः पूज्याः त्र्यम्बके तु विशेषतः ॥
 जया तु विजया चैव अजिता चापराजिता । भद्रकाली कपाली च क्षेममृत्युः पराजिता

नवमीं कर्णिकामध्ये तथा चैव मनोन्मनीम् ।
 दलाग्रे केसराग्रे च कर्णिकाग्रे तु मध्यतः ॥
 सूर्यसोमाग्निविम्बानि पूजयेच्छक्तिमण्डलम् ।
 ब्रह्मविष्णुवीशरुद्रांश्च सूर्याद्रि(दि)कमतो यजेत् ॥
 मध्ये सिंहासनन्यासजातं न्यस्य च छन्दसाम् ।
 न्यासं कृत्वा क्रमेणैव कुर्याल्लिङ्गे स्वदेहवत् ॥

मूलेन चासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् । मधुपर्कं चाचमनं स्नानं गव्यैस्तु पञ्चभिः ॥
 स्नानं चाचमनं दत्वा पाद्यमर्घ्यं तथाचमम् । वस्त्रं चैवाचमनं दद्याद्यज्ञोपवीतकम् ॥

पुनराचमनं गन्धं दत्वा चैव यथोचितम् ।
 मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैः पुष्पाणि विनिवेदयेत् ॥

नमो मुद्रां प्रदर्श्याथ शम्भोरावरणं यजेत् । पञ्चब्रह्मषडङ्गानि प्रथमावरणे यजेत् ॥
 ईशेन्द्र यमदिक्सौम्य वारुणेशेष्वतः क्रमात् ।
 वह्नीश निऋऋ(र्)ति मरुत् चक्रदिक्षु यथाक्रमम् ॥
 अस्त्रं चैव तु वह्न्यादिचतुष्कोणेषु पूजयेत् ।
 निवृत्तिं वै प्रतिष्ठां च विद्यां शान्तिं तथैव च ॥

आग्नेयादिषु कोणेषु द्वितीयावरणं ततः । अनन्ताशेषकरुणा शिवोत्तमकनेत्रकौ ॥
 एकरुद्रं त्रिमूर्तिं च श्रीकण्ठाख्यं शिवेड्यकम् ।
 पूर्वादिशान्तपत्रेषु विद्येशावरणं यजेत् ॥

चतुर्थे लोकपालांश्च इन्द्रादीननुपूर्वशः । लोकपालास्त्रजालं च पूजयित्वाऽथ पञ्चमे ॥
 तस्मिन्नावरणे विद्वान् तत्कमोऽयमु(दीर्यते) । वज्रं शक्तिं कालदण्डं खड्गपाशमथाङ्कुशम्
 गदां त्रिशूलं संपूज्य धूपदीपादिना ततः । क्रमादत्वा तु देवेभ्यो पुष्पैरभ्यर्च्य तत्परम् ॥
 धूपदीपौ पुनर्दत्वा घण्टानादपुरस्सरम् । अस्त्रेण प्रोक्ष्य पयसा चित्तशुद्धिसमन्वितः ॥
 चक्रेण प्रोक्षयेत्सर्वा घेनुमुद्रां प्रदर्शयेत् । ततो नैवेद्यपात्रस्य सर्वं चैव तु शङ्खवत् ॥
 पञ्चप्रहाणदेवस्य दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् । पुनर्नैवेद्यमन्येभ्यो दद्याद्याचमनीयकम् ॥

हस्तोद्वर्तनताम्बूलमुखवासादिकं भवेत् ।
 दद्यात्.....स मूलेन नमोन्तं तर्पणं (दर्पणं) तथा ॥
 दद्यात्तु व्यजनं छत्रं.....पादानं चैव चामरम् ।
 दूर्वांस्तु दत्त्वा स्तुत्वा च प्रदद्यादष्टपुष्पकम् ॥
 अर्घ्यं दत्त्वा यथाशक्ति जपं कृत्वा प्रणम्य च ।
 ततः प्रदक्षिणं कुर्यात् सव्यासव्यविधानतः ॥

मूल मन्त्रं जपेन्मौनैः गुरुस्मरणपूर्वकम् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य दृष्ट्वा देवं प्रणम्य च ॥
 पुष्पं दत्त्वा तु देवेभ्यो दद्यादर्घ्यं पराङ्मुखः ।
 सर्वान्देवान् शिवे योज्य शिवं च हृदि योजयेत् ॥

नैवेद्यं सकलं दद्यात्तान्त्रिकश्चित्तु तन्त्रतः । सर्वं कर्म समाप्याथ चण्डायैवाथ भक्तिः
 निवेदयित्वा तत्पश्चात् सलिले परिवर्जयेत् ।
 चण्डाधिकारो यत्र स्यात् तत्प्रसादं न भक्षयेत् ॥

लिङ्गे स्वायंभुवे बाणे रत्ने च रसनिर्मिते । सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत् ॥
 शुद्धवेदोक्तमनुभिः वैदिकैः सुप्रतिष्ठिते ।
 आदित्यादिवृते तस्मिन्लिङ्गे नास्याधिकारिता ॥

तन्त्रप्रकारवेदाख्य शास्त्रदेवलकार्चिते । देवमात्रे प्रसादस्य न कुर्याद्वैदिको ग्रहम् ॥
 अपां ज्ञेयार्चिते देवे तान्त्रिकाभ्यर्चिते तथा ।
 तत्प्रतिष्ठितमूर्तौ वा त्यजेन्निर्मात्यकोदनम् ॥

स्वसंभोज्या.....स्वजनकारितं यन्निवेदितम् । दैवतं तत्परिग्राह्यं तद्धिन्नं यत्परित्यजेत्
 असंभोज्यान्नहस्तेन कारितं तु निवेदितम् । फलमूलशलाट्वादि यदपक्वं परिग्रहेत् ॥
 स्वजनेतरपक्वानि निर्माल्यान्याखिलान्यपि ।

वैष्णवान्यपि शैवानि न संभोज्यानि वैदिकैः ॥

आलयान्नानि शैवानि वैष्णावान्यपि वैदिकैः ।

धर्मतो न भवन्त्येव भोक्तुं तानि तु तान्त्रिकैः ॥

अदनीयानिकालेषु तैर्नान्यैर्धर्मतत्परैः । तन्त्रप्रतिष्ठिते लिङ्गे तादृशे विष्णुविग्रहे ॥
यन्निवेदितमन्यन्तत् तेषामेवेति वैदिकाः । निवेदितेन रुच्यर्थं याजयेन्न निवेदितम् ॥
नोच्छिष्टयेन्मर्दयेद्वा तत्तद्वात्तथा तथा । शिवे निवेदितं भुक्तं तन्त्रैर्मार्गप्रतिष्ठिते ॥

अभक्ष्यं मांसतुलितं तत्तीर्थं वा सृजोसमम् ।

विष्णौ निवेदितं त्वन्नं तान्त्रिकैः सुप्रतिष्ठिते ॥

तान्त्रिकाणां भवेद्योग्यं अत्तुं तन्नेतरैर्जनैः । वाणादिलिङ्गनैवेद्यं शालग्रामादिना तथा
निवेदितं वैदिकेन भोज्यमेवेति वैदिकाः । समष्टिकृतपूजायां शालग्रामेषु वा पुनः ॥
आदित्यादिषु वा ग्राह्यं कृतं यत्तु निवेदितम् । आगमोक्तप्रकारेण देवता या प्रतिष्ठिता
सापि वन्द्या सुसेव्या च वैदिकैर्धर्मतत्परैः । शूद्रपूजितमूर्तिस्तु प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ॥

परिग्राह्या विशेषेण साक्षाद्भरिहरौ तु तौ ।

अञ्जल्या वन्दनीयौ तौ न साष्ट्राङ्गेन सर्वथा ॥

पूजितौ विप्रमात्रेण तौ देवालयेषु चेत् । तयोर्महामहिम्नैव वन्दनीयौ विशेषतः ॥
तत्पुष्पमूलताम्बूलशलाटुफलसंग्रहः । तत्प्रत्तोऽपि परिग्राह्यः कामकारान्न सर्वधा(था) ॥
अपि शैवं वैष्णवं वा प्रसादं वैदिकं शिवम् । स्वीकार्यं वैदिकैर्मत्तया कदाचन न तान्त्रिकम्

निर्माल्यं धारयेद्भक्त्या शिरसा शिवकृष्णयोः ।

राजसूयस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति तत्क्षणात् ॥

शिरसा तत्तु निर्माल्यं निर्माल्यं धारयिष्यसि ।

अशुचिभिन्नमर्यादः सर्वावस्थांगतोऽपि वा ॥

स्वैरीचैवाप्रयुक्तात्मा नियमैश्च बहिष्कृतः । तस्य पापानि सर्वाणि नाशयत्येव देवदः ॥
लोभान्न धारयेत्तस्य निर्माल्यं न च भक्षयेत् । न स्पृशेदपि पादेन लङ्घयेन्नापि सर्वथा
तन्निर्माल्योलङ्घनेन बुद्धिभ्रंशोऽपि जायते । निर्माल्यदाता नरके पच्यते कालमक्षयम्
पृथूदकं महातीर्थं गङ्गा च यमुना नदी । नर्मदा चैव कावेरी तथा गोदावरी नदी ॥
सप्त संनिहितास्त्वेता तत्तीर्थे वेदमन्त्रिते । तस्मात्तदुक्तं दिव्यं सर्वतीर्थमयं हि तत् ॥
धारणात्पापसंघातैः तत्क्षणादेव मुच्यते । ब्रह्महा वा सुरापी वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः

तत्तीर्थं(थांभि)षिक्त(क्तेन)तत्सायुज्यमवाप्नुयात् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिकेन विपश्चिता
शिवविष्णू पूजनीयौ नित्यं नियमधर्मतः । विना तद्भाजनं नृणां नान्यदस्ति..... ॥
तस्मात्तदेव कुर्वीत भूयो भूयः प्रवच्मिवः । आदौ भजनकार्यस्य तत्पूजनमिहोच्यते ॥
सामग्री प्रथमा दिव्या तं च तैर्वस्तुभिः परैः । पत्रैः पुष्पैः(फलैर्द्रव्यै नानाभावैः)सुशोभनैः

यजेज्जगद्गुरुं देवं ऋतं सत्यमनादि तत् ।

ऋतं सत्येन मनुना यो ब्रह्माणमिति स्म च ॥

मन्त्राभ्यां भावयेन्नित्यं पञ्च ब्रह्मा(दिदेवता) । न देवमीशानं...व्योममध्यगतं विभुम् ॥

यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् ।

भुङ्क्ते स याति नरकं सूक्रेष्वपि जायते ॥

यो दद्यात्तु गवां लक्षं दोग्ध्रीणां वेद(सम्मतम्) । (सुदेश)कालार्चनतो देवस्य परमात्मनः
एकस्मादिवसान्नूनं तत्फलं लभते महत् । संकृतपूजयते यस्तु भगवन्तं जगद्गुरुम् ॥
ग्रीष्मे भक्तिसमायुक्त एकवारं यतेन्द्रियः । (अश्व) मेधादधिकं फलमाप्नोति निश्चितम्
वर्षास्वर्चनतो वाजपेयस्यास्य तु यत्फलम् । तत्फलं समवाप्नोति नात्र कार्याविचारणा

शरत्कालादिपूजानां (म) अति रात्रस्य..... ।

अप्नोर्यामस्य सत्रस्य क्रमात्प्रोक्तानि सूरिभिः ॥

फलानि सर्वपापौषवारकाणि चिरन्तनैः । शैवं पाशुपतं शाक्तं सौरं वैन्यायकं तथा ॥
वैष्णवं चेति भिन्नानि दर्शनानि षड्(डेवच) । (देव)भेदेन चोक्तानि देवस्त्वेको महेश्वरः

शिवो नारायणो ब्रह्मा सूर्यः सोमोऽनिलोऽनलः ।

भैरवस्कन्दविघ्नेशाः लोकेशाश्च नवग्रहाः ॥

भुवनानि तथा (देवी राधा) लक्ष्मी सरस्वती ।

दुर्गा स्वाहा स्वधा देवी शचीन्द्राणी महेश्वरी ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं च कः किं यत्तन्महच्छिवम् । स्त्रीपुंसादिविभेदेन सर्वे शब्दा म(मैव हि
.....वाचका एव व्यवहारेषु ते परम् । निर्दिष्टा एव तेनैव तत्संकेतमहत्त्वतः ॥

भिन्नभिन्नतया भान्ति तन्मायापरिकल्पनात् ।

विचार्यमाणे ते सर्वे सूक्ष्मदृष्ट्या श्रु..... ॥

.....वाचका एव न तु तत्तन्निरूपकाः । एकस्य शंकरस्यास्य पूजनात्सर्वनाकिनाम् ॥

कृता पूजा प्रभवति यथा चैकस्य वर्ध्मणः । अन्नभक्षणमात्रेण तृप्तिक्षुत्तृड्विनाशिनी
(सर्वेषां चो) स्योपकारः स्यात् तथैवेश्वरपूजनात् ।

सर्वगीर्वाणोपकारः पूजनावाहनादिभिः ॥

भवन्ति पूजिताः सर्वे देवा एवं श्रुतिः शिवा ।

प्रोवाच किल तस्मात्तु तत्पूजां विधिना चरेत् ॥

तत्तन्मूर्तिकृता पूजा निखिला सागमोक्तितः ।

मूर्तिमन्तमवाप्नोति मूर्तिमाञ्जगदीश्वरः ॥

आपो यस्य शरीरस्याज्जातवेदास्तनूनपात् ।

शशिसूर्या(र्यौ)लोकपालाः पर्वताश्च महीरूहाः ॥

खं वायु पृथिवी सर्वं यस्याङ्गं तं तु गच्छति । सर्वप्रकाररचितं तत्पूजनमनुत्तमम् ॥

परं तु कामनाभेदांस्तत्तन्मूर्ति विशेषतः । पण्डितः प्रार्थयेद्यत्नसा सा मूर्तिस्तु वच्मिवः

तस्य तस्य प्रदाने वै समुद्युक्ता चिरेण तु ।

आरोग्यं भास्करादिच्छेच्छ्रियमिच्छेद्दधुताशनात् ॥

ईश्वराद्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् । ... मन्विच्छेल्लोकेशैः देहलक्षणम् ॥

दुर्गादिभिस्तथा रक्षां भैरवाद्यैस्तु दुर्गमम् ।

विद्यासारं सरस्वत्या लक्ष्म्या चैश्वर्यवर्धनम् ॥

पार्वत्या चैव सौभाग्यं शच्या कल्याणसन्ततिम् ।

स्कन्धात्प्रजाभिवृद्धिं च सर्वं चैव गणाधिपात् ॥

मूर्तिभेदा महेशस्य त एते यन्मयोदिताः । तस्य साक्षाज्जगत्कर्तुः ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः

वस्त्रालङ्कारयुक्तानां दोग्ध्रीणां ... वः ... पारगे ।

अयुतं यो गवां दद्यात्तत्फलं तस्य चोदितम् ॥

देवक्षीरस्नानकर्तुः शुद्धचित्तस्य देहिनः । दध्ना यः स्नापयेद्देवं सकृद्भक्त्या महामनाः

कुलसप्तकमुद्धृत्य ब्रह्मलोके महीयते । कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् ॥

घृतस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम् । मधुना स्नापयेद्देवं सकृद्भक्त्या तु यो नरः ॥

पापकंचुकमुत्सृज्य ब्रह्मलोके महीयते । स्नानमिक्षुरसेनैव शर्करेण गुडेन वा ॥

सकृद्भक्त्या कारयिता देवस्य परमात्मनः । साम्राज्यं समवाप्नोति देववत्त्वं च गच्छति

शीतज्वरस्य तु श्रीमान् नार्थश्चिन्त्यः समन्त्रकैः ।
 अभिषेकादि नैवेद्यैः वन्द्यो ध्येयः सदा हरिः ॥
 उष्णज्वरस्य शान्त्यर्थं सह गौर्या महेश्वरः ।
 अभिषिच्याम्युभिः शीतैः चन्दनोत्पलगन्धिभिः ॥

पुष्पचन्दनतोयेन यदा तु कुशवारिणा । स्नापयित्वा देवदेवं निरोगी जायते नरः ॥
 कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि । ईप्सितं किलिबणं दग्ध्वा गाणपत्यमवाप्नुयात्
 वासांसि सुविचित्राणि सुधूतानि मृदून्यति । नवानि देवदेवाय दत्त्वा संराद्भवेद्ध्रुवम्
 यावत्तद्वस्त्रतन्तूनां परिमाणं प्रतिष्ठति ।

तावद्वर्षं सहस्राणि स्वाराज्याधिपतिर्भवेत् (ध्रुवम्) ॥

त्रिवृतं शुक्लपीतं वा पट्टसूत्रादि निर्मितम् । दत्वोपवीतं देवाय भवेद्देवान्तपारगः ॥
 दिव्यलेपनकर्ता तु दिव्यगन्धसुचन्दनैः । वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते ॥
 गन्धानुलेपनात्पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु । चन्दनागरुभिः पुण्यं ज्ञेयमष्टगुणाधिकम् ॥
 कृष्णागरोर्विशेषेण फलं शतगुणं भवेत् । तस्माच्चतुर्गुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥
 चन्दनागरुकर्पूरैः चन्द्रपुष्पैः सुगन्धिभिः । कुङ्कुमैर्देवमालिष्य कोटिकल्पान्वसेदिवि ॥
 स्वरामसंभवंश्रेष्ठं मध्यमारण्यसंभवम् । विकीर्तं त्वधमं ज्ञेयं पत्रं पुष्पं फलं तथा ॥
 अतिशुक्लमतिश्रेष्ठं रक्तपुष्पं तु मध्यमम् । पीतंचैवाधमं ज्ञेयं कृष्णपुष्पं ततोऽधमम् ॥

चित्रपुष्पं ततो हीनं याचितं तु ततोऽधमम् ।

केशकीटापविद्धानि पत्रपुष्पाणि सन्त्यजेत् ॥

कीटभिन्नानि सर्वाणि दूरतः परिवर्जयेत् ।

पतितानि पृथिव्यां च तथा स्थानच्युतानि च ॥

अर्चनार्थं निषिद्धानि कथितानि महात्मभिः ।

पाटाया अधिका ज्ञेया वर्तिका तुलसंभवा ॥

कार्पासजाततो मुख्या विसतन्तु प्रकल्पिता ।

वर्तिका परमोत्कृष्टा न तयान्या समाऽपरा ॥

कार्पासकोटिदीपानां विसतन्तु प्रकल्पितः । एको दीपः समोज्ञेयो देवस्य परमात्मनः
कपिलादि घृतोद्भूतः श्रेष्ठो दीपः प्रकीर्तितः । गोमात्रघृतसंभूतो दीप उत्तम मध्यमः ॥
महिषादि घृतोद्भूतः उत्तमाधम उच्यते । मध्यमोत्तमदीपः स्याद्यज्ञ्वेततिलसंभवः ॥
शबलैस्तु तिलैर्दीपो मध्यमस्य तु मध्यमः । नानावर्णतिलोद्भूतो मध्यमाधम उच्यते ॥
सार्षपादपि च स्नेहादीपश्चैवाधमोत्तमः । कुमुभैरण्डसंभूता ह्यधमस्य तु मध्यमः ॥
बीजादिस्नेहसंभूतो मध्यमस्याधमः स्मृतः । वसामेदोद्भव दीपं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

काष्ठानि वारयेन्नित्यं दहेन्नित्यं तृणानि वा ।

यानि यानि प्रशस्तानि निषिद्धानि विवर्जयेत् ॥

चतुर्द्विस्त्र्यङ्गलज्वालदीपः स्यादुत्तमोत्तमः । प्रकाश मल्लिकाजाति मुकुलस्थूलवर्तिकः ॥

मध्यमः त्रिविधो ज्ञेयः तंतुभिश्चैव विंशभिः ।

चतुर्दशैः षोडशभिः सप्तभिर्वाऽधमः स्मृतः ॥

दीपप्रशंसा

दीपमेकं तु देवाय यो दद्याद्भक्तिपूर्वकम् । निरुजश्चक्षुषा धीमान् सूक्ष्मदर्शी भवेन्नरः ।
दीपद्वयं महेशाय यो दद्याच्चित्तशुद्धितः । चक्षुष्मानेव भवति नात्रकार्या विचारणा ॥
देवदेवाय यो दद्याद्भक्त्या दीपचतुष्टयम् । नित्यमेव भवेच्छ्रीमान् सर्ववेदविदांवरः ॥
दीपाष्टकप्रदाता तु वेदमन्त्रविदांवरः । विनियोगविधिज्ञश्च धनदेनापि भाग्यतः ॥
तुलितोभवतिक्षिप्रं सत्यमेतन्मयोदितम् । दीपद्वादश दाता तु देवदेवस्य भक्तितः ॥

गन्धर्वलोकमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।

यस्तु षोडशसंख्याकान्दीपान्भक्त्या प्रकल्पते ॥

नवानां श्रीमतां तेषां निधीनामधिपो भवेत् ।

देवदेवाय यो दद्याद्दीपान्भक्त्या समन्वितः ॥

इन्द्रलोकमवाप्नोति चतुर्विंशतिसंख्यया ।

पञ्चाशद्दीपदानेन शूद्रो वैश्यत्वमाप्नुयात् ॥

क्षत्रियत्वमवाप्नोति वैश्यो राजा द्विजत्वकम् ।

आप्नुयादेव वच्न्येतत्तादृक् तत्कर्मभावुकम् ॥

वेदार्थदर्शी विप्रः स्याद्दीपदानप्रभावतः । न वेदार्थपरिज्ञानादन्याश्रीरस्ति विष्टपे ॥
 वेदमन्त्रार्थवित्प्राज्ञः मन्त्रौघविनियोगवित् । कल्पब्राह्मणमार्गेण स एवेश्वर उच्यते ॥
 संपदन्या ततो नास्ति मनुष्याणां महात्मनाम् । देवानामपिसेन्द्राणां वेदार्थज्ञानतः परा
 धनरूपां श्रियं येन केन मार्गेण चित् सदा । शक्यते किल संप्राप्तुं तन्मन्त्रार्थैकवेदनम् ॥
 अनेकजन्मशतकसहस्रतपसा श्रिया । सद्गुरूणां प्रसादेन दक्षिणामूर्त्यनुग्रहात् ॥
 हयग्रीवमहिम्नैव दत्तात्रेयप्रसादतः । वेदमात्रार्थतत्त्वज्ञो जायते नान्यथा नरः ॥
 शतदीपास्तु देवाय दत्त्वा तु नियतव्रतः । यमालयमदृष्ट्वैव विमानैः सूर्यसंनिभैः ॥
 हंसयुक्तैर्गतिं लब्ध्वा स्वेच्छाचारी भवेद्भ्रुवम् । दीपान् शतद्वयं यस्तु योजयेद्देवसंनिधौ
 वर्षकोटिशतं पुण्यं तस्य लोके महीयते । यः पञ्चशतदीपानां कारको देवसंनिधौ ॥
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतैरपि । भक्तेर्देवपुरे भोगाननुभूय महात्मभिः ॥
 शतजन्मसु सम्राड्त्वं प्राप्नोत्येव प्रवच्मिवः । देवैरेवं वर्णितानि चतुर्मुखमुखैः पुरा ॥
 रात्रौतत् द्विगुणपुण्यं कार्तिकं द्विगुणं स्मृतम् । चतुर्गुणं दक्षिणे तु पञ्च चैवोत्तरायणे ॥
 दीपोत्सवः चतुर्दश्याममायां प्रतिपदिने । न गण्यते विधात्रापि फलं तत्तादृशं महत्
 यो दद्यात् घृतदीपांस्तान्देवानां चैव पर्वसु । कार्तिक्यां प्रस्थकेनैव प्रकीर्णाघौघनाशनः
 आढकादुपपातकानि द्रोणेनैव तु पातकम् । पञ्चद्रोणघृतेनैव महापापात्प्रमुच्यते ॥
 देवदेवं समुद्दिश्य दीपमाकाशवर्तिनम् । संप्राप्ते कार्तिकेकुर्यान्महच्छ्रियमवाप्नुयात् ॥
 त्रिपञ्च कार्तिकौ दीपौ दश द्वादशदीपकौ । देवस्यानन्दजनकौ दानतोऽजस्रमेव हि ॥
 सर्पदीपो वृषाख्यो वा मृगपुरुषनामकः । बल्मीकदीपकल्याणनामको चतुराकृतिः ॥
 रथदीपश्च सुमहान्कुम्भदीपो महोन्नतः । पञ्चमूर्ति महादीपा कर्पूरश्चरमः परः ॥
 दानमात्रेण मर्त्यानां तत्काले दर्शनादपि । साक्षात्सायुज्यदा एव पुनर्जन्मान्तरापहाः
 एतत्फलसहस्रांशकोटिमात्रस्य वा विधिः । वक्तुं युगसहस्रेण न शक्नोति पितामहः ॥
 नीराजनस्य दत्तस्य कर्पूरेण कृतस्य वै । य उष्णेन स्वगात्राणि लेपयेत्तस्य देहतः ॥

जन्मान्तरमहापापकोटयो रोगकोटयः ।

तत्क्षणेन लयं यान्ति राजकुष्ठादयोऽखिलाः ॥

महानैवेद्यपरतः कार्यः पञ्चार्तिकादयः । रथदीपं प्रथमतः प्रकुर्वन्ति हि तान्त्रिकाः ॥
वैदिका पूर्वसंप्रोक्त क्रमेणैव न चान्यथा । चरमे सर्वदीपानां महानीराजनक्रिया ॥
कर्पूरेणैव कर्तव्या वैदिकैरपि तान्त्रिकैः । शास्तेयैर्वैष्णवैः शैवैः समो धर्मोऽयमुच्यते
कर्पूरदीपकालेषु नमस्कारक्रियापरान् । अचिरादेव देवेश अनुगृह्णाति मानुषान् ॥

नीराजनात्परं नित्यं बृहत्सामेति मन्त्रतः ।

कार्यैव भस्मना रक्षा तच्छिष्टं भस्म देहिनाम् ॥

धारणात्युष्टितुष्टिश्रीः संपदायुष्यदायकम् । नैवेद्यं सुमहन्नित्यं अन्नात्तण्डुलकारितात् ॥

कर्तव्यं स्याद्विशेषेण तण्डुलास्तेऽपि कीर्तिताः ।

प्रस्थान्यूनाः प्रकर्तव्याः पुरुषाहारमात्रकाः ॥

दृढाङ्गपुरुषा रोगरहिताष्टादशाब्दकः । अवदो द्वादशमासोक्तः मासः पक्षद्वयात्मकः ॥
नातुलादिः प्रकथितः ते कायं पूर्णवत्सरः । शालीनां तण्डुलैः प्रस्थान्यूनेरन्नं सुसंस्मृतम्
कुर्यान्नैवेद्यकार्याय देवस्य परमात्मनः । यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन् नैवेद्यान्नस्युरक्षिताः
तावद्युगसहस्राणि तल्लोके निवसन्ति ते । तत्कारका महात्मानः नैवेद्यपरिसंख्यया ॥

गुडखण्डगुडापूपान् गोधूमान्गुडसूपकान् ।

माषापूपान्बोडशाख्यान् चाणकान्मौद्गलान्परान् ॥

घृतपकान्तैलपकान् जलपक्वांस्तथादरात् । तथाम्बरीषपक्वादिकपालश्रपितानपि ॥

अग्नितप्तानश्मत्तप्तान् परान्नानाविधान्वहून् ।

सर्वान्भक्षविशेषांश्च निखिलान्यन्नकारितान् ॥

शक्त्या नित्यं महेशस्य विशेषदिवसेष्वपि ।

प्रकल्पयेद्भक्तियुक्तः चित्रान्नानि फलान्यपि ॥

अभिघार्यैव पक्वानि सर्वाण्यस्य निवेदयेत् । पत्रं पुष्पं फलं वापि शालाटुदधिमध्वपि
नवनीतादिकं ह्ययङ्गवीनं च निवेदयेत् । देवदेवस्य सततं भोजनार्थाय कल्पितम् ॥

यद्यतद्वरये दत्त्वा महतीं श्रियमाप्नुयात् । पूगीफलं यन्नभिन्नं गन्धकर्पूरमिश्रितम् ॥
 तस्माच्चतुर्गुणं पुण्यं त्रिगुणं चाग्रवर्जितम् । व्रणहीनं विशुद्धं च शुचिर्चूर्णं समन्वितम् ॥
 ताम्बूलमिति विख्यातं यो देवाय निवेदयेत् । सुगन्धतेजः तेजस्वी सर्वावयवसुन्दरः ॥
 कल्पकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योजयेत्
 परांगतिमवाप्नोति क्रतुं जामित्रं चोत्तमम् । प्रदक्षिणं यः कुरुते देवदेवं जगद्गुरुम् ॥
 अश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति तत्क्षणात् । शिवं प्रदक्षिणीकृत्य सव्यासव्यविधानतः
 मूलमन्त्रं जपन्मौनी सद्गुरुणां मते स्थितः । छायां च धामसूत्रं च जन्तुन्परिहरन् शनैः
 देवं प्रदक्षिणीकृत्य दृष्ट्वा शंभुं प्रणम्य च । सव्यापसव्यमार्गेण शुद्धगत्याथ वा त्वरम्
 मृदुगत्या चित्तशुद्ध्या तदेकाग्रमनाः परम् । सम्यक् प्रदक्षिणं कृत्वा पञ्चाक्षरपरायणः
 अष्टाक्षरपरो वापि द्वादशाक्षरगोऽपि वा । अथवा रुद्रगायत्र्या विष्णुगायत्रियापि वा
 यथा संभवतः कुर्याद् ध्यायन्नेवं यथोक्तवत् । कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या देवदेवं जगद्गुरुम्
 अश्वमेधसहस्रस्य संख्येन लभते फलम् । दण्डप्रणाम आद्यः स्यात्प्रणामः स्याद्वितीयकः
 उपविश्याञ्जलिकृतः प्रणामः त्रिविधः कृतः । त्रिभिरङ्गैस्तु पञ्चाङ्गैः अष्टाङ्गैश्च तथा त्रिधा
 पुनः स एव प्रख्यातः तद्विधिर्मेहात्मभिः । पुष्पैरञ्जलिमापूर्य राजाधिमनुना पुरः ॥

नमोन्ताद्वक्तिसंयुक्तः देवं संचिन्त्य मन्त्रवित् ।

शीर्ष्णदेवस्य दत्तैव पुष्पाञ्जलिमनुत्तमाम् ॥

पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा स्वीयं सन्निधिगोऽस्य वै । दण्डवत्प्रणमेद्भूमौ न वस्त्रेणापि पीठके
 एरकायां कटे तल्पे प्रणमेन्नैव सर्वथा । सिरसा हस्तयुग्मेन कर्णाभ्यां चुबुकेन च ॥

बाहुभ्यां भुवमष्टाङ्गं संस्पृश्य प्रणमेद्विभुम् ।

उरसा सिरसा दृष्ट्या मनसा श्रद्धया गिरा ॥

पद्भ्यां कराभ्यां कर्णाभ्यां प्रणामाष्टाङ्ग ईरितः । यथोचितं नमेद्देवं देशकालाद्यपेक्षया
 अञ्जल्यैव कदाचित्तु दूराद्गोपुरदर्शने । धावमानोभियाकुर्यादञ्जल्यैव प्रदक्षिणम् ॥

वाङ्मात्रेण कदाचित्तु ध्यानेनापि कदाचन ।

कीर्तनस्मरणाभ्यां च नमस्कारान्समाचरेत् ॥

सूतके मृतके चैव न कुर्याद्देवतार्चनम् । दानं प्रतिग्रहोहोमः स्वाध्यायं च निवर्तयेत् ॥
दीक्षान्वितानां सर्वेषां स्वीयदेव समर्चने । अधिकारोऽस्ति सततं पञ्चार्द्रैर्नैव वाससा
प्रधानमन्त्रं तत्कुर्यात् क्षणमात्रेण पूजनम् । उक्षापरस्य धर्मोऽयं वैदिकस्य न संभवेत् ॥

अर्चने परकीये तु दीक्षायुक्तस्य सूतके ।

सर्वथा नाधिकारोऽस्ति तान्त्रिकस्यापि सन्ततम् ॥

सर्वदा तान्त्रिकस्यास्य तत्प्रतिष्ठितवर्त्मनः ।

शूद्रादिसंस्पर्शयोगात् पूजाकाले न बाधकम् ॥

पूजामध्ये तान्त्रिकोऽयं स्नात्वा शुद्धोऽपि संस्थितः ।

शूलास्त्रदेवचक्राङ्घ्रिकिरीटस्पर्शनादितः ॥

शूद्रादि जातिर्निखिलाः स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा तदा तदा ।

पुनर्देवं च संस्पृश्य साक्षाद्विग्रहरूपिणम् ॥

चरन् शुद्धेन भावेन दृश्यते किल देवलः ।

तथा न वैदिको विप्रः अपि तिष्ठेत्क्षणं नु किम् ॥

तस्मात्तु वैदिको मार्गः तन्मार्गात्तु विलक्षणः । साक्षात्परंपरास्पृष्टौ शूद्रादीनां तथैव हि
महाधमर्षणस्तानान्मृदादि द्रव्यपूर्वकम् । स्वकर्मक्षमतामेति तादृग्वैदिकशास्त्रतः ॥

न सूतकं मस्करिणां शुद्धानां वर्णिनामपि । स्वधर्मविधुराणां च नास्त्येव किल सूतकम्

तद्धर्मोऽयं समाख्यातः वह्निकार्यं तु कालयोः ॥

ब्रह्मचारिधर्माः

दण्डोपवीतमौञ्जीनां अजिनस्य च धारणम् ।

कौपीन धारणं चापि तत् प्रा(स्त)रणधारणम् ॥

सदा गुरुकुलेवासः वेदाध्ययनमन्वहम् । भिक्षाशनं मातृपितृ शुश्रूषाचार्यवन्दनम् ॥

गन्धवस्त्राद्यलंकारवर्जनं शिष्टसेवनम् । ताम्बूलवर्जनं चापि स्त्रीविम्बोकादि शून्यता ॥

गुरुवर्त्मानुसरणं तद्वाक्याप्रतिकूलता । त एते मुख्यधर्माः स्युरेतावन्मात्रधारणात् ॥

ब्रह्मचारी भवेच्छूद्रः दृष्टपातकवर्जनात् । गृहीवस्त्रधरोवर्णी नेक्षणीयः कदाचन ॥

मौञ्जीदण्डाजिनत्यक्तः युवा विंशतिवार्षिकः ।

मत्स्यघातिसमोवर्णी यद्युष्णीषधरः पुनः ॥

गृहीवस्त्रालङ्कृतश्च तिलघातसमः स्मृतः । स(सं)क्रन्दनपरो भूयः दुष्टाम्बष्ठ इति स्मृतः ॥

पुनस्ताम्बूलवदनः साक्षाद्वैणः स एव हि । पुनःखण्डपरश्चेत्तु सुनोऽयं नात्र संशयः ॥

स्त्रीविम्बोकादिना सोऽयं भिल्लव्याधारयुको भवेत् ।

तत्रापि खरवाक् क्रूरो वेदब्राह्मणभीषणः ॥

नेक्षणीयो न संभाष्यः नोपकार्योऽपि बर्बरः ।

नित्यं न दयनीयश्च न संग्राह्यश्च सर्वधा(था) ॥

देशादुच्चाटनीयस्स्यात् दयापात्रमयं न तु । अन्तर्वेदी सङ्गकरो भूमि दुन्दुभिकेक्षणे ॥

यदि वर्णी प्राजापत्यसहस्रेण पुनस्तथा । पुनस्संस्कारतश्चापकौटौ धेनुद्वयेन च ॥

मासेन यावकाहाराच्छूद्रोऽयं कथितो बुधैः । सा यदा तेन संगेन गर्भिणा प्रभवेत्तदा

तं जातं पुल्कसेष्वेव योजयेत्पञ्चवार्षिकम् । ततः सापि पुरोक्तेन चित्तेनैव शनैः पुनः

भागीरथीस्नानशतैः घृतशौचाष्टकैरपि । पञ्चगव्यप्राशनेन लक्षवर्तिव्रतेन च ॥

शुद्धाभवति धर्मज्ञैरित्येवं चित्तनिर्णयः । एतेन पतितानां च कुण्डगोलकयोरपि ॥

अभिनिम्नु(मु)क्ताभ्युदिते परिविन्नादि वापिनाम् ।

महापातकिनां सर्वकोपपातकिनामपि ॥

चित्तात्परं शास्त्रमार्गात् शुद्धानामपि केवलम् ।

स्वमात्रस्यैव ते शुद्धः प्रभवन्त्येव सन्ततम् ॥

परेषां निन्दिताः कर्माहानं न भवन्त्यपि । मस्करी यद्यवलया दूषितो रति शब्दतः

सद्य उच्चाटनीयः स्यात्स्वदेशात्तत्क्षणेन वै । द्रव्यार्जनपदं ज्ञात्वा यति दूरात्परित्यजेत्

यः पणः यदि ते नायं पञ्चादित्येव तं त्यजेत् ।

असकृद्याचितश्चेत्तु गृहीतेन शनैः परम् ॥

अदर्शनं व्रजेद्धीमान्छत्कारेणाथ वा त्यजेत् ।

तडितस्तेन चेन्मौख्यान्निवृत्त्यैनमुपायतः ॥

सद्यः शनैर्वा संताड्य दूरमुच्चाटयेदमुम् । ताडनस्य प्रसक्तौ तु यतेदुष्टस्य संभवे ॥
नैकेन तत्तु कर्तव्यं बहुभिर्मिलितैः परैः । तत्कर्तव्यं दुष्टभावे तस्मिन्नोचेन्न तच्चेत् ॥
अन्यायताडितो भिक्षुः ब्रह्महत्याफलप्रदः । प्रभवेत्सद्य एवायं नात्र कार्या विचारणा
शुद्धवर्ण्यपि संस्क्रुर्यात्पितका शास्त्रवर्त्मना । भिक्षान्नमशनन्विधिना तस्मिन्कर्मणि सूतके
अयं सद्यः प्रभवति ब्रह्मचारी पुनस्ततः । तस्मिन्कर्मणि निवृत्ते शुद्ध एव भवेदपि ॥
मस्कर्यपि तथा तावत् सूतके कर्ममात्रके । पिण्डार्थाय तथा वर्णी पाकं कुर्याच्च मस्करी
तत्पिण्डायान्य एव स्यात्पाककर्ता गृही वनी ।

नान्यः पाकं प्रकुर्वीत विधवान्याथ वा पुनः ॥

यत्र वर्णी मस्करी वा पाकार्थं पावके वृणम् । इन्धनं वा निक्षिपतः तद्राष्ट्रं लयमेति वै
पाकमात्रं धनं क्षिप्ता ब्रह्मचार्यपि मस्करी । ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां वीरहत्यामवाप्नुतः ॥

अग्निकार्याग्निहोत्रादौ वर्णिनः समिधां शुचौ ।

निक्षेपणाधिकारः स्यान्नान्नपाचनकर्मणि ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ ।

भोज्यमिष्टं तयोर्दत्त्वा सद्यः क्रतु फलं लभेत् ॥

गृही वा गृहिणी नूनं सत्यं वच्मि पुनः पुनः ।

समुद्युक्ताय भुक्त्यर्थं वालाय ब्रह्मचारिणे ॥

स्थलं जलं पत्रपात्रे लवणं शाकसूतके । रसं तत्र घृतक्षीरं मुक्तिसाधकवस्तु तत् ॥

दत्त्वा तत्क्रतुसंज्ञातः सुकृतं परसंस्थितम् । अनश्वरममोघं तल्लभतेऽत्यल्पयत्नतः ॥

ये वेदाध्ययने तस्मै वर्णिने धर्मचारिणे । औदार्यपीडशान्त्यर्थं मारीचं कल्कमात्रकम्

लेहौषध गुडादीनि लङ्ङुकं शङ्कुलीमपः । यल्लभ्यते तद्विताय ददन्ति किलतेऽमलाः ॥

सुपुत्रपौत्रसहिताः नित्यश्रीकाश्चिरायुषः । नष्टापमृत्यवः प्राप्त वाजिमेधफलाश्च ते ॥

भवेयुरेव वो वच्मि तत्फलं तादृशं महत् ।

विद्याधीनोऽपि भगवान् साक्षालक्ष्मीपतिर्विभुः ॥

तन्मनोरथ पूत्यासौ प.....तं प्रपद्यते । यतिहस्ते जलं दद्याद्भैक्षं दद्यात्ततः परम् ॥

तद्भैक्षं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् । सोऽयं यत्युपकारोऽपि तादृशो ब्रह्मवृत्तिकृत्
 धर्माविरोधतः सर्वं तद्यात्तद्याचितं परम् ।
 काषाय दण्डमात्रेण यतिः पूज्यो हि जन्मनाम् ॥
 यति निन्दा कुलव्री सा न कार्यातो द्विजन्मभिः ।
 प्रसक्तमप्रसक्त्यालं देवं संपूज्य तत्परम् ॥

वैश्वदेवम्

वैश्वदेवपरो भूयात् नित्यं च ब्राह्मणोत्तमः ।

अन्नस्य चात्मनश्चैव संस्कारोऽर्थं तथा पुनः ॥

प्रीत्यर्थं परमेशस्य वैश्वदेवं समाचरेत् । कालद्वयेऽपि तत्कुर्यात् अथवा पुनरेक(कम)
 सायंकालस्यापकृष्या कुर्यान्मध्याह्न एव वै । पचनाग्नौ प्रकर्तव्यमथवौपासनानले ॥
 पचनाग्निकृते होमे तदन्नं संस्कृतं भवेत् । सर्वेषामपि भोक्तृणां तस्मिन्नौपासने तु तत्
 कृतस्याद्यदि साभिस्सा तदम्पत्योस्तु संस्कृतम् । प्रभवेदेव नान्येषां तस्मात्तत्पचनानले ॥
 प्रकर्तव्यं विशेषेण चे.....षितम् । पचनाग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वालंकृत तत्पदम् ॥
 कृत्वा वा शाकलं होमं परिषेचनपूर्वकम् । पञ्चसूनापनुत्यर्थं वैश्वदेवं समाचरेत् ॥

सभार्यः सन् शुचिर्वि(प्रः विधिनास) म्य(त्य)वाग्यतः ।

प्रज्वालय वह्निं विधिना परिषेचनतः परम् ॥

षडाहुतीः प्रकुर्वीत चेशान्ये शाकरूपके ।

अल्पोष्णे जुहुयात्पश्चात् उत्तरात्परिषेचनात् ॥

..... कुर्याद्भर्मादिभ्यो यथा क्रमात् । वैहायसबलिकुर्यादग्रचदानं च शक्तितः ॥
 देवयज्ञादिकं कुर्यात्क्रमेण सुसमाहितः । विद्युद्बुष्टिप्रपूर्वेण ॥
 रथचक्राकृतिं वापि नराकृतिमथापि वा । अथवा धनुराकारं यथारुचि समाचरेत् ॥
 परिषेचनमेतेषां पृथगेव समाचरेत् । तत्क्रमं चापि वक्ष्यामि स्पष्टं तद्वत् ... ॥
 एकं द्वौ चतुश्चैकमेकमेकं दशैव तु । एकमेकं पुनश्चैकं एकं तं परिषेचनम् ॥
 पञ्चसूना गृहस्थस्य वर्धन्तेऽहरहस्सदा । कण्डिनी पेषिणी चुल्ली जलकुम्भ उपस्करः ॥

तानेतान्ध र्थे ते च सुहुर्मुहुः । एतेषां पावनार्थाय पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥

(क) खण्डिनी मुसलोलूखलादिरे (पः) प्रकीर्तिताः ।

पेषिणी दृषदादिः स्यात्पाकस्थानं तु चुलिनी ॥

उपस्करस्तु शूर्पादिः उद्गुम्भादिना परः । पक्वाभावे प्रवासे च तण्डुलानोषधीस्तथा ॥
पयोदधिघृतं वापि कन्दमूलफलानि वा । यजेद्देवान्समुद्दिश्य जलदानेन वा जले ॥
द्रवं स्रुवेण होतव्यं पाणिना कठिनं हविः । एतेन मुख्यकल्पेन वैश्वदेवक्रियां चरेत् ॥
अनश्नतापि कर्तव्यमन्यथा पातकी भवेत् । स्नातको ब्रह्मचारी वा पृथग्भावे भवेद्यदि
वै ... स्त्री वालौ कारयेत्तथा । भिक्षान्नं पक्वमथवा येन केनापि बन्धुना
सच्चरित्रेण पक्वं तद्ब्रह्मचारी तु नित्यशः । अग्नौकृत्वा तु भुञ्जीयाद्वष्टा शीत्वा ... ॥
विध) वा विधुरो वापि होमकर्म बहिष्कृतम् । कदाचन न भुञ्जीत विभक्तोष्णेषु चोदितः
धर्मोऽयवविभक्तोषु संस्पृष्टेनैव यत्कृतम् । संस्कृतं प्रभवे ... मेव तत् ॥
प्रथमो ब्रह्मयज्ञः स्याद्देवयज्ञो द्वितीयकः । भूतयज्ञः तृतीयः स्यात्पितृयज्ञस्तुरीयकः ॥

नृयज्ञः पञ्चमः प्रोक्तः पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिताः ।

स्वाध्याये ब्रह्मयज्ञः स्याद्देवयज्ञोऽग्नि होमतः ॥

भूतयज्ञबलिः प्रोक्तो हुतशेषादनन्तरः । पितृयज्ञः स्वधामन्त्राक्रियते यत एव हि ॥
मनुष्ययज्ञो हन्तेति मनुष्ये भ ... य क्रियते यज्ञः सोऽयं नरविशेषणः ॥

यज्ञो म ... चरोयं कथितः कल्मषापहः ।

एवं सामान्यतः प्रोचुरिमान्यज्ञान्मनीषिणः ॥

विशेषेणात्र वक्ष्यामि चै(तेषामन्त्रमुत्तमम्) । देवेभ्य इति मन्त्रेण क्रियते यस्स एव हि ॥
देवयज्ञ इति प्रोक्त अग्रदानात्परं न चेत् । पूर्ववासमनेष्टेयः पृथक् संकल्पपूर्वकः ॥
विद्युद्वृष्टि क्रियापूर्वं ... । एवं शिष्टास्त्रयः प्रोक्ताः पितृभ्य इति मन्त्रतः ॥
अग्नेर्दक्षिणभागेः क्षेपणीयो बलिर्महान् । अत्रापसव्यं कार्यं स्यात्तथा चैवाग्रदक्षिणम्
... न्युक्त्वा भूतयज्ञं समाचरेत् । उपवीतेन कारयोऽयं देवयज्ञवदेव वै ॥
मनुष्ययज्ञश्च ततः मनुष्येभ्य इति मन्त्रतः । निवीतेन प्रकर्तव्यो यज्ञोऽयं ... हान् ॥

प्रजापति त्रयं पश्चादावन्तीति मन्त्रतः । काष्ठैरौदुम्बरैः साकमन्नहोमश्च शक्तिः ॥
कर्तव्य एव विधिना तेन श्रीमान्भवेदिति । अग्नेनयेतिमन्त्रेण तदुपस्थानतः (परम्) ॥

(श्वा)वायसवलिः कार्यः श्वानौ द्वाविति मन्त्रतः ।

ऐन्द्रेति मन्त्रतश्चापि बलिं दत्त्वा विधानतः ॥

प्रक्षाल्यपादावाचम्य स्वस्तिमन्त्रान्वदेदपि ।

शान्ता पृथिव्यादि ऋचः न्यं तां शान्तिकारिकाम् ॥

परित्वाथ द्विजान्भक्त मानसानागतान्परान् । पूजयेच्च विधानेन प्रत्यहं ब्राह्मणोत्तमः
कोद्रवं ककरं माष रं च कुलुत्थकम् । क्षारं च लवणं चैव वैश्वदेवे विसर्जयेत् ॥
यद्वा तु क्षारलवणे भोजनार्थं समागते । भस्माङ्गारेषु जुहुयान्मन्त्रैर्वा वैश्वदेवकैः ॥
हविष्य ... सा संस्पृष्टं यदि वा भवेत् । हौतव्यं समिद्धोऽग्नौ भस्माङ्गारेषु हूयते ॥
हविष्येषु पदार्थेषु मुख्याः स्युर्विहयः स्मृताः । माष ... स्तु गर्हिता होमकर्मसु ॥

जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारादिवर्जितम् ।

दध्यक्तं पायसाक्तं वा तदभावे ... नापि वा ॥

शाकं वा यदि (पुष्पं फलं) वा यदि वानलम् । संकल्पयेद्यदाहारं तेनैव जुहुयादपि ॥
मिश्रितं त्रेद्यदाहारैः लवणैर्वापि यद्भवेत् । भस्माङ्गारेषु तं हुत्वा भोक्तव्यं स्व(यमेवतत्)
पयो ... ताम्बूलं पयसा ... । पि ... पि प्रकर्तव्यं ब्रह्मयज्ञादिकाः क्रियाः
कुर्यादहरहः शुद्धमन्नाद्येनोदके न वा । पयो म ... ण चिरकालात्ततः पुनः ॥

भिक्षुकत्वं प्रपन्नस्य नष्टश्रीकस्य कालतः ।

सद्विक्षा नैव दातव्या प्रियवाक्यानि नोच्चरेत् ॥

तस्मै विशेषोपकारं नैव कुर्यात्कथंचन । गोदोहकालं काक्षेत कृत्वा भूतबलिं द्विजः ॥

संप्राप्तमतिथिं भक्त्या विष्णुबुद्ध्या प्रपूजयेत् ।

प्रियो वा यदि वा द्वेष्ट्यः मूर्खः पण्डित एव वा ॥

यः प्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ।

न मित्रमतिथिं कुर्यान्नैव ग्रामनिवासिनम् ॥

अज्ञातकुलनामानं तत्कालसुसमागतम् । वुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिंचनम् ॥
ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं संपूज्य शक्तिर्जो द्विजः । भवेयुर्वहवो विप्रा वैश्वदेवावसानके ॥
सर्वेऽपि पूज्याः शक्तस्य श्रोत्रियो व गुणोत्तमः । एक एव यदा विप्रो भवेद्यदि गृहाङ्गणे

न पृच्छेत्तं गोत्रसूत्रे स्वाध्यायं वापि पण्डितः ।

शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ॥

बालाः सुवासिनीः वृद्धाः गर्भिण्यातुरकन्यकाः ।

संभोज्या दासभृत्यश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् ॥

देवाग्न्यातिथिभिक्षार्थं पचेन्नैवात्मकारणात् ।

आत्मार्यं यः पचेन्मोहान्नरकायैव स जीवति ॥

यदि शूद्रादयो नीचाः तस्मिन्काले समागताः ।

स्वभुक्त्यनन्तरं तेषां क्षुत्क्षान्तिकारयेदिति ॥

ते कानां सर्वेषां स्वपूर्वं स्वेन वा क्षमा ।

भुक्तिः कल्प्या ब्राह्मणेन स्वभुक्तेः परतो द्विजान् ॥

बुद्धि पूर्वं भोजयेन्न किंतु शूद्रान् जघन्यजान् । शूद्रशेषं न भुञ्जीत भार्या शेषं च सर्वथा

अभ्यागतानां सर्वासां चिरंटीनां तु भोजने ।

सर्वासां कन्यकानां वा विधवानां विशेषतः ॥

अतिर्यर्चनकालेषु तैस्साकं भोजने तदा । न स्त्री शेष इति प्रोक्तो दुहितृणां च भोजने

सुषाणां बालबुद्धीनां भगिनीनां तथैव च । मातुलादि सुतानां च कल्याणादिषु भोजने

न स्त्री शेष इतिप्रोक्तः तद्भुक्तौ स्यान्न बाधकम् ।

षोडशाब्दात्परं स्त्रीणां कृतभर्तुरति ह्रियाम् ॥

पतिभावप्राप्तचित्तवृत्तीनां च विशेषतः ।

दाराणां भोजनात्पश्चात् स्त्री शेष इति गोभिलः ॥

शूद्राणां देवताशेषं यज्ञशेषं सुसत्कृतम् । हविः शेषं विप्रशेषं न दद्यात्तु कदाचन ॥

क्षुधार्तानां विशेषेण चण्डालानां विपत्स्वपि । देवनैवेद्य तत्प्रात्र कृतमन्नं विचक्षणः ॥

न प्रयच्छेद्बुद्धिपूर्वं नैगमानां तथैव च । प्रदेयसंगतौ तेषां पृथक्त्वेन विपश्चिता ॥
 कारयित्वा पाककर्म तादृग्घस्तेन तत्परम् । तद्वदथ कालेभ्य अम धनादिकम् ॥
 अत्यन्त क्षोभकालेषु दुर्घटेषु विपत्स्वपि । आगतेभ्यस्तादृशेभ्य दीनेभ्यश्चापि तण्डुलान्
 पुनर्धान्यविशेषांश्च दद्यादन्नं न संस्कृतम् । देयप्रसक्तौ भूयश्च कदाचिद्देवयोगतः ॥
 अशुचिः सन् प्रयच्छेत वामहस्तादिनापि वा । अस्पृश्यत्वं प्राप्यनोचेद्देवा तत्परमेव वै

प्रक्षाल्यपादौ हस्तौ च कर्णं संस्पृश्य दक्षिणम् ।

आचम्य प्रयतो भूयान्नित्यं बालान्प्रपोषयेत् ॥

बालाश्च कुलवृद्धाश्च कालातिथिमुखाः परे । दूरदेशगता यत्नादाशया नरमात्रकाः ॥

संभोजनीयाः पोष्याश्च वै मुख्यार्हा न सर्वथा ।

लुब्धस्य श्रीमतोदुष्टः बुद्धेर्दुष्टस्य कामिनः ॥

अभ्यागतो भग्नमनाः यदि सोऽयं न वर्धते । तस्मान्नित्यं द्विजो विद्वान्प्रभवेदतिथिप्रियः

शक्त्यान्नेनागतान्साधून्वाचा वा संप्रहर्षयेत् ।

अतिथिर्यस्य भग्नाशोतस्य सा श्रीर्विनश्यति ॥

न कुर्यात्तु ततो यत्नाद्भग्नानागतान्सदा । तत्प्रार्थितप्रदानेन तदभावे तु ॥

.... पयसां तृणादीनां प्रदानतः । परया सौम्यया वाचा क्रिययाभिनयेन च ॥

तोषयेद्देव सततं विमुखान्नैव कारयेत् । जलार्थिनेभ्यागताय शूद्रायातपटुःखिने ॥

... देवपूजायाः वैश्वदेवस्य वा परम् । स्वभुक्तेर्विप्रपूजायाः प्रार्थितस्तेन चासकृत्

नवीनमन्यत्सलिलं यत्र कुत्र स्थितं तदा । समानिनीय तत्तस्मै दापयेद्देव दूरतः ॥

त ज कीयाय दुष्टाय बलिनेऽपि वा ।

भृशमाक्रोशमाणाय दद्याद्देवोदकं गृही ॥

पयो दानेन बालानां यवागूनां तदा तदा । तत्तद्याश्चापराणां तु तत्तद्दानेन सन्ततम्

प्रतिक्षणं लभेद्दीमानग्निष्टोमफलं महत् । क्षीरप्रदानेकालस्य नियमो नैव वै शिशोः ॥

तदभ्यनुज्ञा तैलस्य गर्भपीडादि शान्तये । चिकित्साया औषधस्य मन्त्र तन्त्रकृतेरपि

तत्कालनियमोनास्ति तस्मात्तद्याचितोगृही । शक्तौ सत्यां सद्य एव तत्तदद्यादशङ्कितः

मृण्मये पर्णपृष्ठे वा कार्पासे तान्तवेऽपि वा ।

नाशनीयान्न पिवेच्चैव नारिकेले तथा (यैव च) ॥

अर्कपर्णे तु भुञ्जानः पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । स्वयमाहृतपर्णेषु स्वयंकीर्णेषु वा तथा ॥
भुञ्जीत नाकरुजेषु कुम्भीतिन्दुकयोरपि । कोविदारकपर्णेषु विपत्सु तु कदाचन ॥
भुञ्जीयादगतौ विप्रः गतौ तु न कदाचन । चतुष्पष्टिकलं न्यूनं कांस्यपात्रे भुजिक्रियाम्
कुर्वन्मलं समश्नाति तथा कुर्वन्जडः पुनः । अभोजनात्त्रिरात्रैश्च पञ्चगव्येन शुद्ध्यति
एवं सीसेतयोर्ज्ञेयं मृण्मयेऽपि च भाजने । मृण्मयान्यपि पात्राणि दारुकाणि विशेषतः
यागेष्वेव प्रसक्तानि ब्राह्मणानां श्रुतेर्वलात् । अलावुदारुपात्रं वा मृण्मयं वैणवं तथा ॥
एतानि यतिपात्राणि कृष्णाय समयानि वा । यतीनां यानि पात्राणि वर्जयेत्तानि सिंहासे
य एकस्मिन्नापि दिने पलाशे पानने (से) यदि ।

तच्छायामथवा विप्रो भुक्तितो वाजिमेधकृत् ॥

भुक्तौ पुन्नागपत्राणि तथौदुम्बरकन्दलाः । चित्रपोऽलावुकण्टश्च पिशाचोदुम्बरस्तथा ॥
ब्रह्मपत्रो गुह्यकारुयः स्वीकार्यः पर्णहेतवे । प्रस्तरे भोजनात्सद्यो व्याधत्वमधिगच्छति
तद्दोषस्य निवृत्त्यर्थं रुद्रप्रशनं जपेत्सकृत् । हेरण्डालावुपत्रैक भोजनेन द्विजोत्तमः ॥
रजकत्वमवाप्नोति तद्दोषस्य निवृत्तये । पूर्णसूक्ताष्टकजपान्मुक्तो भवति नान्यतः ॥
पीठभुक्त्या वैणवः स्याद्ब्रह्मणः सद्य एव हि । तद्दोषपरिहाराय शिवसंकल्पपाठतः ॥
दशावृत्या शुद्धिरुक्ता नान्यमार्गेण सन्ततम् । हस्तप्रक्षिप्तकवल भुक्तितः सकृदेव वा ॥
आभीरत्वमवाप्नोति तद्दोषशमनाय वै । नारायणं जपेद्विंश औत्तरं पावनं महत् ॥
जलेतिष्ठन्प्राञ्जलिना तेन शुद्धिमवाप्नुयात् । नारिकेलीयपात्रेषु भुञ्जन्विप्रसकृत्तु वा ॥
यवनः प्रभवेदेव तद्दोष विनिवृत्तये । सद्योयं यावकाहारादिवसत्रयमात्रतः ॥
पञ्चगव्येन भूयश्च तेन पापेन मुच्यते । कोविदारेषु भुञ्जानः ह्यथवा कौञ्जराशने ॥
पुलकसः प्रभवेन्नूनं तस्य चित्तिरिहोच्यते । त्रिसुपर्णमहामन्त्रजपतो दशसंख्यया ॥
यावकाहारतः पश्चात् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति । राष्ट्रभङ्गेषु घोरेषु येषु केषु दलेषु वा ॥

भोजनात्प्रत्यवायोऽयं न विपत्स्वस्ति कश्च नः ।

सतः स्वस्थस्य सततं प्रत्यवायाः पुरोदिताः ॥

भवन्त्येवेति विबुधाः प्रोचुस्ते कपिलादयः । संस्कारदुष्टं यच्चान्यत् क्रियादुष्टं तथैव च
स्वभावदुष्टं नाशनीयादनापद्यग(त)स्सदा । संस्कारदुष्टं तदज्ञेयं द्विजदेवाद्यनर्पितम् ॥
प्रसूतयेऽभ्यागतानां दरिद्राणां स्थलार्थिनाम् । यत्रकुत्राशरण्यानां स्थलादीनां प्रदानतः
पृथक्फलं प्रकथितं राजसूयस्य तन्महत् । न गर्भपीडा तुलिता पीडान्या सर्वदेहिनाम्

नैवेति साक्षाल्लोकेशः भगवानाह भारतीम् ।

तत्पीडा शान्तये यो वा सहायत्वेन संस्थितः ॥

कृपालुः कुरुते साह्यं तस्मै तां जन्मजन्मनि ।

दुहितृत्वेन जानन्ति तस्याः सोऽयं पिता स्मृतः ॥

तमेनं देवपत्निस्तु सेना धेनादयः पुनः । साक्षाल्लक्ष्मीर्भगवती गिरिजापि सरस्वती ॥
प्रीत्या स्वजनकत्वेन मन्यमानाः शिवंकराः । तन्मनोरथपूर्त्यर्थं जागरूकाः प्रतिक्षणम् ॥
तिष्ठन्त्येव प्रवक्ष्यामि वरदाश्च दिने दिने । ता एव पीडां तां देव्यः जानते तत्तमप्यति
यतस्तस्माद्देवपत्न्यो सर्वलोकैकमातरः ।

अतोऽस्य कामानखिलान्प्रयच्छन्ति रमादिकाः ॥

नान्नदानसमं दानं जगत्तस्मिन् हि तिष्ठति । यतस्त्वेतत्तृप्तिकरं जलदानं च तादृशम् ॥
जलदाता प्राणदः स्यान्मनोमात्रस्यकेवलम् । अन्नदो भवति श्रीकः तस्मादन्नं ददन्नरः
सर्वदाता भवेन्नूनमन्नाजीवा भवन्त्यपि । अन्नं ब्रह्म समाख्यातं यतो भूतानि तेन वै
जायते चापि वर्धन्ते दाता ... सन्निधिः ।

तदातुः फललेशस्य माहात्म्यं निखिलं विधिः ॥

वक्तुं युगसहस्रेण शक्नो नैव भवेत्खलु । तद्वोक्तुमभमथवा (?) पद्मपत्रपलाशके ॥
यथारुचि यथाशक्ति स्वीकुर्यात्तद्विचक्षणः ॥

पद्मपत्रपलाशेषु गृहिणां भोजने सुखम् । ब्रह्मचारी यतीनां तु चान्द्रायण फलं लभेत् ॥
वटाश्चत्थार्कपर्णेषु कुम्भीतिन्दुकपर्णयोः । कोविदारकपत्रे वा गृही भुक्तवोपवासयेत् ॥
पलाशमध्यपत्रेषु यो भुङ्क्ते मानवोत्तमः । तत्समीकरणं कृत्वा प्राजापत्यं दिने दिने
य इच्छत्यूर्ध्वगामित्वं ब्रह्मचारी यतिस्तु वा । पद्मपत्रेषु भोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ॥

सधूके वा रसाले वा भोजनाच्छ्रयमाप्नुयात् ।
 एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्य भो(भा)जने ॥
 चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशोबलम् ।
 एक एव तु यो भुङ्क्ते विमले कांस्यपात्रके ॥
 भोजने पानतो वापि ह्यतिरात्रफलं लभेत् ।
 यत्यादीनां तु तत्पात्रं पानाद्भुक्त्याऽपि योगतः ॥
 वीरहत्याफलं ज्ञेयं तस्मात् न तथा चरेत् ।
 एक एव तु यः पात्रे भिन्ने भिन्ने दिने दिने ॥

यशःकीर्तिर्भगोलक्ष्मीः भर्ग ओजश्च वर्धते । हरतेऽस्य प्रवर्धेत संपदः श्रिय एव च ॥
 तां वं कांस्यपात्रैकभोजनम् । यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विसर्जयेत्
 वासन्तिका वटा ग्राह्याः रम्यपर्णा सुदीर्घिकाः । मुख्य एव वसन्तोऽत्र ॥
 अश्वत्थार्कजपात्रेषु कुम्भीतिन्दुकजेषु वा । श्रीकामो नैव भुञ्जीत कोविदारकपित्थयोः
 यदि भुञ्जीतकालेषु देशदुर्लभदोषतः । भोजना(नन्तरं)द्यः गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥
 कपित्थवृक्षच्छायायां भुक्तिमात्रेण वाडवः ।

सद्यः शूद्रत्वमाप्नोति चण्डालो दिनपञ्चकात् ॥

एक पङ्क्त्या पवि ... अन्यथा त्वक्रिया तथा । तथैवस्याच्चलशुनं वृत्तालावु शलाट्वपि
 कुम्भिकं श्वेतवृन्ताकं श्लेष्मातकशलाटु च ।
 आकब्धिकी कुसुम्भं च लोहितं शिग्रु शिग्रु तत् ॥
 उदम्बरशलाट्वा(कोवि)दार शलाटुकम् । न ... कोपोदकी शाकं दुर्गन्धाद्यपि वर्जयेत्
 आकण्टकी कुसुम्भं त आरक्तपाटलं तथा ।
 आश्वेतं चापि वार्तकं भुक्त्यर्थं नात्र चिन्तयेत् ॥

... तान्वृक्षनिर्मासान्त्रश्चनान्प्रसवांस्तथा । कनकानि च ... दितैर्भुक्ति कर्मणि ॥
 ... पितं तथा । अन्यत्र ... भक्षेभ्यः सर्वतो गुडात् ॥
 अंत्यामं शुक्तमित्युक्तं निन्दितं ब्रह्मवादिभिः । मरीचिकागलाड्वादिक्षेत्र ... धानकः ॥

तद्द्यान्न तु तूष्णी(कं)गच्छन्न भक्षयेत् । अग्निसंपा ... रात्रावन्तर्हितं च ॥
 तत्पर्युषितमित्याहुः निन्दितं ब्रह्मवादिभिः । नाद्या द्धर्मनिषिद्धं न द्विः पक्वं कदाचन
 नापणीयान्नमश्नीयाद्भक्ष्यभोज्यादिकं तथा ।
 (घृतं) वा यदि वा तैलं विप्रो नान्नं(न)खाच्युतम् ॥

नखस्पृष्टं तथा रोमदूषितं तेन वा युतम् । तद्युक्तं चेद्घृतं तैलं मधु वा तत्तथैव हि ॥
 उद्घृत्यैव परित्यक्त ... प्रक्षालय तत्परम् । स्वीकुर्यादेव चेदन्नं तथा भूतं तथैव वै ॥
 कृत्वा प्रोक्ष्य तु गायत्र्या स्वीकुर्यादिति काश्यपः ।
 भुक्तिकाले रोमलग्नं कवले वास्य मध्यके ॥

हस्त ... गेवा दूरे परिहरेत्तु तत् । आस्यादिगतमात्रं तत् कवलं भूतले क्षिपन्
 पुण्डरीकाक्षनामोक्त्वा जुह्वां हस्तं जलेन वै । प्रक्षालय पुनरेवैतत् दद्यादन्नं न तत्त्यजेत्
 ... शुना स्पृष्टं काकवानरकुक्कुटैः । तत्परात्पुरुषाहर(?)दूरीकरणतः परम्
 गायत्र्या भस्मनाप्रोक्ष्य शुद्धिं तां परिकल्पयेत् । ... तन्मन्त्र ... ॥

... तः प्रोक्षणं कुर्यात् सा राशिर्निखिला ततः ।

अतिशुद्धासुभार्येव सर्वेषां नात्र संशयः ॥

वामहस्तेन दत्तानि लवणव्यञ्जनान्यपि ।

दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम् ॥

एकेन पाणिनादत्तः पात्रोच्छिष्टे च धारया । यदत्तं दूरविसृष्टं हासघोषैकदूषितम्
 घृतं तैलं च लवणं ... यो वापि त्याज्यान्याहुर्मनीषिणः ॥
 अपूपाः सक्तवोधानाः तक्रं दधि घृतं मधु । तैलाज्यपक्वस्तूनि नामूनि प्राप्नुवन्ति हि
 ... अन्नं प्रथमपाकेन संयक्पक्वविहीनतः

पुनर्जलेन चेत्पक्वं मुहूर्तात्परमेव वै । तत्पुनः पाकमित्युक्तं तादृशे नैव भक्षयेत् ॥

अपूप ... तः परम् । समीचीनस्य पक्वस्य वैधार्ये पुनरेव वै ॥

तत्तप्ततैलपचनं तावत्कालेन केवलम् । कारयित्वा सुपक्वं यत् क्रियते तद्वितादृ ... ॥

... तादृशान्नैव संस्पृशेत् । धानान्करम्भान्पशुकान् मसूस्या(रा)न्सक्तुपाटकान्
 तैलपक्वानाज्यपक्वान् गौ गोधूम वाडिशान् । नारिकेल फलादीनि ... ॥

.... .. पानि स्युः तावदेव द्विजन्मनाम् ।

‘आद्यानिन्युस्तेषु दोषः तावन्नास्तीति गौतमः ॥

घृतेनवापि तैलेन दध्ना वा स्पर्शितं भवेत् । स्नापितः चोदकेना ॥

प्रक्षोभे च जनक्षोभे बालादीनां च भक्षणे । वृद्धानामातुराणां च योग्यं भवति सन्ततम्

.... .. इति धर्मज्ञ निर्णयः । ... ॥

तैलाज्ययोर्नमधुनः वल्गुशुष्कशलादुकौ । मदोद्भवद्रव्यजातं कदाचिन्नैव भक्षयेत् ॥

गोव्रातं च शुना दुष्टं मक्षिकाकीटदूषितम् । पति ... ॥

दम्पतीभुक्तिशिष्टं च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् । घृतादेवोद्घृतं फेनं सरजस्कृतं गोमयम्

तत्पयो वा तादृशं वै गुडमिश्रं तथा दधि । ... मरीच्यपि ॥

करेण मयितं तक्रं निरसं तक्रमप्यति । ‘अत्यन्तवत्सगोक्षीरं नारिकेलगुडं तु वा ॥

भक्षयित्वा द्विजा बुद्ध्या कु ... । ... क्रान्ता गर्भिणी संधिनीति या ॥

तस्याः पयो विकारान्तान्प्रीत्वा कृच्छ्रं समाचरेत् ।

अपेयं मृतवत्सायाः पयो दधि घृतं (तथा) ॥

... घेनोः क्षीरं च चिक्कणम् । अपेयं प्राहुराचार्याः कपिलाक्षीरमेव च

हुतशेषं पिबेत्तत्र विप्रः स्यादन्यथाऽशुचिः । द्विस्तनीक्षीरपानेन संधिनीक्षीरपान(तः) ॥

... मर्त्यो जायेत पातकी । आरण्यानां च सर्वेषां मृगाणां महिषं विना ॥

क्षीरं कदाचिद्वस्तेन संस्पृशेन्नतु तत्पिवन् ।

कां गतिं समवाप्नोति तस्मात् (तान्परिवर्जयेत्) ॥

.... .. ब्राह्मणी गमनेन च । वेदाक्षर ग्रहणतः शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥

धानादधि च सक्तूश्च श्रीकामो वर्जयेन्निशि । भोजनं तिलसंमिश्रं स्नानं चैव विचक्षणः

.... गर्हितः प्रोक्तः ... मनीषिभिः । जातितो गर्हितं चैव तथैवाश्रयगर्हितम् ॥

जातितो गर्हितं प्रोक्तं लशुनं प्रञ्जनादिकम् ।

अभोज्यान्नं च जानीयादन्नमाश्रयगर्हितम् ॥

कदर्या वा थिता क्लीवा अन्धाः जडाः शठाः ।

वैणाभिश्शस्तवार्धाध्व्यगणका गणिका वशाः ॥

चिकित्सकातुरखरपुंश्चलीमत्तविद्विषः । क्रूरोप्रपतितव्रात्य डा(दा)म्भिकोच्छिष्टभोजनः
 अवि णाकारस्त्रीजितग्रामयाजिनः । शस्त्रविक्रयकर्मार तुन्नवायः श्ववृत्तयः ॥
 नृशंस राजरजक कृतघ्नवधजीविकः । चेलधावन ... जीवि सहोदरविनाशिनः ॥
 पि विज्ञाः पुनश्च क्रिकवन्दिनः । एषामन्नं न भोक्तव्यं सोमविक्रयिणस्तथा ॥
 शूद्रजीवी तारजीवा करजीवी पुरोहितः । कुलाल रजकत्व ... दिवाकीर्त्यपुरोहितः ॥
 वैणसोचिकतश्चक्री ... रमत्स्यगाः । एषां पुरोहिता जात्या भोज्यान्नानभवन्त्यमी
 एतदन्नप्राशनेन प्राजापत्याष्टकं तथा । पञ्चगव्यप्राशनं च गोदानात्परतो मतम् ॥
 शूद्र ... मुत्पन्नो ब्राह्मणः ... । संस्कारात् भवेद्दासः असंस्कारात् नापितः ॥
 क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां सुतो जातस्तथापरः । गोपालो नापितश्चापि विप्रा ... पु परस्सतु
 ऊरव्याच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्न ... । अर्थसीरीति विज्ञेयः विप्रकांर्याय सोऽप्यति
 ब्राह्मणात्क्षत्रकन्यायामुत्पन्नस्सुत उच्यते । संस्कृतायमदुष्योयः स एवात्मनिवेदकः ॥
 त एते ब्राह्मणैरेव स ... स्तत्क्रिया पराः । विप्रगेहेषु सततं तत्तत्कार्यपरास्तु ते ॥
 तत्प्रदत्तान्नभोक्तारः स्वभुङ्क्ते परतस्सदा । भवन्त्येवेति कथिता न चेत्ते नैच्यमाप्नुयुः
 जाति ... सर्वत्र शूद्रैः साम्यं भजन्त्यपि । शौद्रोदरेषु जातानामेतेषां ब्राह्मणैः क्रियाः
 निषेकादिश्मशानान्तः कर्तव्याः स्युस्समन्त्रतः । विप्रगेहेष्वेतद्भुक्त ... तच्छिष्टमन्नं ... ॥
 असंभोज्यं विशेषेण तद्वालयैरप्यसंस्कृतैः । अज्ञानाद्यदि तद्भुक्तमत्यापत्स्वपि वा कदा
 प्राजापत्यत्रयात्पश्चात्पञ्चगव्येन निष्कृतिः । अपिदुष्टस्य ... जमात्रस्य वा पुनः ॥
 कदाचिदवशाज्जाते भोजने प्राणसंकटे । गायत्री जपमात्रेण तज्जात्यनुगुणेन वै ॥
 अष्टाविंशदिनैः पश्चान्निष्कृतिः सद्भिरीरिता । शूद्रतण्डुल ... यो स्वोदरया ॥
 यः कुर्यान्मैथुनं विप्रः तद्रेतः शौद्रमेव हि । तेन जातो हि विप्रत्वं न भजेदेव वच्मिवः
यत्यन्नं यतिशिष्टान्नं यतिना प्रेरितं (वैदिकं) तथा ।
 द्विजस्तुकाम ... चान्द्रायणं चरेत् ॥
 यद्वैष्णवालयान्नं वा शिवनिर्माल्यमेव वा ।
 शाक्तं वा थापि शौरं वा भुक्त्वा कामेन बाढवः ॥

प्राजापत्येन शुध्येत पञ्चगव्येन चैव हि । न त्यजेच्छ्रोत्रं स्य न संस्पृशेत् ॥

तादृक् त्यजन् पातकी स्यात्तद्भुत्वा किल्विपी भवेत् ।

संत्यक्त श्रोत्रियान्नस्य चित्तं चान्द्रायणं (चरेत्) ॥

..... श्रोत्रियसंत्यक्तनियमान्नो जडात्मकः ।

स्वान्नमात्रे प्रतिदिनं कवले कवलेऽधिकम् ॥

प्राजापत्यमवाप्नोति तद्दोषविनिवृत्तये । पुनः शिष्टान्नमित्युक्तं नान्यदस्ति कथञ्चन

त्रि शिष्टाः कथिताः श्रोत्रिया वेदगाः परम् ।

वेदश्च शाखामात्रं स्यात्सा च शाखा द्विजन्मनाम् ॥

सप्तसंस्थात्रयस्यास्य बोधिका च निरूपिका । या नैव परमाप्रोक्ता सार्वधा ॥

तदन्नेनैव शिष्टाः स्युः वेदमन्त्रक्रियादिभिः ।

शिष्टत्वं कथितं सद्भिः तादृशाः पङ्क्तिपावनाः ॥

पङ्क्तिपावनपङ्क्तौ ये भुञ्जते तेऽपि पावनाः ।

प्रतिज्ञा संसरत लभते नात्र संशयः ॥

येषामस्ति श्रोत्रियत्वं परान्न परिशून्यता । परपाकनिवृत्तिश्च खदारनिरता तथा ॥

परदारातिभिर्नीत्या कालसन्ध्यादिसत्क्रिया । गृह्या सप्त पावनाः ॥

एतादृशान्पङ्क्तिनिष्ठसहस्रजनपावकान् । महात्मनो महासत्र परानगिचितः पुनः ॥

केचित्कालौ स्वयं वेद मन्त्रमात्रपराङ्मुखाः ।

सन्ध्यादि सत्क्रिया सत्क्रियास्वविचक्षणाः ॥

ब्राह्मण्यशब्दमात्रैक शब्दिता दुष्टवृत्तयः ।

पङ्क्तययोग्या असंभाष्या नित्यवैतनजीविनः ॥

..... तमानं तन्महत्वेन पापिनः । निश्चित्यैव वृथा मोहादसद्गुरुमतस्थिताः ॥

निश्चिन्वते पङ्क्तियोग्यान् प्रकुर्वन्त्यपि केवलम् । शाक्तवैष्णवशैवाख्याः नुति गाः ॥

तादृशान्भुक्तिकालेषु वैदिको ब्राह्मणोत्तमः । न पश्येद्भाषणं तैर्वै न कुर्यात्तु तदीयकम् ॥

अपि शब्दं न शृणुयात् तादृशानागतानपि । तत्काले याचित शक्तिः ॥

अग्नचित्तान्न कुर्याच्च तोषये देव दानतः । गृकस्थधर्मान्यो विप्रो परित्यजति लोभतः
 ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः नास्तिकः परिकीर्तितः । अपिचोऽपि दृशो यदि ॥
 कुर्यान्नापदि सत्कारं क " ते हृदयेन वै । सर्वकृत्येषु शक्तश्चेत् सर्वान्धर्मान्समाचरेत्
 बुद्ध्या स्वीकृत्य गा वर्जितः । केवलं स्वय उच्यते ॥
 अनेकेषु क्षुधार्तेषु पश्यत्सु न भुजिक्रियाम् । समाचरेन्न मनुजः रोगी तेन भवेदयम् ॥
 आचार्येषु श्रोत्रियेषु सत्सु सुहृत्स्वपि । कृतबुद्धिषु पश्यत्सु धकम् ॥

मित्रपङ्क्तिर्वन्धुपङ्क्तिः गुरुपङ्क्तिस्ततोऽधिका ।

वेदवित्पङ्क्तिरतुला भुज्यतां तत्र भक्तिः ॥

नित्यं कृच्छ्रफलंप्रोक्तं अलं शक्तौ तु सन्ततम् । संपाद्य तत्र कुर्याद्भुजिक्रियात्

ते श्रोत्रिया महात्मानः भुञ्जानः पङ्क्तिपावनाः ।

तत्र सहस्रात्पङ्क्तितां पुनन्त्येवेति सा श्रुतिः ॥

दुर्लभा श्रोत्रिया ... सोमयाजिनाम् । तत्पराग्निचितापङ्क्तिः तत्परा ब्रह्मवादिनाम्

न ब्रह्मवादिपङ्क्तेस्तु तुलितान्या हि विद्यते ।

भुक्तवैकदा ब्रह्मविदा भिक्षुणा गृहिणापिवा ॥

... णि ... महापापैः प्रमुच्यते । अच्युतानन्तगोविन्द महादेवेशशूलिनाम् ॥

नाम्नामेकस्य(चो)क्त्याचेद्भुक्तिः कृच्छ्रसहस्रधा ।

भुक्त्यादौ त्रिपर्णस्य पठनादेव पाव(नम्) ॥

... पैः प्रमुच्येत श्रोत्रियैस्तैस्त्रिभिस्तुचेत् । सिंहानुवाक पठनाच्छ्रोत्रियैर्दशभिर्भिर्यदि ॥

भुक्तेरादावमन्नारान्मुच्यते ब्रह्महत्याया । शंनो मन्त्र इति प्रश्न त्रयस्य पठने पुनः ॥

... पूर्व संख्याकैः भ्रूणघ्नोऽपि विमुच्यते । तैश्चेद्वादशसंख्याकैः वीरघ्नोऽपि विशुद्ध्यति

अवशाद्भुक्तिकालेषु यत्रकुत्रचिदेकदा । उत्सवेषु ब्राह्मणानां बन्धूनां ना ॥

मित्राणां सज्जनानां वा दीक्षाभुक्त्यादिसंकटे । अपाङ्क्तयः समायोगे ब्रह्मभोजनकादिके

स्मार्तकर्मणि वा श्रौते भुक्तिसंकटसंभवे । अग्निना भस्मना ... भेन सलिलेन वा ॥

प्रद्वारेणैव मार्गेण पङ्क्तेर्भेदं समाचरेत् । अशने तेन कार्येण तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते ॥

उदकं वा तृणं भस्म द्वारसन्धिस्तथैव च । ... प्रोक्तास्तैः पङ्क्तिर्भिद्यतेऽत्र हि ।

एकपङ्क्तयोपविष्टानां विप्राणां सहभोजने । यद्येकोऽपि बहिर्गच्छेत् नाशनीयुरितरे पुनः
तत्राशतां पञ्चगव्यं सद्यः स्नानात्परं तथा । अन्य ... भवेयुर्नात्र संशयः ॥
भुञ्जानेषु तु विप्रेषु यदि पङ्क्तिं परित्यजेत् । तद्भुक्तेर्विघ्नकर्ता स्याद्ब्रह्मेति निगद्यते ॥
पक्व ... जितकामकारेण सर्वदा । नै ... शयानो ... प्यकच्छकः ॥

अकच्छः पुच्छकच्छश्च तिर्यकच्छोर्ध्वकच्छकः ।

कच्छावलम्बि कच्छश्च पञ्चैते नम्रका स्मृताः ॥

दृष्टस्तया धर्मपत्न्या सक्रोधकूरचक्षुषा । नाशनीयाद् ... वीर्यहानिर्भवेत्ततः ॥
अश्रीको जायते तस्य सूनुः श्रीविधुरो बलः । तस्मात्तथा नाचरेद्वै भोजनं धर्मवित्तमः
भुक्तिकाले कामबुद्ध्या नैववीक्षेत धर्मवित् ।

जृम्भमाणां शयानार्ता (तथाऽऽ) सीनां च पुष्पिणीम् ॥

नेच्छयेन्मदगर्वाभ्यां तद्विम्बोकादिवञ्चितः । प्रभवेदेव सततं स शृङ्गाररसो भवेत् ॥
द्वावेव दम्पती गेहे स्यातां यदि तदा (बुधः) ।

...पि ... धर्म या निष्ठो भवेद्रात्रौ रतिप्रियः ॥

शास्त्रज्ञः शास्त्रवश्यः स्यात्कार्याकार्यविशेषवित् ।

सदा निमीलिताक्षस्सन् न स्त्रीवश्यो भवेद(दि)ति ॥

न गुह्यार्थं वदेत्तस्याः नैनां प्रद्वेषयेद(तः) । यस्मिन्काले यथासेयत्तस्मिन्काले तथा वसेत्
अङ्गारकसमानारी घृतपिण्डसमः पुमान् । अतोऽत्यन्तं जागरूकः तत्स ... सदा भवेत्
भुक्तिकाले नित्यमेव स्वपा ... कल्पकम् । कुर्वीतैव प्रयत्नेन तस्याः स्वानेन तत्पतिः ॥

सर्वमन्नं पात्रनिष्ठमकृत्वा भागकल्पनम् ।

भुङ्क्ते मूढो धर्मपत्न्याः पश्चाज्जन्मान्तरेहसौ ॥

... पुं ... स्याद्भार्या नूनं वदामि वः । भागकल्पनमेतत्स्यात्कुर्याद्गृहपतिः स्वयम् ॥
यदि स्यात्तु तदा नो चेन्नायं विधिरिति श्रुतिः । ब्राह्मणेन तयाशनीयात्तदुच्छिष्ट ... ॥
... षस्तदुच्छिष्टभुक्तौ रतेरन्यत्र चोदितः । रतावप्यधरस्तस्याः नित्यं स्यादति पावनः
सताम्बूलैकविधुरः चण्डालोच्छिष्टसन्निभः । ताम्बूल ... म ... लवङ्गोला ... सितः

जाजीकपूर्परमः सस्याच्छतपवित्रकः । वनिताधरपानस्य पञ्चपर्वाणि वै दिवा ॥
 निन्दितान्यतिपानानामालयानीति सूरयः । द्यौरयं पृथिवीवास्याद्रेतोभृत्पुरुषः स्मृतः ॥
 रेतोभर्त्री स साज्ञेया निदानं सन्ततेस्तु सा । प्रत्यङ्गसङ्गसमये नोच्छिष्टमुभयोरपि ॥
 हृदोश्च मः तदात्मा तत्र जायते । ग्रहाच्च चमसास्सर्वे नोच्छिष्टा सप्ततन्तुषु ॥
 पवित्रा एवमेतेस्युः निधुने(?) वनिताधराः । सहस्रं सर्वकर्मभ्यः तत्पाणिग्रहण(णेन च) ॥

... विधिना तस्याः अथाप्येतस्य सन्ततम् ।

स ... स्यापि कथितं कालाकालादिकं पुनः ॥

तन्मर्यादाविशेषेण दम्पत्योरुभयोरपि । वि...ता...वि...तः...नं च ... ॥

सलज्जं समनुष्ठेयं न चेदपयशो भवेत् । पाणिग्रहणकालेऽपि चोरव्याघ्रभयाकुले ॥

पलायने कुमार्गेषु भार्यया सहभोजनम् । प्रशस्यते ... ॥

विजनेषु तथा सार्धं कामकारविवर्जितः । निवसेद्वापणं कुर्यात् गृहकृत्यादि सिद्धये ॥

तदधीनं हि निखिलं गृहकृत्यं द्विजन्मनाम् । वर्णिनां निखिलानां ... ॥

न चलेदणुमात्रं वा कार्यमात्रं महन्तु वा । अधोवर्णस्त्रियासार्धं ब्राह्मणः पाणिपीडने ॥

अप्यध्वनि व्याघ्रचोरभयेऽपि ... । भोजनकर्मेतद्विवाहादिषु कर्मसु ॥

सर्वेषां तुल्यवर्णेषु विहितं नासमेपु तत् ।

अधोवर्णस्त्रियासार्धं भुक्त्वा पतति तत्क्षणात् ॥

... मोहतो वापि जानाद्वध्यो भवेदपि । बालप्रभृतिभिः सार्धं भोजनं न निषिद्ध्यते ॥

उच्छिष्टदानं पुत्रस्य कदाचिद्विहिते पुनः । महात्मनः सद्गुणस्य स तु ... ॥

उपनीतायनोच्छिष्टं न दद्याद्ब्रह्मचारिणे । पितापुत्राय धर्मज्ञः किं तु तद्गृहिणे सति

सजग्धिस्सहभुक्तिश्च सपङ्क्तिः सहभोजनम् । ... भुजिक्रिया ॥

सहभोजनशब्दार्थः कथितो ब्रह्मवादिभिः । एकपात्रभुजिस्सोऽयं तस्मिन्नहनि धर्मतः ॥

चोदिता तच्च कथितमहरेतन्महात्मभिः । यस्मिन्दिने ... नरः ॥

विज्ञानीयादेतदहः तस्मिन्नहनि धर्मतः । तथैकपात्रतुलिता भुक्तिः शस्ता द्विजन्मनाम्

प्रतिसंवत्सरं पश्चात् दिनेतस्मिन्विधानतः । इष्टभोजनकर्माख्यं कुर्या ... ॥

राज्ञोऽभिषेकदिवसः स्मृतश्चेत्तदहः परम् ।

तस्मिन्स कुर्याद्विधिना तदिष्टारण्यं सुभोजनम् ॥

अत्यन्तलाभो यस्मिन्स्यात्तस्मिन्नहनि तादृशे । नामकेति प्र ... तादृशं चरेत् ॥

भोजनं तु न विशेषं कुर्यादिति विचक्षणः । प्राहुरेव महात्मानः द्वितीयाश्रमसंस्थितः ॥

भुक्तिपात्रे यथा लेपा भवेयुः ... । तल्लेपकामाः कामाद्याः तेषां तृप्त्यै तदाचरेत्

स्वान्नभुक्तौ तथा कुर्यान्नान्यभुक्तौ कथंचन । न तथा करणंयुक्तं भुक्तिधर्मास्वकेगृहे

यथेच्छया ... च्छया । दुर्गतोदन ... तु किञ्चि ... तु ॥

तत्र वस्तुपरित्यागे दुर्गतो दुःखितो भवेत् । बन्धुमित्राश्चगेहेषु भुक्तिकालेषु वस्तुना ॥

रति त्यागेऽपि ... । श्राद्धभुक्तौ विशेषाय शास्त्रदृष्टः सनातनः ॥

सर्वसशोषमशनीयाद्घृतपायसवर्जितम् । मधुदध्नोर्विकल्पोऽत्र कथितो गौतमादिभिः ॥

न पिवेन्नचमुञ्जीत द्विजः सव्येन पाणिना । (वामह)स्तेन च तथा शूद्रानीतजलं त्यजेत्

अवशात्तेन संस्पृष्ट पात्रागं सलिलं तथा । दूरात्परिहरेत्सद्यः तादृशं क्षालयेच्च तत् ॥

घृतमादौ परिग्राह्यं भुक्तिः ... मया ... वयेत् । घृतेन विद्यते तृप्तिः पिवेत्पात्रान्तरस्थितम् ॥

एकधारानिपतितं द्रव्यवस्तु परित्यजेत् । पात्रान्तरात्तत्स्वीकार्यमन्यथोच्छिष्टभोजनः ॥

प्रभवेयुर्हिनिखिलाः तत्पङ्क्तौ येऽस्थितास्तुते । शिष्टपात्रगतं तच्च दूरात्त्याज्यं मनीषिभिः

पीतशेषं पिवेन्नैव परस्य स्वस्य वा जलम् । उच्छिष्टमेव विज्ञेयं भोजनं मुखमारुतात् ॥

पिबतो यः पिवेत्तोयं तत्तोयं तदनन्तरम् ।

पिबतः पङ्क्तिमध्येषु संत्याज्या निन्दितास्तु ते ॥

मुखमारुतदुष्टान्नस्थलपात्रे पुट्टादिकम् । उच्छिष्टं निखिलं ज्ञेयं न ग्राह्यं तादृशं हि यत् ॥

तत्पिबेद्यदिमोहेन द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् । पञ्चगव्यं च विधिना तद्वोषस्य निवृत्तये ॥

पाणि पाणि तलाग्रैर्वा ब्राह्मणो न पिवेत्कचित् । सुरापानेन तत्तुल्यं इति सर्वे महर्षयः

न मुखेन पिवेत्तोयं तदानाञ्जलिना कचित् । तथैव वामहस्तेन न धाराभिः कथञ्चन ॥

उद्घृत्य वामहस्तेन यः पिवेद्ब्राह्मणोजलम् । सुरयातज्जलंतुल्यं न त्वे(पि)यमिति सन्ततम्

न वास उदकं वर्ष सलिलं सन्ततोदकम् । उद्घाटितं जलं वापि न स्वीकुर्याद्द्विजोत्तमः

कटाहंवापिकौम्भंवा सलिलं शूद्रहस्ततः । समुद्धृतं क्षुद्रकुल्यात्प्रसृतं दूरगं तु वा ॥
 न स्पृशेदेवनित्यं तदस्पृश्यं शूद्रयोगतः । कदाचिदापदिपुनर्मूर्तोत्सर्जनशुद्धये ॥
 अथवातन्नकरतः संस्पृशेद्बुद्धिपूर्वकम् । स्पर्शनात्तस्य नीरस्य ब्राह्मणस्य विजानतः ॥
 सचैलःस्नानमेवस्यात् पादस्पर्शनसंभवे । अवशान्मार्गमध्ये तु न स्नानं किंतु पादयोः ॥
 शुद्धोदकक्षालनस्यात्तदोषविनिवृत्तये । पादप्रक्षालनं नित्यं शुद्धेनैव हि पाथसा ॥
 प्रकर्तव्यं प्रयत्नेन नाशुद्धेन कदाचन । शूद्रोदकंपरि(त्यज्य)चूर्णताम्बूलकारणात् ॥
 न स्त्रीकार्यं बुद्धिपूर्वं स्त्रीकारे पञ्चगव्यकम् । सौवर्णे रजते ताम्रे कांस्ये लोहमयेऽपि वा
 संस्पर्शदोषो न भवेत्तोयपूर्णं (घटे तथा) । ब्राह्मणोबुद्धिपूर्वेण यावत्सलिलपात्रकः ॥
 तावच्चण्डालादि सामीप्यादिस्पर्शो न विद्यते । भोजने निकटेन्यस्य जलपात्रो भवेदपि
 दूरविन्यस्तपात्रः स्यान्नित्यं मूत्रपुरीषयोः । स मन्त्रे प्रोक्षितेनीरैरपि प्रक्षालितेऽपि वा
 मोहेन भोजनं कुर्यात् पुनः स्नानेन शुद्ध्यति । अमन्त्रे मण्डलस्थे चेद्भोजनं यदि वाडवः
 करोतिमुक्तेपुरतः अष्टाविंशतिसंख्यया । अभिमन्त्र्य जलं हस्ते साधित्रया प्राशयेन्नचेत्
 सन्ध्यादि कर्मणांयोग्यो न भवेदेव तत्परम् । भूमौ संस्थापितेपात्रे यन्त्रिकायां महीतले
 यद्वावा वामहस्तेन पात्रमुद्धृत्य भोजयेत् । लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं पयो दधि ॥
 लेह्यं पेयं च चोष्यं च हस्तदत्तं परित्यजेत् । दव्यादिद्यं घृतादिस्यात्समस्त व्यञ्जनं तथा
 उदकं यदपकान्नं यो दव्यादातुमिच्छति । स भ्रूणहा सुरापश्च स स्तेनो गुरुतल्पगः
 चण्डालमुदकं सूतिं श्वानकुक्कुटरासभान् । भुञ्जानो यदि पश्येत्तु तदन्नं संपरित्यजेत्
 केशक्रीटावपन्नं च सु(मु)खमारुतवीजितम् । अन्नं तत्रापनिन्द्य स्यात्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्
 चण्डालपतितोदक्या सूतिकामजान्त्यजैः (?) ।
 हिंसकश्चपचाद्यैर्वा तेषां शृण्वन्वचांसि वा ॥
 भुञ्जीतप्रासमात्रं तु दिनमेकमभोजनम् । तत्पीडितस्तन्निषिद्धस्तैसाकंनिगलेवसन् ॥
 तद्गृहेष्वेवनिवसन् तद्गृहा...ति ताडितः । तत्रैव जलपानादि करणात्प्राणधारणम् ॥
 कुर्वन् पश्चात्तुकालेन मुक्तश्चापाग्रमज्जनैः । अनुज्ञया ब्राह्मणानां दक्षिणादानपूर्वतः ॥
 तत्तत्कालानुगुण्येन तत्तद्भ्रंशानुगुण्यतः । शतादिस्नानकरणैः पुनः संस्कारवर्त्मना ॥

धेनूनां दक्षिणाभिश्च गव्यानां प्राशनात्परम् । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः न चान्येनैव वर्त्मना
यच्चपाणितलेदत्तं यत्तु फट्कारसंयुतम् । प्रसृताङ्गुलिभिर्बन्धु तस्य गोमांसवच्चरेत् ॥
शब्देनापः पयः पीत्वा शब्देन घृतपायसौ । शब्देनापोशनं पीत्वा सुरापानव्रतं चरेत्
हस्त्यश्वरथयानोऽपि स्थानेषु न चरेद्भुजिम् । चण्डालवाटिकाराट्टा राजकस्थानतोऽपि वा
श्मशाननिकटे वापि न कुर्यात्तद्भुजिक्रियाम् । शयनस्थो न भुञ्जीत देवालयगतोऽपि वा
नार्द्रवासा नार्द्रशिखः न च यज्ञोपवीतवान् ।

नैकवासा न नग्नो वा नापि कच्छावहिष्कृतः ॥

विवदन् बहुभाषी सन्न कुर्वीत भुजिक्रियाम् ।

अन्तः श्यावग्राममध्ये सन्धौ सान्ध्यद्वये तथा ॥

चतुष्पथे निरुद्धस्सन्न कुर्याद्भोजनं सदा । द्विवाद्विभोजनं वापि यामिनीभोजनद्वयम् ॥

न कुर्याद्ब्राह्मणः स्वस्थः कुर्याच्चेच्चान्द्रकृद्भवेत् ।

परिवेषणतः पश्चाद्गायत्र्या प्रोक्ष्य चोदनम् ॥

परिषिच्य च सत्येन पुष्करेण ततः पुनः । स्वीकृत्यापोशनं तेन सत्यं त्वामनुना भुजिः

सदा द्विजानां विहिता प्राणाहुति कृतेः परम् ।

अभिधारितमिस्सायाः परिषेचनिकक्रियाः ॥

प्रकर्तव्या ब्राह्मणेन नित्योयं विधिरुच्यते । परिषेचनतः पश्चात्तदन्नमभिधारितम् ॥

शुनोच्छिष्टमिति ज्ञेयं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । घृतेनैवाभिधारः स्यात् घृताभावे तु केवलम्

तैलेन वा प्रकुर्वीत यदि तस्यापि दुर्लभे । पयसा तत्प्रकुर्वीत तस्यापि यदि दुर्गतौ ॥

दध्ना तक्रेण वा सर्वाभावे तु सलिलेन वा । अभिधारः प्रकर्तव्यः तथान्यन्नैव भक्षयेत्

तदुत्तमं गव्यमेव माहिषं मध्यमं परम् । अजस्यापि तथैव स्यादाविकृत्वधमाधमम् ॥

सर्वाण्यन्नानि गव्येन युक्तानि यदि तानि च ।

उत्तमत्वेन चोक्तानि दध्यादीन्यपि पण्डितैः ॥

सन्ततं भुक्तिकालेषु यदि पत्राणि भुक्तये । स्युस्तेषु पूर्वमाज्येनाभिधारो विधिचोदितः

सौवर्णे राजते कांस्ये नाभिधारो मनीषिभिः । कर्तव्यत्वेन विहितः सोऽयं वर्णेषु शस्यते

नित्यं सार्षपशाकानामभिधारत्परं द्विजैः । परिवेषणमित्युक्तं पिष्टकालरसात्मना ॥
पश्चाल्लवणशाकानामपकानां क्रमेण वै । पक्वानामपि शाकानामन्नस्याज्यस्य पूर्ववत्

परिवेषणमन्ते स्यात्पूर्वस्येति शिवोऽब्रवीत् ।

परिपेचनतः पश्चाच्चित्रादीनां विधिः परा ॥

तेनान्नेनैवकर्तव्या सा त्याज्या सद्य एव वै ।

चतुर्थ्यन्तेनमोऽन्तेन स्वाहान्तेनापि वाम्भसा ॥

सिक्तभूमौ सुविहितान शुष्कायां कदाचन । अपोशनाम्भसामन्यः प्रदातास्यात्स्वयंकदा
न स्वीकुर्यादिति मनुर्विष्णुज्झिरसामतम् । आपोशनद्वयजलं स्वयमभ्यञ्जनं तथा ॥

आयुष्कामो न गृहीयान्न कुर्याच्च विचक्षणः ।

प्राणापानव्यानोदानसमानानां क्रमेण वै ॥

स्वाहाकारां ततः प्राणाहुतीः सम्यक् समाचरेत् ।

मौनेन भोजनं कुर्यात् या... कापि तत्र वै ॥

क्रियाभिनयचेष्टाभिः तत्कार्यं साधयेद्बुधः । अथवा हरिगोविन्दशिवशंकरपूर्वकः ॥
नामभिस्सुमुखोभुक्तिं कुर्यादेवेति वै मनुः । पूर्वभुक्तौद्रवः कार्यः मध्वाज्यादिरसैः परैः ॥
मध्यभुक्तौ च काठिन्यं चूर्णैः माषादिकारितैः । अन्तेदध्याभिर्भूयः कार्यं एवेति भोजने
नियमोवाहटप्रोक्तः सर्वलोकहिताय वै । स्वीकार्यः स्याद्विशेषेण ब्राह्मणानां महात्मनाम्
भुक्तिकाले भाषणस्य प्रसक्तौ यदिर्भूभुवः । सुवश्चापि जपेद्विद्वांस्तदाभाषणसंख्यया ॥
वृथाकलहचापलयभाषणादिषु तत्परम् । आभिर्गीर्भिर्मनुजपमिदं विष्णुस्त्यम्बकम् ॥

कुर्याज्जपेत्पष्टि(वा)सारं नोचेत्स्यात्किल्बिषी नरः ।

क्षते पाने जृम्भणे वा क्रियमाणे तु भोजने ॥

अवदचसंप्राप्ते भोजनात्परमेव वै । श्रीमं भजतु सुमहान्मनुमष्टोत्तरं शतम् ॥

जपेदेव विधानेन पाने तस्मिन्निदं परम् । चित्तं प्रकथितं सद्भिरलक्ष्मीर्मै तदुत्तरम् ॥

जपेदष्टसहस्रं वै तस्याः भूम्यास्ततः परम् । गोमयालेपनंकृत्वा रज्ज्वल्यादिरञ्जनात् ॥

परमेव विधानेन श्रीसूक्तेनोक्षणादथ । त्र्यम्बकमनुं जप्त्वा तत्र दध्नैस्तृणरपि ॥

दीपयेदेव शमनाय न चेन्महान् । अपमृत्युः प्रजायेत संपदोयान्त्यधोगतिम् ॥
 सजोषा इन्द्र सुमहामन्त्रमेतं तु जृम्भणे । शतवारं जपेद्विद्वांस्तदोपस्तेन नश्यति ॥
 मूत्रस्य स्खलनेजाते भुक्तिकाले तु दैवतः । पुरीषस्य च तत्पश्चात्स्नात्वाचम्य विधानतः
 अन्नत्यागात्परसंध्यः त्यक्त्वापोशनमुत्तरम् । जपित्वाहं स गायत्रीमष्टोत्तरशतं ततः ॥
 पूर्वसूक्तजपात्पूतो भवेदिति यमोऽब्रवीत् । अमृतेति च मन्त्रेण ह्युत्तरापोशनात्परम् ॥
 पीतार्धपयसानित्यं नारकान्दोषयेन्नचेत् । ध्रुवंते प्रशपन्त्येनं नारकाः जलकाङ्क्षिणः ॥
 पुरातेषां सुरज्येष्ठः पिपासाशमनाय वै । सलिलं कल्पयामास भुक्त्यन्तेऽत्रद्विजन्मनाम्
 पीतार्धं तादृशं ब्रह्मा पीयूषादधिकं परम् । कारवेति च मन्त्रेण तद्देयं तर्जनीमुखात् ॥
 अग्राद्वाङ्मुष्टयोगेन तेनश्रेयो महद्भवेत् । भगिनीजननीभार्या स्नुषापुत्र्यपि हस्ततः ॥

शस्यतेऽनुदिनंभुक्तिः मित्रैरिष्टैश्च बन्धुभिः ।

अन्नार्थिभिः क्षुदातैर्वा भुक्तिवस्त्वैककामुकैः ॥

समीक्षितस्सन्कुर्यान्न भोजनं सर्वथा नरः । यत्कांक्षितं वस्तुभुक्तौ स्वयमश्नाति भोजने
 त दत्तैव तस्मैना तज्जीर्णं नैति किं पुनः । पिचण्डसंस्थितं तद्वै विषमेव भवेद्ध्रुवम्
 पंचनं प्राङ्मुखकृतमुदङ्मुखकृतं तु वा । देवयोग्यं भवेत्सर्वं न चेदासुरमुच्यते ॥
 पावकं नित्यपाकाय स्वकीयं परिकल्पयेत् । यदि न स्यात्स्वकेगेहे दैवादभिस्तदापुनः ॥
 श्रोत्रियागारतोग्राह्यः श्रोत्रियस्यत्वसंभवे । सामान्य ब्राह्मणगृहात्तादृशस्याप्यसंभवे ॥
 कुग्रामे कुत्सितेदेशे शूद्रगेह समाकुले । तद्गृहादग्निमादाय भूमावेकत्र तं शुचिम् ॥
 एधयित्वान्यत्रभूयः यैः कश्चित्काष्ठजालकैः । शुष्कैस्तृणविशेषैर्वा प्रज्वाल्यैनं विभावसुम्
 तस्मात्संगृह्य भूयश्च कृत्वैनं बलवत्तरम् । चुल्लिकायां प्रतिष्ठाप्य तेन पाकादिक्रियाम् ॥
 साधयेदेव विधिना यदि देवालयादिना । तत्समाहरणंकुर्यात्तदा तूष्णीं न चाहरेत् ॥
 दत्तैव किंचित्क्रमुकं फलं ताम्बूलमेव वा । शलादुतण्डुलान्वापि पश्चाद्वह्निं समाहरेत् ॥

तथागतेभ्यो बुद्धेभ्यो जिनेभ्यो नैव सर्वथा ।

देवलेभ्यो विशेषेण कुण्डादिभ्यो न तं हरेत् ॥

पाणिना मथितो वह्निः अयोदण्डेन वा तथा । विषवृक्षादिसंभूतः श्मशानाग्निसमोमतः

औपासनाग्निपाकेन यदन्नं मोहतः कृतम् । दैवानहंभवेत्तद्वि तादृशी पचनक्रिया ॥
तन्तुमत्यादिनार्याणां तद्वम्पत्योः पुनर्नचेत् । तत्पतृकक्रियाणां स्यान्नान्येषामिति निर्णयः

औपाशनाग्नौ पचनभुक्तिकृत्याय सन्ततम् ।

कात्यायनमखानां स्यादित्येवं हि व्यवस्थितिः ॥

अन्यौपासनपक्वान्नमन्यस्य प्राशने वृथा ।

प्राजापत्यः प्रकथितं तस्मात्तं न तथा चरेत् ॥

औपासनान्नं तद्ब्रह्ममात्रस्येव महात्मभिः । संप्राश्यत्वेन कथितमाग्नेयादिषु कर्मसु ॥

तद्विदेवतार्थाय कदाचिन्नोपपद्यते । तस्मात्पाकक्रियानित्यं लौकिकाग्नौ द्विजन्मनाम्

कर्तव्यत्वेनविहिता सोऽग्निः साधारणः परः ।

तादृशोनाग्निना नित्यं दीपपाकादिकाः क्रियाः ॥

गृहमेधी साधयीत न गार्होणेति सूत्रकृत् । भार्स्कारादृष्टशय्येषु नित्याग्निसलिलेषु च ॥

दृष्टभास्करदीपेषु गृहेषु श्रीर्नमुञ्चति । तामसानामुरान्शाकान्नं कुर्यात्तु कदाचन ॥

तथैव सूपमन्नं वा न दैवास्तादृशास्तुचेत् । फलमूलानि पत्राणि नैऋताशामुखैस्तथा ॥

खण्डितानग्निशमनमुखैर्वा तामसानि हि । तथा तन्मुखपक्वानि सर्वाण्यन्नादिकान्यपि

आसुराणीति विद्वद्भिः ज्ञेयानीति स्वभूर्विभूः । अफणत्तिकलभूयश्च तेषां पक्वात्परं पुनः

संभारचूर्णयोगस्य पूर्वमेवेति लाघवात् । भर्जनाख्यक्रियाकार्या साफलीकरणादिभिः ॥

शून्यत्वग्भिर्मापखण्डैः तैलाज्यं मुखतापितैः । तत्क्षेपणविशेषेण तत्क्रिया करणात्परम्

निश्शेषिते तत्सलिले पुनः कीलालयोजनम् ।

कृत्वाऽनुरूपं संभारं सम्यक् चूर्णनिपातनात् ॥

आलौक्यं दर्व्यायत्नेन यत्पक्वं क्रियते हि तत् ।

शाकानामेव सर्वेषां दैविकस्यात्परं शिवम् ॥

न चेदेवं शाकपाको राक्षसोनात्र संशयः । राक्षसो निखिललोके तामसश्चेति गौतमः

भर्जितास्ते मापखण्डा भुक्तिकालेश्मसंनिभाः ।

दन्तानां घट्टनाद्दुःखहेतवोऽमी भवन्ति हि ॥

तस्मात्तद्युक्तशाकास्ते देवयोग्याः कदाचन । भवेयुरेव नितरां तादृक् पक्वं ततस्त्यजेत्

सुपक्वं सुन्दरं दृष्टिप्रियं जिह्वाप्रियं शुचि । देवयोगमिति प्रोक्तं सर्वशाकादिकं सदा ॥

, अतितप्तेषु नीरेषु त ... ला ... लनार्जुनान् ।

क्रियते पातयित्वा यः पाकोराक्षस उच्यते ॥

देवयोग्यो भवेन्नायं पितृणामतिनिन्दितः । तेन हव्यं कव्यमपि न कुर्यात्पिण्डतः सदा

.... नोदकेन पैतृकं ये प्रकुर्वते । निरयस्था भवन्त्येव यावदाभूतसंज्ञवम् ॥

प्रक्षाल्य तण्डुलान्सम्यक् त्रिवारं हस्तलोडनैः । तस्मिन्तेनोदकेनैव पाकं कुर्यात्सुपात्रकः

सपा ... दृशो देवयोग्योऽत्यन्तसुपावनः । तदन्नममृतसमं पितृणां चातिवल्लभम् ॥

भवेदेवेति भगवानुवाच स पितामहः । सूपस्य नायं नियमः तत्तेष्वेव पयस्सुवै ॥

तस्य पाकः सुविहितः परंपाकात्पुनः स्मृतः । अत्र सैन्धवनिक्षेपः पूर्वं तस्मिन्कृते तु सः

पाको भवेत्समीचीनः तस्मात्तं परिवर्जयेत् । एवमेव तथा शाकविशेषाणां सदातनः ॥

नियमोऽयं प्रकथितः पाककर्मणि सन्ततम् । शाको लवणयोगेन यस्सुपक्वो भवेन्ननु ॥

तस्य पाकात्परमयं कार्यं इत्येव निश्चयः । भिस्सासैन्धवयोगेन होमकार्यं समागते ॥

निन्दितैव भवेन्नित्यं हविर्मात्रं तथैव हि । यदि प्रथमतो मोहादमत्रे सैन्धवे तथा ॥

निक्षिप्ते दूरतोऽमत्रं क्षालयेत्सद्य एव वै । न चेत्तत्परतो यद्वद्वस्तु स्यात्परिवेषितम् ॥

अयोग्यमत्तुं प्रभवेत्सतामेतद्विगर्हितम् । यद्यपि स्यात्तुलवणं रसानामाद्यमुत्तमम् ॥

तस्य ज्येष्ठा देवता सा या पुरा सागरोद्भवा ।

पत्नी प्रजापतेः साक्षात्तद्योगात्सोऽपि कर्मसु ॥

संबभूवुर्हि तूष्णीं योऽयं द्विजोत्तमैः । श्रुतं (प्रा) जापत्यं भजत्यहो ॥

दैविके वैकृते वापि सति कर्मणि सैन्धवम् । तस्मादन्य द्रव्ययुक्तं कृत्स्नात्तु परिवेषणात्

परमेवास्य कर्तव्यं भुक्तमध्येऽथवा सदा । प्रत्यक्षलवणत्यागी भुक्तिकाले द्विजोत्तमः ॥

नित्योपवासो विज्ञेयः ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः । सर्वतीर्थव्रतपरः सत्यवाक् सर्वधर्मकृत्

अष्टादशतुलाद्रव्यक्रमस्यान्ते निरूपिता । तुल्यं सैन्धवीभूयो दशदानक्रमस्य च ॥

अन्ते निरूपिता ह्येतल्लवणद्रव्यमित्यपि । तस्मादखिलवस्तूनां कृतेऽस्मिन्परिवेषणे ॥

अन्तेऽन्यद्रव्ययोगेन कार्यं तत्परिवेषणम् । द्रव्यान्तरस्य योगेन सा लक्ष्मी लज्जितातराम्

तिरस्कृता दुःखिता च दूरादपगता भवेत् । भार्गवी सर्वधान्येषु धनराशिषु तिष्ठति ॥
 सन्ततं लवणे ज्येष्ठा सदावासं करोति हि । तस्य निक्षेपणं पात्रे वामपार्श्वे प्रचोदितम्
 दक्षिणे परमान्नस्य प्रागग्रभिमुखे पुनः । परिवेषणकालेषु तन्निक्षेपणमुच्यते ॥
 अन्नस्य दक्षिणे भागे सूपस्थानं प्रचक्षते । शाकानामपि सर्वेषां पक्वानां परिवेषणे ॥
 मिथोयोगो यथा न स्यात्तथा पात्रे प्रसाधयेत् । सूपमन्नेन संपृक्तं यः कुर्यात्परिवेषणम्
 स सूतः स्यादष्टजन्म तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । पैतृकेष्वाडकाख्येन सूपेन जडधीर्नरः ॥
 द्विजान्सन्तर्पयेद्बुध्या नास्तिको जायते नरः । दैवकृत्येषु सर्वेषु मुद्गासूपा विकल्पतः ॥
 प्रशस्तः स्यात्परिग्राह्यः पैतृकेषु व्यवस्थितः । शुभकर्मसु सर्वत्र सूप आडक नामकः ॥
 चणकाश्च परिग्राह्याः तस्मिन्नर्थे कथंचन ।

माषाः सूपाय यः कुर्यात् भव्यकार्येषु मूढधीः ॥

क्षीयन्ते संपदस्तस्य प्रजाश्च पशवः श्रियः । भक्ष्यकृत्येषु सर्वत्र निन्दिता न भवन्त्यमी
 माषास्तिलास्तथाभक्ष्याः संज्ञावस्तुषु चोत्तमाः । दैविकेष्वखिलेष्वपि पैतृकेषु शुभेष्वपि ॥
 कदलीचूतपनसाः पयोदधिघृतान्यपि । गुडतैलकुशक्षीरसमित्तामूलदक्षिणाः ॥
 साधारणब्राह्मणश्च गोमयं च तथा पुनः । कर्ममात्रस्य सततं ततर्तुस्सलिलं सदा ॥
 साधनं पावनं प्रोक्तं सलिलं तथा शुभम् ॥

पाकाधिकारिनिरूपणम्

पत्नीपाकः प्रशस्तः स्यात्प्रजावत्यंबयोरपि ।

पितामह्यादिकानां च ज्ञातीनामेव साधिकः ॥

मातुला मुखानां च बान्धवानां च कृत्स्नशः ।

स्वतः तुगुण्येन चरित्रतः ॥

प्राशस्त्यं पाककार्यस्यालौकिके वैदिकेऽपि वा ।

स्थालीपाकादिसत्कृत्ये नित्यं तच्छ्रवणादिकम् ॥

हस्तावहनं तस्याः संप्राप्तं विधिना यथा । दैविके पैतृके तस्मिन्पचने सर्वकर्मणि ॥

अधिकारो मुख्य एव न तत्साम्यं कथंचन ।

• अन्यानप्राप्नुवन्त्येव तत्साम्योक्तिस्तु तत्र चेत् ॥

अर्थवाद इति प्राहुः तत्तत्त्वज्ञा महर्षयः । चिरण्टिनीकृतः पाकः परमो व्युत्तमोत्तमः ॥

स्त्रीधर्माः

शुचिः सुमङ्गलीभव्या भव्यानामादिकारणम् । श्रेयसां संपदां मूलं श्रियां सैवास्पदं परम्

साक्षात्सरस्वती देवी गायत्री साप्यरुन्धती ।

शची रमा भगवती कल्याण्यार्या मनोन्मनी ॥

तस्यास्तु पतिशुश्रूषा परमो धर्म उच्यते । श्वश्रूः श्वशुरपूजा च सततं मञ्जुभाषणम् ॥

अर्थीप्रियत्वं बन्धूनां क्रियारञ्जनम(प्य)ति । सदा शुचित्वमश्रीकवचसां परिवर्जनम् ॥

संपञ्चीकरवाक्यौघं यथार्थपरिभाषणम् । सदा संमुखतातुष्टिरुपांशुपरिभाषणम् ॥

स्मिताभिभाषणं स्वाभिः प्रजाभिर्मैत्रबुद्धिभिः ।

क्रोधनिष्ठुरवाक् प्रोक्तौ गुरुभिस्तैः पतिप्रियैः ॥

विकारशून्यता चित्ते क्रोधलोभादिशून्यता ।

अनालस्यं कालमात्रे पतिच्छायानुवर्तनम् ॥

पतिव्रता लक्षणं स्यादाचारश्च तथाविधः । स्नानमात्रे प्रकथितं हरिद्रा प्राङ्मुखेन वै ॥

कर्षणं लेपनं चापि लपनस्यादितः स्मृतम् । हृत्कण्ठकर्णबाहूरु जान्वङ्घ्र्यादि क्रमेणतु

स्नानमाकण्ठमेवस्यादजस्रं शिरसो नतु । विशेषदिवसेष्वेवावगाहः प्रतिपादितः ॥

रात्र्या त्यक्तं तु यत्स्नानं वृथा तासां न संशयः ।

भवेदेवेति सा स्वाहा स्वधां प्रोवाच संसदि ॥

कषणात्परमेवेयं निशादद्यात्क्रमेण वै । चतसृणां दिशामादौ सेनादीनां ततः परम् ॥

सर्वासां देवपत्नीनां दद्यादङ्गुलिचालनात् । पर्वसुप्रोक्तमेतासां पैतृकेषु दिनेष्वपि ॥

ग्रहणेषु विशेषेणाप्यर्घोदयमहोदये । तस्यां कपिलषष्ठ्यां च श्वश्रूश्चशुरयोस्तथा ॥

मृताहे सूतकाशौचरजस्कालेषु चोदितम् । चिरण्टीनां शिरस्नानं शास्त्रज्ञैस्तैर्महात्मभिः

पुण्यतीर्थेष्ववभृथे चण्डालाद्यशुचौ तथा । उच्छिष्टपतने शीर्षे बन्धुमात्रमृतावपि ॥
श्मशानपृथ्वीवने गमनादिनिमित्तके । भवेदेव शिरः स्नानं ... रव्रवीत् ॥

चीना निमित्तं यो मोहात्कुरुते मज्जनं रमा ।

पतिघ्नी सा प्रकथिता विधवा जन्मजन्मनि ॥

भवत्ये ... ग्राह धर्मप्रोक्तौ पुरा विधिः । अचिरा ... मज्जनात्परमेवै ॥

... निखिलान्केशान्प्रकुर्यात्कवरीं शिवाम् । न भवेदार्द्रकवरी नार्द्रवस्त्राप्यकञ्चुका
संत्यक्तकुङ्कुमादिव्यसिन्धूरद्यनुलेपना । प्रभवेदेवसततं स्वीकृताञ्जनपालिका ॥

संचरेदुत्तरीयेण पादप्रक्षालनात्परम् । आचामोऽपि भवेत्तूष्णीं जलप्राशनमात्रतः ॥

नामाचमनमित्युक्तं विधवानां च तं त्रिभिः ।

नामभिः कथितं सद्भिः नान्यैरेवेति काश्यपः ॥

उदयानन्तरं स्त्रीणां स्नानं तत्परिकीर्तितम् । तदेतत्सोमपीथिन्याः उदयात्पूर्वमेवै ॥

बह्वथुद्धरणतः पूर्वं कार्यमेवेति चोदितम् । अग्निहोत्रप्रचारैककालेष्वेवायमुच्यते ॥

विधिः किल विशेषेण न चेन्नायं विधिर्भवेत् । याऽऽर्द्रवस्त्रेण कुरुते पचनं दुर्मती रमा
तदन्नं तामसं ज्ञेयं नैर्मृतं न तु दैविकम् । अकञ्चुक्या कृतं त्वन्नं इत्यलोऽस्तीति गौतमः

कवर्या सार्द्रया मूढा कुर्यात्पाकं कृधायता ।

तदोदनं समश्नाति वातापी निर्घृणोऽसुरः ॥

अन्तर्दुःखेन या नारी मुञ्चन्त्यश्रूणि मूढधीः ।

करोति पक्वां तां भिस्सामरण्ये निर्जने शुनाम् ॥

गृध्राणामपि काकानां यथा स्वाद्यं भवेन्नतु ।

तथा त्यजेत्प्रयत्नेन तादृशं त्वोदनं नरः ॥

योऽश्नाति हेयं विधिवत् पञ्चगव्यविधानतः ।

पीत्वाऽष्टवारं जप्त्वा वा गायत्रीं वेदमातरम् ॥

सिंहानुवाकपठनाच्छुद्धो भवति नान्यथा । शयाना या प्रकुरुते पाकमन्नस्य दुर्मतिः
अलक्ष्मीणां तदन्नः स्यात्सतामेतद्विगर्हितम् । तादृगन्नप्राशनेन मानवो दुर्भगो भवेत्

तद्दोषपरिहाराय शान्तां तामृचमुत्तमाम् । जपेदष्टशतं स्नात्वा तेन श्रीको भवेदयम् ॥
दक्षिणाभिमुखात्प्रत्यङ्मुखतो याति मौढ्यतः । पचत्यन्नं तत्तु भवेत्पैशाचं राक्षसं परम्

पितृणामपि देवानां अनर्हः स्यात् द्विजन्मनाम् ।

तदन्नं मनुजोऽतीव विद्यालक्ष्मीवहिष्कृतः ॥

प्रभवत्येव तच्छान्त्यै घोषशान्तिं जपेन्मनुम् ।

त्रिवारं प्राङ्मुखस्तिष्ठन् व्याहृतीर्दशसंख्यया ॥

व्यस्तास्समस्ता विधिवदन्त ओं तत्सदित्यपि ।

उत्तवा समापयेद्विद्वांस्तस्मादेव पतिव्रता ॥

सुमङ्गली महाभागा सर्वलक्षणमण्डिता । यथोक्तविधिना स्नाता सुवस्त्राकञ्चुकावृता

कुङ्कुमालङ्कृतास्विन्नमुखी कवरसंवृतौ । अथवा कृतवेणी वा प्राङ्मुखेनैव सुस्थिता ॥

विचक्षणा पाककर्म पाथ (च्छा) शास्त्रवर्त्मना । सर्वकर्मषु भद्रेषु सन्ततं ह्युत्तमोत्तमः

सुमङ्गलीकृतः पाकः सर्वशास्त्रमतः परम् । ततोऽपि सोमपीतन्याः पाकः पण्डित संमतः

परिवेषणकर्मापि तथैवेति शची जगौ । पचने भोजने वापि चिरण्टीनां क्षुते तथा ॥

जृम्भणे पानवायौ वा निर्गते वेश्ममध्यमे । कल्याणवेदिकामध्ये तत्कालेष्वेव दैवतः ॥

तत्फलं तत्क्षणेनैव प्रोक्षयित्वा शुचीवतः । सद्यः संभूतेन पश्चाद्गोमयेनोपलिप्य वै ॥

गास्तत्र तु समानीय नैचिकी रथ वा पुनः ।

धेनोः सवत्साः गाः शुद्धा त्रयोऽश्वा वा विधानतः ॥

मुहूर्तं तत्र संस्थाप्य तावद्गोसूक्त शब्दतः । पूरयित्वा सैन्धवाश्चेत्तावदत्राश्वसूक्ततः ॥

शब्दापयित्वा विधिना मुहूर्तत्रयतः परम् ।

दूरीकृत्याथ ताधेनो स्ता ... श्वान्वेत्समाहितः ॥

प्रादेशमात्रमवटं तत्र खात्वा यथा शुचि । यावत्तावत्तु तां सर्वां मृदं दूराद्व्यपोहयेत्

व्यपोहनात्ततो भूयः तैरेतैर्निखिलैर्द्विजैः । संवृतः पुनरागत्य पूरयित्वा वटं च तम् ॥

तत्र दर्भान्विषूचीनाम्रान्निक्ष्पवाह्यक्षतैः शुभैः । कुङ्कुमाक्तैः सुपुष्पैश्च तत्र कुम्भं दृढं शुभम

स्थापयित्वाऽत्र वरुणमावाह्याथ त्रियम्बकम् । तन्नारिकेले संपूज्य प्रतिमायां विधानतः

षोडशैरुपचारैश्च समाराध्य जगत्पतिम् । पूजान्ते रुद्रगायत्रीं दशवारं द्विजैः सह ॥
जप्त्वा श्रीरुद्रचमकौ तत्परं तज्जलेन वै । अवटक्षिप्तमृत्स्नाया पूरयेदेव सर्वतः ॥

ततः परं च श्रीसूक्तं भूसूक्तं पूर्षसूक्तकम् ।

लक्ष्मीसूक्तं च यत्नेन जापयित्वा द्विजोत्तमैः ॥

दशशान्तिघोषशान्तिः जप्त्वाऽथ प्राङ्मुखः स्वयम् ।

उपवीति नमोब्रह्म परिधानीयकां जपेत् ॥

तदपानजतद्वायोः निष्कृतिः कथिता परा । कृतस्य जृम्भणस्यापि पूर्ववन्नान्यथेतितत्
भृगुवारे भौमवारे भानुवारेऽपि पर्वणि । महेषु सुमहत्स्वेषु माकरे क्रान्तिशुल्बके ॥

विवाहयागोपनीति सीमान्तादिषु योगिषु ।

तच्छालायां वेदिकायां तन्नान्दी करणात्परम् ॥

अलंकारासनेतस्मिन्महासिंहासनेऽपि वा ।

भद्रासने वा विधवा पान्य(था)ह्वैवैव शब्दितः ॥

तदा तां निष्ठुरं वाक्यं प्रोक्त्वा छत्कृत्य दूरतः ।

उद्वासयित्वा चपलं शुचीवो हव्यमन्त्रतः ॥

गोमयालेपनं कृत्वा गोमन्त्रेण ततः परम् ।

तां भूमिं प्रोक्ष्य गायत्र्या कर्दमं किष्कु मात्रतः ॥

कारयित्वाविधानेन पुनस्तस्मिंश्च कर्दमे । पञ्चगव्यं पूरयित्वा तत्तन्मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥

तस्मिन्नथाक्रमय्याश्वं अश्वोऽसीति च मन्त्रतः ।

मन्त्रयित्वा पञ्चवारमिह पर्यन्तमेव वै ॥

यदक्रन्दादिषड्विंश ऋचो जप्त्वा ततः पुनः । हुत्वा च समिदन्नाज्यैः स्विष्टकृत्परमेव वै
ब्रह्मोद्वासनपर्यन्तं कृत्वा तां मृत्तिकां भुवि । कर्दमत्वेन सर्वत्र खनित्रेणैव कृत्स्नशः ॥

समुद्धृत्यैव निःशेषं दूरतः परिवर्जयेत् । पर्येण भस्मना पश्चाद्विकिरेत्तत्र सर्वतः ॥

नर्यप्रजाममन्त्रैस्तैः सतामन्त्रैश्च पञ्चभिः ।

प्रकुर्याद्ब्राह्मणानां च द्वादशानां च भोजनम् ॥

आशिषां कर्मणां पश्चात्पुनर्नान्दीं समाचरेत् । एवं कृते तु मुच्येत सद्यः तद्दुर्निमित्ततः
मुखमारुतसंरुद्धः पावकः स्यादपावकः । तेन सर्वं पक्वमात्रं शूद्राणां योग्यमित्ययम् ॥
प्रोवाच निभृतिस्साक्षात्तथैवेत्याह तद्यमः । धमन्यास्य मुखाद्वह्निं वर्धयित्वैव सन्ततम्
पाकक्रिया प्रकर्तव्या स पाको दैविको भवेत् ।

अयोमयी तु धमनी नारीणां न भवेदिति ॥

प्रोवाच किल धर्मज्ञः चित्रगुप्तः स्वयं विभुः । किंतु सा वैणवी कार्या वनितानां सुपावनी
धमनीति जगौ ब्रह्मवृद्धयेऽत्र विभावसुः । संवर्धनदशायां तु यदि संमार्जनी गतिः ॥
इषीकाभिः प्रज्वलिता पाकाग्निर्भक्तदूषकः । तादृगग्नौ कदाचित्तु भक्तं निष्पादितं जडः
मोहेनाशनन्पञ्चगव्या गायत्र्यष्टशतेन च । रुद्रैकादशिनीं जप्त्वा जलपानेन निष्कृतः
प्रभवेदिति धर्मज्ञाः जगदुः सनकादयः । शौर्यवातेन संवृद्धो वीतिहोत्रस्तु दुर्घटे ॥
श्मशानाग्निसमो ज्ञेय शुद्धैः स्पृश्यो भवेन्न तु ।

तस्मिन्नग्नौ पक्वमन्नं मत्स्यघात्यन्नमुच्यते ॥

तदन्नमशनन्मोहेन किल्बिषी ब्राह्मणो भवेत् । तदोषपरिहाराय षड्वदं कृच्छ्रमाचरेत् ॥
पश्चादखण्डकावेरी स्नानैर्दशभिरेव वै । शुद्धो भवेन्न चान्नेनेत्येवं मनुरब्रवीत् ॥

गोरोगतावकाग्नौस्तं समानीयातिमौढ्यतः ।

चुलिकायां प्रतिष्ठाप्य तस्मिन्नन्नं कृतं तु यत् ॥

रजस्वलाकृतं साक्षात् तन्नाश्यमतिपापदम् । तद्भक्षणे प्रकथितं यावकाहारपूर्वकम् ॥
दिनाष्टकं पञ्चगव्यप्राशनेनैव केवलम् । चतुर्विंशतिगायत्रीसहस्रजपतः शुचिः ॥
भवत्येवेति भगवान् वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् । कुशाग्नौ वा स्वर्णकारचुलिकाग्नौ विशेषतः
ताम्रकुट्टकवह्नौ वा शालावलजपावके । कार्वग्नौ मार्गनिक्षिप्तधर्माग्नौशास्त्रमन्दिरे ॥

पीडारिका मन्दिराग्नौ लपनोच्छिष्ट पापके ।

पक्वमन्नं दैववशात् मोहात्स्पृष्ट्वापि केवलम् ॥

अप्रायत्यमवाप्नोति तस्य प्राशनतः पुनः । जातिभ्रंशं सद्य एव लभते ब्राह्मणो महान्
तन्निष्कृत्यै महासिद्धिं स्नानानां शतकेन वै । अहोरात्रैः त्रिभिः शुद्धोपवासः पञ्च

कुश्माण्डजपमन्त्राणां त्रिवारपठनेन च ।

शक्त्या ब्राह्मणभुक्त्या च शुद्धो भवति नान्यथा ॥

स्वस्यभर्तुर्हितायाऽत्र प्रयत्नेन सुवासिनी । पाकयोग्यं शुद्धमन्नं पात्रेणानीय वै क्रमात्
भवनादेव भवने स्वीयवह्नेरदुर्लभे । चुल्लिकायां प्रतिष्ठाप्य पाककर्म समाचरेत् ॥
न तृणैराहरेद्वहिं काष्ठैर्वा नव ... । मृण्मयेनापि पात्रेण दारुपात्रेण वा तथा ॥
शल्केन शाकलेनाऽपि नोलकामूलेन तं हरेत् । यद्याहरेत्तु मोहेन तद्गोहश्रीर्विनश्यति ॥
अलक्ष्म्योऽत्र प्रवर्धन्ते विपदश्च तथा तथा । भवेयुरेव भूयिष्ठाः तथा दुर्गतयः पराः ॥
तादृगग्निविशेषस्य तदानयनमात्रतः । भर्ता ज्ञात्वा तु तत्पश्चात् तस्याः कर्म विशेषवित्

दूराद्विसृज्य तं वह्निं तां निर्भर्त्स्य च निर्घृणः ।

तदलक्ष्मीविनाशाय स्वयं प्राङ्मुखतो जपेत् ॥

सुमङ्गलीरियं मन्त्रजपं चापि ध्रुवक्षितेः । इमां त्वमिन्द्रमन्त्रं च श्रियं जात श्रियस्तदा
श्रीभूस्तूक्ते जपं चापि त्रिवारं तदनन्तरम् ।

कृत्वा तु मङ्गलस्नानं भवेतां प ... ततः ॥

ब्राह्मण य ... संयुक्तौ कृताहारौ दिनत्रयम् ।

तेन श्रीको भवेतां तौ तत्र पक्वान्न भक्षणात् ॥

स्नानात्परं च पुण्याहं वाचयित्वा ततः परम् । प्रतिष्ठाप्य शुचिगोह मध्येगाह्योक्तवर्त्मना
मुखान्ते जुहुयादाज्यसहितं चरुतन्त्रतः । श्रीसूक्ताभिर्विधानेन पञ्चवारं ततः पुनः ॥

ब्रह्मोद्वासनतः पश्चाद्गौरेकात्र च दक्षिणा ।

परिकल्प्या ... दूधोराभापदं प्राप्नुयात्तु सः ॥

अजस्रं शुद्धपाकेन स्वयं शुद्धः स्वर्लंकृतः । संजातमन्नं सुमुखं भुञ्जीयात्प्राङ्मुखोद्विजः
परपाको नैव भवेत् परान्नः परमन्दिरः । पराधीनो भवेन्नैव परः प्रैष्यश्च बाढवः ॥

नित्याग्निको भवेच्चापि सोमयाजी भवेत् च ।

यद्वा भवेदाहिताग्निः समन्त्रः सर्वथा भवेत् ॥

अश्रोत्रियो न अग्नि्येतानाहिताग्निः कथं चन । अग्नि्येतानासोमयाजी ह्यमन्त्राग्निर्भ्रियेत च

नित्यकर्मकरो भूयात् नित्यं श्रोत्रियपूजकः । उदासीनो श्रोत्रियेषु सुमहात्मसु संमुखः ॥
 भवेदेवान्वहंगोही तटस्थो मध्यमेष्वति । श्राद्धकर्मपरो भूयाच्छ्रद्धालुः कर्मभक्तिकः ॥
 श्राद्धकर्मसु सर्वेषु शौचमक्रोधमत्वंरा । सत्राह्वणान्वेषणं च सौमुख्यं सत्यभाषणम् ॥
 सद्वस्तुसंगृहस्त्वैक द्रव्यं चापि तथा पुनः । अदानं सर्ववस्तूनां यस्य कस्यचिदत्र वै ॥
 परवस्तुप्रग्रहश्च तत्कथाप्रतिपादनम् । तद्धर्मशास्त्रतत्त्वैकचिन्तनं तन्निरीक्षणम् ॥
 संपादितानां द्रव्याणां वस्तूनामवलोकनम् । समीकरणमेतेषां तत्र तत्र नियोजनम् ॥
 मुहूर्तपञ्चकादेतदत्यन्तावश्यकत्वतः । समनुष्ठेयमेवस्यात्पुनरन्यानि यानि वा ॥
 तानि कार्याणि भूयश्चानुष्ठेयानि विशेषतः । अत्र खानात्परं सन्ध्यामात्रं होमश्च केवलः
 वेदस्याध्ययनं नैव व्रतकृच्छ्रादिकं तथा । अभिवादनकार्याणि बन्धूनां महतामपि ॥
 उपायनप्रग्रहणं पुनश्च प्रतिपादनम् । वर्जयेत्तु विशेषेण श्राद्धीयेकानि तत्करः ॥
 तत्प्रश्नप्रकृतीह्यन्य विशेषनियमो मतः । एतद्दिनत्रयमिति केचिदाहुः मनीषिणः ॥
 पूर्वेष्वरपिचश्च तद्दिनत्रय कर्मणा । सर्वे ... रागाणां ... स्मिन् ... पस ... पुनः ॥

परं तप मात्रं स्यादेकभुक्तिश्च केवला ।
 दिवसे तत्र विज्ञेया तच्छ्राद्धं तर्पणान्तकम् ॥
 इत्युक्त्वा सर्वशास्त्राणामेतावान्निश्चयः परः ।
 निमन्त्रिणां ब्राह्मणानां पूर्वरात्रौ प्रचोदितम् ॥
क्तिं परतोज्ञेयं ... सनकृतेः परम् ।
 परेष्वरेवं प्रातश्च सन्ध्याहोमात्परं पुनः ॥

श्राद्धे निमन्त्रणक्रमः

आमन्त्रणं तद्भोक्तृणां विधिना चोदितं तथा ।
 संकल्पानन्तरं श्राद्धे पूर्व ... रेव वै ॥

वरणं तत्प्रकर्तव्यः पितृयुद्देशेन तद्दिने । पितृभक्त्या श्राद्धकर्ता मासषट्कस्य पूर्वतः ॥
 ब्राह्मणान्वेषणं कुर्यान्मनसैव विचक्षणम् । वेदवाची महाभाग साचारे साग्निहोत्रिणे

एकस्मिन्नपि वा लब्धे पित्रानन्दो भवेन्महान् ।

ब्राह्मणस्तादृशो भाव्यः कुलीनः क्रोधवर्जितः ॥

अदाग्भिकश्च कर्मिष्ठः श्रोत्रियः श्रोत्रियोद्भवः ।

ब्रह्मण्यो ब्रह्मनिष्ठश्च सर्वपात्रोत्तमोत्तमः ॥

दैवाद्विस्मृतवेदश्च वेदोज्झः परिकीर्तितः ।

क्रियानर्हः स विज्ञेयः त्याज्यः स्याच्छ्राद्धकर्मणि ॥

स्वाधीनवेदः सततं पदक्रमविशेषवित् । तत्प्रयोगविशेषज्ञः विनियोगविशारदः ॥

अध्यापकवरिष्ठोऽयं नित्यप्रवचनोन्मुखः । वाघसंख्या प्रश्नकृत प्रयासो ब्राह्मणोत्तमः

साक्षात्पावक एवायं संहितामात्र पाठनात् । वाताध्यायस्तु ऋग्वेदे साम्नि सप्तकगान्तः

वेदाध्यायी तु विज्ञेयो स एव श्रोत्रियोऽपि वै । पदाध्ययनतो विष्णुः साक्षादेव न संशयः

पदप्रकृतिरेतस्याः संहितायाः क्रमस्तु सः । संहिताकारकोऽत्यन्तं क्रमस्तस्मात्ततोऽधिकः

साक्षादुद्र इतिख्यातः क्रमाध्यायी तदंशजः । स्वरवर्णविशेषज्ञः स हरो हरिरेव च ॥

यजुर्वेदस्यैकदेशः ऋग्वेदः सामनामकः । तन्निदानक इत्येव तदव्यूढश्चनेतरः ॥

ब्राह्मणेषूत्तमा ज्ञेयाः निखिलेषु महच्छ्रियः । देवद्विजर्षिमुनयः विप्राश्चेति हि पञ्चधा ॥

संहितामात्रतो ज्ञेयाः विप्राः सर्वक्रियार्हकाः । पदेन कर्मणा चापि द्विजशब्देन शब्दिताः

ऋषयः क्रमतो ज्ञेयाः श्रुत्यर्थज्ञाश्च केवलाः । परायातेनमुनयः तथा संहितया पुनः ॥

अहिरण्यक तन्मन्त्र कठशाखाविशेषतः । विप्राः स्युरेते परमाः सर्वकर्मैकसाधकाः ॥

ऋक्सामाभ्यां ब्रह्म या कल्पविशारदाः । तत्सर्व कलानिष्ठाः ब्राह्मणाः सर्वसंपदे

योग्या भवन्ति सततं तस्माच्छ्राद्धेषु तादृशान् । ब्राह्मणानुपयुञ्जीत न वेदाक्षरवर्जितान्

कलौ तु केवल श्राद्धयोग्याः सुदुर्लभाः ।

अब्राह्मणादयोऽस्तीव बहवः श्रोत्रियद्विषः ॥

केचित्सन्ध्यामन्त्रमात्रानभिज्ञा ब्राह्मणब्रूवाः ।

तर्कैकसुश्रमास्तूष्णीं विप्राभासाः कुवृत्तयः ॥

ब्रह्मविद्यावहिर्भूता न संग्राह्यास्तु वैदिके । त्यक्तवेदाः त्यक्तशाखाः त्यक्तसूत्रास्तथा पुनः

गोत्रभ्रष्टाभिन्नशाखाः शिखाभ्रष्टाश्च केचन । अन्यवेदशिखाशाखा गोत्रसूत्रावलम्बिनः
 कर्मणा । अपात्रभूता विज्ञेयाः तूष्णीं ब्राह्मणशब्दिताः
 न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता । यत्रवृत्तिरिमेचोभे तद्धि पात्रं प्रचक्षते ॥
 तथाविधब्राह्मणानां दुर्लभे केवलं पुनः । स्वबन्धुष्वेव यत्नेन भोक्तृः संपादयेत्तथा ॥
 अश्रोत्रियं श्रोत्रियं वा ब्रह्मवृन्नामधारकम् ।

स्वकीयेष्वेव भोक्तारं यत्नात्संपादयेद् द्विजम् ॥

स्वकीयाश्चेत्तत्र सम्यक् तत्त्वरूपं प्रकारतः । ज्ञातं भवति तस्मात्तु परेषां दुर्लभे त्वयम्
 मुख्यतः श्राद्धयोग्यास्ते योनिंसंबन्धवर्जिताः । गोत्रसंबन्धरहिताः मन्त्रसंबन्धशून्यकाः
 येनकेनाप्युपायेन वेदाक्षरसुपूरिते । सुशुद्धे ब्राह्मणमुखे कव्यान्तं पातयेत्सुधीः ॥
 कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यते । कुलंतारयते तेषां दशपूर्वान्दशापरान् ॥
 अवेदाक्षरकुक्षिस्थमन्नं प्रप्तं मृताहके । प्रकुर्याद्रोदनंतेन कर्तृदोषो महान्भवेत् ॥
 नन्दन्त्योषधयस्सर्वे वेदज्ञे गृहमागते । वयमेतत्कुक्षिगताः यास्यामः परमां गतिम् ॥
 वेदज्ञे पितृत्पत्यर्थं यदल्पं बहु वस्तु तत् । दीयतेनुपकारार्थं मेरुमन्दरसंनिभम् ॥
 अन्ध्रममोघं स्यात्पितृणां पूर्णतृप्तिदम् । वेदाक्षरपरित्यक्तलपनत्यक्तमोदनम् ॥
 वालुकात्यक्तसलिलरूपवल्लयमेति वै । स्वशाखायां दुर्लभेषु भोक्तृनन्यान्निमन्त्रयेत् ॥

नातिचारान्नातिवृद्धान् नातिस्थूलान्कृशास्तराम् ।

अप्यल्पभक्षकान्भूयः गृह्णीयाद्बहुभक्षकान् ॥

दृष्ट्वा तु पितरः श्राद्धे ब्राह्मणं बहुभक्षकम् । दृष्टेष्वलभिया सद्यः कुर्वन्त्येव पलायनम्
 अत्यल्पभक्षणपरं ब्राह्मणं तं विलोक्य तु । न तृप्तिमधिगच्छन्ति तत्र श्रोत्रिय एव तत्
 तत्पीतसलिलादेव नष्टक्षुद्राहकश्मलाः । आद्वादशाब्दा संप्राप्त महावृष्ट्यैकनिर्भराः ॥
 प्रभवन्त्येव तस्मात्तु वेदिनं तं निमन्त्रयेत् ।

वेदः साक्षाद्भरिः प्रोक्तं स वेदो यस्य सन्ततम् ॥

जिह्वायां हृदि वाऽऽस्येऽस्य वर्तते सहि चोदितः ।

साक्षान्नारायणः श्रीमान् तद्वक्तौ किमु दुर्लभम् ॥

वेद्यभावे तु शिष्यं वा पुत्रं पौत्रं च विद्व(दप्)तिम् ।

आत्मानं भोजयेद्वाऽपि न विप्रं वेदवर्जितम् ॥

वेदिनां पुरतो यो वा क्युक्तिस्तर्कवादिसः ।

पुरस्करोऽत्यर्चनया भ्रान्तोऽयं बालिशः स्मृतः ॥

पुरतः श्रोत्रियाणां यो वेदत्यागपुरस्सरात् ।

कृतशास्त्रप्रयासान् नृन्भ्रान्तो ह्यर्चितुमिच्छति ॥

स रोगां संपरित्यज्य खरं दुह्यन्न संशयः । कलौ प्रायेण सर्वत्र पुरस्कारो न वेदिनाम्

किंतु तत्तर्किणामेव पञ्चम्यन्त प्रधानतः । शूद्रप्रायाश्च शूद्राश्च केवलं शुद्धतर्किणः ॥

वेदाढ्यान्ब्राह्मणादेव तिरस्कुर्वन्ति तत्कलौ । कलिधर्मपरो न स्याद्ब्राह्मणो वैदिकोत्तमः

कुशास्त्रभाषा शास्त्राणि प्रामाण्येन न विश्वसेत् ।

गानशास्त्राणि कृत्स्नानि नृत्तशास्त्राणि यानि वा ॥

सभारक्षकशास्त्राणि तालगीतलयश्रिकाः । वैद्यशिल्पोडुशास्त्राणि हीन्द्रजालीयकानि च

वैदिकस्तत्पराः सर्वा महावैदुष्यविधयोः । प्रसक्तौ तादृशान्सर्वान्वेदमन्त्रबहिष्कृतान्

सन्ध्यामन्त्रैकविधुरान्पुनः श्रोत्रियरूपतः । तत्तत्कार्येष्वगागतांस्तान्साम्येन न तु पूजयेत्

पैतृकेषु विशेषेण मौञ्ज्यादिषु सवादिषु । श्रौतेषु स्मार्तकृत्येषु न साम्यादर्चयेदति ॥

ब्राह्मणान्भोजयेदिति विधिकार्येषु सर्वतः । सन्तस्ते वैदिका एव मुख्यत्वेन सदा द्विजैः

परिग्राह्याः पुरस्कार्याः न तादृक्छास्त्रधारिणः ।

ब्राह्मणानां धनं वेदा ऋग्यजुस्सामनामकाः ॥

तच्छिक्षास्तत्परं श्रौत्रकल्पा सूत्राणि तत्परम् । तत्प्रयोगपरिज्ञानं विनियोगपुरस्सरम्

पश्चात्तदर्थजिज्ञासा तदर्थं तर्कचिन्तने । अभ्यासस्य तु कर्तव्यो न तत्पूर्वं तु तं नरः

अभ्यसेदितिकामेन ब्रह्मचर्येण वाडवः । सौम्यव्रतान्ते तर्कस्य समयो वेदचोदितः ॥

आग्नेयकाण्डात्परतो तद्वत्तस्य च मध्यमे । उक्तो व्याकरणस्यैवं मर्याद विधिरव्ययम्

एवं स्थितेऽत्र तां दिव्यां मर्यादां वेदनिर्मितम् ।

समुल्लङ्घ्य ब्रह्मचर्यं शुष्कतर्कादितच्छ्रमाः ॥

वेदश्रमपरित्यागपूर्वकं ब्रह्मविद्विषः । तर्किणः शिल्पिनो गानपरानाक्षत्रकास्तथा ॥
नटीवैणविकाः सर्वे वैदिकाः स्युर्विनाश्रुतिः । वैदिकानां समाजेषु सर्ववैदिककर्मसु ॥
समाधिक्यपुरस्कारपूजाकार्यकरो नरः । भूयिष्ठान्यशुभान्येव विन्दते न तु संपदः ॥

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्या यत्रावमानिताः ।

त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं ध्रुवम् ॥

यत्र नास्ति भयत्राता श्रोत्रियस्सजला नदी ।

आत्मसौख्यं यत्र नास्ति न तत्र दिवसं वसेत् ॥

अवशागतचित्तस्य नास्ति यत्र विधायकः । असंभावितदुष्कार्यजातदुष्कीर्तिभञ्जकः ॥
यस्मिन्देशे दुर्लभः स्यान्न तत्र दिवसं वसेत् । कुग्रामे कुत्सिते देशे दुष्टक्रूरजनाकुले ॥
वेदद्विज्जनभूयिष्ठे तिष्ठेन्नापि क्षणं द्विजः । तादृग्देशनिवासेन कलाज्ञानं भविष्यति
कलाज्ञानेन सततं कर्ममात्रं विनश्यति । तिथिभेदकृतं श्राद्धं पुनः करणमर्हति ॥
मासभेदात्पक्षभेदात्तथा तत्स्यात्ततोद्विजः । ग्रामेविद्वज्जनावासे निवसेत्कर्मसिद्धये ॥
दुर्व्यापारालस्यकान्यनियोगादिनिमित्तकैः । ताम्बूलचर्वणजल प्राशनात्परतोऽपि वा ॥
शलादुफलतक्रेषुफललाजादिभक्षणात् । परतो वा सार्धयामात्स्मृतं श्राद्धं तु तर्पणम् ॥
अपि वा सद्य एवायं सर्वसंभारसंवृतम् । निवर्तयेच्छ्राद्धकर्म येनकेनाप्युपायतः ॥

शक्तौ सत्यां सद्य एव कुर्याद्भक्त्या विचक्षणः ।

शक्त्याभावे उपोष्याऽथ पिबाहि पदके चरत् ॥

तत्संकल्पस्यपुरतः अनाज्ञातत्रयं जपेत् । इदं विष्णु महामन्त्रं त्रिशद्वारजपस्तथा ॥

व्याहृतीनां समस्तानां व्यस्तानां च सहस्रकम् ।

जप्त्वापश्चाच्छ्राद्धकर्म सम्यङ्निर्वर्तयेद्द्विजः ॥

विध्युलङ्घनदोषे तु प्राजापत्यं विशोधकम् । यदिवालाः परं प्रातः कर्तारः श्राद्धकर्मणाम्

साक्षादन्नकृताहाराः स्युश्चेत्तु तदनन्तरम् । भुक्तयन्तरं परित्यज्य परेद्युः प्रातरेव वै ॥

कुर्युः भुजिक्रियां मोहात्तद्विज्ञानात्परं तु ते ।

गुरुभिः बोधिताः सद्यः स्नात्वा पश्चाद्भक्त्यर्चना ॥

गायत्रीं तद्दिने जप्त्वा सहस्रं वेदमातरम् । श्राद्धं कुर्युर्विधानेन निष्कृतेः परतः पुनः ॥

निष्कृतिस्सा प्रकथिता प्राजापत्यद्वयं तथा ।

गौरेका दक्षिणा देया ब्राह्मणाय महात्मने ॥

गृहीत्वा विदेशस्थः स्वदेशस्थोऽपि वा द्विजः । अनेककार्यशतकं संलीनो राजपीडया

समाक्रान्तश्राद्धकर्म विस्मृत्यैवावशात्पुनः ।

भुक्तेः परं वा भुक्तौ वा स्मृत्वा तत्तदनन्तरम् ॥

भुक्तमन्नं छर्दयित्वा स्नात्वाऽऽचम्य शुचिः स्वयम् ।

पावमान्यश्च कूश्माण्ड्यः शिवसंकल्परुद्रकान् ॥

तान्पञ्चचमकं वापि पूर्वसूक्तमघोरकम् । नारायणं चोत्तरं वै जप्त्वा नाज्ञात भूर्भुवः ॥

उपोष्य तद्दिनं पश्चात्परेद्युः प्रातरेव वै । प्रातस्संध्यां साधयित्वा कृत्वौपासनमेव च ॥

कूश्माण्डहोमं निर्वर्त्य पूर्वसूक्तं च तत्परम् । अष्टादशयजुर्मन्त्रान्हुत्वा स्विष्टकृतः परम् ॥

ब्रह्मोद्भासनतः पश्चान्नैचिकीनां त्रयं ततः । प्रदानं ब्राह्मणानां तु कृत्वा यद्वा तु दुर्लभे

तन्मूल्यदानं कुर्याच्च ततः श्राद्धं विधानतः । निर्वर्तयेद्देवमेव न चेद्दोषो महान्भवेत् ॥

दर्शादिके विशेषोऽस्ति पिष्टान्नादिकभक्षणे । अज्ञानादवशादैवात्कृतेऽप्येतत्समाचरेत् ॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा गायत्रीं वेदमातरम् । अनाज्ञातत्रयं पश्चात् व्याहृतीश्च त्रियम्बकम्

पूर्वसूक्तं च कूश्माण्ड्यः पावमान्यश्च तान्परान् । पञ्चरुद्रानौत्तरं च नारायणमनन्तरम्

क्षमापवित्रं घोषशान्तिं दशशान्त्यादिकं क्रमात् ।

जप्त्वा दर्भेषूपविश्य प्राङ्मुखेनैव मन्त्रवित् ॥

जले मग्नोऽथ वायुं स्वं निरुध्येव समाहितः । दशप्रणवगायत्रीं एकोच्छ्वासेन शक्तिः

श्वासद्वयेन वा जप्त्वा तदुच्छ्वासत्रयेण वा । त्रिवारं प्रजपेदेवं तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते

आभिर्गीर्भिः शतं नो चेदघमर्षणमेव वा ।

निमज्ज्य सलिले जप्त्वा शक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥

तस्माद्दोषात्प्रमुच्येत शुद्धः पश्चात् तत्पुनः ।

दर्शश्राद्धं प्रकुर्वीत हिरण्यामजलादिभिः ॥

अष्टोत्तरशतश्राद्धकरणापाटवो द्विजः । सर्वप्रकृतिमूलं तं दर्शं वा येनकेनचित् ॥
हिरण्यममधुक्षीद मुखैर्मन्त्रविधानतः । षड्देवताक्रमेणैव त्यक्त्वाऽऽलस्यादिकं तथा ॥
निर्वर्तयेद्विधानेन विषुवेऽप्ययने तथा । महालयारूपं च व्यतीपाते च मार्गके ॥

तृतीयामग्निं वैशाखे ब्राह्मणः पितृभक्तिमान् ।

यथाशक्ति यथोत्साहं पितृभ्यः प्रीतये बुधः ॥

दिनशून्यमकृत्वैव कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् । अधर्मकं सधर्मं वा सर्वप्राणेन बाढवः ॥
विप्रभुक्तिकरोविद्वान्सततं सर्वदेवताः । प्रीणयत्येव नूनं वै ब्राह्मणस्सर्वदेवताः ॥
इत्युक्तश्रुतिवाक्येन तस्माद्ब्राह्मणभोजने । कृतेऽस्मिंस्तेन पितरः परां वृत्तिमनश्चराम् ॥

प्राप्नुवन्ति हि ते कन्या येऽपि बर्हिषदोऽखिलाः ।

अग्निष्वात्ताश्च सोम्याश्च औमाऔर्व्याश्च सन्ततम् ॥

न विप्रभुक्तितुलितं कर्मास्ति जगतीतले । तेन सर्वक्रियाजन्यं फलानि लभते नरः ॥
अष्टोत्तरशतश्राद्धान्येतानि किल सूरिभिः । कर्तव्यत्वेनचोक्तानि सत्यां शक्तौ विशेषतः
अमामनुयुगक्रान्तं धृतिपात महालयाः । अष्टकान्वष्टकाः सर्वाः षण्णवत्यः प्रकीर्तिताः

प्रतिमासं प्रयत्नेन मासे श्राद्धानि यानि हि ।

मिलित्वा तैः पुरोक्तानि सर्वाण्यपि महात्मभिः ॥

अष्टोत्तरशतानीति गणयित्वेक ईरितः । अमामनुयुगास्तत्राष्टकान्वष्टकास्तथा ॥

महालयश्च क्लृप्ता हि तस्मान्नित्याः प्रकीर्तिताः ।

ये नित्यास्ते पिण्डयुक्तास्तद्भिन्नाः पिण्डवर्जिताः ॥

संक्रान्तिधृतिपाताख्याः अक्लृप्ता एव सन्ततम् ।

तस्मादपिण्डाख्याताः स्युः न नित्या इत्युदीरिताः ॥

पुनरन्यानि पुण्यानि श्राद्धान्याहुर्मनीषिणः । घृतश्राद्धं दधिश्राद्धं ग्रहणश्राद्धमित्यपि
तीर्थश्राद्धं पात्रयोगश्राद्धं वृषभनामकम् । पुनरन्यानि सर्वाणि देवयुक्तानि सन्ततम्
देवहीनानि सर्वाणि प्रेतोद्देशेन यान्यपि । तानि सर्वाण्यशुचिना निर्वर्त्यान्येव सर्वदा
अत्याज्यानि भवेयुर्वैकालप्राप्तानि केवलम् । तानि नैमित्तिकान्येव कामान्येवं बहूनि हि

पश्वर्थानि प्रजार्थानि जयार्थान्यपि तानि वै ।

पैतृकाणि महाभागे मदितानीति तान्यपि ॥

सूत्रकारोपदिष्टानि प्रथमादिष्वनुक्रमात् । तत्र त्रिप्रायिकेश्राद्धे भिस्सादानस्य केवलम्
प्राधान्यं कथितं सद्भिः वरणानन्तरं तदा ।

आसवं पाद्यमात्रं स्याद्गन्धादि तु यथारुचि ॥

कृत्वा वाऽप्यथवा दत्त्वा भुक्तिपात्रेऽभिधार्य वै । अन्नप्रक्षेपणं कृत्वाभिधार्य च ततः परम्
यथासंभवशाकाढ्यं सूपं चापि कृतं कृतम् ।

पयो वा दधि वा द्रव्यं भुक्त्यन्ते वृत्तये भवेत् ॥

तत्रान्नदाने गायत्र्या प्रोक्षणं देव स ... तरि ।

मन्त्रेण परिषिञ्च्यन्नं पृथिवीतेति मन्त्रतः ॥

कुर्यात्तु चोदकप्राप्तं निखिलं तत्समापयेत् । एवमेव पुनः प्रातः कार्यं श्राद्धं द्वितीयकम्
मध्याह्नेऽत्र तु सर्वाङ्ग कलापैरिति तत्क्रमः ।

रात्रौ प्रातश्च भोक्तारः भिन्नान्येवेति बाढवाः ॥

तयोस्तु विश्वदेवास्तु कथिताश्च कृता कृताः । श्राद्धत्रयान्नात्तत्कारे उक्तं समवदानकम्
कृत्वावघ्नेय मेवस्यात्प्राशनीयाद्वा यथारुचि । एवं यः कुरुते श्राद्धं त्रिप्रायकसमाख्यकम्
जन्ममध्ये सकृदपि कृतकृत्यस्त एव हि । सोऽयं सर्वेषु दिव्येषु क्षेत्रेषु विविधेष्वपि ॥

यावज्जीवकृतश्राद्धः भवत्येवेति गौत्तमः । श्राद्धमात्र उशन्त्वस्त्वा मनुनेति भवेत्तदा ॥

आवाहनं पितृणां तु चायं तु न ऋचा तथा । अपिण्डकेषु सर्वत्र नार्घ्यं नावाहनं तथा
सर्वत्र विहितं पादक्षालनं पाद्यमेव वा । आमश्राद्धे हिरण्ये च तत्पाद्यं तु कृताकृतम्
आसनं वरणं मुख्यं गन्धधूपादिकं न तु । सर्वोपचारकृत्याय दर्भा वा स्युस्तिला न चेत्
तद्दाने पृथिवीतेति ऋगेकाऽऽवश्यकी परा । सर्वमन्यं न किमपि तयोरेष विधिः स्मृतः
त्वं सोमेति द्वयं घास श्राद्ध आवाहने भवेत् । स्नातयोर्वृषयोरेव तदावाहनकर्म वै ॥

कर्तव्यस्यात्प्रयत्नेन नमो व इति मन्त्रतः । नमस्कारः प्रकर्तव्यः तदाहाख्ये च रोदने ॥
अत्यन्तावश्यको ज्ञेयः प्रणामोऽष्टाङ्ग वर्त्मना । दाहश्राद्धे रोदने च न संकल्प उदाहृतः

तयोस्तु संगवः काल श्राद्धयोर्न तु तत्परम् । त्वं सोमपितृभिश्चेति ऋग्वयेनाभवेद्यथा ॥
 आवाहनं पूर्ववत्स्यादाहेऽस्मिन्पितृकर्मणि । वह्निपदः पितरश्चेति ऋग्वयं रोदने भवेत्
 उपहृताः पितर इति मन्त्रश्राद्धेऽति संकटे । आवाहनं प्रकथितमन्यत्सर्वं कृताकृतम् ॥
 तर्पणश्राद्धपरतः नमो व इति मन्त्रतः । नमस्कारः पितृभ्योऽत्र कर्तव्य इति काश्यपः ॥
 इदं पितृभ्यो मन्त्रेण चटकश्राद्धकर्मणि । आवाहने प्रकथितः सर्वमन्यत्तु चोदनात् ॥
 विज्ञेयमेव विधिना आपत्कालेषु नान्यतः । यदग्ने कव्य मन्त्रेण स्वभुक्तिश्राद्धकर्मणि ॥
 आवाहनं स्वयं स्वस्मिन्सम्यगेव विभावयेत् । तत्पिण्डदानात्परतः कृत्स्नाङ्गकरणात्परम्
 आत्मभुक्तिस्तुविहिता तस्यामापोशनक्रियाम् । स्वयमेवस्वहस्तेन स्वहस्ते वै समाचरेत्
 उत्तरापोशनेऽयेवं विधिरुक्ता मनीषिभिः । पुत्रभुक्तिश्राद्धकर्म विशेषत्वं परैव सा ॥
 इतिकर्तव्यता प्रोक्ता निखिला ब्रह्मर्षीदिभिः । पादप्रक्षालनंकार्यमथवापाद्यकर्म तत्
 प्रदानं तेन पात्रेण नात्मनो ह्यङ्घ्रिसेचनम् । न विष्ट्रोऽत्रदेयं स्यादासनस्यैव दानकम
 त्वमग्न ईडितो मनु मन्त्रेणावाहनक्रिया । प्रदक्षिणानुव्रजने वर्जयेदेव तत्र ते ॥

ताम्बूलं दक्षिणा ते द्वे चोदिते हि कृताकृते ।

अन्नशेषस्य संप्रश्नः संत्याज्यः किंतु तं स्वयम् ॥

तदुत्तरं विना तूष्णीं षष्ठेर्वन्धुभिराचरेत् । तद्भोजनं यथावच्च शिष्टं सर्वं यथा क्रमात्
 समनुष्ठेयमेव स्याद्रीतिरेवं हि तद्विदाम् । घृतश्राद्धं तीर्थयात्रा दिवसे क्रोशगश्चरेत् ॥

मन्दिरे यस्यकस्यापि स्त्रीयं कृत्वा स्थलं क्रियात् ।

दानधर्मेण भार्यादिद्रव्याणामथवा गिराम् ॥

प्रोक्त्यातत्स्वामिनो वापि परस्परमतेन वा । दाक्षिण्यप्रीतियोगाभ्यां तत्र निर्वर्तयेत्तु तत्
 सुवर्णेनाथ वामेन शक्तिहीनस्य सा क्रिया । चोदितापदि धर्मज्ञैः दधि श्राद्धं तथैव च
 क्षेत्रत्यागदिने तत्स्याद्गव्यूयां यत्र कुत्रचित् । नान्दीवन्नापि दैवत्यं तच्च श्राद्धं प्रचक्षते
 तीर्थश्राद्धं सदाप्रोक्तं धर्मज्ञैर्बहुदैवतम् । जीवश्राद्धं पञ्चा ... दैवतं तत्तु केवलम् ॥

विलक्षणं सर्वश्राद्धक्रियाभ्योऽतीव तन्त्रतः ।

तुर्यं विशान्नाश्रमं तच्छ्राद्धं कुर्यान्न चान्यतः ॥

वर्णीं गृही वनी वापि क्रमसंन्यासकर्मणि । जीवश्राद्धविधानेन कुर्यादेव द्विजोत्तमः
आपत्संन्यासकार्ये तु नियमा निखिला अपि । निवर्तन्ते द्विजातीनां प्रेषमात्रेण केवलम्
स संन्यासो भवेदेव तच्चित्तस्य महात्मनः । संन्यासाद्ब्राह्मणस्थानं सर्वशास्त्रेषु निश्चितम्

न संशयोऽत्र कर्तव्यः संशयी पापभागभवेत् ।

संन्यस्तानां कदाचित्स्यान्नाशौचं नोदकक्रिया ॥

भिक्षोर्मृतस्यकायोऽयं दर्भग्रन्थिहिरण्ययोः ।

तुलितः सर्वदा प्रोक्त पवित्रः पावनो महत् ॥

नर्य भस्मैकतुलितः स्पर्शनादघनाशनः । सालिग्रावा यथा शुद्धः वज्रकीट वहिष्कृतः ॥

अत्यन्तैकमहाशुद्धः स्पृष्टमात्रावारकः । कृष्णाजिनव्याघ्रचर्म खड्गशङ्खवदेव वै ॥

अङ्गीकार्यः पूजनीयः सर्वैरपि नरैरति । वन्द्यः सेव्यो भावनीयः समस्कार्या विशेषतः

नोपेक्षा दृष्टिमात्रेण तदर्हकृतिमात्रतः । शताग्निष्टोमजफलं नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥

यतिक्रियाविशेषोऽयं पुत्रपौत्रप्रदायकः । तत्कर्ममध्ये तच्छीर्षभेदनादेव देहिनः ॥

अनेकजन्मसंलीनमहाबन्ध्यात्वमोचिताः । पुत्रवन्त्यो भवन्त्येव तत्संततिरथात्र हि

ओषधिस्तम्बवदृद्धिं प्राप्नोति परमां तराम् । तच्छिरस्ताडननारिकेलेशस्य भक्षणात्

बन्ध्या पुत्रं लभेतैव शतवत्सरजीविनम् । तन्निवेदितवस्तूनां याचनापूर्वकेण ये ॥

कुर्वन्ति भक्षणं भक्त्या तेऽतिरात्रकतूद्ववम् । सुकृतं प्राप्नुवन्त्येव तदा तदनुयायिनः ॥

खननाख्योत्सवे पुण्ये महामुकुतपाकतः । संरभ्ये श्रेयसां हेतुभूते परमदुर्लभे ॥

पदे पदे प्राप्नुवन्ति दर्शादिफलमुत्तमम् । तदाप्लवनतस्सद्यः परं तत्खननाच्छिवात् ॥

जाह्नवीस्नानशतकसंभूतं यत्फलं महत् । अवाप्नोत्यवशान्नूनं सत्यमेतन्मयोदितम् ॥

यतेरेकादशदिने पार्वणश्राद्धनामके । संप्राप्ते तु तदा कश्चिद्यश्चिद्वास्यात्सुतेतरः ॥

तदात्मानं ततोभूयः अन्तरात्मानमेव च । परमात्मानमुद्दिश्य कर्म तत्तु प्रसाधयेत् ॥

पुत्रस्तु तातत्रितयं समुद्दिश्यैव तच्चरेत् । यतेस्तु ब्रह्मरूपत्वाद्ब्रह्मणः सर्वरूपतः ॥

पित्रादिरूपं वस्वादिरूपं सर्वं च तस्य वै । संगच्छतेऽतस्तत्सूनुः पितृरूपेण तच्चरेत् ॥

शिष्यादिकस्तथान्य(व्य)श्चेदात्मादित्रयरूपतः ।

तत्कार्यमिति धर्मज्ञसमयो विधिचोदितः ॥

द्वादशोऽह्नि तत्पश्चान्नारायणवलिः परा । तदुद्देशेन कर्तव्या तत्र साक्षाद्भरिः परः ॥

नारायणो देवता स्यात्पूर्वसूक्तविधानतः ।

पूजाहोमादिकः कृत्स्नः कर्तव्यत्वेन चोदितः ॥

द्वादशानां ब्राह्मणानां शास्त्रतः स्यान्नमन्त्रणम् ।

आराधनक्रिया पश्चात् त्रयोदशदिने भवेत् ॥

गु(रु)कभूतं समुद्दिश्य भिक्षुं मस्करिणं यतिम् । सिद्धिगतं परंहंसं करिष्ये राधनं त्विति

संकल्प आदौ कर्तव्यः पश्चादत्र वा देवताः । गुरुराद्यः प्रकथितः द्वितीयः परमो गुरुः

परमेष्ठिगुरुः पश्चात्पराव(प)रगुरुस्ततः । चतुर्थोऽत्र प्रकथितः कर्मण्याराधने सदा ॥

चत्वारो देवताः प्रोक्ताः पश्चात्ते केशवादयः । देवता द्वादश प्रोक्ताः शुक्लपक्षे न चेत्तथा

कृष्णे तु देवताः प्रोक्ता तथा संकर्षणादयः ।

केशवोऽत्र प्रकथितः पश्चान्नारायणः स्मृतः ॥

तृतीयो माधवः प्रोक्तः गोविन्दोऽथ तुरीयकः ।

पञ्चमो विष्णुरित्येव मधुसूदन एव हि ॥

षष्ठः प्रकथितः सद्भिः सप्तमस्तु त्रिविक्रमः ।

वामनः श्रीधरः पश्चात् हृषीकेशोऽत्र चोदितः ॥

पञ्चनाभस्तदा पश्चाद्दामोदर उदाहृतः । संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्चाथ कीर्तितः ॥

अनिरुद्धः चतुर्थः स्यात्पुरुषोत्तम इत्यथ । पञ्चमो देवता ज्ञेयः षष्ठोऽधोक्षज ईरितः ॥

नृसिंहा... तसंज्ञौ तो(तौ)देवौ पश्चात्प्रकीर्तितौ । जनार्दनस्तु नवमः उपेन्द्रो दशमस्ततः

हरिरेकादशो ज्ञेयः श्रीकृष्णो द्वादश स्मृतः । एतेषां वरणं कृत्वा पादौ प्रक्षाल्य पाथसा

मण्डलार्चनतः पश्चात्तत्पादसलिलं शिवम् । संगृह्य पाद पूजान्ते गोप्यं कृत्वैव निक्षिपेत्

धान्यराशौ तण्डुले वा ततः पादौ स्वयं यतन् ।

प्रक्षाल्य पादावाचम्य तान्विप्रांस्तदनन्तरम् ॥

समर्चयित्वा विधिना विष्टरासनपूर्वतः । उपचारैश्च निखिलैरर्चयेद्भरिबुद्धितः ॥

बुद्धिपात्रेषु तत्पश्चात्समाराधनवर्त्मना । परिवेषणतः पश्चात् गायत्र्या प्रोक्ष्य सर्वतः ॥

सहस्रशीर्षं देवं पुरुषसूक्तं तदुत्तरम् । जपित्वैवविधानेन तन्मुखेनापि तत्परम् ॥

वाचयित्वा महामन्त्रान्वैष्णवान्नतिपावनान् ।

तत्परं पूर्ववत्प्रोक्ष्य तदन्नाद्यखिलं च यत् ॥

देवसवितरिति तन्मन्त्रेणैव पतत्करः । परिषिच्य विधानेन पृथिवीतेति मन्त्रतः ॥

अभिमन्त्र्याखिलं वस्तुजालं पात्रप्रतिष्ठितम् । तत्करस्पर्शपूर्वेण संस्कृतात्परमेव वै ॥

अन्नत्यागां प्रकुर्वीत भोजयेच्चापि तत्परम् । भुक्तेः परं ब्राह्मणानां तीर्थराजार्चनं भवेत्

भुक्तिमध्ये ब्राह्मणानां सर्वोपनिषदामपि ।

वैष्णवानां च शैवानां मन्त्राणां वाचनं विधेः ॥

बलात्प्रकर्तव्यमेव तत्पूजान्ते द्विजन्मनाम् । महत्समर्चनं कृत्वा गन्धपुष्पादि दानतः ॥

ताम्बूलदक्षिणादीनां प्रदानात्परमेव वै । तत्तीर्थप्राशनं कृत्वा प्रदक्षिणपुरस्सरम् ॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ भोक्तृन्सर्वान्द्विजोत्तमान् । विसर्जयेद्विधानेन प्रतिमासं ततः परम्

आराधनाख्यमेवं स्यान्न कुर्यान्मासिकादिकम् ।

प्रतिसंवत्सरं तस्मिन्यतेः सिद्धिदिने सुतः ॥

तत्पार्वणविधानेन श्राद्धं कुर्याद्विधानतः । ब्रह्मभूतस्येति पितुः भवेत्तद्दधि विशेषणम् ॥

संन्यस्तस्य न चान्यस्य भवेत्तद्धि विशेषणम् । तादृग्विशेषणानुक्तौ यादृशस्य पितुर्यतेः

तच्छ्राद्धं तद्दिने व्यर्थं प्रभवेदेव केवलम् । असन्यस्तस्य तातस्य प्रोक्तौ तस्य मृताहके

विशेषणस्य प्रभवेच्छ्राद्धं मूलहन्तं परम् । पितृशब्दात्प्रसूश्राद्धं संकल्पादिषु तद्दिने ॥

उक्तिमात्रेण नष्टं स्याद्वदेत्तस्मात्तदानतम् । उपरागश्राद्धकर्म तत्स्नानात्परमेव वै ॥

पाकारम्भः प्रकर्तव्यः तत्पूर्वं सेव तं चरेत् । अत्यन्तबहुपुरुषरूपदार्थानां परिग्रहः ॥

नात्रात्यन्तावश्यकः स्यात्किं त्वल्पानां परिग्रहः ।

प्रकर्तव्यो विशेषेण भोक्तृणां यन्मतं परम् ॥

द्रव्यजातं सुसंग्राह्यं त्वराच्चात्र हि धर्मतः ।

अक्रोधः परमः प्रोक्तः शौचं चापि यथा तथा ॥

प्रभूतमाज्यं भोक्तृणां दधिशकचतुष्टयम् ।

तत्राय (त्) (त्रयं) (द्वयं) वापि सूपं पायसमेव च ॥

माषापूर्वास्तिलापूर्वाः पिष्टापूर्वाश्च केवलाः । उत्तमत्वेन कर्तव्याः कात्रस्याद्विष्टरः परः
अत्र दर्भासनं मुख्यं क्षणश्चापि तथा मतः । अर्घ्यः कृता कृतोऽत्र स्यादर्थदिवस्त्रयुगमकम्
एवमेव प्रदेयं स्यादत्राभरणजालकम् । विशेषेणात्र विप्राणां प्रदेयं स्याच्च शक्तितः ॥
दक्षिणात्र विशेषेण प्रदेया लोभशून्यतः । श्राद्धाङ्गतर्पणं चापि सच एवेति चोच्यते ॥
तस्मिन्नेव गृहेकार्यं तस्मिन्नत्यल्पके पुनः । तद्भुक्तिमध्ये तत्कुर्यात्तथा पिण्डक्रिया च सा
सर्वयत्नेन महता तस्मिन्नेव समाचरेत् । द्विमुहूर्तादिके तस्मिन्नन्नश्राद्धं प्रचक्षते ॥
सोमोपरागे सूर्योपरागे च ब्रह्मवादिनः । ग्रहणेऽत्र श्राद्धकर्ता ब्राह्मणो धर्मवित्तमः ॥
ऋणत्रयादिमुक्तः स्यादधीताखिलवेद्यपि । समनुष्टि तनिश्शेष सप्ततन्तुक्रियोऽय्ययम् ॥
भवत्यजातपुत्रोऽपि मुक्तस्यात्पैतृकादृणात् । एकब्राह्मणभुक्त्याऽत्र ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥
ता अग्निहोत्राहुतयः वत्सरस्य महात्मभिः विंशत्युत्तर तत्सप्तशतानि प्रातरीरिताः ॥

सायमाहुतयश्चापि तत्संख्याकाः पुनः शिवाः ।

कथिताः श्रुतिवाक्येन कृता एव भवन्ति वै ॥

सायं प्रातश्चाहुतयः एकस्य दिवसस्य ताः ।

चतस्र इति विज्ञेयाः वत्सरस्य तु ताः पुनः ॥

नववाकाः संख्यया स्युः ता एतेन कृता भ्रवम् ।

भवेयुरेव नास्त्यस्मिन्संशयोऽर्थे वदामि वः ॥

ब्राह्मणद्वयभुक्त्यात्र चतुर्विंशति संख्यया । कथिता इष्टयोऽब्दस्य कृता इत्येव निश्चिताः
ब्राह्मणत्रयभुक्त्या चेत्तन्निरुद्धिपशोरपि । शरदाग्रयणस्यापि करणे यत्फलं तु तत् ॥
कथितं श्रुतिवाक्येन तदवाप्नोत्ययं महत् । विश्वान्देवान्पितृन्मातृदारैर्मातामहैस्सह
अशेषकारुण्यपितृन्समुद्दिश्य विधानतः । वरयित्वा विप्रमुखादसंकीर्णत एव वै ॥

पृथक् पृथक् त्यक्तलोपः जामित्रारहितस्तदा ।

प्रधानहोमतत्पिण्डप्रदानाभ्यां तदा यदि ॥

साधिश्रवणकार्येण श्राद्धमेकं स भक्तिकम् ।

विचक्षणः करोतीह जन्ममध्येऽपि वा सकृत् ॥

सोऽयं महान्ति दानानि तुलादीन्यखिलान्यपि ।

प्राजापत्यादिकृच्छ्राणि व्रतानि विविधानि च ॥

भवेत्कर्ता तदा भूयः सर्वतीर्थं कृताप्लवः । कर्मणा तेन महता तुष्टोऽयं परमेश्वरः ॥

सर्वदेवमयो योगी ध्ये(योनारायणो)विभुः । तत्कांक्षितान्प्रदत्तैह कृत्स्नयज्ञात्मको विभुः

सायुज्यनामकांमुक्तिं प्रदद्यादचिरेण हि । सर्वयागमयस्यास्य श्राद्धस्य करणात्किल ॥

यागैर्यथातिमुष्ट णा । प्रतुष्टश्चित्तशुद्धिमतां दत्त्वाऽस्मै भक्तवत्सलः ॥

श्रवणादिमुखेनैव ज्ञानं तद्ब्रह्मबोधकम् । उत्पादयित्वा तद्द्वारा कृतकृत्यं करोति हि ॥

यागाकालाश्च भगवान्वेदमात्रस्वरूपिणः । संहृत्यलोकानखिलान् पुरादेवो जगत्पतिः

रूपहीनो वेदरूपधरो नित्योऽयमच्युतः । उत्तिष्ठत्किल (?) तस्मात्तु वेदो देवस्य विग्रहः

तद्वेदमन्त्रसाध्यत्वाद्यज्ञो वेदस्वरूप्यति । यज्ञस्यापि तथाकाले कर्तव्यत्वेन चोदनात् ॥

कालोऽपि वेदरूप्येव तन्मन्त्रैकनियोगतः । तत्रेदानीं तदासामित्येते पञ्चदशापि ते ॥

मुहूर्तानां मुहूर्ता हि पृथङ्मन्त्राश्च ते पुनः । एतर्हिक्षिप्रमजिरमाशुः पश्चान्निमेषकः ॥

फणोद्रवन्नति द्रवन्त्वरस्त्वरमाण एव च । आशुराशीयान्जवश्च स्मृतः पञ्चदशक्रमात्

एतेषामपि सर्वेषां तथा देवतया पुनः । अनुषङ्गः प्रकर्तव्यः इत्थंभावे तु सन्ततम् ॥

तथैव वक्ष्यमाणानां मुहूर्तानां च कृत्स्नशः । अह्नां तथैव रात्रीणां तादृङ्मन्त्रैर्यजुर्मयैः

इष्टका उपधेयाः स्युः सावित्रचयने किल । सावित्रचयनाख्योऽयं कालरूपविशेषकैः ॥

मन्त्रैस्तैरुपधेयत्वात् कालरूप इतीरितः । एतेनायं मन्त्ररूपः वेदरूपश्च चोदितः ॥

स यज्ञो भगवान्साक्षात्कर्ता नारायणो विभुः ।

आभूर्विभूः प्रभूः शम्भुस्तत्कायः परमेश्वरः ॥

साक्षान्मुहूर्तास्ते प्रोक्ताः अह्नां पञ्चदशापि वै ।

चित्रकेतुः प्रमानाभान्संभानपि तथा ततः ॥

ज्योतिष्मानपि तेजस्वानातपस्तदनन्तरम् । तपन्नाभितपन्पश्चाद्रोचनस्तदनन्तरम् ॥

रोचमानश्च कथितः शोभनः शोभमानकः ।

कल्याणश्चरमः प्रोक्तः कालोमन्त्रात्मकः परः ॥

एवमह्नां च नामानि शुक्लपक्षस्य वै क्रमात् । तत्र संज्ञाननामेदं प्रोक्तं प्रतिपदस्ततः ॥
 विज्ञाननाम तु पुनः द्वितीयाया भवेद्वि तत् । एवं क्रमेण प्रज्ञानं जानन्न तदनन्तरम् ॥
 अभिज्ञानतत्पञ्चमं स्यादथज्ञेयं क्रमेण वै । संकल्पमानं प्रकल्पमानं ह्युपपदेन वै ॥
 कल्पमानं च विज्ञेयमुपकल्पत्तं च कल्पकम् । श्रेयोवसीय आयुश्च संभूतं भूतमेव च
 अह्नां शुक्लस्य मन्त्राः स्युः क्रमेण न वेदतः । ... कृष्णपक्षस्य पतिपत्क्रमस्तथा ॥
 रात्रेर्मुहूर्ताः मन्त्रास्ते नामरूपाः सनातनाः । दाता प्रदाताऽऽनन्दश्च मोदस्तुर्यः प्रकीर्तितः
 प्रमोदः पञ्चमो ज्ञेयः पश्चादवेशयन्पुनः । निवेशयन्नेवमेव संवेशन इतिस्म वै ॥
 संसन्नस्तन्न इत्येव आभवन्विभवन्नथ । संभवन्नपि संभूतः भूतश्च चरमः स्मृतः ॥
 एतेमन्त्राः शुक्लपक्षरात्रीणां चोदिताः क्रमात् । मुहूर्ता वेदविहिता रात्रीणां मनवश्चते ॥
 विज्ञेया अथ भूयश्च क्रमेणैव महात्मभिः । दशा दृष्टा दर्शिता च विश्वरूपा सुदर्शना

आप्यायमाना तत्पश्चात् प्यायमानास्ततः पुनः ।

अप्याया सूनुतेरापि विज्ञेया तदनन्तरम् ॥

आपूर्यमाणा तद्वच्च पूर्यमाणा च तत्परम् । पूरयन्ती च पूर्णा च पौर्णमासी क्रमात्स्मृता
 कृष्णपक्षस्य तत्पश्चादह्नां तत्क्रमतः पुनः । मुहूर्तानां हि मनवः सविता प्रथमोऽत्र हि ॥

अथ प्रसविता ज्ञेयः दीप्तोऽयं दीपयन्नपि ।

दीप्यमानोज्ज्वलन्पश्चात् ज्वलिताऽथ ततस्तथा ॥

वितपन्संतपन्भूयः रोचनोऽथ तथैव च । रोचमानश्च शंभुश्च शुभमानस्ततस्मृतः ॥

अन्त्योवामश्च विज्ञेयः क्रमात्पञ्चदश (शैव) ते ।

अथाह्नां तस्य पक्षस्य मन्त्राः पञ्चदश क्रमात् ॥

विज्ञेयाः श्रुतिसंवेद्याः प्रस्तुतं प्रथमं स्मृतम् ।

विष्टुतं तु द्वितीयः स्यात् संस्तुतं तु तृतीयकम् ॥

कल्याणं विश्वरूपं च शुक्रं तत्परमेव वै । अमृतं च ततो ज्ञेयं तेजस्वी तदनन्तरम् ॥

तेजः समिद्धं तत्पश्चादरुणं भानुमत्ततः । मरीचिमत्ततो ज्ञेयं तथाभितपदेव च ॥

तपस्वच्च ततो ज्ञेयं कृष्णपक्षस्य तत्परम् । अह्नां मुहूर्तमन्त्रास्तु विज्ञेयाः श्रुतिचोदिताः ॥

अभिशास्ताऽनुमन्ताऽथ चाऽऽनन्दो मोद एव च ।

प्रमोद आसादयश्च पश्चात्तु स्यान्निषादयन् ॥

संपादयंश्च संशान्तः शान्तश्च तदनन्तरम् ।

आभूर्विभूः प्रभूः शंभूर्भुवश्चान्ते प्रकीर्तितः ॥

सुता च सुन्वती चैव प्रसूता तदनन्तरम् । सूयमाना च तत्पश्चात् प्रोक्ताभिषूयमाणका

पीती प्रपा च संपा च वृत्तिश्चापि ततः पुनः ।

तर्पयन्ती ततो ज्ञेया कान्ता काम्या च चोदिता ॥

कामजातायुष्मती च पश्चात्कामदुघेतिते । मन्त्राः पञ्चदशप्रोक्ताः क्रमेणैवेति तत्क्रमः

पवित्राद्या द्वादशैते पक्षाणां मनवो मताः । जयन्नाद्यास्तथा कृष्णपक्षाणां द्वादश स्मृताः

पवयिष्यन्पवित्रं च पूतो मेध्यो यशस्तथा ।

यशोयशस्वानायुश्चामृते जीवस्ततः पुनः ॥

जीविष्यन्नपि तत्पश्चात् स्वर्णलोकस्तथैव च ।

सहस्रांश्च सहीयांश्च चोजस्वान् सहमानकः ॥

जयन्नाभिजयन्पश्चात्तथा संद्रविणः परः । द्रविणोदास्ततोज्ञेयः पश्चादाद्रपवित्रकः ॥

हरिकेशोऽपि मोदोऽथ प्रमोदोऽन्त्यः क्रमात्स्मृतः ।

पक्षे कालाख्यमन्त्राः स्युरिमे सर्वे सर्वेऽत्र वै ॥

कल्याणे क्षुद्रचयनेऽप्यरुणादिकचोदिताः । त्रयोदशापि ते ज्ञेया मासानामेव केवलाः

अरुणश्चैत्रमासस्य वाचकोह्यत्र तत्परम् । क्रमादेव सुविज्ञेया अथारुणरजाः पुनः ॥

पुण्डरीको विश्वजिच्च ह्यभिजिच्च ततः पुनः ।

आद्रश्च पिन्वमानश्चान्नवानपि तथा ततः ॥

रसवांश्च निरावांश्च सर्वौषध इतीव वै । संभरश्च महस्रांश्च मासमन्त्रा उदीरिताः

पूर्वपक्षस्त्वहोरात्रमुहूर्तैः संख्यया खलु । चोदितः षष्टिसंख्याक कृष्णपक्षश्च तादृशः

अतस्ते षष्टिसंख्याकाः वत्सराः प्रभवादयः ।

दिवसानां च घटिकाः संख्यायां षष्टितः कृताः ॥

कलाश्च विकलाश्चापि षष्टिसंख्या प्रमाणतः ।

कलृमा एव विशेषेण सर्वेष्टिष्वपि वच्मि वः ॥

हवि ... पञ्चदश पक्षसंख्या प्रमाणतः । चोदिताः क्लिभूयश्च तासां वर्णाश्च ते पुनः

षष्ट्यात्मनो वत्सरः स्याद्दिनानां संख्यया तथा ।

शतत्रयात्परं प्रोक्ताः षष्टिश्चेति मनीषिभिः (हात्मभिः) ॥

पञ्चसंवत्सरमयं जगदेतच्चराचरम् । ते पञ्चवत्सराश्चापि त इमे संप्रकीर्तिताः ॥

भवोऽव्ययो विलम्बी च पश्चात्साधारणः पुनः ।

दुन्दुभिश्चेति कथिता मूलभूतस्तु वत्सराः ॥

एतेषु वत्सरेष्वेव महामघ इति क्रमः । वाजश्चमे भवयुजुः युवस्य प्रसवस्तथा ॥

धातोः प्रयतिरित्युक्तः प्रसितीरैश्वरान्तथा । बहुधान्यस्यरीतिर्वै क्रतुः सोऽयं प्रमाथिनः

विक्रयमस्यस्वरः पश्चात् द्विषोर्लोकश्च तत्परम् ।

श्रावा स्याच्चित्रभानोस्तु स्वभानोः श्रुतिरेव च ॥

धारणस्य तथा ज्योतिः पार्थिवस्य सुवस्ततः ।

अथ व्ययस्य प्राणः स्यादपानस्सर्वजितो हि ॥

सर्वधारिणो व्यानः स्यादसुश्चापि विरोधिनः ।

विकृतश्चापिचित्तं स्यात्स्वरस्याधीतमित्यपि ॥

वाङ् नन्दनस्य कथितः विजयो मनप ... । जयस्य चक्षुरित्युक्तं श्रोत्रं स्यान्मस्य तु

ततो दुर्मुखिनोदक्षः हे विलम्बेर्वलंचमे । अजो विलम्बिनः पश्चात्सहश्चापि विकारिणः

आयुश्च शार्वरिणः प्लवस्याथ जरा ततः । आत्मा चैव शुभकृतः तनूः शोभकृतः पुनः

क्रोधिनः शर्म च प्रोक्तं वर्मविश्वावसोस्तथा ।

पराभवस्याङ्गानि स्यात् प्लवङ्गस्यास्थानि चेति वै ॥

कीलकस्य परुष्येव सौम्यस्य शरीराणि च ।

साधारणस्य ज्येष्ठं स्यादाधिपत्यं विरोधिकृतः ॥

मन्युः परीधाविनश्च प्रमादीचश्च भामके । नन्दनस्याम एवं च ... ॥

राक्षसस्याथचाम्भस्याज्जेमा चापि नलस्य च ।

महिमा पिङ्गलस्याथ कालयुक्तेर्वरिमा च ॥

सिद्धार्थिनश्च प्रथिमा शौद्रिणो वर्ष्म तत्क्रमात् । दुर्मतेर्द्राघुयाचेति निर्णयः क्रमतो मतः

अथ वृद्धं दुन्दुभेः स्याद्बुधिरोत्कारिणो वृद्धिः ।

सत्यं रक्ताक्षिणश्चेति श्रद्धाऽथक्रोधनस्य च ॥

अक्षयस्य जगच्चेति प्रभवस्य धनं तथा । विभवस्य वशः प्रोक्तः शुक्लस्य त्विषिरेव च

प्रमोदूतस्य च क्रीडा प्रजोत्पत्तेर्मोद एव च ।

आङ्गिरसस्य जातिं स्यात् श्रीमुखस्य जनिष्माणम् ॥

एवं भूयः श्राद्धसर्वं यजुषां क्रमतो भवेत् ।

आवृत्तिश्च तथा प्रोक्ता पौनः पुन्येन नान्यथा ॥

सोमकानि यजुष्येवं वत्सरीयाणि तानि वै । वत्सरा ऋषयस्तेषां तद्दृष्टत्वात्तथा पुरा

मन्त्राणामृषयोज्ञेयाः देवता भगवान्विभुः । संकर्षणस्वरूपोऽयं योऽसावादित्य उच्यते

उत्तमः पुरुषो दिव्यः देवता रुद्र उच्यते । एतन्मन्त्रात्मकः कालः यज्ञश्चापि तथाविधः

मन्त्रकालाखिलः सर्वमापोऽयं भगवान्हरिः । तुष्टये देवदेवस्य सदा यज्ञैर्यजेत वै ॥

ब्राह्मणोऽतो नित्यमेव यज्ञमध्ये वदामि वः । उत्तमः पैतृको यज्ञः तत्र सर्वेऽपि देवताः

पितरश्चापि तुष्यन्ति ब्राह्मणोऽत्रादिकारणम् ।

महानाहवनीयः स्याच्छुचिः शौचसरस्वती ॥

स्थालीपाको यथा स्वाग्नौ क्रियते श्रुतिचोदनात् ।

तथा स्वाग्नौ स्वपाकान्नापैतृकं तत्समाचरेत् ॥

स्वपाकान्नश्राद्धकर्म योग्यताविधुरो द्विजः ।

सद्यः पातित्यमाप्नोति ब्राह्मण्यान्नात्र संशयः ॥

दुर्लभे ब्राह्मणानां तु कदाचिद्दैवयोगतः । देशापत्सु जनापत्सु चोरशत्रुभयेष्वपि ॥

विश्वान्देवान्कूर्चमुखे समावाह्यैव वा न चेत् ।

त्यक्त्वा वा पैतृकं कर्म मात्रमग्ने यथाविधि ॥

अन्नत्यागात्परं भक्त्या सर्वं कृत्वा ततः पुनः ।

• ... दन्सं परिषिच्याऽथ गायत्री प्रोक्षणात्परम् ॥

प्राणादि पञ्चभिर्मन्त्रैः यावत् द्वात्रिंशदाहुतीः ।

षडावृत्या पुरोकृत्वा दानेनाथ समानतः ॥

द्वात्रिंशत्स्यसिद्ध्यर्थं जुहुयाज्जातवेदसि । पिण्डदानं ततः कृत्वा श्राद्धशेषं समापयेत् ।
अप्सु वा पैतृकं तद्वै पूर्वमार्गेण साधयेत् । नामेन कुर्यात्पित्रो स्तद्यत्स्मृत्वाश्राद्धकर्मयत् ॥

स्वकृतान्नेन तत्कुर्यादत्यापत्स्वापि वाडवः ।

पित्रोः प्रत्याब्दिकदिने बन्धुभिन्नजनैः कृतम् ॥

यदन्नं तद्राक्षसं स्यात्स्वेषु सत्सुजनेषु चेत् । अपपात्रैः श्वभिर्दुष्टैः दर्शनं श्राद्धकर्मणः ॥
वेदशाखा सूत्रशाखा शिखाभ्रष्टैर्विशेषतः । शाखारण्डैः नष्टवेदैः सन्ततं परिचक्षते ॥

वर्णिनः स्वजनाभावे संभोज्यान्नजनैः परैः ।

सद्भिः शिष्टैः कृतेनैव भक्तेन स्यात्तु पैतृकम् ॥

परस्परं ब्राह्मणाः स्युः संभोज्यान्ना स्वरूपतः । आचारतो वेषतश्च जनवादेन कीर्तितः
तेषां स्वरूपं विदितं प्रभवेदेव केवलम् । पुनस्संभाषमात्रेण वेदवर्णोक्तितस्तथा ॥

व्यवहाराच्चर्यया च सदसत्त्वं च देहिनाम् । सुस्पष्टमेव प्रभवेदतो ब्राह्मण्यमेककम् ॥
प्रपूज्यमतिगोप्यं च दर्शनादेव सन्ततम् । वन्दनीयं विशेषेण न परीक्षास्पदं भवेत् ॥
महादानेषु सर्वेषु परीक्षाऽऽवश्यकी परा । कन्यादाने च कव्ये च बन्धुत्वान्वेषणं परम्
चेतसैव विनिश्चित्य प्रकुर्यात्तत्परं तु तत् । श्राद्धात्परं भूरिभुक्तौ स्वजनान्ब्राह्मणान्परान्

सज्जनानेव गृह्णीयादसतोऽत्र त्यजेद्बुधः ।

ये कर्मनिष्ठाः स्वजनाः सज्जनप्रतिपूजकाः ॥

पापभीता दयावन्तः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ।

स्नानसन्ध्या परा नित्यं वेदश्रोत्रियमानसाः ॥

अघातुकाः सुसंप्राह्याः सुसंभोज्याश्च भक्तिः ।

स ता श्राद्धात्परं भूरि भोजनं च यथैव तत् ॥

साक्षाच्छ्राद्धं प्रकर्तव्यं शुद्धचित्तेन सूरिणा ।
 शुद्धचित्तस्त्यक्तलोभः शक्तिमान्सम्यगाचरेत् ॥
 बन्धूनपि श्राद्धदिने भूरिभुक्तौ नटान्विटान् ।
 गायकान्गणिकान् शिल्पालिङ्गिनो वेषधारिणः ॥

ब्रह्मद्विषस्तान्ब्रह्मघ्नान्कर्कशान्दीर्घमत्सरान् । जनाक्रोशकरान्ग्रामहिंस्रकान्देवलानपि ॥
 उलूकव्रतिनो मूर्खान् विडालव्रतिनोऽपि च । मित्रस्वामिगुरुद्रोहानिरतान्देवदूषकान्(?)
 देवस्वहारिणो ब्रह्मस्वामिद्रव्यहरानपि । स्वकार्यमात्रप्राधान्यपरमान् परधातिनः ॥

अभिशास्तानपभ्रंशान् पुरुषापशदांस्तथा ।
 अभिनिम्नुक्ताभ्युदितान् कुण्डानपि च गोलकान् ॥

बहिष्कृतार्यान्ग्रामधर्मविधुरान्देशधर्मतः । उज्जितान्परिवेतुंश्च परिवित्ति योन्मुखान्
 त्यक्तभार्यान्त्यक्तमातृपितृनुत्राद्युपोषकान् । विप्रवैषाद्विप्रमात्रान् नास्तिकान्यपलानपि

वैदिकाकारसुभगान् सन्ध्यास्नानबहिष्कृतान् ।

अपि सन्ध्यामन्त्रमात्रप्रयासविधुरान्पुनः ॥

कृतात्यन्ताभिनयतः वैदिकत्वप्रसिद्धिगान् । वेदोक्त्यपस्वरशतघोरवाक्यान्सभास्वपि
 कुतर्कमात्रवचनो ज्ञानियोग्यैकवेषिणः । न भोजयेन्नाचर्येच्च परिषत्सुसतां तथा ॥
 कव्येषु फलभूतेषु वेदगैर्ब्राह्मणैः सह । अवैदिकान्शस्त्रधरान् अवकीर्णान्कुवर्त्मनः ॥

वार्धुषीन्भगजीवींश्च स्त्रीजितान्स्त्रीपरान्खलान् ।

भुजङ्गान्कङ्कतश्मश्रून् बन्धुत्वेनागतानपि ॥

वर्जयेद्देवदूरेण किंपुनर्भुक्तिकर्मणि । ब्रह्मज्भो(हा) ब्राह्मणश्च वीरहा भ्रूणहा तथा ॥
 गुरुतल्पगतः पापी तत्संयोगी च पञ्चमः । तत्समाः पुनरन्ये च नेक्षणीया हि तद्दिने
 न तद्दिनसमं पुण्यं दिनमन्यन् विद्यते । महात्मनां ब्राह्मणानां तत्कोटिग्रहणादिकम् ॥
 तत्र दत्तमनन्तं स्यादण्डंसेरुसमं भवेत् । देवा मनुष्याः पितरः नैऋ(ऋ)ताश्चात्र केवलाः
 नन्दन्ति किलसर्वेऽपि पितृणां सुहृदो हि ते । देवा अश्नन्ति पूर्वाह्णे मनुष्याश्चैव मध्यमे

अपराह्णे तु पितरः रात्रावेव तु राक्षसाः ।

ब्रह्मज्ञानी पण्डितो वा मूर्खो वाऽप्यथवाऽबला ॥

मृताहं समतिक्रम्य चण्डालः कोटिजन्मसु । प्रतिसंवत्सरं कुर्यान्मातापित्रोः मृतेऽहनि
पितृव्यविधानेन श्राद्धं मन्त्रविधानतः । तद्विधानं परित्यज्य होमतन्त्रादिवर्जनात् ॥
कृतं यन्नभवेच्छ्राद्धं तथा तस्मान्न चाचरेत् । पितृव्यस्याप्यपुत्रस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य चैव हि
मातामहस्य तत्पत्न्याः कलत्रस्य प्रपुत्रिणः । श्राद्धमात्रेषु सर्वेषु चान्द्रोमासः प्रशस्यते
चन्द्रसौरकयोर्योगे मुख्यं स्यादिति केचन । असंभवे चान्द्रमानः प्रशस्तस्स तु वैदिकः ॥
पारणेमरणेनृणां तिथिस्तात्कालिकी परा । मृतिकाले तिथिर्यास्यात्साम्राह्या पितृकर्मणि
महागुरुणां संस्थायां भार्याया मरणे तथा । भोजनं स्यादाकालं आतुरं व्यञ्जनं तथा
पितामहादिसुमहज्जातीनां मरणे पुनः । यथारुच्येव कुर्वीत तत्प्रीत्यनुगुणेन वै ॥
मातुलस्या स पुत्रस्य श्वशुरस्य गुरोरपि । त्रिदिनाशौचिनां सर्वं बन्धूनां हीनपुत्रिणाम्
मित्रस्य स्वामिनश्चापि भयात्त्रातुमैहात्मनः । अभावे कर्मकर्तृणां कर्मकुर्यात्स्वयंबुधः

सपिण्डीकरणान्तानि कृत्वा श्राद्धानि कृत्स्नशः ।

त्रिदिनैरेवनिखिलं वत्सरश्राद्धतस्त्यजेत् ॥

पूर्णसूतकिनां सर्वं सूतकान्तेऽखिलं भवेत् । नान्येषामितिसर्वेषां सिद्धान्तो मुनिभाषतः ॥
दशरात्रात्परं पत्न्याः श्रुत्वा भर्ता विपर्ययम् । यावत्संवत्सरेकुर्यात् त्रिदिनाशौचमेव वै
भर्तुः श्राद्धं तु नारीणां निखिलं स्यात्समन्त्रकम् ।

ऋत्विङ्मुखेन तत्कार्यं न त्याज्यमपि केचन ॥

यया गार्हस्थ्यसंप्राप्तिः तस्याः पत्न्या विशेषतः । पुत्रश्राद्धसमत्वेन श्राद्धमौपासने भवेत्
यया पुनर्वह्निसिद्धिः तादृक्पत्न्याश्च पैतृकम् । सर्वमौपासने कार्यं वह्निसिद्धिर्यया न तु
तस्यालौकिकवह्नौ स्यात्पत्नीमात्रस्य केचन ।

लौकिकामौ प्रशंसन्ति श्राद्धं पिण्डसमन्वितम् ॥

धर्मपत्नीं विना सर्वभार्यामात्रस्य पैतृकम् । संकल्पश्राद्धमप्येके प्रवदन्ति मनीषिणः ॥
अत्र केचित् पुनः प्राहुः तच्छ्राद्धज्ञा महर्षयः । वैधार्थहारिणीमात्रे श्राद्धं वैदिकवह्निकम्
प्रकर्तव्यं विशेषेण यत्तात्सार्धशरीरिणी ।

सर्वाश्च सोमपीथिन्यो यदिभार्यास्त्रिपञ्चषाः ॥

तासां वैदिक वह्नौ स्याच्छ्राद्धं पिण्डसमन्वितम् ।

संसर्गहोमशून्यानां तदग्न्यातां प्रदाह्य वै ॥

तच्छ्राद्धं तत्करं भर्ता प्रकुर्याल्लौकिकानले । पृथक्त्वेनात्रशास्त्राणां स्वचित्तस्य यथावृत्ति
तत्प्रीत्यनुगुणेनैव तत्तच्छ्राद्धं समाचरेत् । जन्मावसानसमता राशेश्चैत्रादिना यथा
भवेत्तदेव तं नाम मेषादीनां न चेन्न तु । मेषादीनि तु नामानि शशीनामेव केवलम् ॥

समानानां कदाचित्स्यान्मासनामानि तानि हि ।

दर्शान्तः पूर्णिमामध्यः ऋत्वर्धः प्रतिपन्मुखः ॥

त्रिंशत्तिथिः पक्षयुगं कृत्स्नाब्दक्षयवृद्धिकः । मासनामानि चेमानि राशीनां घटते न तु
सर्वथैव ततस्तेषां पृथङ्मासाश्च राशयः । मृताहलक्षणं तत्तु युज्यते न तु राशिषु ॥
एवं हि लक्षणं तच्च सर्वशास्त्रेश्च(५)निश्चितम् । मासपक्षतिथिस्पष्टे यो यस्मिन्प्रयतेऽहनि
प्रत्यब्दं तु तथाभूतं मृताहं तस्य तं विदुः । पक्षद्वयात्मको मासः ऋतुर्मासद्वयात्मकः ॥
ऋतुः षडात्मकश्चाब्दः मधुर्माधव एव च । वसन्त इति वेदोक्तः शुक्रश्च शुचिरप्यथ ॥
ऋतुग्रीष्म इति प्रोक्त नभोनभस्य एव च । वर्षा इति समाख्यातः इषश्चोर्जश्चशारदः

सहस्रचापि सहस्यश्च हेमन्त इति चोदितः ।

तपश्चापि तपस्यश्च शिशिराख्यो महात्मभिः ॥

मासपक्षर्तवः सर्वेः तिथयो निखिला अपि । पक्षद्वयनिदानानि चान्द्रमाने तदात्मनि
सम्यक् घटन्ते ते सर्वे न सौरे तु कदाचन ।

अतस्तेनैव मार्गेण श्रुत्युक्ते साखिलाः क्रियाः ॥

विशेषज्ञाः प्रकुर्वीत न चेत्कर्माखिलं तु तत् । वैगुण्यमेव लभते अतः श्राद्धं च तादृशम्
मृताह एव कुर्वीत तदतिक्रमणेन तु । प्रत्यवायं महान्तं तं लभते ब्राह्मणक्षमात् ॥
पित्रोश्च मातामहयोः तुलिते श्राद्धकर्मणि ।

न पितामहयोश्चेति श्रीमान् शातातपोऽब्रवीत् ॥

अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः । प्रत्यब्दं लौकिके वह्नौ तत्पत्न्योरपि वैधतः
पितामहस्य तत्पत्न्याः प्रपितामहयोरपि । कृते कर्मण्यपि ततो वर्षश्राद्धं कृताकृतम् ॥

पितृश्राद्धेन ते यस्मात्कर्मणि प्रतिवत्सरम् । क्रियातो लगतो मन्त्रैः ततस्ते तु कृताकृते
पित्रोश्च मातासहयोः सपत्नी मातुरेव च । श्राद्धान्यकरणात्सद्य चण्डालत्वैकदानि हि

मृताहश्राद्धमेकं तु न हिरण्यादिना चरेत् ।

कदाचिदपि वच्म्येतत्किंत्वन्नेनवतच्चरेत् ॥

तत्राग्नौ करणंमुख्यं ब्राह्मणानां च भोजनम् । पिण्डप्रदानं तत्पश्चात् त्रयमेतत्तु पैतृकम् ॥

तत्र होमस्तु मुख्यः स्यात्तच्छेषेण ततः पुनः ।

स्वधेयमिति मन्त्रेण ह्यभिघार्यास्य पार्वणे (पर्णके) ॥

त्रिवारमन्नं निक्षिप्याभिघार्य च पुनः तथा । मेक्षण प्रहरं कुर्यात्तस्मिन्नौपासनेऽनले ॥
वस्वादीनां तदन्नं तु सोममेधो मधूनि वै । मेरुमन्दरतुल्यानि पितॄणां संभवन्ति वै ॥
स्वधेयान्नैकरहितश्राद्धं यत्स्यात्प्रमादतः । वृथा श्राद्धं भवेत्सद्यः तच्छेषेण भवेत्ततः ॥
यत्नात्तत्पिण्डकरणं नेचेत्पिण्डं वृथा भवेत् । लौकिकेवैदिकेवाग्नौ श्राद्धपाकं विधीयते ॥

श्राद्धे पाककर्तारः

प्रजावती मातृभार्या ज्ञातिपत्न्यादिकाः स्वकाः ।

मुख्याः स्युः पाककार्यस्ताः तदाशौचानुगुण्यतः ॥

बन्धूनां पाककरणंज्ञेयं स्यादुत्तरोत्तरम् । यथा वा शौचसंबन्धः गोत्रिणामप्यगोत्रिणाम्
प्रवर्तते तथा ज्ञेयोऽधिकारः पाककर्मणि । श्राद्धकर्मसु विज्ञेयः सृ महात्मभिः ॥
तादृक् पाकाधिकारैकजनाभावे स्वयं बुधः । पाककर्म यथाशक्ति कुर्यादेव स तादृशः
पाकोऽयं श्राद्धदेवानां पीयूषशतकाधिकः । प्रेतकर्मसु सर्वत्र बन्धूनामधिकारिता ॥
दशस्वपि दिनेष्वेषु न स्त्रीणामिति देवलः । पतिसङ्गविहीनानां विधवानामथापि वा
अधिकारः कर्तरि तु बालेऽस्मिन्ब्रह्मचारिणी । नग्नश्राद्धे नवश्राद्धे षोडशश्राद्धकर्मणि
तथा वृषोत्सर्जनेऽस्मिन् सपिण्डे प्रेतकर्मके । पाकाधिकारः कथितः विधवानां विशेषतः
तेषु श्राद्धेषु नितरां कर्तृणामेव केवलम् । परेषां पुरुषाणां वा बन्धुष्वेवाधिकारिता ॥
प्रेतकृत्येषु सर्वेषु चिरण्टी दूरगा भवेत् । परं सपिण्डीकरणादानुमानिककर्मसु ॥

चिरण्टीनां पाककार्येऽधिकारः स्यान्न तत्पुरः । पाकं यद्यसमीचीनं कारये ... मः ॥

मोहेन कुरुते श्राद्धं पितरस्तस्य तत्क्षणात् ।

वातापील्वलसन्दष्टाः खण्डिता भक्षितास्तथा ॥

सन्दग्धा मूच्छितानष्टाः भवेयुर्नरकाश्रयाः ।समीचीनं पाकेऽस्मिन्प्रतिपादितम्
विभिन्नसूतकिकृतं गर्हितं शास्त्रजालकैः । ये भिन्नसूतकाचाराः भिन्नभाषा परिग्रहाः
श्राद्धपाकक्रियानर्हाः त ... कीर्तिताः । तत्स्पष्टं श्राद्धशिष्टान्नं श्राद्धकर्ता परित्यजेत्
श्राद्धात्परं च यत्नेन तत्पूर्वं सुतरां किमु । विभिन्नसूतकाचारान् आमानयनकर्मसु ॥
संयोजयेन्नपाकादि क्रियास्वत्र कथंचन । इष्टभोजनकार्येषु श्राद्धभिन्नेषु तद्दिने ॥

योजयेत्स्वजनाभावे भिन्नसूतकिनो जनान् ।

भिन्नाशौची भिन्नवेषी भिन्नभाषापरिग्रहः ॥

जनभाषा विकारी च श्राद्धकर्मसु गर्हिताः ।

पाकक्रियायां सुतरां संत्याज्याः पितृदुःखदाः ॥

ते सर्वे कथिताः सद्भिः अभिश्रवणकर्मणि । पादप्रक्षालनांगारलेपनादिषु वस्तुनाम् ॥

आमानां फलमूलाग्निगोमयानयनादिषु । पाकात्परं तु ज्ञातीनां शुद्धानां स्पर्शनेऽधिकः

अधिकारोऽस्तिबन्धूनां नान्येषामिति निश्चयः ।

पिण्डोद्वासनतः पश्चात् पिण्डानां भिन्नगोत्रिणाम् ॥

अधिकारः स्पर्शने स्यात्तच्छिष्टतिलदर्भयोः । संस्पर्शनाधिकारः स्याद्विप्रमात्रस्य वै सतः

नासतस्तु कदाचित्स्याद्भानयनकर्मणि । ऋत्विजां मुख्यकर्तृत्वं स्वस्मादपि विशेषतः

कथितं ब्रह्मनिष्ठैस्तैः समिदाहरणे तथा । भिन्नभाषो भिन्नवेषः शिखाभिन्न कुक्कच्छकः

असिद्धशाखासूत्रश्च निन्दितः श्राद्धकर्मणि । एतद्धस्तस्पर्शनेन पक्वमात्रं सुनिन्दितम् ॥

रक्षसां भाग एव स्यान्न पितृणां तु तद्भवेत् ।

समानसूतकाचारा भिन्नकच्छा वला जनाः ॥

व्यत्यस्तानारीसंयानाः पितृणां भयदायकाः ।

व्यत्यस्तकच्छाचारान्निशिखादूरी कृता जनाः ॥

पितृणां नेत्रपीडायै इष्टमात्रा भवन्तिते । दिव्यभाषाश्रवणतः येषां केषां तु तां तु ते परा ... जायतेऽत्र दिव्यां वा ... तः । ... च येद्वा विशेषेण न भाषा वाचयेत्पराम् अतो यत्नेन विबुधः यत्तो नौ पितृकर्मणि । दिव्यभाषानधिकृतः भाषयात्र स्वकीयया प्रयत्नेन न ... खिलाम् । तद्दिने वैदिकं शास्त्रं विशेषेयोपबृंहयेत् ॥ सोमोत्पत्तिं चेतिहासं चरणव्यूहसंज्ञिकाम् । तथा सत्य तपो वक्त्यं तद्विधाकशास्त्रकम् पुराणस्मृति जा ... द्विजन्मनाम् । भुक्तिकाले विशेषेण रक्षोघ्नं प्रथमं ततः ॥

वैष्णवाः पावनाः श्रीकाः पैतृकाः पितृवल्लभाः ।

ताञ्छ्रावयेद्विशेषेण घण्टानादं विशेषतः ॥

करतालं को ... शब्दं उच्चैर्घोषं च वर्जयेत् । गाधा(था)विशेषांस्तत्काले प्राकृत्यान्प्रवर्जयेत् लौकिका प्रकृताभाषा पामरीया परोक्ततः । अपि साक्षाद्देवदेवगुणवृन्दसुबोधकाः ॥ प्रयत्नात्तद्दिनेदूरात् त्यक्तव्याः स्युर्हि वैदिकैः । वेदसाम्यं प्रकथितं वेदस्यैव महर्षिभिः ॥ नान्यस्य यस्यकस्यापि कल्पसूत्रादिकस्य च । एवं सति पुराणादेः तत्तु दूरत एव हि ॥ तद्वाक्यानां तु मन्त्रत्वे यथाकाष्ठमृगस्य वै । मृगत्वव्यपदेशोऽयं तथैवेति हि निर्णयः ॥ एवं सति पुनस्तत्तद्भाषाग्रन्थस्य वेदता । अतिपामरलोकोक्तिकल्पिता सातिगर्हिता तदुच्चारणतः सद्यः श्रवणाद्वा द्विजन्मनाम् । जातिभ्रंशो भवेन्नृणां वेदानर्हत्वदायकः ॥

भाषान्तर प्रवचननिषेधः

सर्वभाषासु लोकेऽस्मिन्पामरा वेदनिन्दकाः ।

वैदिकाख्या नाममात्राद्भाषाग्रन्थकृतश्रमाः ॥

स्वभाषाग्रन्थविश्वासमात्रेणैव हि तान्यपि । वेदतान्तां वर्णयन्ति वेदमाहात्म्यशून्यतः

स्वेषामत्यन्तमूढास्ते वेदानधि कृतो हि ते ।

तेनैतान् ... त ... भाषाग्रन्थजालकान् ॥

वर्जयेच्च विशेषेण ते तथा गतबुद्धयः । न ब्राह्मणसमः कश्चिन्न तु वेदसमः परः ॥

अयमर्थस्सर्वशास्त्रसिद्धो ब्रह्मविदीरितः । ब्राह्मणस्य च)शूद्रस्य ... तत्सत्कर्मार्थवादतः

तद्वस्तुतो न याथार्थ्यं सर्वथा प्रतिपद्यते ।

वेदा विप्रास्तिला दर्भाः ब्रीहिमाषयवास्तथा ॥

गोधूमाश्वापि सर्वत्र (?) कुतपा श्राद्धसंपदः ।

अत्यन्तावश्यकाः प्रोक्ताः तत्र मुख्यास्तु वाडवाः ॥

तदभ्यनुज्ञा परमा तन्मन्त्राः सन्निधिः पुनः । तेषामेव तथा भुक्तिः तस्मात् ... दुर्लभे
श्राद्धसिद्धिर्भवेन्नैव तस्मादेतत्समः परः । पदार्थेनैव तद्धेतुः तस्य प्रतिनिधिर्न च ॥

यस्यास्ये(न्ये) न सदाऽऽनन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः ।

कव्यानि नैव पि ... माधिकं ततः ॥

ब्राह्मणः सर्वदेवानां नित्यमाश्रय उच्यते । सर्वेषामपि वेदानां ह्यन्दसां श्रेयसां श्रियम्
भाजनं सर्वतीर्थानां क्रियाणां च ... न कम् । ... लीनो मतिमानपि ॥

वेदाध्यायी तदर्थज्ञस्तत्प्रयोगक्रियापरः । सततं ब्रह्मणि पुनः कृतबुद्धिर्विशारदः ॥
साचारस्सामिहोत्री च सोऽग्निर्वै कव्यवाहनः । ... स्सर्वेऽपि संघशः ॥

सुलभा एव सर्वत्र श्रीमतां तु मनोवताम् । न योजयेत्पैतृकेऽस्मिन्नस्य कार्यसमाहृतान्
दर्भान्वियुक्तानन्यत्र साम्रानेव ... सम्यग्विधिना सुसमाहितान् ॥
नैदं पर्याहृतानेता नन्यकार्येषु योजयेत् । प्रारम्भेषु च ये दर्भा पादशौचे विसर्जयेत् ॥

पादा(वशिष्टे ये ?) दर्भा विष्टरान्ते विसर्जयेत् ।

विष्टरान्तेषु ये दर्भाः विकिरान्ते विसर्जयेत् ॥

विकिरान्ते च ये दर्भाः विरामान्ते विसर्जयेत् ।

विरामान्ते च ये दर्भा आसीमान्ते विसर्जयेत् ॥

आसीमान्ते च ये दर्भाः तर्पणान्ते विसर्जयेत् ।

दर्भान्संशोध्य विधिना षड्विधानेव बन्धयेत् ॥

आदावेव प्रयत्नेन यथायोग्यं पृथक् पृथक् । ... दर्भाश्च समूलनेव तैस्सह ॥
समाहरेद्यस्तान्पश्चात् सकृदाच्छिन्नमन्त्रतः । वियोजयेच्च विधिना विनियोजनकर्मणा
काशा एवोत्तमाः सर्वा कर्ममात्रेषु चोदिताः । (अधुनासम्प्रवक्षामिसंक्षेपाद्)दर्भलक्षणम्

वक्ष्यामि लक्षणं तेषामेवास्ति किल मुख्यतः ।
काशाः कुशा यवा दूर्वा उलपावल्बजास्तथा ॥
विश्वामित्राभिधाः पश्चात्सुगन्धीतेजनाः परे ।
मुञ्जाख्यश्च तथा दूर्वा दर्भा दशविधाः स्मृताः ॥

दर्भाहरणकालः

वार्षिकान्ते दर्शदिने संगृहीताः प्रयत्नतः । दर्भास्तावत्पुनः पश्चात् संग्राह्याः सर्वकर्मसु ॥
अमास्वन्यासु ये दर्भाः संगृहीतानि ते तथा । मासमात्रं तु संग्राह्या नाधिकं तु कदाचन
मन्दवारे तदाश्चत्थात्संग्राह्याः समिधस्तथा ।

नान्यवारेषु तस्मात्तु यतो स्पृश्यस्स तु दुःमः ॥

मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नैपालकम्बलः । रौप्यं दर्भास्तथा गव्यं दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः
अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुतः । मुख्यस्स कुतपः कालः विशेषाः श्राद्धकर्मणि
अन्नदानस्य परमः तत्र दत्तं तदोदनम् । साक्षादमृतमित्युक्तं पितृणामक्षयं भवेत् ॥

श्राद्धब्राह्मणभुक्त्यर्था स्वीकृतान्नक्रिया वधूः ।

श्मशानोल्का समानैव तत्पतिश्च तथाविधः ॥

यत्पक्वमन्नं सलिलं यदानीतं स्वहस्ततः । पैतृकब्राह्मणायोग्यं तज्जन्म व्यर्थमेव हि ॥
श्राद्धब्राह्मणभोज्यानां वस्तूनामपि चैकम् । अदृष्टमस्पर्शयितमप्रोक्षितममन्त्रितम् ॥
पितृणां तदनास्वाद्यं हालाहलसमं भवेत् । यददृष्टं श्राद्धकर्ता परं पक्वात्प्रयत्नतः ॥
पितरस्तं न गृह्णन्ति स्वपुत्रादृष्टमित्यति । तस्मात्प्रीत्या न तेनैतद्वीक्षितं यत्ततो हि न
प्रीति दत्त ... योग्यं खिलं खिरम् । परित्याज्यं विशेषेण चेतीदं मन्वते हि वै
मन्त्राः स्पर्शयितं भक्तं पितृणां स्पर्शनाक्षमम् । प्रभवेदेव सुतरां तस्मात्तत्स्पर्शयेत्करात्
हविषः प्रोक्षणं ... गायत्र्यादौ महर्षिभिः । अर्चनादौ प्रकथितं द्वितीयप्रोक्षणं ततः
भुक्तिमात्रक्षिप्तमात्रात्तथापायसयोरपि । अभिधारः प्रोक्षणं च गायत्र्या कूर्चदर्भकैः
द्वितीयप्रोक्षणं तस्य हविषे विधिचोदनात् । प्रकर्तव्यं प्रयत्नेन न चेत्तत्पितृवल्लभम् ॥

न भवेदेव हव्यं च स्वीकृतुं तैर्न शक्यते । तस्मात्तदन्नमुक्तस्य पठनात्पूर्वमेव वै ॥
प्रतिपात्रप्रोक्षणंतत् तत्पश्चाद्भर्गगोपनम् । अन्नमात्रस्य कर्तव्यं न तु पायसभक्ष्ययोः ॥

भुक्तिपात्रात्तु विप्रस्य दक्षिणे कुक्षयोर्द्वयोः ।

आज्यपात्रं स्थापयित्वा तस्मिन्कर्ता स्वहस्ततः ॥

प्रभूताज्येन योग्येन सुगन्धेन प्रपूरयेत् । तावन्मात्रेण पितरः मोदन्ते तेहि तर्पिताः ॥
प्रभवन्ति न चेत्ते वै तोषं न प्राप्नुवन्त्यपि । वस्तूनामपि सर्वेषां परिवेषणतः परम् ॥
अन्नत्यागात्पूर्वमेव प्रोक्षणं परिषेचनम् । सत्यं त्वर्तेन मन्त्रेण कृत्वा तत्परमेव वै ॥
भुक्तिपात्रं स्वहस्तेन प्रगृह्याऽथ मनुं जपेत् । पृथिवीतेत्युपक्रम्य भुक्तौ त्यागं समाचरेत् ॥
न चेदेतच्छ्राद्धभक्तं इत्यलोक्ति हि तत्क्षणात् । एवं त्रिवारोच्चरितगायत्रीप्रोक्षणैः परैः
भोक्ता प्रोक्षणतश्चापि तदन्नं पितृभुक्तये । तत्तृप्त्यर्थं प्रभवति तद्विष्णुपददायकम् ॥
प्रजायते क्रमेणैव तद्गायत्रीप्रभावतः । पादप्रक्षालनं श्राद्धे गायत्री प्रोक्षणादिकम् ॥
सार्चनं भोक्तृहस्तस्य ... रागिणो सतः । नित्यस्त्रवल्लालजलजालकस्याशुचरेति
दुर्गन्धवर्ष्मणो दुष्टश्वेतकुष्ठकरस्य च । कृष्णकुष्ठस्य तद्विन्दुचित्रकुटस्य दूरिणः ॥
महातिसाररोगस्य बहुमूत्रस्य सन्ततम् । निषिद्धं शास्त्रतो ज्ञेयं किंतु तेषां प्रचोदितम्
संकल्पात्परतः सर्वं शिष्यत्किंपुत्रदुर्गतः । कार्यमेवेति विबुधैः पवनव्याधिकस्य च ॥
अत्यन्ताक्षररूढस्य मूकान्धवधिरात्मनाम् । तादृशाः फलकृत्येषु संत्याज्या दूरतः पुनः
तत्करत्यक्तसलिलमतिहेयं दुरासिकम् । अपिवेद्यमसंग्राह्यं मनसोऽतिजुगुप्सितम् ॥
चण्डालभाण्डसलिलतुलितं प्रभवन्ति तत् । तदग्निकरणंचापि तदीयानलके परः ॥
तत्कर्तव्यत्वेन कुर्यात्तच्छिष्टान्नं च तत्परम् । स्वधे कृत्ये ... शिष्टं पैण्डाय योजयेत् ॥

पिण्डदानं तु तद्वस्तात्कारयित्वाऽथ तांस्ततः ।

अपोभ्यवहरेत्तेषां पिण्डानां विप्रभोजने ॥

धेनुसंप्राश ... । न कार्यं पिण्डदानं तर्कित्वन्यमुखतश्चरेत् ॥
तत्तर्पणं तदङ्गस्य तद्वस्तेन कृताकृतम् । प्रभवेदेव सुतरां तद्वस्तेन न मुख्यतः ॥
सर्वकृत्येषु तद् (ज्)ज्ञेयं ... । ... सर्वशास्त्रैस्तदज्ञैश्चैवं ... सुनिश्चितम् ॥

पीतकायस्य पतितौ पिता वा जननी न चेत् ।

पितामहादयो वापि तथा मातामहादयः ॥

स(प)त्नीजननी चैवं मृतस्तेषां न ... । ... कं कुर्याद्द्वादशाब्दं ततः परम् ॥

पितुः पालाशविधिना मात्रादीनां तथैव च । कुर्यात्तत्कर्म विधिना पतितस्येति निश्चयः
न तत्पूर्वं तु तत्कुर्यात् यदि कुर्यात्तु मोहतः । तादृशोऽयं भवत्येव तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

सपिण्डीकरणात्पश्चात् मासिकान्येव कारयेत् ।

अतिमासं प्रयत्नेन न्यूनैः साकं विधानतः ॥

नोदकुम्भश्राद्धमस्य कर्तव्यं पापिनोऽसतः । पूर्वोक्तानां च सर्वेषां एवमेव प्रवक्ष्यहम् ॥

मासिकान्यपि सर्वाणि दैवत्यक्तानि केवलम् । पतितानां प्रकर्तव्यं मधुमाषविवर्जितम्

उच्छिष्टपिण्डरहितं विकिरेण विवर्जितम् ।

पातित्यं नाम तेषां तु पित्रादीनां प्रवक्ष्यहम् ॥

शूद्रैर्ऋक्षैश्च चण्डालैः सपी(प्री)त्या सह भोजनम् ।

बलात्कारात्स्वेच्छया वा बुद्धिमोहेन वा तथा ॥

दिनत्रयात्परं तत्तु जायते न तु तत्पुरः । दिनेनैकेन शूद्रेण स्लेच्छचण्डालभिल्लकैः ॥

अवियि...त्या पा ... सांकर्यनामकम् । पातित्यं प्रभवत्येव तदज्ञानादिना वशात्

अबुद्धिपूर्वतश्चापि विरोधादिविशेषतः । यदि स्यात्तु तदाचित्तसाध्यो विप्रप्रसादतः ॥

तद्भवेदिति शास्त्रज्ञाः प्राहुः ... । सकृत्पानादपेयस्य चण्डालत्वं विधीयते ॥

द्विजन्मनां कलञ्जस्य भक्षणादेव तत्क्षणात् ।

सन्यासस्वीकृतोऽनेन शिखात्यक्तोपवीतवान् ॥

जनानामिति लोकेऽत्र प्रसिद्ध्या ... । नायं गृहस्थो भवति नापि वर्णी न वन्यपि

यतिरेव भवत्सोऽयं तेन तत्परमप्यसौ । जनवादभयेणैव सन्यास्यैव भवन्पटुः ॥

विनिष्क्रान्तो ... तो यदि पाप भीः । न चेदयं लौकिकिमात्रेणैवापवाद्यति ॥

प्रभवेदेव लोकेऽस्मिन् ते नायं तदनन्तरम् । आरूढपतितो नूनं जा ...

सन्यासिनिमृतेनणां तत्पुत्राणां विशेषतः । तत्कलत्रस्य बन्धूनां नाशौचं नोदकक्रिया

उत्पन्ने संकटे घोरे चोरव्याघ्रभयाकुले । भयभीते ... सा श्रुतिः ॥
 प्रेषमात्रोच्चारणेन सन्यासं पूर्यते परः । सन्यासाद्ब्रह्मणः स्थानं तत्क्षणाद्भते नरः ॥
 न तस्य दहनं कार्यं पैतृमेधिकं कर्मच । ... पूर्वसूक्तविधानतः ॥
 समर्चनं प्रतिदिनं धूपदीपादिकैरपि । नैवेद्यं परमान्नं स्याद्भक्ष्यभोज्यफलैरपि ॥
 तर्पणं पयसा कुर्यादात्मदी ... दात्मा तत्राद्य उच्यते ॥

अन्तरात्मा द्वितीयः स्यात्परमात्मा तृतीयकः ।

जीवात्मा परमात्मा वा चतुर्थ इति तद्विदः ॥

एकादशेऽहि संप्राप्ते पार्वणं तु विधीयते । (नारायण ?) बलिः पश्चाद्वादशेऽहनि तत्परम्
 आराधनाख्यं कर्मान्यत् मासिमास्येवमेव हि । मृताहे तद्द्वयं कार्यं प्रतिसंवत्सरं च वै
 तत्कदाचित्तु दैवेन ... पितम् । जायते तत्परं ज्ञेयं पङ्क्ति बाह्यं भवेदपि ॥
 तं भ्रष्टपङ्क्तिकं तूष्णीं विना तां निष्कृतिं परम् । न शक्यते तं स्वीकर्तुं ब्राह्मणैर्धर्मवेत्तृभिः
 ... तिस्सा यथा योगं तत्तत्कार्यानुरूपकम् । प्रकुर्यात्प्रभवेच्छास्त्रमार्गेणैव न चान्यतः
 शास्त्रज्ञैश्शास्त्रदृष्ट्यैव निष्कृतिस्साकृपालुभिः । अदुष्ट ... भूतदयापरैः ॥
 संत्यक्तमत्सरैरेव प्रकल्प्या प्रभवेत्सदा । संजाते संशये सर्वजनानां चित्तकर्मणि ॥
 सतोन्यक्कृत्य दुष्टात्मा स्वयमज्ञो जडः खलः । सं ... दण्ड्योभवति भूभृताम् ॥

यस्मिन्प्राप्ते यत्र देशे विदुषः शास्त्रपारगान् ।

सभामध्ये जडो रोषाद्बुद्धकृत्य न्यक्करिष्यति ॥

स दण्ड्यः सद्य एवस्यान्नोपेक्ष्यस्तु कदाचन ।

कार्यप्राधान्यतो यो वा दुष्टं सज्जननिन्दकम् ॥

करोत्युपेक्षां मोहेन सोऽल्पायुर्भ्रश्यते श्रियः ।

राजा दुष्टं सज्जनानां निन्दकं समभाषिणम् ॥

तैस्साकं तं बलाद्गृह्य देशादुच्चाटयेन्मृपः । दुष्टं श्रोत्रियरूपेण पैतृकेषु चिराश्रयात् ॥
 श्राद्धभुक्तिं प्रकुरुते तस्य जिह्वां यमः स्वयम् । छिनत्तिखड्गमुदधृत्य तथा नक्षत्रजीविनम्
 शूद्रजीवी सर्पजीवी भिषजीविऽपि घृणिः । खड्गजीवी शस्त्रजीवी शूलजीवी बलग्रही

महामूत्रसमीचीनचरणायुधजीव्यपि । नित्यवेतनजीवी च वेदशास्त्रैकजीव्यपि ॥
पुराणजीवी कूलविजयी तण्डुलजीव्यपि । घृतजीवी तक्रजीवी दधिक्षीरतिलादिभिः
नित्यैकजीवी क्षुद्रात्मा देवजीवी परार्थहृत् । त एते पुनरन्येऽपि नावेक्ष्याः स्युर्हितदिने
स्वभाषात्यागपूर्वेण परभाषाश्रयान्तथा । पिचण्डपूरणपरा न स्मर्तव्या विशेषतः ॥
परवेषाः क्षुद्रवेषाः सद्गेषा दुष्टवृत्तयः । कुवृत्तयो वेदमार्गदूषणोन्मुखशास्त्रगाः ॥

तथागताः सौगताश्च तल्लोकाः कालिकागमाः । शैवागमप्रधानाश्च विष्णवागमपरा अपि
कापालिकाश्च नग्नश्च वाच्याः स्युर्नैव सर्वथा । पैतृकेषु विशेषेण दर्शादिष्वखिलेषु वै ॥
विशेषेण मृताहेषु तत्रापि पुनरप्यति । पित्रोर्मृताहे स्मर्तव्या न भवेयुः कलिप्रदाः ॥
यदि स्मृता येन केन कारणेन तदा परम् । व्याहृतीनां जपं कृत्वा चानाज्ञातत्रयात्परम्

वैष्णवीं तामृचं जप्त्वा त्रिवारं तं शिवं स्मरेत् ।

भ्रष्टे पितरि सन्यस्ते पतिते दीर्घरोगिणि ॥

तत्कर्तव्यानि कार्याणि पैतृकाण्यखिलान्यपि ।

यानुद्दिश्यपुरा तातः श्राद्धानि कृतवान् यथा ॥

तथा स्वयं तत्तनयनं तानि कुर्यान्नचेन्महान् । प्रत्यवायः प्रभवति कुलं तेन प्रदुष्यति

पितरस्ते नित्यदुःखाः भवन्त्यपि सुपीडिताः ।

क्षुद्रवृष्णाभ्यां दंसिताश्च भ्रंशिता स्वश्रियादपि ॥

यत्रकुत्राप्यशरणाः हा हा हा हेति वादिनः ।

पिशाचतुल्याः सर्वत्र चाटन्त्यपि रुदन्त्यपि ॥

तस्मात्तत्तृप्तयेभक्त्या तत्संततिसमुद्भवः । स्वपितामहमुख्यानां हिताय च सुतृप्तये ।

स्वतातकर्तृकं श्राद्धं स्वयं कुर्याद्विचक्षणः । न चेदयं प्रभवति पापीयान्चै दिने दिने ॥

पिता पितामहो मातः तथैव प्रपितामहः । पतितोऽयं तं तु यत्नात्तत्त्रिपूर्वोक्तिमात्रके

संत्यन्येव सतस्तांस्त्रीन् उच्चरेन्न तु तं खलम् । पतितः श्राद्धकृत्यं तदेकोद्दिष्टविधानतः ॥

रूपमात्रं सु(स)मुद्दिश्य कुर्यादिति स काश्यपः ।

तच्छ्राद्धात्परतः स्नात्वा कुर्यादाचमनत्रयम् ॥

एवं शस्त्रहृतस्यापि प्रकारः कथितो बुधैः । महालयाख्यश्राद्धस्य न तत्प्रत्याब्दिकस्यसः

तस्य प्रत्यान्दिकश्राद्धं तदङ्गतिलतर्पणात् । परमाचमनानां तु पञ्चकं शास्त्रचोदनात्
कर्तव्यत्वेन विहितं प्रवदन्ति मनीषिणः । तदप्याचमनं सद्भिः बहुधा प्रतिपादितम् ॥
स्पष्टं निरूप्यते तच्च पङ्क्तिपावनपावकम् । पवित्रवच्छिखां बद्ध्वा उपविष्टस्तले शुभे
वामपादं जले कृत्वा स्थले कृत्वा तु दक्षिणम् । पूर्वास्य उत्तरास्यो वा जानुमध्यकरद्वयः
(स्ते) धेनु बुद्बुदकीटादिरहितं वारि निर्मलम् । दक्षपाणिपुटे कृत्वा मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठके
त्रिः पिवेद्ब्रह्मतीर्थेन चतुर्थेनैव वा पिवेत् । ओष्ठावङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्य त्रिरेव वा
मध्यमाङ्गुलित्रयेणोष्ठौ संमृजेत्सकृदम्भसा । देवेन प्रोक्षयेद्द्वामपाणि पदौ च मस्तकम् ॥

अग्रेणाङ्गुष्ठतर्जन्योः नासिकायुगलं स्पृशेत् ।

अङ्गुष्ठानामिकाग्रद्वे नेत्रे श्रोत्रे च संस्पृशेत् ॥

कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन नाभिदेशं स्पृशेत्ततः । वक्षः करतलेनैव समस्ताङ्गुलिभिः शिरः ॥

अंसौ च संस्पृशेत्साम्बु दक्षवामौ क्रमेण च ।

आष्टो (?) बाहुमूलान्तं मध्ये मध्येऽप्यपः स्पृशेत् ॥

व्याहृतीभिश्चतुर्वारं त्रिः पिवेत्प्रणवेन वा ।

सावित्र्या वा पिवेदम्बु त्रिः पिवेद्वाद्यमन्त्रकम् ॥

आस्यं सरस्वतीस्थानं नासायामनिलस्थितः । नेत्रे मैत्रे तु प्रोक्ते श्रोत्रे काष्ठाश्रिते मते
नाभौ प्रजापतिर्ब्रह्मा हृदि मूर्धनि केशवः । दसावस्त्राश्रयौ स्यातामेता वाचमने स्मरेत्
अपराचमनं भूयः कैश्चिदेवं प्रपञ्चितम् । अथो नमश्शिवायेति त्रिः पिवेदम्बुवीक्षितम्
ईशानाङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् । मध्याङ्गुलित्रयेणोष्ठौ स्पृशेत्तत्पुरुषेण तु ॥

अग्रेणाङ्गुष्ठतर्जन्योः नासिकायुगलं तथा ।

स्पृशेदघोरनामाभ्यामक्षणोः सव्येन संस्पृशेत् ॥

श्रोत्रद्वयं भवायेति ह्यङ्गुष्ठानामिकाग्रतः । ईशानेन स्पृशेन्नाभिं अङ्गुष्ठोपकनिष्ठतः ॥

पशुपत्या तु हृदयं तदे(दा)नैव तु संस्पृशेत् ।

सर्वाङ्गुलिभिरुद्रेण नाम्ना चैव शिरः स्पृशेत् ॥

बाहुमूलं च सर्वाग्रैः उग्रभीमाभ्यां क्रमात्स्पृशेत् । महादेवाय वा जपेत्ततः कर्म समाचरेत् ॥

विनैवाचमनं कर्म न किमभ्याचरेद्बुधः । तथैवाचमनं भूयः सुलभं सर्वदा नृणाम् ॥
प्रवक्ष्यामि सदा कर्तुं प्रवरं पावनं परम् । दैवेन त्रिः पिवेदम्बु वीक्षितं केशवादिभिः
गोविन्दविष्णुनामाभ्यां हस्तौ प्रक्षाल्यवारिणा । संहताङ्गुष्ठमूलेन विष्णोश्च मधुसूदनात्

अङ्गुल्यग्रैः संहताभिः स्पृशेदास्यमलोकम् ।

त्रिविक्रमे ततः पाणिं प्रोक्ष्य सव्यं तु वामनात् ॥

श्रीधरेण तथा पादौ हृषीकेशेन मस्तकम् । पद्मदामोदराभ्यां च नासिकायुगलं स्पृशेत्
संकर्षणादि चतसृभिः चक्षुः श्रोत्रे च संस्पृशेत् ।

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगतः ॥

नाभिं स्पृशेत्पञ्चमेन द्वाभ्यां च हृदयं स्पृशेत् ।

द्वाभ्यां च मस्तकं स्पृष्ट्वा द्वाभ्यामसद्वयं स्पृशेत् ॥

ततो जपेदुपेन्द्रं तु सर्वपापैः प्रमुच्यते । आदावन्ते च पाद्ये च विष्टरे विकिरे तथा
उच्छिष्टपिण्डदानेन षट्स्वाचमनं स्मृतम् । सर्वाचमनमात्रेषु त्रिवारं सर्वतो मुखम् ॥
पृथक्पवन्नेकदा तत्पिवेदम्बु विचक्षणः । आस्ये त्रिवारं निक्षिप्तमेकदा तत्पिबेज्जडः ॥
प्रयाति नरकान्धोरान् महातामिस्रनामकान् । पैतृकेषु तथा कुर्वन् मोहादाचमनं नरः
अज्ञानात्तद्दिनेभुक्तेः यद्दोषं तत्प्रपद्यते । अशास्त्रकृततन्नीरपानं भोजनमेव हि ॥

कथितं शास्त्रधर्मज्ञैः तस्मात्तं न तथा चरेत् ।

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्यादाचमनं सदा ॥

पश्चिमाभिमुखो याम्याभिमुखो वा यदि तच्चरेत् ।

अप्रायत्यमवाप्नोति कर्म तच्च विनश्यति ॥

तद्दोषपरिहाराय तदाशाचमने कृते । पुनर्द्विवारमाचामेत् प्रादप्रक्षालनात्परम् ॥
दक्षिणाभिमुखात्तस्मिन् कृते मोहात्कदाचन ।

सद्यः स्नानं सुविहितं पञ्चाङ्गस्य विधानतः ॥

क्षुते पाने जृम्भणे च श्रोत्राचम(न)मेव हि । सन्ततं ब्राह्मणादीनामपिनामानुकीर्तनम् ॥
पैतृकेषु तु तेष्वेषु द्विवाराचमनात्परम् । स्मरेच्च पुण्डरीकाक्षं न चेद्रामादिनामकान्

ब्रह्मयज्ञे सप्ततन्तौ तूष्णीमाचमनं चरेत् । न नामान्युच्चरेत्तत्र वैदिकोऽन्यत्र नैव तत् ॥
सर्वपैतृककृत्येषु प्रायत्यार्थं विचक्षणः । नामभिः केशवाद्यैः तैरेव यज्ञात्तु तच्चरेत् ॥

संप्रोक्तानि पुरऽन्यानि मन्त्राद्याचमनानि वै ।

संत्याज्यान्येव सर्वाणि तान्यशक्यानि पैतृके ॥

सर्वं श्राद्धेषु सततं पात्रप्रोद्धृतपाथसा । कार्यमाचमनं सद्भिः न भूमि सत पाथसा
श्राद्धमध्ये यदि जडः पादप्रक्षालनं तु वा । कुर्यादाचमनं पृथ्वी पथसा तद्विनश्यति ॥

सरित्कुल्यातटाकादि व्रती प्रति(व ?)रादिगतोऽपि वा वा ।

समुद्धृतजलेनैव श्राद्धेष्वाचमनं भवेत् ॥

संकल्पात्परतः श्राद्धे श्राद्धकर्ता रसागतम् । नीरं हस्तेन गृह्णीयात्किं तु पात्रेण तच्चरेत्
भोक्तृदत्तोपवीतस्य धारणे श्राद्धकर्मणि । भोक्तारो नैव कुर्युस्तदाचामं श्रोत्रतोऽपि वा
यज्ञोपवीतं यो दद्यात् श्राद्धकाले तु धर्मवित् । पावनं सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य तत्फलम्
वासोऽपि सर्वदैवत्यं सर्वदेवैरभिष्टुतम् । वस्त्राभावक्रिया न स्याद्यज्ञदानादिकाः क्रियाः
कर्ता नाचम्य यद्भोक्ता कुर्यादाचमनक्रियाम् । शुनो मूत्रसमं तोयं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्
उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः । प्रकुर्यात्पावर्णे सर्वं देवपूर्वविधानतः ॥
निक्षिप्य दक्षिणं जानु देवान्परिचरेद्बुधः । भूमौ तथा परं जानु पितॄन्परिचरेत्सदा
पादप्रभृतिमूर्धान्तं पितॄणां परिपूजनम् । शिरः प्रभृतिपादान्तं पितॄणां पूजनं भवेत् ॥
तुलसीगन्धमाघ्राय भास्वराज ... । पानसं माधवं तैलं राजतं दार्भयोगिकम् ॥
आनन्दं प्राप्नुवन्त्येते तस्मादेतान्समाहरेत् । तुलसीपत्रयोगेन पितरस्तुष्टिमाप्नुयुः ॥
प्रयान्ति गरुडारुढाः सत्पदं चक्रपाणिनः । यो दर्भतुलसीपत्रैः पितृपिण्डान्समर्चयेत्
प्रीणिताः पितरस्तेन यावच्चन्द्रार्कमेदिनी । अकृत्वा तिलसंसर्गं यत्कुर्यात्पाणिशोधनम्
आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं पितॄंस्तन्नोपतिष्ठति । शूद्रं शूद्रान्नभोक्तारं शूद्राणां च पुरोहितम् ॥

नक्षत्रजीविनं चापि यज्ञाच्छ्राद्धेन भोजयेत् ।

शूद्रं द्रव्येण च श्राद्धं सर्वथा न समाचरेत् ॥

श्राद्धकृत्तेन सद्योवै पितृभिस्सहमज्जति । श्राद्धे तूच्छिष्टपात्राणि खनित्वैव विनिक्षिपेत्

यथा ना खादयेच्छ्वादि यथा न स्पृशते तथा ।

पितुरुच्छिष्टपात्राणि श्राद्धे गोप्यानि कारयेत् ॥

विनिक्षिपेत्खनित्वैव यथा श्वादेरगोचरम् । शुना संस्पर्शने तेषां पात्राणां श्राद्धकर्मणः

श्राद्धं नश्यति सद्यो वै तस्माद्यत्नेन पण्डितः ।

कुर्यात्पात्राणि गोप्यानि पितृणां स्वस्यभीयुतः ॥

हिताय श्रेयसे तुष्ट्यै कल्याणायामृताय च । सर्ववस्तुनि यत्नेन प्रभूतान्येन पैतृके ॥

संपादयेद्विशेषेण णि कदाचन । भोक्तृपृष्टं वस्तु यत्तत्तेषु संपादितेषु वै ॥

स्वल्पत्वाद्दुर्लभं दैवान्नष्टमेव भवेत्तु तत् । असंपादितवस्तूनि यजमानेन पैतृके ॥

भोक्त्रा पृष्ठानिचेद्विद्वांस्तथा सद्यः समाहितः ।

वीरं धत्तेति पितरः स्वधायिभ्यश्च वो नमः ॥

पित्रादिभ्यो नमस्कृत्य ह्यत्र पितरो मादयध्वमिति ।

मन्त्रमुत्तवा बहिर्गत्वा व्याहृतीनां जपन्बुधः ॥

अष्टवारं प्रकुर्वीत तेन सोऽयं प्रणश्यति । सूपान्नभुक्तौ दधि तद्वश्नन्तं लवणं तथा ॥

परमान्नेन मधुना तथा सार्षपमेव च । आमेन तिलभक्ष्याणि प्राश्नन्तं त्यक्तधर्मकम्

भोक्तारं यजमानश्चेत् दृष्ट्वा तं तादृशं जडम् ।

एवं माकुर्विति वदेत् ततः सायं पुनर्यदि ॥

तथा कुर्याद्धठात्तं तु दद्यात्तस्म चपेटिकाम् । विप्रोलङ्घनदोषोऽत्र नास्त्येवेति जगौ भृगुः

येनकेन प्रकारेण शक्यन्ते पैतृकाणि वै । दर्शादीन्येव सर्वाणि हिरण्येनामतोऽपि वा

मन्त्रेण तिलनीरेण रोदनेनापि घासतः । कक्ष्यादाहेन वा भक्त्या तेनाऽनन्त्यं फलं भवेत्

पित्रोर्मृताहमात्रं तु तदा कर्तुं न शक्यते । किंत्वन्नेनेव तत्कार्यं सहोमं च समन्त्रकम्

सर्वाङ्गसहितं कुर्यात्सर्वप्राणेन सन्ततम् । तथा कुर्वन्कदाचित्तु तत्क्षणात्पतितो भवेत् ॥

द्विजाभावे तादृशोऽपि कदाचिद्द्वैवयोगतः । अन्नत्यागात्परं सर्वं पूर्वापरमहोन्धकैः ॥

(पूर्वापर समन्त्रकै रिति वा) सर्वं तन्मन्त्रवत्कृत्वा परिषिच्याथ तां पराम् ॥

भिस्सामग्नौ विधानेन जुहुयाज्जातवेदसि । प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैः यावद्द्वात्रिंशदाहुतीः

गायत्र्यामथ जप्त्वाऽथ मधुवातेति मन्त्रकम् । कृत्वा यथावत्तत्पश्चाद्विकिरं च यथाविधि

निर्वर्त्य पादौ प्रक्षालय पश्चादाचमनात्परम् ।

प्राणानायम्य संकल्प्य पिण्डदानादिकं यथा ॥

कृत्वा मन्त्रेण तत्पश्चाद्वृजिनान्ते ततः पुनः ।

नत्वा पितृंस्तच्च शिष्टं भुक्त्वेव विधिना ततः ॥

परेऽहि तर्पणं कृत्वा कृतकृत्यो भवेदिति । अग्निष्वात्ता बर्हिषदः गुह्यमूचुः कृपालवः ॥

स्वपुत्रेभ्यो यत्र कुत्र ब्राह्मणासंभवे पुरा । आमश्चाद्धं स(दा ?) कुर्याच्छूद्र एव न चापरः

अन्नश्चाद्धं सदा विप्रः मृताहे प्राणसंकटात् । अपि यत्नेन महता न त्वामेन कदाचन

अथैनं पार्वणश्चाद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात्प्रत्याब्दिकश्चाद्धात्संकल्पविधिनान्वहम्

कृतेऽकृते वा सापिण्ड्ये मातापित्रोः परस्य वा ।

तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः ॥

अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजः

कुर्यादहरहः श्राद्धं अमावास्यां विना सदा ।

यत्सोदकलशश्चाद्धं न तस्यादनुमासिकात् ॥

असोदकुम्भपक्षे तु मृताहन्यानुमासिकम् । औदकुम्भाख्यकं श्राद्धं पृथक्कुर्यात्ततः परम्

अग्नौकरणकर्तारः सपिण्डीकरणादिषु । स्नातका विधुरा वा स्युः यदि वा ब्रह्मचारिणः

अग्नौकरणहोमं तु कुर्युस्ते लौकिकानले । औपासनाग्नौ कर्तव्यं यदग्नौ लौकिके कृतम्

तत्कर्म विधिवद्भूयः कुर्यादित्याह गौतमः । सूप्ते वा परमान्ते ... त पात्रं विनिक्षिपेत्

तद्भोज्यमासुरं प्रोक्तं सा दातुः पारलौकिकम् ।

पादप्रक्षालनात्पूर्वं पाणिभ्यां पात्रधारणम् ॥

त्यागे दक्षिणमुत्सृज्य विकिरे सव्यमुत्सृजेत् ।

भूमौ यस्तु प्रकीर्यान्नमज्ञानान्नाचमेत्सुधीः ॥

तिष्ठन्ति पितरस्तस्य मासमुच्छिष्टभाजनाः ।

पत्नीभ्रातृसखादीनां सपिण्डीकरणात्परम् ॥

एकोद्दिष्टविधानेन मासिकानां पुनः क्रिया । गणशः क्रियमाणेषु मासिकेष्वनुभाविषु
त्रीणि स्युरर्घ्यपात्राणि पिण्डांस्त्रीनेव निर्वपेत् । कालस्य नियमो नास्ति राजपीडाद्युपप्लवे
... वा श्राद्धानि कुर्यात्सर्वाण्यसंशयः । स्तुषाश्चश्र्वोश्च पित्रोश्च संघातमरणं यदि
अर्वागब्दान्मातृपितृपूर्वकं श्राद्धमाचरेत् । पत्नीभ्रातृसुतादीनां सपिण्डी च यदि क्रमात्
संघातमरणं तत्र तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत् । कृत्वा पूर्वमृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः ॥
तृतीयस्य ततः पश्चात् संनिपाते त्वयं क्रमः । युगपन्मरणे तत्र संबन्धासत्तियोगतः ॥
पित्रोः संघातमरणे मातुरन्यत्र वा दिने । अनुयानमृतौ श्राद्धं यथाकालं समाचरेत् ॥

मातर्यग्रे प्रमितायामशुद्धो म्रियते पिता ।

पितुः शोषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कुर्यात्तु पक्षिणीम् ॥

पत्न्याशौचं पितृमृतौ पत्न्याशौचं विशोधयत् । विपरीते पक्षिणी स्यादूर्ध्वनाग्निप्रवेशने
पत्न्यां कुर्यादपुत्रायाः पत्युर्मात्रादिभिस्सह । सापिण्ड्यमनुयाने तु जनकेन सहानुजः
मृतं यानुगतानार सा तेन सहपिण्डनम् । अर्हति स्वर्गवासोऽपि यावदाभूतसंप्लवम् ॥

स्त्रीपिण्डं भर्तृपिण्डेन संयुज्य विधिवत्पुनः ।

त्रेधा विभज्य तत्पिण्डं क्षिपेन्मात्रादिषु त्रिषु ॥

भर्तुः पित्रादिभिः कुर्याद्भर्ता पत्न्यास्तथैव च ।

सापत्न्या वाऽनपत्न्या वा न भेद इति गोवि(भि ?)लः ॥

त्रयाणां पितृणां मध्ये पिता च वामनं यदि । तद्दिने चोपवासश्च पुनः श्राद्धं (स्तथैव हि ?)

ब्राह्मणानां यदि श्राद्धे एकोऽपि वमनं यदि ।

लौकिकान्नि प्रतिष्ठाप्यार्चयित्वा हुताशनम् ॥

तत्स्थाननामगोत्रेण ह्यासनादि यथार्चयेत् । अन्नत्यागं ततः कृत्वा पावके जुहुयाच्चरुम्
प्राणादि पञ्चभिर्मन्त्रैः कवलानां प्रमाणतः । सप्तमे चाष्टमे चैव कृत्वा मन्त्रसमुच्चयम्

होमशेषं समाप्याऽथ श्राद्धशेषं समापयेत् ।

विश्वो विष्णुद्वितीयो वा तृतीयो वाऽन्तकृद्यदि ॥

तत्स्थाननामगोत्रेणेत्यादिश्राद्धं समापयेत् । वसिष्ठानुमते भूयः प्रकारान्तर(मुच्यते ?) ॥
कथितं चेति स मनुः प्रोवाचेदं तदुच्यते । श्राद्धपङ्क्तौ यदा विप्रो भुत्तवा च छर्दितो यदि

तथैवाग्निं समादाय होमंकुर्याद्यथाविधि । तत्स्थाननामगोत्रेण ह्यासनादि तथाऽऽचरेत्
अन्नत्यागं ततः कृत्वा पावके जुहुयाच्चरुम् । प्राणादिपञ्चभिर्मन्त्रैः यावद्द्वित्रिंशदाहुतिः
होमशेषं समाप्याथ श्राद्धशेषं समापयेत् । यदि यः कुरुते होम(शेषं)लोपो न विद्यते ॥

श्राद्धपाङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।

तदन्नमत्यजन्मुत्तवा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंपर्शं स्पृष्टपात्रं विहाय च । सर्वान्नं पद्विप्रो भोज(युग)येत्तु द्विजोत्तमम्
भोजनान्ते द्विजः स्नात्वा सावित्र्यष्टशतं जपेत् ।

आर्यश्राद्धे तु भुञ्जानो विप्रस्य वमनं यदि ॥

यत्ते कृष्णेति मन्त्रेण होमं कुर्याद्यथाविधि । षोडशश्राद्धभुञ्जानो ब्राह्मणो मुखनिस्सृतम्
प्रेताहुतिस्तु विज्ञेयो लौकिकाम्नौ यथाविधि । अनुमासिके तु कर्तव्ये उच्छिष्टवमनं यदि
कवले तु सुभुञ्जाने तृप्तिं चैव विनिर्दिशेत् ।

अमावास्या मासिके च भुञ्जानो मुखनिस्सृतम् ॥

तथा महालयश्राद्धे पित्रादेर्वमनं यदि । पितामहं कृत्वा श्राद्धशेषं समापयेत्
उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टो भुञ्जानः श्राद्धकर्मणि । शेषमन्नं तु नाशनीयात्कर्तुः श्राद्धस्य का गतिः
तत्स्थाननामगोत्रेण ह्यासनादि तथार्चयेत् । (पाक?) त्यागं ततः कृत्वा पावके जुहुयाच्चरुम्
पुरुषसूक्तेन जुहुयाद्यावद्द्वित्रिंशदाहुतिः । होमशेषं समाप्याथ श्राद्धशेषं समापयेत् ॥
अकृत्वा देवे ब्राह्मणो वमनं यदि । पुनः पाकं प्रकुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि ॥
उच्छिष्टस्पर्शनं ज्ञात्वा तत्पात्रं तु विहाय च । तत्पात्रं परिहृत्याऽथ भूमिं समनुलिप्य च
तस्य दायैव सर्वमन्नं प्रवेष्टयेत् । परिषिच्य ततः पश्चात् भोजयेच्च न दोषकृत् ॥

श्राद्धपाङ्क्तौ तु भुञ्जानावन्योऽन्यं स्पृशते यदि ।

द्वौ विप्रौ विसृजेदन्नं भुत्तवा चान्द्रायणं चरेत् ॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंपर्शं शुना शूद्रेण वा पुनः । उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्ध्यति
अत्र भोक्तृद्विजातीनामेवं निर्णय उच्यते । वमने दैवतोजाते पुरुषापराधतो वा ॥
इन्द्राय सोमसूक्तेन श्राद्धविघ्नो यदा भवेत् । अग्न्यादिभिर्भोजनेन श्राद्धसंपूर्णमेव हि

विधानत्रयमध्येऽत्र ... स्थेयं प्रकल्पिता । निमन्त्रितेषु विप्रेषु पिण्डदानात्परं यदि ॥
 तेषु कस्यचिदेकस्य वमनाच्छ्राद्धविघ्नके । तदा सूक्तजपेनैव श्राद्धसंपूर्णता भवेत् ॥
 प्राक् पिण्डदान ... भिन्नद्विजस्य तु । वमनाद्विघ्नतोऽतीव होमसूक्तजपद्वयात् ॥
 द्वयोश्च वमने ज्ञाते श्राद्धसंपूर्णता स्मृता । स्थान विप्रस्यचेत्तेन वमनेनान्तरायके ॥
 दर्शे तु ... पाकान्तर एव वै । श्राद्धं समापयेत्सम्यक् संशयो नाऽत्र वच्मिवः ॥
 मासिके चाव्दिके चैव ... सस्तु तद्दिने । परेऽहनि पुनः श्राद्धं कुर्यादेवाऽविचारयन्
 गौतमस्यमतं भूयः प्रवदाम्यत्र निश्चितम् । श्राद्धपङ्क्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो वमते यदि
 लौकिकार्गिं प्र ... येच्च हुताशनम् । विश्वेदेवादिविषयं न स्थानविषयं त्विदम् ॥
 स्थानस्य वमने चेत्तु पुनः श्राद्धं परायणम् । कर्ता वा यदि बाल ... रूपवसैक ... ॥
 ... न्नै वह्नि कुर्वीरन्पर्वश्राद्धं समन्त्रकम् । शक्तश्चेदुपवासस्य परेऽह्नेनैव तद्दिने ॥

मासिकं चाव्दिकं चेति निर्णयो नात्र संशयः ।

उपावृत्तिस्तु पापेभ्यो ... स्तु वासा गुणैः सह ॥

उपवासस्त विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः । भोजनोपक्रमात्पूर्वं प्रक्रमात्परतो यदि ॥
 श्राद्धविघ्ने पुनः कार्यं जपहोमौ न तृ ... । अवशाद्विस्मृतं श्राद्धं येन केनाऽपि हेतुच्य
 स्मृत्वा सद्यः प्रकुर्वीत पण्डितो न विलम्बयेत् ।

कार्यात्कृताम्बुपानो वा कृतताम्बूलचर्वणः ॥

अपि श्राद्ध ... कुर्वीत न परित्यजेत् । परश्च इति यः श्राद्धं निश्चित्य भ्रान्ति दोषतः

श्राद्धीयेऽहनि तद्(ज्)ज्ञात्वा मध्याह्नासंगवेऽपि वा ।

तथैव यत्नात्तच्छ्राद्धं येन केनाऽप्युपायतः) ॥

कुर्यादेव विधानेन नोपेक्ष्यं वच्मिवोध्रुवम् । मोहादतीतश्राद्धस्य स्मरणात्परमन्वहम्
 प्राजपत्यं प्रकथितं पित्रोरेवेति पण्डितैः । कारुण्यश्राद्धमात्रस्य गायत्री त्रिशतस्य वा ॥
 अ ... शतस्येति जपो निष्कृतिरीरिता । श्राद्धकर्तुः बुद्धिनाशो रोगपीडादिना भयात्
 पिशाचवज्रपातादेः तत्कुर्युस्तत्तत्तदीयकाः । तत्कर्तव्यत्वेन सम्यङ् न चेदेनो महद्भवेत्
 ... व्यनिकेतन सद्रव्य कर्तव्यता मता । श्राद्धमात्रस्य सततं यस्यकस्यापि वस्तुनः
 परकीयस्य चैकस्य गृहोल्पस्यापि निन्दितः । स्वाशक्तौ स्वजनाभावे स्वबन्धुना ... ॥

स्वसंभोज्यान्नपाकेन कार्या श्राद्धक्रियादपि । स्तुषापक्वामृतान्नं यैः पितृभिर्नोपलभ्यते
 पुत्रिणस्तेन तेन स्युः पुत्रेणेति मनीषिणः । तत्स्तुषाश (क्यमात्रेण?) पाकामृतशताधिकम्
 तद्धस्तैकस्पर्शयितं स्वधेयान्नैकयोगवत् । चतुर्गायत्रियापूतं पितुस्तज्जो मृतेऽहनि ॥
 प्रत्यब्दं प्रकरोत्येव न करिष्यति । नस्य दुर्लभे पितरः परम् ॥
 जातश्वयुधयोर्नूनं भवेयुरति दुःखिताः । यन्निमित्तं स्वतनयं कांक्षन्ते गृहिणं तराम् ॥
 अत्याशयान्ते पितर ल दुर्घटे । नास्मत्तोऽयं जात इति शपत्येनमपुत्रिणम्
 ब्राह्मणाः श्राद्धयज्ञस्याहवनीयाग्रयः स्मृताः । तस्मात्तैरेव सततं भोक्तव्यं पितृवृत्तये ॥
 स्वभाषाममृतत्वेन । यतः स्वजन्मसंप्राप्ता सा भाषा तत्र संभवाः

जनास्तांस्ते स्वकीयान्वै जानन्तेऽधिकमानतः ।

फट्काराश्चापि हुंकाराः करतालाः स्वराक्षराः ॥

वाचः क्रूराः छिन्धिभिन्धि खडित्येतादृशाः पराः ।

कोपउच्चैः स्वराभिन्नभाषास्तेषां भयप्रदाः ॥

एते उच्चाटनार्थाय कठोराः श्रोत्रयोः परम् । रक्षोघ्ना एव सततं तेषाम् रकाः ॥

अर्थवादादयोमन्त्राः तस्मात्ते श्राद्धकर्मसु । प्रवाच्या भुक्तिकालेषु तद्वाचमनमतीव वै ॥

सुखश्राव्यं भवत्येव तस्मात्ते तन्मुखात्परम् ।

आहूता आगमिष्यन्ति सह वा वाचनादितः ॥

राक्षसानां यत्र यत्र श्रूयते स पराजयः । तत्तादृक् वाक्यमात्रस्य श्रवणादेव तुन्दिलाः

प्रभवन्त्येव नितरां कृणुष्वेत्यनुवाककः । रा तत्रान्ते द्वौ ऋचौ परे ॥

याज्यानुवाक्ये भवतः सामिधेन्यः पराः स्मृताः ।

आदितः संख्यया(सर्वा ?) प्रोक्ताः पञ्चदशैव हि ॥

याज्यादिककल्पिता भू त्र परमोत्तमा ।

अतो मिलित्वा तास्सर्वास्संख्यातोऽष्टादश स्मृताः ॥

एतच्छ्रवणमात्रेण श्राद्धभुक्तौ सुखेन ते । सर्वोपद्रवनिर्मुक्ताः स्वस्थास्तौ न्नतम् ॥

प्राप्यैव परमां श्राद्धवृत्तिं चाप्यक्षयां गतिम् । तादृक् संख्यां युगशतं लभन्ते नात्र संशयः

तस्माच्छ्राद्धेषु सततं रक्षोघ्ना एक केवलम् । वक्तव्याः पितृसौख्या नवो वैष्णवस्तुते
विष्णोर्नुवाकादयः श्रीकाः पवमानाश्च पावकाः । पूर्वसूक्तादयश्चापि प्रतद्विष्णवादयोऽपिते

महा फला महामन्त्राः विष्णुमाहात्म्य वा ।

.... लेन तेषां शनकैः परमार्थप्रदायकाः ॥

रक्षोहणानुवाक्योऽपि न राक्षोघ्न इतीरितः । उक्तौ वैष्णव एवायं सद्यः श्रोत्रमुखो न तु
एवं सोमाया त्वकं पितृमन्त्रकः । तत्क्रियाबोधकः सोऽयं वाच्योऽयं पैतृकेष्वति
उशान्तस्त्वानुवाकस्तुनिखिलोऽयमृगात्मकः । पैतृकेष्ट्रिविशेषेषु महायज्ञे च काश्चन ॥

याज्यानुवाक राज तस्य च । अन्ते यमस्य कथिताः याज्याश्चापि पुरो ऋचः
पुरोऽनुवाकाश्च पुनः त एते निखिलाः पराः । पितृक्रिया न स स्य पितृम ॥

... वाकेऽपि तथा मन्त्रास्तत्र सुपावनाः । पितृणां वल्लभाः पुण्याः श्रुतिमात्रेण वृत्तिदाः
तन्नमस्कारपरमाः दैव्यानामपि सन्ततम् । ... नामपि सर्वेषां ॥

औमानामपि कृत्स्नानां तेषां बर्हिषदामपि ।

अग्निष्वात्तादिकानां च तत्रत्योऽयं महामनुः ॥

नमो व इत्ययं कृत्स्नः भूयासं चरमोऽखिलः । परमानन्दजनकः श वृत्तिदः ॥

सकृदुच्चारणादेव तस्मात्तेन समो मनुः । सर्ववेदेषु नास्त्येव तेनायं पितृकारणात् ॥

भुक्तिकालेप्रवाच्यः स्यात्पितृकर्मसु सन्ततम् । भक्षानुवाको अग्नेत्यनुवाक इत्यपि ॥

शिरोवेत्यनुवाकश्च ह्यसावादित्य एव च । संततिश्चानुवाकश्च प्रवाच्याः स्युर्विशेषतः ॥

इन्द्रो वृत्तानुवाकश्च एकविंशदिक (?) परे । ऋचस्तथैव सामानि पुनरन्यानि पण्डितः

स्वाधीनवेदैस्तद्धर्मविशेषज्ञैर्महात्मभिः । संश्रावयेद्विशेषेण पितृणामतिपावनात् ॥

सोमोत्पत्तिं चेतिहासं चरणव्यूहमेव च ।

तथा सत्यतपोवाक्यं श्रावयतीतै (यित्वै)व पैतृके ॥

इतिहासो यजुर्वेदः ऋग्वेदः कथितः स हि । सोमोत्पत्त्याख्यकः प्रश्नः चरणव्यूह स ॥

सामवेदः प्रकथितः सोऽयमार्थवर्णः स्मृतः । एवं सत्यतपोवाक्यं कथितं तेषु केवलम् ॥

यजुर्वेदस्य प्राधान्यमन्त्रसाम्नामृचामपि । आस्पदत्वेन सुतरामध्वर्य ख्यया

ऋक्सामनी यजुः पक्षौ पक्षवद्यजुरुच्यते ।

ऋचः समानि सर्वाणि यजुर्भिः प्रेरितानि चेत् ॥

स्वकार्यकृतिदक्षाणि स्वातन्त्र्यान्नैव सर्वथा । रश्च तथा सर्वे सप्ताध्वर्युमुखैः परैः ॥

नियुक्ता एव तत्कार्यकरणे पेशलाः स्मृताः । पुनस्सामानि तत्काले तत्स्तोत्रे समुपस्थिते

मैत्रावरुण ना स्तुध्वमित्येव चोदिताः । भवेयुरेव स्वप्रोक्तौ पटूनि नितरां पुनः
संप्रेषयजनेतेद्वे अनुब्रूहि यजेति च । संप्रेषणात्परं नार्ये हो यौ हि वाक्यतः ॥

परोनुवाक्या याज्याश्च निखिलास्ताः पुरो ऋचः ।

स्वतन्त्रा यत्र कुत्रापि सामिधेन्योऽपि वा तथा ॥

प्रयाजावनुयाजा वा पत्नीसंयाज ... । विनाध्वर्युं वा ब्रह्माणं दृश्यन्ते नाध्वरेषु वै ॥

सर्वत्र सामान्येवं स्युः पुनस्तानि स्तुतौ तथा । तन्मैत्रावरुणेनापि स्तुध्वमित्येव मन्त्रतः

चोदनायाः प्रवाच्यानीति साश्रुतिः ।

तस्मात्साम्नामृचां यागमात्रेऽध्वर्योः विनैव ताम् ॥

वाचं स्पन्दयितुं नित्यं शक्तिर्नास्तीति वैदिकी ।

मर्यादा विदितातीव तस्मात्तान्यपि च ॥

अधीना यजुषस्तस्य यजुस्तादृग्भवेन्न तु । ऋचो यजूंषि सामानि पृथक्त्वेन च संख्यया

सहस्राणि द्वादश स्युः सर्वशाखास्थितान्यपि । मन्त्ररू द्वद्भिः ज्ञेयान्येवं स्वभावतः ॥

एतेषामेव भूयश्च विधिब्राह्मणरूपतः । अर्थवादोपनिषदां रूपेण च विशेषतः ॥

गाथा कल्पादि रूपे(णचे)तिहासमुखेन वै । सुमहान्ग्रन्थविस्तारः अनन्तोग्राह्य एव च

बभूव किलभूयश्च ऋचः परिमिता ननु । तद्ब्राह्मणं परिमितं सामान्य तथा पुनः

परिमितान्येव तान्येवं यजूंष्यपि तथा सताम् ।

अङ्गीकारश्रुतेर्वाक्यात् अथ ब्रह्म वदन्त्यतः ॥

सर्वाण्येतानि भूयश्च तत्तल्लक्षणयोगतः । नानधिकाख्येन लक्षणेन सुतान्यपि ॥

शिक्षादिभिश्च सप्तनव लक्षणादि युतान्यपि ।

अनन्तान्यपि भूयश्च ग्रन्थसंख्या प्रमाणतः ॥

षड्विंशलक्षवर्णैकयुक्तास्ते निखिलाः ततः ।

नित्याध्ययनयोग्याश्च नाशक्याः स्युश्च केवलाः ॥

अतिप्रयाससाध्यत्वादनन्ता इत्युदीरिताः । यद्यध्ययनशक्ताश्चेदप्रमाणानि तानि वै ॥
भवेयुरेवं नितरां तस्मा ... दाः पुनश्च ते । समग्राध्ययनस्यापि शक्या एवेति वैदिकः ॥
सिद्धान्तः परमो ज्ञेयः परं त्वेतेति यत्नतः । अतिप्रयासबहुलसाध्यास्युस्तेन दुर्ग्रहः
भूयो भूयः समावर्त्याः यावत्प्राणेन तेन वै । स्वाधीना उरुक्कालेन भवेयुस्तत्परं तु ते ॥
तमेनं तारयन्त्येव तस्माद्वेदा महात्मनाम् । धनमित्येव कथितं नान्यदेतत्समं धनम्
त्रयी धनस्य जगति विनाशो जायते परः । एतस्य तु व्ययेन्नि(नि?)त्यं अध्यापनमुखेन वा
विनियोगादिना वापि ... वृद्धि रुत्तमा । वेदाक्षराणि यावन्ति पठितानि द्विजातिभिः

तावन्ति हरिनामानि कीर्तितानि न संशयः ।

अस्याः श्रुतेरयं भावः कथितो ब्रह्मवादिभिः ॥

(हरेर्)नामानि यावन्ति प्रोक्तानि ग्रन्थजालकैः । तावन्ति वेदाक्षराणि पृथक्त्वेन न संशयः
तस्माद्वेदैकाक्षरेऽपि प्रोक्ते तु स्याद्विजन्मनाम् । अनेकग्रन्थकोद्युक्त ... रद्भुता ॥

सिद्ध्यत्येवेति तत्त्वज्ञाः सुमहद्ब्रह्मवादिनाम् ।

सिद्धान्तः परमो ज्ञेयः दुर्ज्ञेयः प्राकृतैरयम् ॥

उच्चारणे तादृशस्य वेदवर्णस्य सन्ततम् । उप ... कारः ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥
स्नातस्य कृतकार्यस्य शुचरेव विशेषतः । अध्यायदिवसेष्वेव गर्जनाद्यप्रदूषणे ॥
तदुक्तौ योग्यता ज्ञेया नान्यथा ... महत् । अत्युत्तमं वेदधनं न शूद्राणां तु तत्समम् ॥
धनमस्ति कदा लोके तत्तु तेषां द्विजन्मनाम् । तस्य श्रवणतो नूतं ... शूद्रो (?) भागभवेत् ॥
पठनात्सद्य एवायं पतितो जायते वशात् । तत्क्षणादेव नितरां महादानैकमात्रतः ॥
श्रवणे वेदवर्णस्य योग्यो भवति नान्यथा । सर्वेषामपि दानानां तुलादीनां क्रमेण चेत्
करणे पदवर्णस्य वेदमन्त्रक्रियाग्रहे । अधिकारोस्तितेष्वेव दानेषु द्विजवाङ्मुखात् ॥
सर्वदानक्रियाणां चेत् त्रिवारं महतामपि । अनुष्ठानं शूद्रजातः विप्रतुल्य इति श्रुतिः ॥
ब्रह्माण्डकटाहाख्यस्य महादानस्य कर्मणः । करणात्सप्तवारस्य शूद्रोऽशूद्रो भविष्यति ॥

त्रिवारं गोसहस्रस्य करणेन जघन्यजः । च्युतः स्वजातितो नूनं वैप्रं साम्यं प्रपद्यते ॥
 धरादानत्रयेणाऽत्र वृषलो जगतीतले । इत्युक्तो जनैर्ब्राह्मणवद्भवेत् ॥
 वेदाध्ययनतः पश्चादधीते क्रममास्ति तः । प्रज्ञातवर्त्मना श्रीमान्यस्सोऽयं ब्राह्मणोत्तमः
 तत्तत्कृतुफलं नूनं प्राप्नोत्येवा वच्मि वः । वेदप्रवचने नित्यं जागरूकोऽनिशं भवेत् ॥
 विस्मृतिं यस्तस्य गच्छेत्तयानर्थो महान्भवेत् । वेदप्रवचनेनित्यमृतं सत्यं तपो दमः ॥

शमोऽनयोऽग्निं तिथयश्च प्रजादिकाः ।

सर्वार्थः पुनरन्येऽपि सिद्ध्यन्त्येवेति वेदिनः ॥

प्रथमोपाकृतेः पश्चाद्वेदारम्भः श्रुतीरितः । प्रकर्तव्यो वैदिकेन जामितां तत्र(चो)त्सृजेत्
 जातुजालमराणां वै वर्णानां ग्रहणात् परम् । वर्णिनः कथितो विद्यान्तरस्यापक्रमः कदा
 यदिपारायणग्रन्थाध्ययनात्पूर्वमेव वै । शा प्रकुरुते कालज्ञानी भवेन्नरः ॥
 पदक्रमाध्ययनतः पूर्वं पारायणस्य वै । परं शास्त्रस्य कालस्यान्न तत्पूर्वं तदाचरेत् ॥
 वेदमुत्सृज्य योवर्णी (अन्यत्र कु)रुते मतिम् । वेदप्रतारकः सोऽयं वेदद्रोहीति फण्यते ॥
 देवद्रोहस्य शास्त्रेषु ब्रह्मद्रोहस्य निष्कृतिः । गुरुद्रोहा प्रसिद्धा वर्तते पुरा ॥
 वेदद्रोहस्य तत्त्याग रूपस्यैव द्विजन्मनः । प्रायश्चित्तं नैव दृष्टं वेदत्याग्यचिरेण वै ॥
 अवकीर्णत्वमाप्नोति पदतश्च्यवते स्वकात् । ऋक्संहिताय त्रयः स्यु रधिकाः पुनः
 ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च । ऋचामशीति पादश्च पारायणविधौ खलु
 पूर्वोक्तसंख्यायाश्चेत्तु सर्वशाखोक्तसू । .. त्राश्चापि मिलित्वैव कथनं चेतितत्पुनः
 अत्यन्तगोपनं प्रोक्तं तत्तत्त्वज्ञैर्महात्मभिः । वेदत्यागैकबुद्ध्या यो ब्रह्मचारी महाजडः ॥
 शास्त्राभ्यासं ते सोऽयं मानुषगर्दभः । विधिक्रमोलङ्घनकृत्स वेदघ्नो नटो भवेत्
 परस्याध्ययनाभावे वेदार्थं तं यथार्थतः । ज्ञातुं न शक्यतेऽतीव पदाध्ययनमप्यति ॥
 कर्तव्यमेव तस्मात्तु पदाध्ययततः परम् । क्रमस्याध्ययनाभावे संहितावाक्यवर्त्मना ॥
 मन्त्रत्वसिद्धिर्मन्त्राणां न भवेदेव सर्वथा । प्रकृतिरेवादौ वेदमात्रस्य कीर्तिता ॥
 यद्यपिस्यात्तत्प्राप्त्यस्य क्रमेण च पदेन च । मन्त्रत्वादिकसिद्धिस्सा जायते न तु सर्वथा
 एतेन यत्र यत्रैतौ तीव्र च । (?) स्तस्सम्यक् तत्रतत्रैव विधिब्राह्मणवाक्यतः

अर्थवादादिनाकल्प विनियोगादिवर्त्मभिः ।

वेदार्थनिर्णयो ज्ञेयः न तूष्णीकं छलात्परात् ॥

लिङ्गमात्रात्तथा तस्मात्प्र ... च्छुतेर्महान् । भावो न जायतेज्ञातुं संहितावाक्यमात्रतः
पदाध्ययनराहित्यं क्रमाध्ययनशून्यता । दृश्यते यत्र वेदेऽस्मिन् अर्थवादादिसं(ग्रहैः) ॥
तत्रार्थवर्णने ज्ञेयः उपायोऽयं विचक्षणैः । ब्राह्मणं त्वर्थवादश्च ह्यनु ब्राह्मणमेव च ॥

कल्पाः सूत्राणि भूयश्च लक्षणानि महान्त्य ... ।

वेदार्थवर्णने प्रोक्ता हेतवो ब्रह्मवादिभिः ॥

कर्ममात्रं त्वेकवेदे प्रोक्तं भवति केवलम् । नैव किंतु यजुर्वेदे विहितस्य तु कर्मणः ॥
पौत्र ज्ञानं ऋग्वेदानामपि सुस्फुटम् । प्रभवेदेव पश्चात्तु साम्नाप्येवं भवेत्किल
विहितस्य क्रियामात्रविशेषस्य तु सर्वतः । तदङ्गानां ब्राह्मणं तदर्थवादो ॥
अनु ब्राह्मणकल्पौ च प्रतिष्ठित्यैव सर्वतः । वेदेन विहितस्यास्य कर्ममात्रस्य गुह्यतः ॥
प्रवर्तनं न घटते किंतु सर्वत्र वच्मि वः । इत्थं भावविधानर्थं ... गतान्यहो ॥
गाधाः कल्पा ब्राह्मणानि चानुब्राह्मणयोगतः । वेदत्रयेऽपि संकीर्णाः तत्तद्वाक्यौघसंचयाः
सुश्रुता एव सुस्पष्टा विज्ञाताः स्युर्हि तद्विदाम् । य ... दविहितं क्रियामात्रं हि तिष्ठति
तत्त्वल्पे भूरि विशदं सप्रकारं निरूपितम् । प्रभवेदेव भूयश्च तत्पुनर्ब्राह्मणत्रये ॥
यत्रकुत्रातिविस्तारात्सुस्पष्टमपि फण्यते । ... योऽप्येककण्ठ्यानुक्तस्य स्मार्तकर्मणः ॥
सूत्रकारैस्तस्य वर्त्म प्रोक्तिं सृष्टां महर्षयः । निर्विवादेन सर्वत्र प्राकुर्वस्तां क्रियां पराम्
पुनर्वेदोक्तिं सु(सूक्तेन)कर्ममात्रस्य कुत्रचित् । मन्त्रलिङ्गादिमात्रेण निश्चयं नेति कर्म तत्
विध्यर्थवादमन्त्रेति कर्तव्यं ब्राह्मणादिभिः । कल्पसूत्रौक्यपठितं कर्म प्रा(माण्य?)मृच्छति
वेदवाक्यार्थनिष्कर्षः काण्डोक्तकरणादिभिः । समाख्यानप्रकरणविना योगनिरूपकैः
निर्भुजक्रमसांगत्य ब्राह्मणार्थपरैस्तथा । अर्थवा ... कल्पैश्चानु ब्राह्मणमहोक्तिकैः ॥

भवितव्यो नान्यथास्याच्छ्रुतिः केवलवादिनम् ।

दृष्ट्वाभिया सद्य एव तं त्यक्त्वा दूरगा भवेत् ॥

विनियोग ... कल्पसूत्रादिनादितः । भवितव्यं प्रथमतः नियुक्तानां ततः परम् ॥

अर्थवाद ब्राह्मणादि जालवाक्यैककण्ठ्यतः । समीक्षणमुखेनैव वेदान्तर सम ॥
 भवेदेवेति शास्त्रहृत् । यत्रकुत्रस्थितं वेदवाक्यं संगृह्य केवलम् ॥
 अस्य वाक्यस्यायमर्थः इति वक्ता ज्ञ उच्यते । अनधीत्यैव तूष्णीकं वेदान्तं वेदवाक्यकृतं
 भविष्यत्येवमर्थो हि पौर्यापर्यानिरीक्षणात् । अज्ञातार्थमिमं ब्रूमः केवलं लौकिकास्तु ये
 प्रतिभासितमात्रेण प्रस्तारो प्राववाचकः । (स्व)खरो गार्दभ एवस्यादुप या ॥
 प्रहाभवनधीर्यायाः स्वरवस्वरवाचकः । भूयोऽयमेकवचनः पूतभृद्बर्हस्तकः ॥
 प्रजापतेर्हृदयं ब्रह्मभावमितिस्म वै । यं तत्तूष्णीमपशब्दं तथा पुनः ॥
 दर्भग्रन्थि पवित्रं च चरणं पादमित्यपि । केवला वैदिकमहाजडानां निष्क्रियावचः ॥

न स्वीकार्याश्च न श्राव्या न्युत्तराक्षमाः ।

छन्दोबद्धाः सर्ववेदाः तानि छन्दांसि वैदिके ॥

द्वात्रिंशत्कथितान्येव लौकिकानि तु केवलम् ।

षड्विंशत्संख्यया तानि प्रोक्तानि ब्रह्मवादिभिः ॥

... नि च सर्वाणि प्रस्तारेण विसेषततः । ज्ञात्वागतिं ततो मिथ्यासत्ये स्पष्टेक्षन वै
 भवेतामेव तद्ज्ञानात्तत्तज्ज्ञानमुत्तमम् । लौकिकं छन्दसां वापि वैदिकं छन्दसां तु वा

... नाज्ञाते सत्यानृते भ्रुवम् । भवेतामेव वाक्यानां तदीयानां न चेन्न तु ॥
 प्रस्तारो नष्टमुद्दिष्टं एकद्वयादलग्नक्रिया । संख्या तदध्वयोगश्च षडिमे प्रत्ययाः (स्मृताः?)

... दासितानि ज्ञेयानि चोक्तादीन्येव सन्ततम् ।

फट्छत्कारादिकामन्त्राः उक्ता छन्दस्समुद्भवाः ॥

स्वाहा स्वधा वषट्कारा अनुक्तासंभवाः स्मृताः ।

... द्यो मन्त्राः मध्या छन्दस्समुद्भवाः ॥

हयवस्यादयश्चापि प्रतिष्ठायां समुद्भवाः । एकस्मै स्वाहेति तथा चतुर्भ्य इति म ... ॥

... तासु प्रतिष्ठायां तथा पश्चात्प्रवच्यति । पञ्चाशते स्वाहेति मनवोन्ये श्रुतिस्थिताः

गायत्रीछन्दसिभवाः तथान्ये मनवः शिवाः ।

त्रिभ्यः शतेभ्यः स्वाहेति प्र ... चोदिताः ॥

उष्णिक्छन्दसि संभूताः विज्ञेया वैदिकोत्तमैः ।

अनुष्टुप्छन्दसिभवाः मात्रास्ते श्रुतिशीर्षगाः ॥

सप्तभ्यः शतेभ्य स्वाहेत्यादिकास्ते प्रचोदिताः । स्वाहा मा ... स्वा मन्त्राः परे च ये

बृहतीछन्दसि भवाः विज्ञेयास्तदनन्तरम् ।

पङ्क्ती (ङ्क्ति)छन्दसि संभूताः मनवोऽन्ये श्रुतिस्थिता ॥

अदित्यै सुमृडीकायै स्वहेति प्रमुखाः स्मृताः । तदा न्ये महत्तराः ॥

अग्नये बृहते नाकाय स्वाहेत्यादिकाः स्मृताः ।

जगत्याख्ये छन्दसि तु मनवोऽन्ये तथोदिताः ॥

समिदसि समीधिषिमहि स्वहेति । ... भवा मन्त्राश्च केचन ॥

सहस्रधारं हुतस्तोको हुतोद्रप्सादिरूपकाः । शक्र्यादिषु सर्वत्र मन्त्रा वेदैकसंस्थिताः

ऋग्यजुः सामरूपा वर्णकैः । एकाक्षरं समारभ्य एकैकाक्षरवर्धितैः ॥

पृथक्छन्दोभवेत्पादैः यावद्द्वित्रिंशत् गतैः । ऋचां तु पादतस्तत्त्वं यजुषा ॥

यजुष्ट्वं कथितं सद्भिः कचिद्यजुषि केवलम् । अनेकवर्णसंयुक्तं वाक्यानेकसमन्वितम्

एकमेव यजुः स्यात्तु स्वातन्त्र्यात्तत्तथा भवेत् । ऋगलक्षण क्षमा च तस्मै

भवेदेव विशेषेण यजुष्ट्वं तादृशं महत् । रिच्यध्युढत्वमेव स्यात् सामलक्ष्मेति वैदिकाः

ऋग्विकाराणि नामानि विज्ञेयानि मनीषिभिः । स्तो पराण्येवेति तद्विदः

यजुः सर्वस्वतन्त्रत्वात्सर्वानुग्राहकं परम् । सर्वनिग्रहकृद्भूयः सर्वरूपधरं पुनः ॥

सामत्वेन च ऋत्त्वेन विद्यमानं स्वयं । ... कारनरं सम्यग्विभात्येव सदास्ततः

अग्नयाहीति यजुः ऋत्त्वेनैव स्थितं पुनः । रथन्तरस्वरूपं च विभर्ति किल केवलम् ॥

तं त्वा समिद्धिरित्याख्यं ति । भ्राजते श्रुतिवृन्देषु यजुरेव स्वयं पुनः ॥

बृहदग्नेति तद्भूयः बृहत्सामस्वरूपवत् । तत्कार्यं साधयत्येव तस्मादेत ॥

एतत्तु बार्हतं (शा)शस्त्रं शस्त्राणामुत्तमोत्तमम् । तत्समं शस्त्रमन्यद्वै नैवेति श्रुतिराह हि

यस्तुलोके महच्छस्त्रं बृहत्याख्यं विचक्षणः । ... ण सोऽयं विद्वान्महोत्तमः ॥

कृतकृत्यः प्रभवति वेदोक्ताखिलकर्मकृत् । यावदायुः प्रभवति ब्रह्मज्ञानं च विन्दति ।

तत्कथंचेति पृष्ठे तु प्रवदाम्य । ... विशयघ्नं वै सर्ववैदिकसंमतम् ॥

बृहत्याख्यसहस्रस्य ह्यृचां तासां समष्टितः ।

षड्विंशतं चाक्षराणां सहस्राणि भवन्ति हि ॥

तावन्ति पूषा ... वसंख्यया । तावन्त्येव हि कर्माणि सर्वश्रुत्युवि(दि)तान्यपि

सतां सन्ति मिलित्वात्र तद्ज्ञाता तेन पण्डितः ।

स्वपूर्णाद्युष्यनिखिलः वसे ... श्रुतीरितम् ॥

... ... देववच्मिवः । तादृक्सर्वक्रियामूलं बृहदनेति तद्यजुः ॥

ऋग्रूपमेकमेव स्यादेवं सर्वत्र हा पुनः । मनवो निखिलाज्ञेयाः वेदमध्यगता ... ॥

... ... पंतं द्वोदरूपो जगन्मयः । वेत्तीशः परमात्मैकः साक्षान्नारायणो विभुः ॥

कथमन्ये विजानीयुः ब्रह्माद्या अल्पबुद्धयः । वेदप्रता ... ज्ञश्च कर्हिचित् ॥

कैश्चिदेव महामूढैः त्यज्यते वैदिकाख्यकैः । वेदक्रियामुखेनैव चित्तशुद्धिः प्रजायते ॥

नैर्मल्यं चेतसो । वेदोक्तमार्गः परमः कैवल्यस्यातिसुन्दरः ॥

अत्यन्तसुलभः श्रीकः सुमहानेक एवसः । कलौ तु ब्राह्मणो नित्यं सन्ध्यामात्रेण पैतृकम्

... ... तेन तत्परमो भवेत् । यदि च्युतः स्याद्ब्राह्मण्यान्न पुनस्तस्य भूतले ॥

उद्धितैर्नैव दृष्टैव कल्पकोटि शतैरपि ।

नाशौचकाले सन्ध्यायाः उ ... तिः किंतु पाथ ... ॥

... ... तन्मन्त्रान्मनसोच्चरन् । श्राद्धं तदन्ते कुर्याच्च नतस्मिन्वै कथंचन ॥

अशुचिः सन्नपि पुनः मृतयोः कर्मतत्तदा । पित्रोर्यथावदन्येषां वाऽपि कुर्यान्न संत्यजेत्

ग्रह ... तत्सन्नानात्तत्र केवलम् । तत्क्रियामात्र कर्तास्यात्तत्कालः तादृशः परः

अशुचिः सन्यतेः पुत्रः न कुर्यात्कर्म पावकम् ।

... ... तद्धि तस्मात्परित्याज्यं पुत्रेणापि यत्तेस्तु तत् ॥

... ... वेदीं यथावत्पूजयेदपि । निवेदयेत्पायसान्नं कुर्याच्च क्षीरतर्पणम् ॥

कर्ममात्रं यतेर्येन केनापि किल शस्यते । अतस्त ... यां यतेः ॥

अन्येनापिकृतेतस्मिन्यतिकर्मणि तादृशे । तत्पात्रस्य ... ॥

रुद्राहे पार्वणश्राद्धमीदृशेऽहि तथा पुनः । नारायण बलिश्चापि परमाराधनं ... ॥

... दिने कार्यः इत्येवं तत्क्रमं विदुः । प्रायश्चित्तं च संन्यासः सूतकेन विधीयते ॥

संन्यासिनः कर्ममध्ये तत्कृतुर्नैव सूतकम् । स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञश्च नित्य ... ॥

सर्वश्राद्धक्रियाश्चापि तस्य स्यु रिति वेदिनः । तन्मध्ये तस्य कथितं ब्रह्मचर्यमचञ्चलम् ॥

एकमुक्तिं विशेषेण पराङ्ग परिवर्जनम् । दीक्षाकर ... वता ॥

सम्यग्गाश्रयणीयाः स्युस्तत्रैकमपि न त्यजेत् । ज्येष्ठेन विकटस्थेन पितृकृत्येऽखिले कृते

दूरदेशागतो ह्रस्वः श्रुत्वा पितृविपर्ययम् । सद्यः स्ना ... ॥

... जलाञ्जलीन्दत्वा सद्यस्तद्गोत्रनामभिः ।

तदुद्देशेन शक्त्याऽत्र दत्त्वा वसू च तत्परम् ॥

एकोत्तरश्राद्धमात्रं कुर्यादेवान्वहं ततः । सपिण्डीकरणं ... तत्काल ... ॥

वसुरुद्रादिसहितं पार्वणं यत् प्रदृश्यते । अतिप्रसिद्धं सर्वत्र तद्विधानेन केवलम् ॥

पित्रादींस्त्रीन्समुद्दिश्य कुर्यादिति यमोऽप्रीत् । ... तच्चगन्तुं मरुत्स्थलम् ॥

असमर्थस्य सुतरां तन्मध्ये दशरात्रके । अग्निदस्य तु तत्सर्वं नम्रश्राद्धादिकं तथा ॥

नवश्राद्धादि सर्वाणि ... । ... ख्यं सुमुखं सर्वं तस्यैव केवलम् ॥

भवेदित्येव शास्त्राणां पद्धतिर्महती स्मृता । प्रतिपुत्रं न भवति सैषा ह्येकत्र केवला ॥

तत्रैवेति विवादेन प्रति ... । ... कान्यपि सर्वाणि ज्येष्ठेनैव कृतानि चेत् ॥

अलमित्यत्र केचित्तु कुर्युः सर्वेऽपि दूरगाः । एतद्ब्रु वन्महात्मानं तथा मास्त्विति केचन

अतस्तत्कर्म ... । परदेशगतो बाल्ये पित्रोः श्राद्धादिकं परम् ॥

अजानन्केवलं तस्मिन्दिवसे चेद्विवाहतः । उपनीतोऽपि वा पश्चात्तज्ज्ञात्वा तत्परं सतः

व्यूहयित्वा प्रणम्यैना ... । ... तिक्रूरस्वकृत्यं तन्मोहप्राप्तं निवेदयेत् ॥

निवेद्य दक्षिणां भक्त्या शक्त्या लोभविवर्जितः ।

ततस्तेषां प्रसादेन चापाग्र सतमज्जनात् ॥

गोदान दशकाश्चापि पट ... । ... स्कारतः पश्चाद्यावकाहार मासतः ॥

दश साहस्रगायत्रीजपतः शुचितामियात् । एतदत्यन्ताज्ञानैक संप्राप्तस्येति चोचिरे ॥

पितृ रक्षोभादिना तदा । अत्यन्तवैपरीत्येन सदि संभावना भवेत् ॥
 तत्रचौलोपनयनविवाहादीनपरित्यजेत् । अत्यज्ञानादतिक्षोभा पिवा ॥
 विवाहे दर्शविपुवायन युग्मे गृहेऽपि वा । सद्यश्चण्डलतां याति पितृघ्नो ब्रह्महाप्ययम्
 भ्रूणघ्नोऽपि च स्ते । तत्संयोग्यपि भूयश्च तादृशस्यास्य पापिनः ॥
 तद्दोष परिहाराय पुरोक्ता याहि निष्कृतिः । सैवकार्यो पुनर्नान्या चण्डा ॥
 ज्येष्ठं पितृव्यं वापि ताम म् । मृतं सद्यो न संस्क्रुर्यात्किंतु तूष्णीममन्त्रकम्
 दग्ध्वा श्मशान चाण्डाले द्वादशाब्दात्परं पुनः । चाचाग्रस्नान सा ॥
 गोसहस्रप्रदानैश्च परिपत्पूर्वकेण वै । तूष्णीं त्रिवारं दग्ध्वा तमस्थ्यलामेऽपि दर्भतः ॥
 तत्परं गाङ्गसलिलादभिषिच्यैव तं पुनः । मन्त्राग्निना लौकिकेन यथाविधि ॥
 त्रिभिरेव दिनैः पश्चात्संस्क्रुर्याद्दशभिर्दिनैः । सूतक प्रग्रहं कुर्याल्लौकिकाग्नौ सपिण्डनम् ॥
 तस्य कुर्यात्ततः श्राद्धं मातुर्लप्येव । चाण्डालस्त्वं प्राप्ताया दुर्धियः परम्
 एतेन सर्वचित्तानि यत्रकुत्राश्रुतान्यति । चोदितानि हि तेनातः सुलभानां तु चोदनात्
 वसमालाच्योपरम्यते । प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै ॥
 यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् । कलौ पापैकबहुले धर्मानुष्ठान ॥
 नं मुक्त्वा नृणां नान्यत्परायणम् ।
 मद्यं पीत्वागुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा ॥
 भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयान सर्वपापैः ।
 ब्राह्मणो ब्रह्मनिष्ठः स्याद्ब्राह्मणस्सन्वृथा स्वयम् ॥
 न म्रियेतैव वृषवर्तिकुसन्त्राग्निसंस्कृतम् । यथा वा प्रभवेत्सोऽयं तथा ॥
 ब्रह्मर्मधाख्य विधिना संस्कृत ब्राह्मणोत्तमः । ब्रह्मैव प्रभवेन्नूनं यथा संन्यास कर्मणा ॥
 यदि पुत्रस्समर्थश्चेद्ब्रह्ममेघस्स सिद्ध्यति । जन्मनोऽन्ते कृतीभवेत् ॥
 भ्रातृणां चेतसाचित्त समाधानं यदा भवेत् ।
 तदा विभागो विज्ञेयः पृथक्पाणि र्यदा तदा ॥
 पृथग्रामनिवासतः । पृथक्श्राद्धादिकरणार्त्किपुनस्स इतिस्मृतः ॥

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते । क्रयश्च सकृदे (वेति) (त्रिणेत्रानि) तु सकृत्सकृत्

भागिनेयो जडो (मोहा)क्तो ध्रातृद्रव्यं हरति मोहतः ।

दुर्वाक्यैर्वलतः पापीकालेनैहाल्पतः परम् ॥

पुत्रैः पौत्रैर्जनैः सहत्तराम् । असुभूय स्वयं पश्चात्कुलनाशमवाऽऽप्नुयात् ॥

तस्मात्तु छागिनं भागात् च्यावयीत न सर्वथा । परद्रव्याप ॥

... .. ॥

.... प्रभवेन्न भास्ताः प्रवेशयेत् । प्रविश्य नानृतं भूयात्सर्वदा सत्यमेव तत् ॥

ब्रूयात्सत्यं बहुजनद्रोहरू । कृतं बाधकाभावे हितं लोकस्य नोच्चरेत् ॥

ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा सम्यक् प्राणान्परित्यजेत् । शान्तचित्तः शुद्धमनाः सुमुखः ॥

प्रियंवदो जनहितः अभिनन्द्योऽखिलैरपि । प्रभवेदेव सत्तद्यत्कर्मकुर्यात्पुनश्च तत् ॥

ईशार्पणधिया कुर्यादेवं कुर्वन्तरत्यघम् । लौगाक्षि मुनिनाप्रोक्त माख्यानं धर्म्यनामकम्

शृण्वतां पठतां चापि चिन्तितार्थप्रदायकम् । अज्ञानपापशमनमायुष्यारोग्यवर्धनम्

चित्तं संशयवारहम् । लौगाक्षिणैव तद्व्याख्यातं धर्मशास्त्रं सुपावनम् ॥

चतुर्वर्गप्रदं नृणांमित्येवेति सुनिश्चितम् ॥

इति लौगाक्षिधर्मशास्त्रं

॥ समाप्तम् ॥

शमस्तु



संचालक : राजगुरु पण्डित हरिदत्त शास्त्री